अष्टाध्यायी में वर्णित आदेश विधायक सूत्र
- एक समीक्षात्मक अध्ययन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी के अन्तर्गत
संस्कृत विषय में पी. एच. डी. उपाधि
हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

2005

शोध निर्देशक :
डॉ. टी. आर. निरञ्जन (रीडर)
विभागाध्यक्ष - संस्कृत
मथुरा प्रसाद स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, कोंच (जालौन)

मधु
प्रस्तुतकर्त्री :
श्रीमती मधु
नया पटेल नगर, उरई

मथुरा प्रसाद स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोंच (जालौन)

आत्म निवेदन

वैदिक एवं लौकिक सम्पूर्ण वाङ्मय का यथार्थ बोध व्याकरणार्धन है। महाभाष्यकार महर्षि पतञ्जलि व्याकरण के महत् को बतलाते हुये यहाँ तक कहा है कि शास्त्र के अनुसार भली प्रकार जाने गये एक शब्द का भी प्रयोग किया जाये तो वह लोक-परलोक में सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाला होता है। "एकः शब्दः सम्यक् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गलोके च कामधुक् भवति"

सत्य है व्याकरण संस्कार सम्पन्न शब्द का प्रयोग करने से धर्म उपयोग होता है, जिससे जीव के समस्त कलमष क्षीण हो जाते हैं, जो व्यक्ति प्रकृति - प्रत्यय का पूर्ण ज्ञान करके भली प्रकार सत्य के अर्थ को समझता है वह वाणी रूपी रथ पर सवार होकर प्रशस्त मार्ग पर चलता है तथा सुसंस्कृत शब्द को ही मोक्ष का साधन मानकर सुचारू वाणी बोलता है वह अपने अभीष्ट तथा परम सुख को प्राप्त कर लेता है। शब्द शास्त्र के इस अप्रतिहत उपादेयता से प्रभावित होकर ही व्याकरण शास्त्र में मैंने सर्वपूज्य, सर्वमान्य महर्षि पाणिनि के अभूतपूर्व व्याकरण ग्रन्थ अष्टाध्यायी में वर्णित आदेश विधायक सूत्र - एक समीक्षात्मक अध्ययन नामक विषय को विवेच्य बनाया।

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी से सम्बद्ध ख्याति प्राप्त कालपी कालेज कालपी (जालौन) से एम. ए. (संस्कृत) करने के बाद मेरी दो अभिलाषायें थी। पी. एच. डी. उपाधि के लिये प्रवेश तथा व्याकरण ग्रन्थों का अध्ययन। सौभाग्य से मेरी दोनों इच्छायें एक साथ पूरी हो गईं, बुन्देलखण्ड वि. वि. झाँसी ने पी. एच. डी. में प्रवेश देकर कृतज्ञ बनाया और मेरे निर्देशक डॉ. टी. आर. निरंजन (रीडर) विभागाध्यक्ष - संस्कृत ने "अष्टाध्यायी में आदेश विधायक सूत्र - एम समीक्षात्मक अध्ययन।" विषय देकर चिराकांक्षित कामना की पूर्ति का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

महर्षि पाणिनि कृत सूत्रात्मक शैली में वर्णित अष्टाध्यायी नामक कृति आठ अध्यायों में विभक्त हैं, प्रत्येक अध्याय चार पादों में बाँटा गया है जिसमें 3976 सूत्र हैं जो व्याकरण का महत्वपूर्ण व अद्वितीय मेरुदण्ड माना गया हैं।

प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध सात अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में आदेश सूत्रों का परिचय, आदेश शब्द का का अर्थ एवं तात्पर्य। आदेशों का विभाजन। आदेश सूत्र - वर्गीकरण आदि पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया हैं। द्वितीय अध्याय में - सम्प्रसारण प्रकरण को रखा गया है। तृतीय अध्याय में - विविध प्रकरण विवेचना के अन्तर्गत - रुत्व प्रकरण, सत्व प्रकरण, षत्व एवं मूर्धन्यादेश प्रकरण, णत्व

प्रकरण आदि की समीक्षा की गयी है। चतुर्थ अध्याय प्रत्ययादेश से सम्बन्धित है। पंचम अध्याय में प्रकृत्यादेश, सभाव प्रकरण का विवेचन किया गया है। षष्ठ अध्याय में - एकादेश प्रकरण व द्वित्व प्रकरण को विवेच्य बनाया। सप्तम अध्याय उपसंहार में शोध की प्रमुख उपलब्धियों का वर्णन प्रस्तावित है। शोध प्रबन्ध के अन्त में सन्दर्भ ग्रन्थ सूची दी गयी हैं।

गुरु प्रवर डॉ. निरंजन जी ने व्यस्त होने पर भी मेरी शोध विषयक गुत्थियों को सुलझाने में जो अभिरूचि दिखाई वह मेरे लिये कल्पनातीत थी। उनकी सतत् प्रेरणा, सहयोग, बहुमूल्य सन्निर्देश और पुत्रीवत् स्नेह देने की जो कृपा की एवं सम्प्रति शुभाशीष देकर कृतार्थ किया उसका ही परिणाम है कि यह शोध कार्य पूर्ण हो सका एतदर्थ मैं उनके प्रति आजीवन ऋणी हूँ। गुरू पत्नी श्रीमती क्रान्ति देवी के श्री चरणों में नतमस्तक हमेशा रहूँगी जिनका शोध काल के समय हमेशा अपार वात्सल्य स्नेह मिलता रहा।

मैं महाविद्यालय के गुरूजन जो मूर्धन्य व्याकरणाचार्य है श्री धर्मेन्द्र पाल सिंह, व मेरी प्रेरणा स्रोत रहीं श्री ममता स्वर्णकार जी सहित विद्यालय परिवार की कृतज्ञ हूँ। जिनका हमें प्रत्यक्ष व परोक्ष सहयोग मिला। उन सबके मौलिक चिन्तन की प्रेरणा के प्रति नतमस्तक हूँ।

प्राचार्य के रूप में अपनी कर्त्तव्य निष्ठा एवं अनुशासन के लिये प्रिय समाज सेवी प्रोफेसर वीरेन्द्र सिंह जी से मिले प्रोत्साहन एवं शुभाशंसाओं के प्रति कृतज्ञ हूँ।

मेरे भविष्य के प्रति सदैव चिन्तित रहने वाली पूज्नीय माता जी श्रीमती सतरूपा एवं वाल्यकाल से ही संस्कृत अध्ययन, मनन अजस्त्र प्रेरणा प्रदान करने वाले परम पूज्य पिता जी श्री हरिओम जी का वात्सल्य स्नेह एवं उत्साहवर्धन स्मरणीय ही नहीं वरन् स्तुत्य है। वस्तुतः शोध प्रबन्ध उन्हीं के संकल्प, प्रेरणा एवं आशीर्वाद का ही प्रतिफल है। मैं उन सभी अपने प्रेष्ठ सहयोगियों श्री के. बी. सिंह, पूजा, मनीषा, ममता आदि के प्रति आभार प्रदर्शित करती हूँ जिनसे प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से लाभान्वित हुई हूँ।

पूज्य विद्वान श्वसुर श्री मिश्री लाल (वरिष्ठ अनुदेशक) एवं मातवत् स्नेह देने वाली मेरी सासु जी श्रीमती मौर्य श्री दोनों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने पदे-पदे अपने सुझावों एवं निर्देशनों से मेरा मार्ग प्रशस्त किया। अपने कार्य की अवधि में, मैं अनेक बार हतोत्साहित हुई हूँ, अधीरता के इन क्षणों में मुझ में धैर्य, साहस एवं विश्वास का संचार करने अपने पूज्य पति देव राजेश सिंह के सौजन्य

के लिये आभारी हूँ। मेरे देवर चि. विवेक कुमार, चि. हरेन्द्र कुमार, चि. अंकित कुमार ने शोध सम्बन्धी कृतियों के संकलन में पर्यापत दौड़ धूप करके मेरी सहायता की। तथा ननद-स्नेहलता, विनीता, बहन-शीला, संघमित्रा, प्रियंका, रुमी भाई-सचिन, कपिल, राहुल, रवि, पवन ने शोध काल के समय नन्हीं बेटियों-अंशिका, विदुषी का दायित्व सँभाला। अतः इन सभी के प्रति आभारी हूँ।

पुस्तकालय के कर्त्तव्य निष्ठ एवं अनुभवी कर्मचारी श्री नरेश चन्द्र बाबू जी ने मेरी हर मौके पर सहायता की। मैं उनके प्रति हमेशा आभारी रहूँगी।

कम्प्यूटर द्वारा प्रिंट करके शोध प्रबन्ध को स्वच्छ और सुन्दर रूप देने में मेरी मदद मु. जियाउर्रहमान अंसारी (गुड्डू) महक कम्प्यूटर्स, बजरिया, उरई के बिना शोध प्रबन्ध अधूरा ही रह जाता। उन्होंने मेरी पल-पल सहायता की। अतएव मैं इनकी आभारी हूँ।

अन्त में गणेश जी की महती कृपा थी जो कि हमारा शोध प्रबन्ध निर्विघ्न समाप्त हुआ, अन्यथा मुझमें इतनी सामर्थ्य कहाँ।

मुझे पूर्ण आशा एवं विश्वास है कि नीर-सीर विवेक परीक्षक गण प्रसाद वश हुई अपरिहार्य त्रुटियों की ओर ध्यान न देते हुये इस शोध प्रबन्ध का मूल्यांकन करेंगे।

मधु

मार्ग शु. प. — विनयावत

गणेश चतुर्थी — श्रीमती मधु

05.12.2005

प्रमाण-पत्र

डॉ. टी. आर. निरञ्जन (रीडर)
विभागाध्यक्ष - संस्कृत
मथुरा प्रसाद स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोंच (जालौन)
(बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी)

फोन नं. : (05165) 264112
मोबाइल : 05165-204599

शोध निर्देशक का प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती मधु पुत्री श्री हरिओम कालपी कालेज कालपी (जालौन) ने ''अष्टाध्यायी में आदेश विधायक सूत्र - एक समीक्षात्मक अध्ययन'' नामक विषय पर प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मेरे निर्देशन में सुचारू रूप से पूर्ण किया गया है, श्रीमती मधु का यह पूर्णतः मौलिक शोध कार्य है। यह शोध प्रबन्ध बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी को यथोचित् अग्रिम कार्यवाही हेतु सेवा में संप्रेषित है।

मैं इनके उज्जवल भविष्य की कामना करता हूँ।

डॉ. टी. आर. निरञ्जन (रीडर)
विभागाध्यक्ष - संस्कृत
मथुरा प्रसाद स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, कोंच (जालौन)
(बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी)

विषय-सूची

(अनुक्रमणिका)

		पेज संख्या
भूमिका	विषय प्रवेश	1-18
	शोध प्रबन्ध की संक्षिप्त पृष्ठभूमि	
प्रथम अध्याय	आदेश सूत्र परिचय एवं विवरण	19-60
	✦ आदेश शब्द का अर्थ एवं आदेश सूत्र का तात्पर्य	
	✦ आदेशों का विभाजन	
	✦ आदेश एवं आगम, आदेश एवं लोप	
	✦ आदेश एवं द्वित्व, आदेश एवं निपातन	
	✦ आदेश से सम्बन्धित कुछ प्रमुख शब्द नित्यत्व	
	✦ आदेश सूत्र - वर्गीकरण	
	✦ आदेश सूत्रों का क्रमानुसार संक्षिप्त विवरण	
	✦ सन्दर्भ सूची	
द्वितीय अध्याय		61-140
	✦ सम्प्रसारण प्रकरण	
	✦ सन्दर्भ सूची	
तृतीय अध्याय	विविध प्रकरण विवेचना	141-224
	✦ रुत्व प्रकरण, सन्दर्भ सूची	
	✦ सत्व प्रकरण, षत्व एवं मूर्धन्यादेश प्रकरण, सन्दर्भ सूची	
	✦ णत्व प्रकरण, सन्दर्भ सूची	
चतुर्थ अध्याय	प्रत्ययादेश, सन्दर्भ सूची	225-289
पंचम अध्याय	प्रकृत्यादेश	290-332
	✦ सभाव प्रकरण, सन्दर्भ सूची	

षष्ठ अध्याय	प्रकीर्ण आदेश	333-356
	✦ एकादेश प्रकरण	
	✦ द्वित्व प्रकरण, सन्दर्भ सूची	
सप्तम अध्याय	उपसंहार	357-365
	✦ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची	366-368

(डॉ. टी. आर. निरञ्जन)	मधु श्रीमती मधु
शोध निर्देशक	शोधकत्री

भूमिका

संस्कृत भाषा की प्रवृत्ति एवं भाषा का विकास

वेदों की औपौरूषेयता तथा नित्यता को सभी भारतीय प्राचीन वैदिक ऋषि-मुनि तथा आचार्य एक स्वर से स्वीकार करते हैं। परम कृपालु भगवान प्रत्येक कल्प के आरम्भ में ऋषियों को, आद्यन्त रहित नित्यावाक् (वेद) का ज्ञान देता है, जिस वैदिक ज्ञान से लोक समस्त व्यवहार प्रचलित होता है।

भाषा की उत्पत्ति की समस्या का भाषा विज्ञान के साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं है। भारतीय वाड़मय के अनुसार- लौकिक भाषा का विकास वेद से हुआ। ऋषियों ने ही आरम्भ में वेद के आधार पर सर्वव्यवहारोपयोगी अतिविस्तृत भाषा का उपदेश किया। वही भाषा लोक की आदि व्यावहारिक भाषा हुई। वेद स्वयं कहता है -

''देवीं वाचमणनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पश्वो वदन्ति।''

अर्थात् देव जिस दिव्य वाणी को प्रकट करते हैं, साधारण जन उसी को बोलते हैं।

(यह ज्ञातव्य है कि वेद में पशु शब्द मनुष्य प्रजा का भी वाचक है।) अथर्ववेद का वधू के प्रति आशी परक मन्त्र हैं -

''वितिष्ठत्तामातुरस्या उपस्थान्ननारूपाः पशवो जायमानः।''

संस्कृत वाङ्मय में यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है कि प्रत्येक विद्या का प्रथम प्रवक्ता आदि विद्वान ब्रह्मा था। यह ब्रह्मा निस्संन्देह एक विशष ऐतिहासिक व्यक्ति था। संस्कृत वाङ्मय के अध्ययन से ज्ञात होता है कि आयुर्वेद, धर्मशास्त्र, कामशास्त्र और मोक्षशास्त्र आदि प्रत्येक विषय के आदिम ग्रन्थ अत्यन्त विस्तृत थे। समस्त विभागों में प्रयुक्त होने वाले पारिभाषिक तथा सर्व व्यवहारोपयोगी साधारण शब्दों का स्वरूप उस समय निर्धारित हो चुका था वर्तमान समय में उपलब्ध तत्तद् विषयों के ग्रन्थ तो (जो इस रूप में भी पाश्चात्य विद्वानों के लिए आश्चर्यजनक है) उन प्राचीन अविस्तृत ग्रन्थों के अत्यन्त संक्षिप्त संस्करण है। अतः यह मानना पड़ेगा कि संस्कृत भाषा वर्तमान काल की अपेक्षा, प्राचीन, प्राचीनतर और प्राचीनतम काल में विस्तृत, विस्तृततर और विस्तृतमय थी। इससे स्पष्ट होता है कि संसार की सब भाषाओं का आदिमूल संस्कृत भाषा है।

''इदमन्धतमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारान्न दीप्यते।।''

भाषा ही वह सशक्त माध्यम है जिसके द्वारा मनुष्य अपने भावो एवं विचारों को सर्वाधिक

स्पष्ट रूप से अभित्यक्त कर सकता है। संकेतादि के द्वारा भी थोड़ी बहुत भावाभिव्यक्ति संभव है पर सूक्ष्म एवं स्पष्ट भावाभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से ही संभव है। चिन्तन मनन एवं विचार विमर्श का साधन भी भाषा ही है। सम्पूर्ण ज्ञान ही शब्द के साथ अनुविद्ध है तथा समस्त अवबोधों की प्रकाशित वाक् ही है।

भाषा का महत्व -

विश्व की प्राचीन एवं सुविकसित भाषाओं में संस्कृत का स्थान अन्यतम् है प्रकृति प्रत्यय के संस्कारों से युक्त तथा दिव्य गुण समन्वित होने से ही आचार्य दण्डी ने इसे देवीवाक् (देवभाषा) के अभिधान से विभूषित किया है। इस भाषा के माध्यम से भारत का प्राचीनतम इतिहास रचा गया। दर्शन, वैदिक, ज्योतिष, गणित, नाट्य-शास्त्र काव्य-साहित्य आदि विषयों के श्रेष्ठ ग्रन्थों से इस भाषा का भण्डार सुसमृद्ध है। आचार्य पाणिनीकृत आष्टाध्यायी इसी आदर्श देवभाषा के शब्द साधुत्व का प्रतिपादक ग्रन्थरत्न है।

भाषा की उपयोगिता तथा व्याकरण से सम्बन्ध -

भाषा सतत् प्रवाहमयी सरिता के समान है। नये-2 शब्द बनते एवं प्रचलित होते रहते है तो कुछ पुराने शब्द प्रयुक्त न होने से अप्रचलित हो जाते हैं। विभिन्न भाषाओं के उद्भव एवं विकास का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि कुछ वर्षों के पश्चात ही भाषा विशेष में प्रयुक्त कतिपय शब्दों के स्वरूप अथवा अर्थ अथवा दोनों में परिवर्तन हो जाता है। तथापि व्याकरण ग्रन्थों की उपयोगिता कम नहीं होती है। व्याकरण भाषा में होने वाले परिवर्तनों को संयत रखता है तथा भाषा सरिता की उच्छंखल गति को नियन्त्रित करता है। यदि व्याकरण न होते तो विश्व की कई प्राचीन भाषाएं अद्यावधि बोधगम्य न होती। भाषा के यथार्थ ज्ञान हेतु व्याकरण परम आवश्यक है।

षड्वेदाङ्गो में व्याकरण की प्रधानता है व्याकरण को वेदपुरूष का मुख कहा जाता है- "मुख व्याकरणं स्मृतम।" वेदों में व्याकरण की प्रशस्तिपरक कई मन्त्र उपलब्ध होते है।

"रक्षोहागमलध्वसंदेहाः प्रयोजनमू!" इत्यादि वचनों द्वारा भाष्यकार पतञ्जलि ने भी व्याकरण की उपयोगिता एवं महत्व को स्पष्टतः उद्घोषित किया है।

पाणिनी और उनका शब्दानुशासन -

संस्कृत भाषा के समस्त प्राचीन आर्ष व्याकरणों में एकमात्र पाणिनीय व्याकरण अपने समय

की एक अनुपम विधि है। इससे देववाणी का प्राचीन और अर्वाचीन समस्त वाङ्मय सूर्य के आलोक की भाँति प्रकाशमान है। यह अनुपम ग्रन्थ भारतीय प्राचीन आचार्यों के सूक्ष्म चिन्तन सुपरिपक्व ज्ञान और अद्भुत प्रतिभा का निदर्शक है। इससे देववाणी परम गौरवान्वित है। संसार भर में किसी भी अन्य प्राचीन अथवा अर्वाचीन भाषा का ऐसा परिष्कृत व्याकरण आज तक नहीं बना। यही कारण है कि इसे देखकर प्रत्येक विद्वान इसकी मुक्त कष्ठ से प्रशंसा करने लगता है।

आचार्य पाणिनी का परिचय -

पणिनी के अनेक नाम पाये जाते हैं- पाणिन, पाणिनि, पाणिनेय, दाक्षी-पुत्र, शालङ्कि शाला (साला) तुरीय और आहिक।
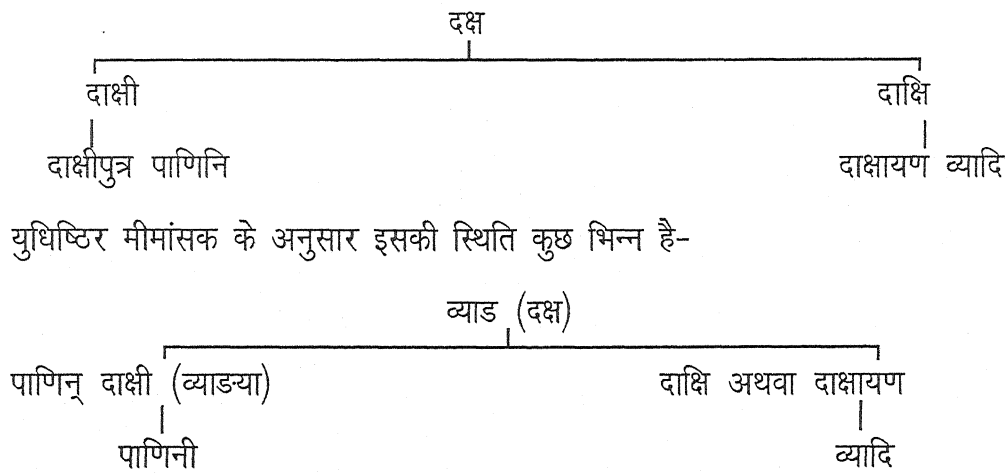
युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार इसकी स्थिति कुछ भिन्न है-

इससे पाणिनी की माता का नाम 'दाक्षी' यह गोत्र प्रत्ययान्त नाम सिद्ध है। इनके पिता का नाम 'शलङ्क' माना गया है। इसी आधार पर पाणिनि को शालङ्कि कहा गया है। छन्दः शास्त्र के प्रवक्ता पिङ्गल पाणिनी के अनुज थे- ऐसा भी मत है।
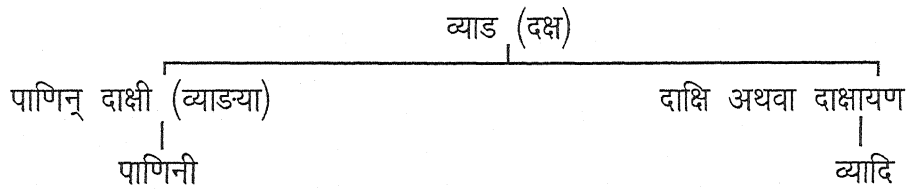
पाणिनी के आचार्य का नाम कथा सरित्सागर में उपाध्याय 'वर्ष' बताया गया है। महेश्वर से व्याकरण शास्त्र की प्राप्ति की कथा तो लोक प्रसिद्ध है।

पाणिनी के शिष्य -

कौत्स :- महाभाष्य में एक उदाहरण है- "उपसेदिवान कौत्सः पाणिनिम्"। काशिका वृत्ति में इसी सूत्र पर दो उदाहरण और है- "अनूषिवान कौत्सः पाणिनिम्, उपशुश्रुषिवान् कौत्सः पाणिनिम्।" इन उदाहरणों से व्यक्त होता है कि कोई कौत्स पाणिनी का शिष्य था।

यह कौत्स निरूक्त (2/15) में उद्धृत है। गोभिलग्रह्मसूत्र, आपस्तम्व धर्मसूत्र, आयुर्वेदीय

काश्यपसंहिता और सामवेदीय निदानसूत्र में भी किसी कौत्स का उल्लेख मिलता है। अथर्ववेद की शौलकीय चतुरध्यायी भी कौत्सकृत मानी जाती है।

कात्यायन :- नागेश के लघुशब्देन्दुशेखर से ध्वनित होता है कि वार्तिककार काव्यायन, पाणिनी के साक्षात् शिष्य थे।

व्याकरण शास्त्र तथा अष्टाध्यायी -

भारतवर्ष में अतिप्राचीन काल में ही व्याकरण शास्त्र का विकास हो चुका था। ''चत्वारि वाक्यरिगिता पदानिः'' ऋग्वेद (1.164.45) इत्यादि ऋचाएँ इस विषय में प्रमाण हैं। ब्राह्मणकाल तथा व्याकरण की रूपरेखा तैयार हो चुकी थी। इसमें गोपथ ब्राह्मण इत्यादि प्रमाण हैं कि ब्राह्मण काल से आगे चलकर वैदिक शब्दों के निर्वाचन एवं विवेचन के लिए अनेक शिक्षा ग्रन्थ, प्रातिशाख्य, तन्त्र, निरूक्त एवं व्याकरण लिखे गये जिनमें वैदिक ग्रन्थों के स्वर, उच्चारण, समास, सन्धि, वृत्त एवं व्युत्पत्ति पर विचार किया गया। पाणिनी के पूर्ववर्ती वैयाकरणों में इन्द्र, वायु, भारद्वाज, भागुरि, पौष्करसादि, पारायण, काश-कृत्स्न, वैयाघ्रपद, माध्यन्दिनी, शौनक, गौतम, व्याडि, इत्यादि तेरह प्राचीनतम् आचार्य आते है।

इनके अतिरिक्त ऐसें दस वैयाकरण हैं जिनका अष्टाध्यायी में उल्लेख मिलता हें ये हैं- आपिर्शाल, काश्यप, मार्ग्य, गालव, चाक्रवर्मण, शाकल्य, शाकटायन, सेनक, स्फोटायन तथा भारद्वाज। इन आचार्यों ने विभिन्न सम्प्रदायों की स्थापना की थी किन्तु इनके ग्रन्थ लुप्त हो चुके हैं और अब ये आचार्य रचयिता की अपेक्षा वक्ता या प्रवक्ता रूप में जाने जाते हैं।

संस्कृत भाषा के व्याकरण ग्रन्थों में 'अष्टाध्यायी' सर्वश्रेष्ठ व्याकरण ग्रन्थ है। यह एक अद्भुत कृति हैं। विश्व की अन्य किसी भी भाषा का ऐसा वैज्ञानिक एवं संक्षिप्त व्याकरण नहीं प्राप्त होता। इसकी पद्धति पूर्णतः वैज्ञानिक है। इस ग्रन्थ रत्न की विराट कल्पना ने अपरिमित सामग्री को सुनियोजित ढंग से छोटे से ग्रन्थ में बाँध दियाहै। इसमें कुल आठ अध्याय है और प्रत्येक अध्याय में चार-चार पाद है। इस ग्रन्थ की रचना सूत्रशैली में हुई है।

सूत्र का लक्षण एक कारिका में निम्न प्रकार से बताया गया है-

''अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्वश्वतोमुखम्।
अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्र विदो विदुः।।''

सूत्र का उपर्युक्त लक्षण अष्टाध्यायी के सूत्रों पर पूर्णतः घटित होता है। अष्टाध्यायी के कुल

सूत्रों की संख्या 3995 या 3996 है स्वरसिद्धान्त चन्द्रिका के अनुसार-

''चतु सहस्त्री सूत्राणां पञ्चसूत्री विवर्जिता।
अष्टाध्यायी पाणिनीया सूत्रैमहिश्वरैः सह।।''

श्रीशचन्द्र सरस्वती सम्पादित न्यास भाग 1 की प्रस्तावना में एक श्लोक उधृत है जिसके अनुसार माहेश्वर सूत्रों सहित अष्टाध्यायी की कुल सूत्र संख्या 3996 है। श्लोक इस प्रकार है-

''त्रीणिसूत्र सहस्त्राणि तथा नवशतानि च।
षण्णतिं च सूत्राणां पाणिनिः कृतवान स्वयं।।''

अष्टाध्यायी पर उपलब्ध प्रथम समालोचनात्मक कार्य आचार्य कात्यायन या वररूचि का वार्तिक पाठ है। इन वार्तिकों की रचना पाणिनीय सूत्रों की न्यूनतापूर्ति के लिए हुई है। महाभाष्यकार, पतञ्जलि आचार्य पन्तजलि प्रायः वार्तिकों को लेकर ही विचार प्रारम्भ करते हैं। वार्तिकों में अष्टाध्यायी के समान ही प्रौढ़ता एवं मौलिकता के दर्शन होते है। फिर भी वार्तिक सहित अष्टाध्यायी को सर्वाङ्गपूर्ण न पाकर भगवान पतञ्जलि ने महाभाष्य लिखकर आष्टाध्यायी को अद्वितीय व्याकरण ग्रन्थ बना दिया।

भाष्य सूत्र के प्रत्येक शब्द, शब्दगत वर्ण, सूत्रोपात्त विषय तथा स्वगत (स्वयं के द्वारा स्थापित मत) का भी सुविस्तृत एवं वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। वस्तुतः सूत्रकार द्वारा विस्मृत या अदृष्ट विषय को वाक्यकार (वार्तिककार) तथा वार्तिककार से छूटे हुए विषय को भाष्यकार ने विवेचित किया है। आचार्य पाणिनि कृत अष्टाध्यायी वार्तिक एवं महाभाष्य साहित प्रणेता को प्राप्त हुई। भाष्य वार्तिकयुक्त अष्टाध्यायी त्रिमुनि व्याकरण नाम से जानी जाती है तथा आचार्य पाणिनि, कात्यायन तथा पतञ्जलि व्याकरण जगत में व्याकरण के मुनित्रय माने जाते है। त्रिमुनि व्याकरण इतना संक्षिप्त, वैज्ञानिक सम्पूर्ण एवं उपादेय है कि पूर्ववर्ती तथा परवर्ती सभी व्याकरण ग्रन्थ एवं व्याकरण सम्प्रदाय सम्प्रति लुप्तप्राय है।

अष्टाध्यायी का संक्षिप्त परिचय -

अष्टाध्यायों में संज्ञापदों, धातुसिद्ध, क्रियापदों, समास, सन्धि, एकशेष, आत्मनेपद, परस्मैपद, स्वर इत्यादि विविध प्रकार के शब्दों एवं विषयों का विवेचन हुआ है। अष्टाध्यायी के सूत्रों को छः भागों में बांटा जाता है। - संज्ञासूत्र, परिभाषा सूत्र, विधिसूत्र, नियमसूत्र, अतिदेशसूत्र तथा अधिकारसूत्र। संज्ञासूत्र- संज्ञासूत्रपाणिनीय शास्त्र में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों का परिचय कराता है। संज्ञा संज्ञिप्रत्यायकं सूत्रं संज्ञासूत्रम् - लोक में किसी अन्य अर्थ में प्रयुक्त अथवा निरर्थक माने गए शब्द का इस शास्त्र

में जो विशेष अर्थ लिया जाता है। उसका ज्ञान संज्ञासूत्र ही कराता है।

संज्ञासूत्र का लक्षण -

शक्ति ग्राहकं सूत्रत्वं संज्ञा सूत्रत्वं :- संज्ञा दो प्रकार की होती है। (1) शब्द संज्ञा (2) अर्थ संज्ञा। वृद्धि, गुण आदि शब्द-संज्ञाए है क्योंकि आ, ऐ, औ तथा उ, ए ओ, क्रमशः इनके संज्ञी है। तथा विभाषा एवं लोप अर्थ-संज्ञाए है क्योंकि ये निषेध-विकल्प तथा अदर्शन अर्थ की बोधक है। कुछ संज्ञा अन्वर्थ होती है तो कुछ अनन्वर्थ। सर्वनाम एवं अव्यय अन्वर्थ संज्ञा है क्योंकि प्रधान प्रसिद्ध स्वीय सर्वार्थवाचक सर्व, विश्व आदि की सर्वनाम संज्ञा होती है लेकिन व्यक्ति वाचक संज्ञा के रूप में प्रयुक्त 'सर्व' की सर्वनाम संज्ञा नहीं होती है।

फलतः सर्वनाम संज्ञक सर्व का चतुर्थ्यन्त रूप 'सर्वस्मै' और व्यक्तिवाचक सर्व का चतुर्थ्यन्त रूप 'सर्वाय' ही बनता है। प्रातिपदिक एवं सर्वनामस्थान संज्ञाएँ अनन्वर्थ संज्ञाएँ हैं। क्योंकि इस महासंज्ञा से किसी विशेष अर्थ का बोध नहीं होता है। संज्ञासूत्र विधिसूत्रों के उपकारक है ये स्वयं किसी शब्द की सिद्धि नहीं करते हैं परन्तु विधि सूत्रों के अर्थबोध मे सहायक होते हैं।

परिभाषा सूत्र -

परिभाषा 'अनियमेनियमकारिणी' कही जाती है। यथा- 'ससजुषो रूः' यह विधि सूत्र 'स' एवं 'सजुष्' को 'स' आदेश विधान करता है। तब यह सन्देह उठता है कि यह स सम्पूर्ण को हो अथवा उसके किसी अवयव विशेष को इस स्थान पर परिभाषा सूत्र 'अलोऽन्त्यस्य' अन्त्य वर्ण को आदेश हो, यह निर्णय देकर अनियम को दूर करता है। इसी प्रकार 'सुधी + उपास्यः' यहाँ 'इकोयणचि' से प्राप्त यण् किस इक् को हो- सु के उकार को, धी के ईकार को अथवा उपास्यः के उकार को; ऐसा सन्देह उठने पर सूत्र 'तस्मिन्निति निर्दिष्टं पूर्वस्य' सह नियम करता है कि अच् से अव्यवहित पूर्व जो इक् हो उसे ही यण् हो। परिभाषा सूत्र विधि की उद्दाम प्रवृत्ति पर अंकुश लगाता है। यह विधि को इष्टसाधन की ओर प्रवृत्त करता है और अनिष्ट प्रयोग सिद्ध होने से रोकता है।

परिभाषाएँ दो प्रकार की है साक्षात् कथित एवं अनुमित। साक्षात् कथित अष्टाध्यायी में कथित हैं। जो परिभाषाएँ सूत्रों से ज्ञापित हैं वे अनुमित या ज्ञापित परिभाषाएँ है। जैसे- भाव्यमानोऽपि उकारः सवर्णन् ग्रहणाति।

विधिसूत्र -

विधिसूत्र किसी अपूर्व का विधायक होता है। शब्दसिद्धि में मुख्य कार्य इनके द्वारा ही सम्पन्न होता है विधिसूत्र दो प्रकार के होते है- (1) उत्सर्ग एवं (2) अपवाद। सामान्यरूप से कार्य के विधायक उत्सर्ग सूत्र हैं।

उदाहरणार्थ- 'कर्मण्यण्' उत्सर्ग है और 'आतोऽनुपसर्गेकः' अपवाद है। उत्सर्ग को बाँधकर अपवाद प्रवृत्त होता है। अष्टाध्यायी में सर्वाधिक संख्या विधिसूत्रों की ही है। प्रत्यय, लोप, आगम, आदेश इत्यादि का विधान इन्ही विधिसूत्रों का ही विषय है।

नियमसूत्र -

नियमसूत्र विधि की प्रवृत्ति को नियन्त्रित करता है। जैसे- 'चतुर्षुः' इस प्रयोग में चतुर् सुप् इस दशा में सु- खरवरनानयोर्विसर्जनीयः से खर् सुप् परे रहते चतुर् प्रातिपादिक के रेफ को विसर्ग प्राप्त है। तब सूत्र 'रो सुपि' से नियम किया गया कि रू के रेफ को ही विसर्ग होगा अन्य को नहीं। चतुर का रेफ 'रू' सम्बन्धी रेफ नही है अतः इसे विसर्ग नहीं होगा और चतुःषु ऐसा अनिष्ट प्रयोग सिद्ध नहीं होगा।

अधिकारसूत्र -

अधिकारसूत्र वे हैं जिनका अन्वय एक सीमा तक उत्तरोत्तर सूत्रों में होता है। ''एकत्र उपत्तस्य अन्यत्र व्यापारः अधिकारः।'' अधिकार सूत्र का उदाहरण है- 'अङ्गस्य' सूत्र। यह सूत्र उत्तरवर्ती सूत्रों- 'अतोदीर्घो यञि, सुपि च, अतोभिस् ऐस्' आदि सूत्रों में अन्वित होता है। जिससे इनमें विहित कार्य अंग को प्राप्त होते है। अधिकार सूत्रों के परवर्ती सूत्रों में अनुवृत्त होने से बार-बार उस शब्द को कहने के परिश्रम से बचा जाता है और सूत्रों को लघुकाय बनाया जा सकता है।

विधिसूत्रों का ही एक रूप निषेधसूत्र भी है। इनका विषय है अनपेक्षित विषय में प्राप्त विधि का निषेध करना। जैसे- 'न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम्' सूत्र द्वारा सम्प्रसारण का निषेध होना।

यूनः - इस प्रयोग में वकार का सम्प्रसारण हो कर युवन् जस् > यु 3 अन् अस् त्र यु उन् अस् ऐसी स्थिति हुई। अब 'श्वयुवमघोनामताद्धिते' सू से यकार को सम्प्रसारण प्राप्त हुआ जिसका 'न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम्' सूत्र से निषेध हो गया।

अतिदेश सूत्र -

'अन्यतुल्यजविधानम् अतिदेशः' अतिदेश सूत्र 'वत्' घटित अथवा इसके अर्थ से घटित होता है। यह जो नहीं है उसे मानकर कार्य करने की आज्ञा देता है। जैसे- स्थानिवनादेशोऽनल्विधौ सूत्र यह आज्ञा देता है कि स्थानी को आदेश के समान मानों किन्तु अल्विधि में नहीं। इससे अस् के स्थान में भू आदेश होने पर भू को स्थानी के समान धातु मानकर धातुप्रयुक्त लुङ् लकार, में च्लि विकरण इत्यादि हो सके तथा अभूत शब्द सिद्ध हो सका।

महर्षि पाणिनी ने अपने ग्रन्थ अष्टाध्यायी मे टि्, धु, ध, नदी, सर्वनाम, सार्वधातुक आदि अनेक संज्ञाओं का प्रयोग किया गया है। लेकिन एक संज्ञा ऐसी है कि जिसका विवरण अष्टाध्यायी में न करने पर सम्पूर्ण अष्टाध्यायी की कल्पना भी नहीं कर सकते। उस संज्ञा का नाम है इत्-संज्ञा। इत्संज्ञा में वर्णित छैः सूत्रो द्वारा इत्संज्ञा का विस्मत विवरण उदाहरण के रूप में इस अध्याय में प्रस्तु है। जिनके उपयोग से सफलता पूर्वक अभीष्ट सिद्धि हो जाती है।

अष्टाध्यायी में इत्संज्ञा का कोई लक्षण नहीं दिया गया है। अपितु इत्संज्ञक वर्णो का परिगणन ही कर दिया गया है। परिगणक सूत्र छः हैं-

1. उपदेशेऽजनुनासिक इत् 1.3.2
2. हलन्त्यम् 1.3.3
3. आदिञिटुडवः 1.3.5
4. षः प्रत्ययस्य 1.3.6
5. चुटू 1.3.7
6. लशक्वर्ताद्धते 1.3.8

इत्संज्ञा का फल है लोप, तस्य लोपः 1/3/9 अर्थात् व्यवहार दशा में उस इत्संज्ञक का दृष्टिगोचर न होना (अदर्शन लोपः 1/1/60) अदृश्य रहकर भी वे स्वसम्बद्ध शब्द को अनेक प्रकार से नियन्त्रित करते हैं। उदाहरण के लिए स्तुत्यः पद की सिद्धि में क् तथा प् की इत्संज्ञा और लोप हो जाता है। परन्तु प्रत्यय के कित् होने से ही गुण नहीं होता क्ङिति च 1/1/5 तथा पित् होने से तुक् का आगम हो जाता है। ह्रस्वस्य पिति किति तुक् (6/1/71) फलतः स्तुत्यः पद सिद्ध होता है। इस प्रकार ऐसे वर्ण जो प्रयोग दशा में दिखलायी नहीं पड़ते फिर भी जिनके उपयोग से सफलता पूर्वक अभीष्ट सिद्धि हो जाती

है। वे इत् कहलाते है।

महाभाष्कार ने पाणिनीय संज्ञाओं को दो वर्गों में बांटा हैं अकृत्रिम एवं कृत्रिम। अकृत्रिम संज्ञाओं से तात्पर्य उन संज्ञाओं से है जिनका अर्थ व्यवहार लभ्य है तथा संज्ञा वह है जो केवल सम्मत है। संज्ञाओं के वस्तु निर्देश के आधार पर उनके तीन वर्ग बनाये जा सकते है- (1) शब्द संज्ञा (2) अर्थ संज्ञा (3) धर्म संज्ञा।

राष्ट्र संज्ञा में विशिष्ट शब्दों का हरण होता है। ''शब्द संज्ञायां शब्दस्यैव सम्प्रत्ययो भवति नार्थस्य महाभाष्य 1/4/43'' जबकि अर्थ संज्ञा में केवल अर्थ का धर्म संज्ञा विशिष्ट शब्द या अर्थ का द्योतक न करके किसी वर्ण विशेष के गुणों का संकेत करती है।

उदाहरण के लिए वृद्धि (1.1.1) गुण (1.1.2) प्रगृह्य (1.2.11) आदि संज्ञा में शब्द संज्ञा है विभाषा (1/1/44) लोप (1.1.60) संहिता (1/4/109) आदि संज्ञाए अर्थ संज्ञा है और उदान्त (1.2.29) अनुदात्त (1.2.30) तथा स्वरित (1.2.31) धर्म संज्ञा।

अब प्रश्न यह है कि क्या इत् संज्ञा टि, धु, ध की तरह सर्वथा अर्थ विहीन है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से इत् शब्द को इकार में तपर योग 'तपरस्तत्कालस्य' (1.1.70) से निष्पन्न माना जा सकता है। परन्तु ऐसी स्थिति में वह (इ्) केवल इंकार का बोधक होगा शेष इत्संज्ञक वर्गो का नहीं यदि यह कहा जाये कि पारिभाषिक संज्ञा होने से सबका बोध करा देगा तो उचित नहीं है क्योंकि एक सूत्र 'इतितोनुमूधातोः (7.1.58) अर्थात् इदित् (जिसके हस्व इकार की इत् संज्ञा हुई हो उस) धातु को नुम् का आगम हो जाता है इसमें इत् (इकार) के इत् का कथन स्पष्ट हुआ। अर्थात् दोनो इत् एक नहीं है। दूसरे शब्दो में यहां इत् शब्द को तपर योग से निष्पन्न नहीं माना जा सकता। वस्तुतः इत् शब्द इकुस्मरणे धातु क्विप् प्रत्यय के योग से निष्पन्न है क्विप् का सर्वाहारी लोप हो जाएगा फिर भी उसके पित् होने से तुक् (त्) का आगम होगा। इस प्रकार निष्पन्न इत् शब्द का अर्थ होगा स्मरण दिलाने वाला स्मारयतीति इत्। चूँकि इत्संज्ञक वर्ण प्रयोग दशा में लुप्त होकर भी किसी कार्य की सूचना देते है। अतएव उनका स्मारक इत् कहा जाना सर्वथा उचित है। ध्यातव्य है कि सार्थक होने पर भी इत् संज्ञा पूर्णतया शास्त्रीय आवश्यकता से निर्मित है। अभिप्राय यह है कि शब्दों के वैरूत्य के कारण उससे सम्बन्धित किसी नियम का प्रतिपादन असुविधा जनक होता है। किन्तु यदि उसका कोई समूह बना लिया जाए तो उसके नियामक तथ्यों को प्रस्तुत करना सरल हो जाता है। उदाहरण के लिए रामश्याम बालक

आदि शब्द एक दूसरे से भिन्न है। इनके आधार पर रामाय श्यायाय, बालकाय की सिद्धि का सूत्र खोजना आसान नहीं लगता परन्तु जब इनकी समानता अकारान्त होने का ज्ञान हो गया तो इनसे सम्बद्ध नियमों का प्रतिपादन पर्याप्त सरल हो गया। इसी साम्यान्वेषण की चरम परिणिति है इत्संज्ञा। जहाँ प्रकृति प्रत्यय विषयक किसी भी प्रकार का साम्य दृष्टिगोचर नहीं होता वहां साम्य अथवा समूह निर्माण के लिए इत्संज्ञक वर्णों का प्रयोग करके शास्त्रीय आवश्यकता की पूर्ति की गयी है।

जैसे -

भंगुरम् (भंज + उर - 3.2.161) कुण्डिनी (कुण्डिन + ई 4.1.5) तथा बहुपटुः (3.4.68) तीनों उदात्त है परन्तु इनमें प्रकृति प्रत्यय की समानता को कौन कहे लिंग तक की भी समानता नहीं है। ऐसी दशा में इनके अन्त उदात्तत्व का नियमन कैसे हो यह एक विचारणीय समस्या हुई। इसका समाधान उपर्युक्त स्थलों (उर - धुरच्, ई - ङपि तथा बहुच्) पर चकार की व्यवस्था करके किया गया और नियम बनाया गया कि चित्प्रत्यय विशिष्ट शब्द का न्त्यस्वर उदात्त होता है। (चित - 6.1.162) इस प्रकार इत् वर्ण असम्भव को भी सम्भव बनाकर अभीष्ट सिद्धि में सहायक होते है यही कारण है कि व्याकरण के प्रत्येक क्षेत्र में प्रत्याहर प्रत्यय आदेश आगम एवं धातु आदि में इत् दिखलायी प्रड़ते है। इतों के द्वारा निर्दिष्ट प्रमुख कार्य अधोलिखित है-

1. सामान्य गृहणार्थ
2. सामान्य गृहणाविद्यातार्थ
3. विशेषणार्थ
4. परित्राणार्थ
5. स्थान निर्देश (देश विध्यर्थ)
6. प्रत्याहार निर्माण
7. विधि (नियम) प्रतिपादन
8. पद बोध
9. स्वर बोध आदि।

आष्टाध्यायी में इत् तथा उनसे निर्दिष्ट कार्यों की सूची इस प्रकार है -

इत् प्रयोजन

अ (अत् - अदित्) धातुः 1.3.12; पद बोध -

अर्थात् सामान्यतयः वर्णमाला के व्यञ्जनों में अकार अनुबन्ध अच्चारणार्थक है परन्तु धातुओं में यह पद (आत्मने तथा परस्मैपद) सूचक है।

1. आ (आत् - आदित) धातुः 3.2.187 निष्ठायोग में इद् (आगम) प्रतिषेध।

2. इ (इत् - इदित्) धातु 7.1.58 तुम् (न्) आगम (विदि - विन्द विन्दति)

कृत - मनिन् (मन्) उच्चारणार्थ (उपधागत)

- क्वनिप् (वन्) उच्चारणर्थ (उपधागत)

- च्वि (0) उच्चारणार्थ एवं विशेषणार्थ

- इनि (इन्) नकार परित्राणार्थ

- णिनि (इन्) नकार परित्राणार्थ

हलन्त प्रत्ययों के अन्तिम हल को लोप से बचाने के लिए इकार का प्रयोग हुआ है।

तद्धित- अस्ताति (अस्तात्) तकार परित्राणार्थ

- विनि (विन्) नकार परित्राणार्थ

- तसि (तस्) सकार परित्राणार्थ

- च्वि (0) उच्चारणार्थ एवं विशेषणार्थ

ण्वि क्विप् क्विन च्वि आदि प्रत्ययों का उच्चारण इकार की सहायता से ही होता है इसलिए वह उच्चारणार्थ है; किन्तु वेरपृक्तस्य (6.1.67) से वि (व - 0) के रूप में आये अपृक्त वकार को लोप होता है। फलतः विशेषणार्थ भी है।

3. ई (ईत् - ई दित्) धातु :- 7.2.14 निष्ठायोग में इट् प्रतिषेध (चितो - चित - चित्तम्)

4. उ (उत् - उदित्) :- धातु- 7.2.56 (क्रम - क्रम - क्रमिता) क्त्वा जुड़ने पर विकल्प से इड्।

संज्ञा- कु, चु, टु, तु, पु, (स्व वर्ग बोध)

कृत्- क्तवतु (तवत्) सर्वनाम स्थान प्रत्यय (सु प् के अन्तर्गत) के योग में।

नुम् (न) का आगन (7.1.76) तथा तकार परित्राणार्थ (कृतवत् कृतवान) तकार परित्राणर्थ (कृतवत्, कृतवान)

तद्धित- मतुप् (मत्) नुमागम तथा उपधागत् होने से उच्चारणार्थ भी (श्रीमत्, श्रीमान)

यमु (यम्) मकार परित्राणार्थ

आदेश- असुङ् (अस्) उच्चारणार्थ

रू (र) उच्चारणार्थ एवं विशेषणार्थ (6.1.113-114)

सुम् (स) उच्चारणार्थ

आगम् - तुक् (त्) उच्चारणार्थ

थक् (थ) उच्चारणार्थ

सुट् (स्) उच्चारणार्थ

नुट् (न्) उच्चारणार्थ

नम् (न्) उच्चारणार्थ

मुम् (म्) उच्चारणार्थ

5. ऊ (ऊत् ऊदित)- धातु- 7.2.44 बलादि आर्धधातुक को विकल्प से इट् (गुप्-गोप्ता, गोपिता।)

6. ऋ (ऋत् ऋदित)- धातु- 7.4.2 णि + वङ् प्रत्यय परे रहने पर उपधा को ह्रस्वादेश का निषेध।

कृत- अतृन (अतृ) नम् आगम (जरत् - जृष् + तृन्) शतृ (अत्) नुमागम् (पचन् + पच् + शतृ)

आदेश- तृ (त) 6.4.127 नुमागम।

7. लृट् (लृलित्) धातु- 3.1.55 च्लि को अंग (अ) आदेश (गम्लृ+गम्-अगमत्)

8. ए (एत्-एदित्) धातु- 7.2.5 आदिष्ट सिच् के परे रहने पर वृद्धि निषेध।

9. ओ (ओत्-ओदित्) धातु- 8.2.45 निष्ठा तकार को नकार (भुजो भुज् + क्त - भुग्नः) चोः कु से ज् को ग्।

10. इ (इरित् संयुक्त इत्) धातु- 3.1.57 चिल को विकल्प से अंग आदेश (भिदिर- भिद् - अभिदत्)।

11. क् (कित)- प्रत्याहार सूत्र- अक् इक् प्रत्याहार।

धातु- इक् स्मरणे इण् (इ) गतौ, इङ् अध्ययने से भिन्नता के लिए।

आगम- 1.1.46 देश विध्यर्थ।

कृत- 1.1.5 गुण वृद्धि निषेध (कृत क्तिन् - कृतिः)

तद्धित- 6.1.164 अन्त उदान्त।

7.2.164 आदि स्वर की वृद्धि (75-फक्-नाडायन)

नाम धातु- क्वयच् (य) सामान्य ग्रहणार्थ

क्यङ् (य) तथा क्यच्

क्यप् (य) कित् होने से गुण वृद्धि निषेध

यक् (य) के लिए

विकरण- यक् (य) नुण वृद्धि निषेध (कण्डूयति)।

12. ख् (खित्) कुत- 6.3.3 नुमागम (कालिमन्या) खच्, खमुञ्, खल्, खश्, खिष्णुच, खुकञ यान्।

13. ग् (गित्) 1.1.5 गुणवृद्धि निर्षध (ग्स्नु प्रत्यय एक मात्र गित् प्रत्यय) गिच्चायं प्रत्ययो न क्ति तेनस्थ, तेनस्थ, ईकारो न भवति।

14. घ् (7.3.52) 7.3.52 कुत्व (पच् + धञ्)- पाकः

15. ङ् (ङित्)- प्रत्याहार सूत्र- 3 एङ्

धातु- 1.3.12 आत्मने पद सूचक तिङ् प्रत्यय (महिङ् तिङ् तथा तङ् प्रत्याहार निर्माणार्थ)

आदेश- 1.1.53 अनेकालशित्सर्वस्य (1.1.55) का अपवाद अर्थात् अन्तिम अल् के स्थान पर आदेश विधान।

सुप्- ङे् ङसि सामान्य ग्रहणार्थ ङ्, स, ङि।

कृत- 1.5.5 गुण वृद्धि निषेध।

स्त्रीप्रत्यय- ङीन, ङपि् सामान्य ग्रहणार्थ ङीष् (ङ् याप् प्रातिपदिकात् 4.1.1)

उपसर्ग- आङ् (1.4.58) विशेषणार्थ (निपात एकाजनाङ्)

लकार- लङ्, लिङ्, सामान्य ग्रहणार्थ लुङ्, लृङ् (नित्यं ङ्तिः 3.4.99)

16. च (चित्)- प्रत्याहार सूत्र- ऐच्, एच्, इच्, अच् प्रत्याहार

कृत- 6.1.163 अन्त उदात्त

तद्धित- 6.1.164 अन्त उदात्त

समासान्त- अंसिच् बहुब्रीहि समास (5.4.122)

आदेश- अयच् विशेषणार्थ (5.2.43)

धातु संज्ञक- क्यच् सामान्य ग्रहणा तथा विद्यातार्थ चकारस्तदवि - धातार्थः काशिका।

विकरा- चङ् (अ) विशेषणार्थ

स्त्री प्रत्यय- चाप् (आ)विशेषणार्थ (ङ्याप्, टाप् से पार्थक्य बोध)

17. ज (जित्) सुप् आदेश- जस् (अस्) शस् से पार्थक्य बोध जुस् (उस्) विशेषणार्थ (झेर्जुस) 3.4.108

18. ञ् (ञित्)- प्रत्याहार सूत्र- यञ् प्रत्याहार

धातु- 3.1.62 पद बोधक (उभयपद्)

कृत- 7.2.115 अजन्त अङ्, अकार उपधा की श्रृद्धि।

तद्धित- 7.2.117 आदि अच् की वृद्धि

आदेश- धमुञ् वृद्यर्थ

19. ञि् (ञीत)- धातु 3.1.186 क्त का वर्तमान काल में प्रयोग (प्रतिः)

20. ट् (टित्)- प्रत्याहार सूत्र- 5 अट् आदि प्रत्याहार

आगम- 1.4.46 देश विध्यर्थ (आद्यवयव)

कृत्- 4.1.15 स्त्रीत्व विवक्षा में ङीप् सूचक (कुरूवर, कुत्वरी)

तद्धित- 4.4.67 ङीप् सूचक

समासात्त- टच् ङ्रीप् सूचक

लकार- लट्, लिट् सामान्य ग्रहणार्थ टित् आत्मनेपदानांटेरे, लेट्, लोट्, लृट्।

सुप्- औट्,सुट्,प्रत्याहार निर्माणार्थ सुङ् नपुंसकस्य, टा (आ) विशेषणार्थ

बिङ्- इट् (इ) 3.4.78 विशेषणार्थ (इटोङत्)

स्त्री प्रत्यय- टाप् सामान्य ग्रहण विद्याथार्थ

21. ट् (टिवत्) - धातु- 3.3.89भावार्थ तथा कर्त्ता भिन्न अर्थ में अथुच् प्रत्यय (नन्दथुः)

22. ड् (ड्ति)- 3.2.48 टिलोपार्थ

23. ण (णित्)-प्रत्याहार सूत्र- अण् (सूत्र 1 से 6 से) अण् इण् यण्

कृत- 7.2.115 वृद्ध्यर्थ (ञित् की तरह)

तद्वित- 7.2.117 वृद्ध्यर्थ (ञित् की तरह)

24. त् (तित्)- प्रत्यय- 6.1.185 स्वरित (स्वर बोधक)

25. न (नित्)- प्रत्यय- 6.1.196 नित्य आद्युदान्त

26. प् (पित्)- प्रत्यय- 3.1.4 प्रत्यय का आदि स्वर अनुदान्त

सुप- 4.1.2 सुप् प्रत्याहार आप् प्रत्याहार

कृत- 6.1.71 तुक् आगम् (कृ + क्विप् - कृत)

27. म् (मित्)- प्रत्याहार सूत्र- अम्, यम्, ङ, आगम 1.1.46 देश विध्यर्थ

28. य् (यित्)- प्रत्याहार सूत्र- चय् खय् झय् यम्

29. र (रित्)- प्रत्याहार सूत्र- शर्, चर्, खर्, झर्, यर् (स्वर उदान्त) प्रत्यय से ठीक पूर्व

30. ल् (लित्)- प्रत्याहार सूत्र- शल्, झल्, रल्, वल्, हल्, अल्।

31. व् (वित्)- प्रत्याहार सूत्र- छव् प्रत्यहार।

32. सि् (सित्)- प्रत्याहार सूत्र- बश्, जश्, झश्, वश्, हश्, अश्।

33. स् (सित्)- प्रत्याहार सूत्र- सुप्-शस् (4.1.2) विशेषणार्थ।

34. ष् (षित्)- प्रत्याहार सूत्र- भष्, झष्।

उपरिलिखित विवरण से स्पष्ट है कि इत्संज्ञा का प्रयोग पाणिनी व्याकरण में शास्त्रीय विवेचन का चरमोत्कर्ष हैं इत्संज्ञक वर्ण प्रयोग दशा में लुप्त होते-होते अनेक कार्यों का स्मरण दिलाते है जिससे अभीष्ट सम्पादन सुकर हो जाता है। इस प्रकार इनका इत् (स्मरण दिलाने वाला) नाम पूर्णतया सार्थक है और व्याकरण के प्रत्येक क्षेत्र में इनकी उपदेयता स्वयं सिद्ध होती है।

इत्संज्ञा प्रयोजन की तरह जो मेरे द्वारा वर्णित किया गया है, ठीक इसी प्रकार ध नदी, धि, सर्वनाम, आदि संज्ञाओं का उत्कृष्ट प्रयोजन, व निर्दिष्ट कार्योका पाणिनीय अष्टाध्यायी में अनूठा निदर्शन द्रष्टव्य एवं गवेषणीय तथ्य हैं।

अष्टाध्यायी में अत्यन्त सूक्ष्मता से शब्दों का विवेचन विश्लेषण किया गया है। इसकी विशेषता है धातुओं से शब्दों का निर्वचन अष्टाध्यायी का अनुशीलन करने पर पाणिनी की अन्वाख्यान पद्धति कुछ इस प्रकार स्पष्ट होती है-

1. लोक- व्यवहृत शब्दों का संकलन।

2. शब्दों में एक मूल प्रकृति एंव प्रत्यय की परिकल्पना।

3. शब्दों के अभीष्ट स्वरूप के सिद्धयर्थ प्रकृति प्रत्ययाश्रित विशिष्ट प्रकार की कार्ययोजना।

पाणिनीय सम्प्रदाय के अनुसार एक अखण्ड वाक्य स्फोट ही सत्य है। क्योंकि लोक में उसी से अर्थावबोध होता है फिर भी व्याकरणशास्त्र में लोकव्यवहृत वाक्य द्वारा पदों को संकलित कर उनका प्रकृतिप्रत्ययात्मक विश्लेषण किया जाता है जिससे उनके यथार्थ स्वरूप की रक्षा हो सके, इस क्रम में पाणिनि ने विभिन्न संज्ञा- पदों, सर्वनाम पदों, क्रियापदों, अव्ययों, समासयुक्त पदों का संकलन किया और

उनमें एक मूल प्रकृति एवं प्रत्यय की परिकल्पना की। प्रकृति के रूप में धातुओं, प्रातिपादकों की व्यवस्था की तथा इनसे 'सुप्, तिङ्, कृत, तद्धित, समासान्त, स्त्री प्रत्यय' आदि प्रत्ययों का विधान किया। प्रकृति एव प्रत्यय का निरूपण कर देने से ही शब्द सिद्धि की प्रक्रिया प्रत्ययाश्रित विशेष्ज्ञ प्रकार के कार्य है- लोप, आगम, आदेश आदि।

शब्द सिद्धि के क्रम में शब्द के जितने अंश का श्रवण अपेक्षित नहीं होता उतने अंश का लोप विहित किया गया। पाणिनीय शास्त्र में तीन प्रकार से लोप विहित किए गए है। लुक्, श्लु, लुप्। इनके विशिष्ट प्रयोजन है। शब्द सिद्धि की प्रक्रिया में जब किसी अतिरिक्त वर्ण का श्रवण कराना अपेक्षित होता है तो आगम विधि द्वारा उसका आगम कर लिया जाता है आगम विधान भी तीन प्रकार से किए गए है- टित्, कित् एवं मित्।

इनमें जुड़े अनुबन्धों का विशेष प्रयोजन है। शब्दो की सिद्धि प्रदर्शित करते हुए कभी-2 ऐसी स्थिति होती है कि किसी वर्ण या वर्ण समुदाय के बदले भिन्न वर्ण या वर्ण समुदाय श्रूयमाण होता है, ऐसी दशा में आदेश की व्यवस्था कर अनपेक्षित अंश का अश्रवण तथा उसके स्थान पर अपेक्षित अंश की उपस्थिति करायी गयी है। जैसे- गम् शप् तिप् > गम् अति - यहां म् को च्छ आदेश विहित किया गया जिसका गच्छति शब्द बन सके, राम टा - यहाँ 'टा' को इन आदेश विहित किया गया तभी रामेण शब्द बन सका।

संस्कृत भाषा के शब्दो में उन शब्दों की अपेक्षा जिनमें प्रकृति के साथ प्रत्यय का योग होकर रूप सिद्ध हो जाए, ऐसे शब्दों का बाहुल्य है, जिनमें कुछ न कुछ विकार या आदेश हुआ हो पहले कहा जा चुका है कि संज्ञा, परिभाषा नियम, अतिदेश, अधिकार सूत्रों की अपेक्षा विधिसूत्रों की संख्या बहुत अधिक है। विधि सूत्रो द्वारा प्रत्यय, लोप, आगम, आदेश, स्वर आदि का विधान अथवा निषेध किया जाता है।

अष्टाध्यायी के विधि सूत्रों में प्रत्यय, लोप, आगम, स्वरादि विधान की अपेक्षा आदेश विधान सम्बन्धी सूत्र अधिक है। आदेश विधान सम्बन्धी सूत्रों की कुल संख्या लगभग 825 है जो सम्पूर्ण अष्टाध्यायी की कुल सूत्र संख्या के पंचमांश से अधिक है। इससे सिद्ध होता है कि शब्दों की रूपसिद्धि प्रक्रिया में आदेशो की भूमिका अत्यन्त महत्व पूर्ण है। यद्यपि संज्ञा सूत्रों में गम्भीर चिन्तन योग गूढ़ स्थल की अपेक्षाकृत कम ही है। फिर भी शब्द प्रयोगो की रूप सिद्धि में इनकी अनिवार्य उपयोगिता को कथमपि अनदेखा नहीं किया जा सकता है।

दृश् धातु से तिप् प्रत्यय लाकर अभीष्ट प्रयोग-पश्यति, तब तक सिद्ध नहीं हो सकता जब तक दृश् को पश्य आदेश न कर दिया जाए। भूशप् तिप् > लट् > तिप > से भवति प्रयोग तब तक निष्पन्न नहीं होगा। जब तक भू के ऊकार को गुण ओकारादेश ओकार को अवादेश इत्यादि न हो जाए। आदेश का ज्ञान होने पर हम यह निर्णय करने में समर्थ होते है कि 'अगमत' एवं 'अगच्छत' दोनों एक ही धातु प्रकृति गम् से निष्पन्न हुए दो शब्द है इनमें प्रकृतिगत भेद नहीं अपितु लकारभेद है। मात्र इतना ही नही कालान्तर में व्याकरण परम्परा के वैयाकरणों ने व्याकरण को जब एक दर्शन के रूप में प्रतिष्ठित किया और स्फोटात्मक शब्द को ब्रह्म माना तब शब्द नित्यता वादियों के अनादि निधन, अक्षर शब्द ब्रह्म में आदेशादि विकारों के कारण उठे अनित्यत्व दोष के निवारण हेतु एक अभिनव सिद्धान्त का आश्रयण करना पड़ा जो व्याकरण जगत में बुद्धिविवरिणामवाद कहलाया। वस्तुतः व्याकरण शास्त्र में आदेशों की अपनी ही विशेषता है।

यहाँ आदेश के विषय में जितना कहा गया है वह इसके महत्व, इसकी विशिष्टता को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त नही। इसके लिए एक प्रबन्ध की आवश्यकता है जिसमें इसका पूर्ण विवेचन हो। एतदर्थ ही यह शोध विषय ही विवेच्य है। इस शोध का प्रथम अध्याय परिचयात्मक कोटि का है जिसमें आदेश, आदेश सूत्र, आदेश एवं इसकी सजातीय विधि, आदेश विधि से सम्बन्धित कुछ प्रमुख सूत्रों का विवेचन इत्यादि विषय समाविष्ट हुए है। इस अध्याय का उद्देश्य है आदेश को समग्र एवं समुचित रूप से स्पष्ट करना। द्वितीय अध्याय में अन्वणदिश एवं तृतीय अध्याय में हल्वणविश विधायक सूत्रों का विवेचन किया गया है। चतुर्थ अध्याय में प्रकृति, के स्थान पर आने वाले आदेश तथा पंचम अध्याय में प्रत्यय के स्थान पर होने वाले आदेश से सम्बन्धित सूत्र विवेचित हुए हैं। षष्ठ अध्याय में इनसे अवशिष्ट-ङित् आदेश विधान सम्बन्धी सूत्र, टि के स्थान पर आदेश विधायक सूत्र इत्यादि का समावेश हुआ है।

प्रस्तुत शोध कार्य में आदेशों से सम्बन्धित सूत्रों के एकत्र संकलन, इनके वर्गीकरण एवं संक्षिप्त विवेचन तथा समीक्षण को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इस क्रम में सूत्रों के पदच्छे पदों के अर्थ एवं अनुवृत्ति प्रदर्शन इत्यादि पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। क्योंकि ये विषय विभिन्न व्याख्या एवं टीका ग्रन्थों में विस्तार से वर्णित हैं। शोध कार्य का उद्देश्य है शब्दों की रूप सिद्धि में आदेशों के महत्व को प्रदर्शित करना अतएव प्रकृति से प्रत्यय लाने के पश्चात अभीष्ट स्वरूपकी प्राप्ति हेतु जो आदेश आवश्यक है उनमें युक्त उदाहरण प्रस्तुत किए गये तथा उधृत शब्दों को पदच्छेद करके उनमें आदेश होता हुआ दिखाया गया है।

आदेश कार्य को प्रदर्शित करते हुए ऐसा प्रयास किया गया है कि जितना कार्य आदेश करने के पहले प्राप्त हो रहा है उसे भी दिखा दिया जाए एवं कार्य की अनुपूर्वी बनी रहे फिर भी कहीं कहीं ऐसा नहीं किया गया है इसका कारण है, संक्षिप्तता लाने का प्रयास। ऐसे कार्य यदि आदेश के लिए अधिक महत्वपूर्ण नहीं है या परवर्ती उदाहरण में भी उसी प्रक्रिया द्वारा शब्द सिद्धि हो रही हो तो शोध को लघुकाय रखने हेतु सीधे आदेश प्रक्रिया को ही उदाहरण में दिखाया गया है। इस स्थान पर यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक है कि आदेश विधायक शास्त्र के समान ही आदेश का निषेध करने वाले विधयकसूत्रों का प्रवृत्ति-क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हो जाता है तथा जहाँ इनकी प्राप्ति निषिद्ध है वहां भी होने लगती है जिससे अनिष्टापत्ति होता है किन्तु विस्तारमय में इस में इन सूत्रों का समावेश नहीं किया गया।

आदेशों पर किया गया यह प्रारम्भिक कार्य है अतएव विषय सामग्री के लिए अधिकांशतः संस्कृत के मूलग्रन्थों का ही भ्रमण करना पड़ा है। आशा है हमारे उदार परीक्षक मनीषी इसके गुणों को ही दृष्टि में रखते हुए 'गच्छत स्खलनं क्वापि न्याय से प्रमादजनित यथकथंचित आगत दोषों के प्रति सहिष्णुता व क्षमा का भाव रखेंगे।

प्रथम अध्याय

प्रथम अध्याय

आदेश-एक परिचय

आङ् उपसर्गपूर्वक विश् धातु से भाव में धञ् प्रत्यय हो कर आदेश शब्द व्युत्पन्न हुआ है। पाणिनीय धातु पाठ में विश् धातू तुवादिगण में पठित है जिसका अर्थ है अतिसर्जन या दान। (विश् अतिसर्जने, अतिसर्जनमूदनम्- सि0 कौ0 तुदादिगण। अतिसर्जनम् त्यागः - क्षीर स्वामी)।

भाष्यकार विश् धातु को उच्चारण क्रियार्थक मानते हैं।

(अमकः उपदेशः? उच्चारणम्। कुतः एतत्? विशिरूच्चारणक्रियाः। तथा विशिरूच्चारण क्रियायाम्) सूत्र भाष्य।

उपसर्गों के योग में धातु का अर्थ बदल जाता है। अदिश शब्द में भी उपर्युक्त धात्वर्य घटित नहीं होते।

आदेश शब्द का लोक प्रसिद्ध अर्थ है 'आज्ञा' या 'विधि'। इस अर्थ में इस शब्द को अंग्रेजी के Order शब्द का तुल्यार्थक शब्द माना जा सकता है। किन्तु व्याकरण शास्त्र में यह शब्द उपर्युक्त अर्थ में नहीं प्रयुक्त होता। इस शास्त्र में यह एक कृत्रिम संज्ञा या Technical Term है जैसे कि वृद्धि, गुण आदि शब्द संज्ञाएँ तथा इस शास्त्र में इसके कृत्रिम या कल्पित अर्थ द्वारा ही कार्य सम्पन्न होता है। आचार्यों ने आदेश का लक्षण इस प्रकार किया है- येन विधीयमानेन अन्यत् प्रसक्त निवर्तते स आदेशः। (वासदेव दीक्षित कृत सि0 कौ0 टीका)

अर्थात जिस विधीयमान शब्द द्वारा प्रसक्त- पूर्वतः विद्यमान (पहले से प्राप्त अर्थात् स्थानी) की निवृत्ति हो जाए वह विधीयमान शब्द आदेश हैं। आदेश के द्वारा निवर्तमान को स्थानी कहते है। आदेश कार्य में प्रकृति अथवा प्रत्यय अथवा इनके अवयववर्ण को हटाकर हटे हुए शब्द अथवा वर्ण के स्थान पर अन्य शब्द अथवा वर्ण स्थापन्न हो जाता है। स्थानी को हटाकर उसका स्थान ग्रहण कर लेने से आदेश को शत्रृवत् कहा गया है।- 'शत्रुवदादेशाः'। इस प्रकार आदेश विधि को अंग्रेजी के Replacement तथा आदेश शब्द को Substitute को समानार्थक माना जा सकता है।

पाणिनीय शास्त्र में आदेश के इस कृत्रिम अर्थ को व्यक्त करने के लिए आचार्य द्वारा किसी सूत्र विशेष का उपस्थापन नहीं किया गया है जिसका कारण सम्भवतः यह हो कि आचार्य पाणिनि के लिए आदेश कोई अपूर्व विधि न रही हो तथा पाणिनि पूर्ववर्ती वैयाकरणों में सुप्रचलित होने से आदेश

शब्द की परिभाषिकता न रह गई हो अन्यथा जिस प्रकार आचार्य ने स्वरचित टि, घु, गुण, वृद्धि इत्यादि संज्ञाओं को सूत्रों द्वारा परिभाषित किया है। इसी प्रकार आदेश शब्द को भी सूत्र के द्वारा अवश्यमेव परिभाषित करते। पाणिनीय सूत्रों में आदेश शब्द अनेकशः प्रयुक्त हुआ है।

यथा- 'स्था निवदादेशोऽनल्विधो'एच इग्घ्रस्वादेशे,अस्मदयुष्मदोरनादेशे, आदेश प्रत्ययोः इत्यादि इन सूत्रों में इस शब्द का बार-बार प्रयोग किया जाना यह सूचित करता है कि आदेश विधि की व्यवस्था व्याकरण शास्त्र में पाणिनि के पूर्व से विद्यमान थी और आचार्य पाणिनि इस पारिभाषिक आदेश शब्द से सुपरिचित थे। इसके अतिरिक्त प्राक - पाणिनि वैयाकरण 'आपिशल' के नाम से प्राप्त एक श्लोक में आदेश का लक्षण भी बताया गया है।

''तथा च आपिशल श्लोकेऽपि तस्य स्वरूपम् वर्लितम्।

आगमोऽनपद्यातेन विकारश्चोपमर्दनात्।' (सि0कौ0 तृतीय भागः)

इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि आदेश कोई अपूर्व विधि या पाणिनि की स्वरचित विधि नहीं थी और तत्कालीन वैयाकरणों में सुप्रचलित थी और तत्कालीन वैयाकरणों में सुप्रचलित थी अतः आचार्य पाणिनि द्वारा आदेश शब्द का पारिभाषिकता प्रदर्शित करने का प्रयास न करना स्वाभाविक है।

पाणिनीय सूत्रों को छः भागों में बाँटा गया है। इन छः भागों में से ऐ है विधि सूत्रा - इन विधि सूत्रों में जिन सूत्रों द्वारा आदेशों का विधान किया गया है उन्ही को प्रस्तुत शोध का विषय बनाया गया है। आदेश विधायक विधिसूत्रों को ही यहाँ में आदेश सूत्र कहा गया है।

'आदेशस्य विधायकं आदेश विधायकम्' :- आदेश विधायकानि सूत्राणि इत्यादेश सूत्राणि शाक्यप्रिय, पार्थिव, देवपूजकः, ब्राह्मणः (शाक् को पसन्द करने वाला राजा, देव को पूजने वाला ब्राह्मण) आदि विग्रहवाक्यों में समास होने पर भी समास के पूर्वपद का जो उत्तरपद (प्रिय, पूजक आदि) है। उसका 'शाकपार्थिवादि सिद्धयेउत्तरपदलोपो वाच्यः' वार्तिक से लोप होकर शाक पार्थिवः, देवपूजकः आदि शब्द बनते है इसी प्रकार आदेश विद्यायकानि सूत्राणि- इस अर्थ में पूर्वपद के उत्तरपद 'विधायक' का लोप हो आदेश सूत्र शब्द बना जिसका अर्थ है आदेश का विधान करने वाला विधि सूत्र। अतः यहां आदेश सूत्र नाम से किसी सातवें प्रकार के सूत्र विभाग का प्रकल्पना नहीं की गई है अपितु षड्विध विभाजन के अन्तर्गत आदेशरूप विशेष प्रकार की विधि से सम्बन्धित सूत्रो के अभिधानार्थ आदेशसूत्र शब्द का व्यवहार हुआ है।

विधि का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। आदेश के अतिरिक्त लोप, आगम, स्वर, प्रत्यय आदि के विधायक विधि सूत्र भी है। इनसे आदेशविधि सम्बन्धी विधि सूत्रों के पृथक्करण हेतु अपनी सुविधा के लिए आदेश विधान सम्बन्धी विधि सूत्रों का 'आदेशसूत्र' संज्ञा से अभिहित करना पड़ा क्योंकि इस शोध के विषय यहीं आदेश विधायक विधिसूत्र ही है। इसलिए आचार्यों द्वारा किए गये पाणिनीय सूत्रों के षड्विध विभाजन के अतिक्रमण का प्रश्न भी नहीं उठता।

पहले चर्चा की जा चुकी है कि व्याकरण में आदेश विधान की व्यवस्था पाणिनी के पूर्वकाल से ही चली आ रही थी। इस क्रम में यह भी ज्ञात होता है कि पाणिनी से पूर्व 'आदेश' का अर्थ अपेक्षाकृत संकुचित था। तब विभिन्न आदेशों को 'विकारविधि' एवं 'आदेशविधि' इन को भिन्न विधियों के अन्तर्गत विहित किया जाता था। इस विषय में पाणिनि से पूर्ववर्ती व्यकरणाचार्य आपिशलि का एक श्लोक प्राप्त होता है जो इस प्रकार है -

''आगमोऽनुपघातेन विकारचोपमर्दनात्।
आदेशश्तु प्रसङ्गेन लोपः सर्वापकर्षणात्।।''

डॉ0 रामशंकर भट्टाचार्य के अनुसार यहाँ एकवर्णात्मक आदेश को 'विकार' एवं अनेकवर्णात्मक आदेश को 'आदेश' कहा गया है। (पाणिनीय व्याकरण का अनुशीलन)

परवर्ती काल में इस प्रकार का भेद नहीं रहा और आदेश से सभी प्रकार के आदेश गृहीत होने लगे। आचार्य पाणिनि ने भी अष्टाध्यायी में इस भेद को मानकर व्यवहार नहीं किया है। 'एच इग्घ्रस्वादेशो' इस सूत्र में आचार्य पाण्निनि ने एकाल् विकारों के लिए आदेश शब्द का प्रयोग किया है। पाणिनीय परंपरा के वैयाकरण भी आदेश एवं विकार जैसा भेद नहीं करते -

'अग्रहणं चेन्नुड्विधिलादेश विनामेषुऋकाराग्रहण।'

वार्तिक में वार्तिककार लत्ककार लत्वरूप एकवर्णात्मक आदेश को आदेश कहते हैं विकार नहीं। विकार आदेशः -धातयति धातकः। वर्ण विकारो नार्थ विकारः - इस वाक्यांश में भाष्यकार विकार को स्पष्टतः आदेश कहते है। इसी प्रकार पाणिनीय परम्परा के अन्य वृत्तिकार एवं टीकाकार भी आदेश एवं विकार जैसा भेद नहीं मानते और सभी आदेशों को चाहे वे एकाल् हों या अनेकाल् आदेश ही कहते है।

पाणिनीय संप्रदाय के प्रक्रियानुसारी व्याकरण ग्रन्थ 'वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी' की तत्वबोधिनी टीका के रचयिता आचार्य ज्ञानेन्द्र सरस्वती ने आदेशों का द्विविध विभाजन किया है- प्रत्यक्ष तथा

आनुमानिक। प्रत्यक्ष आदेश है 'अस्तेर्भूः सूत्रविहित अस् स्थानी को होने वाला भू आदेश एवं आनुमानिक आदेश है ति > तिप > को होने वाला त् आदेश। 'अस्तेर्भूः में स्थानी एवं आदेश शब्दतः उपदिष्ट हुए है। किन्तु 'एरूः' सूत्र में इ से इफारान्त स्थानी तथा उसे उकारान्त आदेश अनुमित हुए है। (वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी तत्व बोधकी टीका)।

आदेशो के सम्बन्ध में विचार करते हुए कुछ अन्य विधियों की ओर ध्यान जाता है। आगम्, लोप, निपातन, द्वित्व आदि के विषय में भी आदेश विधि के समान वर्ण अथवा वर्णसमुदाय का हटना और जुड़ना आदि देखा जाता है। भाष्यकार के 'सर्वे' सर्वपदादेशा दाक्षीपुत्रस्य पाणिनेः - (दाधाध्वदाप्: 1.1.20, आधन्तौ तकितौ 1.1.46 सूत्रभाष्य)।

तथा अनागमकानां सागमकाः आदेशाः (दाधाध्वदाप् सूत्रभाष्य)।

इत्यादि वचानों द्वारा आगमों को आदेशरूप तथा ''सर्वदिशार्थवा वचनप्रामाण्यात्। (प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः, सूत्रभाष्य)

वार्तिक तथा वार्तिक के विवेचन क्रम में- लुक,श्लु,लुपः सवदिशा यथा स्युः - (प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः। सूत्र पर वार्तिकपाठ)।

आचार्य प्रवृत्तिर्ज्ञापयति लुक, श्लु, लुप सवदिश भवन्तीति - (प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः। सूत्र पर वार्तिकपाठ)।

इत्यादि भाष्य वचनो में प्रत्यय के लोप को आदेशरूप स्वीकार किया गया है। इसी प्रकार द्वित्व के प्रसंग में भाष्यकार ने द्वित्व आदेश है अथवा द्विरूच्चारण (अथ यस्य द्विर्वचनमान्रम्यते किं तस्य स्थाने भवति, आहोस्विद् द्विः प्रयोग इति (एकाचो द्वि प्रथमस्य। सूत्रभाष्य)।

महाभाष्य आदि विषय पर विचार किया है। इतना ही नहीं आठवें अध्याय के शब्द द्वित्व को इन्होने द्वित्वादेश स्वीकार किया है। इसी प्रकार शब्दों को निपातन द्वारा सिद्ध करने वाले सूत्रों में आदेश का निपातन होना भी देखा जाता है। जैसे- 'क्षययजययौ शक्यार्थे'' क्रययस्तदर्थे', भययप्रतयये च्छन्दसि' इत्यादि सूत्रों द्वारा अयादेश निपातित हुआ। अस्तुआगे इन लोप, आगम, द्वित्व निपातन आदि विधियों तथा आदेश विधि से इनके साम्य वेषम्य का संक्षिप्त विवेचन किया जाता है।

शब्दों की रूपसिद्धि के क्रम में जब प्रकृति या प्रत्यय के अवयव वर्णों के अतिरिक्त कोई इन्य वर्ण भी श्रूयमाण हो तो इनके साथ उस वर्ण का योग कर लिया जाता है। इस प्रकार का वर्णयोग-विधान

आगम विधान कहा जाता है तथा युक्त होने वाले वर्ण को आगम कहते हैं। जिसे आगम हो वह आगमी कहलाता है। तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में आगम का स्वरूप निम्न प्रकार से स्पष्ट हो गया है।

''अन्यत्र विद्यामानस्तु यो वर्णः श्रूयतेऽधिकः।
आगम्यमान तुल्यत्वात् स आगम इति स्मृतः।।''

इस प्रकार प्रकृति प्रत्यय में विद्यमान वर्ण के अतिरिक्त किसी भी अन्यत्र विद्यमान अधिक वर्ण की श्रुति हो तो ऐसा आगत वर्ण आगम कहलाता है। प्राचीन शास्त्रकाल आगम को उपजन कहते थे। पतंजलि ने भी ''उपजतः, आगमः विकार आदेशः ऐसा कहा है।

आद्यान्तौ टकितौ सूत्रभाष्य में पूर्वपक्ष का उपस्थापन करते हुए इन्होंने कहा है- ''आगमश्च नामापूर्वः शब्दोपजनः।'' (महाभाष्य सप्तमाह्निक सूत्रांक 1.1.46)

प्राचीन पैयाकरण आपिशील ने आगम का लक्षण करते हुए आगम की एक अन्य विशेषता को स्पष्ट किया है इनके अनुसार अनुपघातक होने से (बिना किसी प्रकार की हानि पहुँचाए शब्द में युक्त हो जाने से) आगम (कहलाता) है।-

''आगमोऽनुपधातेन विकारश्चोपमर्दनात्।''

व्याकरण जगत में आगम की इसी अनुपघातक रूप विशिष्टता को लक्ष्य कर 'शत्रुपदादेशाः मित्रवदागमः, स्थाने शत्रुवदादेशाः भाले पुड़वदागमा'' इत्यादि प्रवाव सुप्रचलित हुए हैं।

प्रक्रिया दृष्टि से विचार करने पर आगम् आदेश से भिन्न प्रतीत होता है। आगम जहाँ एक अपूर्व उपजन है वहीं आदेश किसी के स्थान पर होता है। आगम किसी वर्ण को हटाकर उसका स्थान नहीं ग्रहण करता जबकि आदेश स्थानी का उपघातक है। आगम एवं आदेश में दूसरा अन्तर यह है कि आगम आगमी का अवयव होता है और आगमी के साथ ही ग्रहीत हो जाता है। जैसे- विद् (विदलृ लाभे, तुदादिगण) को हुआ नुम् आगम विद्का अवयव हो जाता है। तथा विद्धातु के साथ ही उसका भी ग्रहण हो जाता है। आगम आगमी का अवयवअवयवीभाव संबंध होता है। यह 'यदागमास्तद्गुणी- भूतास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते' परिभाषा द्वारा स्पष्ट होता है।

आदेशों के विषय में उपर्युक्त परिभाषा प्रवृत्त नहीं होती क्योकिं आदेश उपजन न होकर विकार रूप होते है आदेशों के लिए स्थनिवद्भाव का अतिदेश किया गया है- 'स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ' आगमों के विषय में यह अतिदेश सम्भव नहीं क्योकि आगम अतिरिक्त वर्ण के आगमन का नाम है जबकि

आदेश किसी पूर्वतः विद्यमान को हटाकर उसके स्थान पर होता है। पूर्ववर्ती स्थानी के गुणधर्म आदेशो में अतिविष्ट हो सकते है किन्तु जहाँ पूर्ववर्ती स्थानी न हो- कुछ हटाया ही न गया हो वहाँ यह अतिदेश शास्त्र कैसे प्रवृत्त हो सकता है? अतएव आदेश एवं आगम प्रक्रिया की दृष्टि से भिन्न है। इसके अतिरिक्त आगमानुशासन अनित्य भी होता है (आगम शास्त्रमनित्यम्, नागेशकृत परिभाषेन्दुशेखरः)

पर आदेश को अनित्य नहीं माना जाता। इसके साथ ही इन दोनों में एक भेद यह भी है कि आदेश अर्थवान भी हो सकता है किन्तु आगम सर्वथा उर्थशून्य होता है। यद्यपि आदेशो का स्वयं का अर्थ नहीं होता फिर भी आदेश हो जाने के बाद इनमें स्थानिवद्भाव से स्थानी के अर्थ का अतिदेश हो जाता है।

वस्तुतः संज्ञा एवं परिभाषा की तरह आगम एवं आदेश में भी वास्तविक सरूपता है। भाष्य में कहा गया है- 'अनागमकानाम्सागमकाः आदेशाः, सर्वे सर्वपदादेशा दाक्षी पुत्रस्य पाणिनेः' यदि आगम एवं आदेश में वस्तुगत्या एकजातीयता न होती तो उपर्युक्त भाष्यवचनों का अथ्र बुद्धिग्राह्य न होता। (पाणिनीय व्याकरण का अनुशीलन ले0 रमाशंकर भट्टाचार्य पृ0 91)।

अतएव आगम आदेश से कोई सम्पूर्ण विजातीय पदार्थ भी नहीं है और वह भी एक प्रकार का आदेश ही है यदि पाणिनि चाहते तो प्रक्रिया विशेष से संकेत कर आगमविशिष्ट आदेश पाठ करके इष्टसिद्धि कर सकते थे। तव्य प्रत्यय को इट् आगम विहित न कर, तव्य के स्थान पर इतव्य आदेश विहित करने पर भी इष्ट सिद्धि हो सकती थी 'आद्यन्तौ टक्त्तिौ' सूत्र भाष्य में आगमदि के द्वारा नित्य कूटस्थ आपायोपजन विकार रहित शब्द में उत्पन्न आनित्यत्व रूप दोष का परिहार करते हुए भाष्यकार ने आगम को भी आदेश मान लेने का सुझाव दिया है। 'अनागमकानां समागमकाः आदेशः' इस प्रकार आगम एवं आदेश में वास्तविक सरूपता होते हुए भी सूक्ष्मभेददर्शी आचार्य द्वारा इनका पृथक-विधान करना यह ज्ञापित करने हेतु था कि आगम अर्थरहित एवं आदेश अर्थवान है। (आदेशों में स्थानों के अर्थ का अतिदेश हो जाता है, एकाल् आदेश भी जब सम्पूर्ण प्रकृति या प्रत्यय के स्थान पर आदेश किये जाते है तो एक वणक्तिक होते हुए भी स्थानिद्धिपद् भाव से अर्थवान् हो जाते है आगम सदा किसी के अव्यय रूप में होते है अतएव उनका अर्थवान् होना संभव नहीं)

समता होते हुए भी आगम एवं आदेश का पृथक्करण इसलिए आवश्यक था क्योंकि प्रक्रिया में भेद है। आदेश जहाँ किसी को हटाकर उसमें स्थान पर आता है वहीं आगम एक अपूर्व उपजन है।

इसके अतिरिक्त दोनों के अनुबन्ध भी परस्पर भिन्न है जो इनसे सम्बन्धित भिन्न-2 प्रयोजन सिद्ध करते है। आगमों के अनुबन्ध आगम की स्थिति का निर्देश करते हैं कि वह आगमी के आदि में जुड़ेगा अथवा उसका अन्त्य-अवयव बनेगा या अन्त्य अच् से परे युक्त होगा। आदेशों के अनुबन्ध आदेश अन्त्य होगा या सम्पूर्ण को- इसका निर्धारण करते है। अतः आगम आदेश दो सजातीय परन्तु परस्पर भिन्न विधि है।

लोपविधि भी आदेश विधि से मिलती-जुलती से प्रतीत होती है। दोनों मे ही जिसे लोप या आदेश विहित किया गया हो, उसका अदर्शन होता देखा जाता है लोप का लक्षण है- अदर्शनं लोपः 1/1/60। प्रसक्त का (अर्थात् शास्त्र द्वारा जिसका श्रवण प्राप्त है उसका) अदर्शन होना (अश्रवण होना) लोप कहलाता है। 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' 1/1/62 सूत्र भाष्य में भाष्यकार ने लोप को भी आदेश कहा है- आदेशः स्थानिवदित्युच्यते। न च लोपः आदेशः। इस प्रकार पूर्व पक्ष का उपस्थापन कर उत्तरपक्ष प्रस्तुत करते हुए कहते है - "लोपोऽप्या देशः। कथम्? आदिश्यते यः स आदेशः। दोषः खल्वपि स्याद् यदि लोपो नावेशः स्यात्। इहअचः परस्मिन् पूर्वविद्यावित्येतस्य भूयिष्ठानि लोप उदाहरणानि तानि न स्युः।" (महाभाष्य प्रत्यय लोपे प्रत्यय लक्षणम्)

उपर्युक्त भाष्य में 'अचः परास्मिन् पूर्वविधौ सूत्र' के लोप रूप आदेश के उदाहरणों की विस्मत वर्णन है।

"आगत्य। अभिगत्य। अनुनासिकलोपः परंनिमित्तकस्तस्य स्थानिवद्भावत् हृस्यस्येति तुक् न प्राप्नोति। अच् इति वचनाद् भवति।" (अचः परष्मिन् पूर्व विधौ। महाभाष्य)

इन उद्धरणों में लोपविधि में स्थानिवद्भाव घटित करना यह स्पष्ट करता है कि लोप भी आदेश ही है क्योंकि स्थानिवदादेशो सूत्र द्वारा आदेश का ही स्थानिवद्भाव सिद्ध हैं इसप्रकार भाष्यकार के मत में लोप भी एक प्रकार का आदेश ही है। इसे अभावरूप आदेश कहा जा सकता है। अर्थात् यह ऐसा आदेश है जिससे स्थानी का अभाव आदिष्ट होता है।

आदेश एवं लोप में उपर्युक्त प्रकार से समानता होने पर भी इन दोनों की प्रक्रिया में भेद देखने को मिलता है। आदेश विधि भावरूप है इसमें स्थानी का स्थापन्न आवश्य होता है पर लोपविधि अभावरूप है। इसमें स्थानी का अदर्शन करने पर उसका स्थान रिक्त ही रह जाता है।

भाष्यकार द्वारा लोप को आदेश कहने का विशेष प्रयोजन है। 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' सूत्र का अर्थ होता है प्रत्यय का लोप हो जाने पर भी प्रत्यय लक्षण कार्य की प्राप्ति हो। भाष्यकार ने

प्रत्ययलक्षण द्वारा सिद्ध होने वाले कार्यों को स्थानिवद्भाव से सिद्ध कर दिखाया है। और प्रत्ययलोपे सूत्र को एक विशेष नियम का प्रतिपादक सिद्ध किया है। यह नियम है- ''प्रत्ययं गृहीत्वा यदुच्यते तत् प्रत्ययलक्षणेन यथा स्यात्। शब्दं गृहीत्वा यदुच्यते तत् प्रत्ययलक्षणेन मा भूदिति।'' प्रत्ययलोपे सूत्र को इस प्रकार के नियम का प्रातिपादक मान लेने पर प्रत्यय का लोप हो जाने पर तल्लक्षण कार्य की अप्राप्ति होने लगती है और शब्दों की रूपसिद्धि में बाधा उत्पन्न होती है इसके लिए लोप विषय में प्रत्यय की स्थानिवद्भाव से विद्यमानता सिद्ध की जाती है और प्रत्ययलक्षण कार्य प्राप्त हो जाते है इस प्रकार रूपसिद्धि तो निर्बाध संपन्न हो जाती है किन्तु अब शङ्का उठती है कि स्थानिवद्भाव तो आदेश विषय में ही होता है लोप में नहीं तो भाष्यकार लोप को भी आदेश कह देते है इतना ही नहीं भाष्यकार न यह भी स्पष्ट किया है कि 'द्विर्वचनेऽचि' सूत्र में जो उदाहरण दिए गए है वे लोप को आदेश न मानने पर सिद्ध नहीं हो सकेंगे। (इस विषय में प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् 'सूत्रभाष्य द्रष्टव्य।)

इस प्रकार भाष्यकार के द्वारा लोप को आदेश कह जाने पर भी इस आदेशविधि से भिन्न विधि ही मानना उपयुक्त है क्योंकि इनमें भावाभावरूप विशिष्टता इन्हे परस्पर भिन्न सिद्ध करती है आचार्य पाणिनि ने भी इन दोनों विधियों के द्वारा विभिन्न कार्यो का विधान किया है इसलिए भी उन्हें भिन्न मानना चाहिए। इसके अतिरिक्त विभिन्न परिभाषाग्रन्थों में लोप को सभी विधियों से बलवान कहा गया है- 'सर्वविधिम्योलोपविधिर्बलवान।'' (भोजदेवकृत परिभाषा सूत्र परिभाषांक 1.2.116)

लोपादजादेशः जैसे परिभाषाएं लोप की अपेक्षा अजादेश विधि को बलवान सिद्ध करती है। ये परिभाषाएं तथा लोप हो, श्लु हो, लुक् हों, लुप् हो इस प्रकार से जो पाणिनीय विधिशास्त्र कहे गये है। वे अर्थसंगत हों इस हेतु आदेश से भिन्न लोप विधि स्वीकार करना ही चाहिए।

अष्टाध्यायी में तीन प्रकार के द्वित्व का विधान किया गया है। वर्णद्वित्व, अभ्यासरूप धातु सम्बन्धी द्वित्व तथा आमेडितरूप पद सम्बन्धी द्वित्व। ये द्वित्व क्रमशः अष्टाध्यायी के आठवे अध्याय के चतुर्थ पाद, षष्ठ अध्याय के प्रथम पाद, आष्टम अध्याय के प्रथम पाद में उपदिष्ट हुए है।

एकाचो द्वे प्रथमस्य (6.1.61) तथा सर्वस्य द्वे (8.1.1) इन अधिकार सूत्रों द्वारा षष्ठ अध्याय एवं अष्टमाध्याम के प्रथम पाद का द्वित्व निरूपित हुआ है। 'एकाचो द्वे प्रथमस्य' सूत्र के अधिकार से हुआ द्वित्व धातु के प्रथम एकाच् सम्बन्धी द्वित्व हैं (अजादेर्द्वितीयस्य। यह सूत्र अजादि धातु के द्वितीय एकाच् को द्वित्व का नियम करता हैं।)

इस द्वित्व में द्वित्व प्राप्त समुदाय के पूर्ववर्ती की अभ्यास संज्ञा होती है (पूर्वोभ्यासः सूत्र से) तथा द्वित्व समुदाय के अभ्यास संज्ञक एवं परवर्ती दोनों का अभ्यस्त कहा जाता है (उभे अभ्यस्तम्) इस द्वित्व के विषय में भाष्यकार का मत है कि यह द्वित्व 'द्वि' प्रयोग या द्विरूच्चारण समझा जाए। इस द्वित्व को आदेश मान ने में कुछ ऐसे दोष उत्पन्न होते हैं जिनका परिहार नहीं हो सकता।

'एकाचोद्वे प्रथमस्य' सूत्र का अर्थ किया जाता है। 'धातोः यः प्रथमएकाचः। तस्य प्रथमएकाचस्य, द्वे उच्चारणें स्तः।

इस प्रकार यहां स्थान षष्ठी मानकर अवयवषष्ठी मानना अभ्यास द्वित्व को आगमतुल्य सिद्धकरता है द्वे उच्चारणे स्तः शब्द से ऐसा ही तात्पर्य निकलता हैं।

कैयट का आशय है कि षष्ठाध्याय के इस अभ्याससंज्ञक द्वित्त्व को आदेश नहीं माना जाता अपितु द्विउच्चारण या द्विः प्रयोग माना जाता है इसका कारण यह है। यहां 'स्थानेर्द्विवचनम्' पक्ष का आश्रयण नहीं किया जा सकता इस अनाश्रयण के पीछे सूत्रकार द्वारा प्रदत्त हेतु (लिंग) भी है। यह जो 'अभ्यासाच्च' सूत्र द्वारा हन् धातु को अभ्यास से परे रहते कुत्व विधान किया गया वह सूचित करता है कि अभ्यास द्वित्व स्थानेर्द्विवचन नहीं है।

हन् णल् इस दशा में हन् को द्वित्वादेश पक्ष में स्थानी हन् हटा उसके स्थान पर आदेश 'हन्-हन्' आया-हन् हन् णल्। अब 'अभ्यासाच्च' सूत्र द्वारा अभ्यासोत्तरवर्ती हन् धातु को कुत्व करना है जो आदेश पक्ष में सम्भव नहीं होगा। आदेश स्थानी से भिन्न शब्द होता है। जैसे भू आदेश अस् स्थानी से भिन्न है, पश्य आदेश दृश् स्थानी से भिन्न है। इसी प्रकार 'हन् हन्' आदेश 'हन्' स्थानी से भिन्न-शब्दान्तर है। (ऐसा न मानने पर स्थानिवदादे सूत्र का उल्लघंन होगा।)

इस दशा में स्थानिवद्भाव से हन् स्वरूप सिद्ध करके भी कार्यसिद्धि सम्भव नहीं। क्योंकि स्थानी में एकमात्र हन् है अभ्यास पूर्वक हन् नहीं। आदेश में दो हन् है अवश्य किन्तु समग्ररूप में ही आदेश को स्थानिवत् कहा जाता है। (स्थानिवद्भावातिदेश सम्पूर्ण आदेश को होता है आदेश के अवयावों को नहीं)। इस प्रकार अभ्यासपूर्वक हन् धातु (षष्ठ अध्याय के इस द्वित्व को 'स्थानेर्द्विवचन' मानने पर) नहीं प्राप्त होती है और कुत्वशास्त्र की प्रवृत्ति नहीं हो पाती है। द्विउच्चारण या द्विः प्रयोग पक्ष में दो हन् धातु प्राप्त होने से अभ्यास पूर्वक हन् धातु की उपलब्धि हो जाती है और कुत्व शास्त्र की प्रवृत्ति होने लगती है। आठवें अध्याय के चतुर्थ पाद का वर्ण द्वित्व भी इसी प्रकार का है। इस पाद में कुल दो सूत्र

है।- 'अचो रहाभ्यां द्वे' तथा 'अनचिव' जो वर्ण सम्बन्धी द्वित्व विधान करते है। ये आदेश हैं अथवा 'द्विः प्रयोग' या ' द्विउच्चारण' है इस विषय पर भाष्य, काशिका, अथवा अन्यत्र कहीं भी विचार नहीं किया गया है। यह द्वित्व उच्चारण विषयक हैं।

मद्ध्वत्र। मधु अत्र् मध् व अत्र इस स्थिति में 'अर्नाच च' सूत्र द्वारा अनघ् वकार परे रहते अच् यर् धकार को वैकल्पिक द्वित्व हुआ है- मध् ध् पत्र मद्ध्वत्र यह द्वित्व संहिताजन्य श्रवण है 'आठवें अध्याय के प्रथम पाद का द्वित्व स्थानेर्द्विवचन प्रकार का है। 'सर्वस्य द्वे' सूत्रभाष्य में भाष्यकार ने इस द्वित्व के आदेशत्व का बड़ा ही उहापोहमय विस्तृत विवेचन किया है और द्वित्व को स्थानेर्द्विवचन सिद्ध किया है।- (सर्वस्य द्वे, सूत्रभाष्य)

भाष्यकार ने ही द्विः प्रयोग द्विर्वचन पक्ष मानने मे भी कोई हानि नहीं यह भी प्रदर्शित किया है किन्तु अधिकांश टीका एवं व्याख्याओं के कर्त्ता इसे स्थानेद्विवचनं मानने के पक्ष में ही है। वस्तुतः द्विः प्रयोग पक्ष को ज्ञापक द्वारा सिद्ध किया गया है। जिसकी तुलना में आदेश पक्ष का समाधान अधिक उचित एवं शास्त्रीय प्रतीत होता है।

('द्विः प्रयोग पक्ष में पौनः प्रन्य, पुनः पुनिकम्' इत्यादि प्रयोगो में अप्रातिपादिकत्वात् (सुबन्तत्वेन) तद्धित का उत्पत्ति नहीं होती इस का परिहार भाष्यकार ने इस प्रकार किया है- ''मा भूदेवं समर्थादित्येवं भविष्यति। अथ वाअचार्य प्रवृत्तिज्ञापयति- भवत्येवंजातीय केभ्यस्तद्धितोत्पत्ति रिति, यदयं कस्कादिषुकौतस्फुत शब्दं पठति।''

भाष्यकार के इस ज्ञापक पर आद्योतकर नागेश ने टीका की है- 'अस्माज्ज्ञापकास्थाने द्विर्वचनपक्षाश्रयणमेव युक्तामिव्याहुः।

वासुदेवजी ने 'सर्वस्य द्वे' सूत्र की व्याख्या में लिखा है- 'पदस्येति अधिकरिष्यमाणमिहाप्रकृष्यते सर्वस्येति स्थानषष्ठी द्वे इति त्वादेशसमर्पकम्। तस्य च शब्दरूपे इति विशेष्यमर्थाल्लभ्यते, शब्दानुशासन प्रस्तावात्। ते च शब्दरूपे स्वरूपतः अर्थतश्चान्तर तमे पदे इति स्थानेऽन्तरतमपरिभाषाया लभ्यते।'

इस प्रकार षष्ठाध्यायगत द्वित्व (अभ्यास द्वित्व) द्विः प्रयोग या द्विउच्चारण है। 'आदेशप्रत्ययोः' सूत्रभाष्य में स्पष्ट कहा गया है- न धातु र्द्विर्वचने स्थाने द्विर्वचनशक्यमास्थातम्।

पद द्वित्व, अभ्यासद्वित्व तथा वर्णद्वित्व के मध्य इसी भेद से इनका अष्टाध्यायी में एकत्र उपदेश नहीं किया गया। पद द्वित्व न प्रकृति प्रत्यय के अन्तर्गत आता है न कि प्रकृति प्रत्ययाश्रित कार्य

विशेष है। इसी कारण वश यह तृतीय से सप्तम अध्याय तक उपदिष्ट नहीं हुआ। संज्ञा एवं पारिभाषिक पद न होने से यह प्रथम अध्याय में भी नहीं रखा जा सका यद्यपि पद न होने से यह समान विशिष्ट अर्थ बोधकर्ता इस विधि में भी है तथापि 'समर्थः पदविधिः'। सूत्र विहित सामर्थ्य रूप विशिष्टता इस विधि में दृष्ट नहीं होती। समर्थ अर्थात् संगतार्थ, सम्बद्धार्थ। यहां सम्पूर्ण पद का शब्दतः एवं अर्थतः समतायुक्त दो पद होगा द्वित्व कहा गया हैं अतएव संगतार्थ या सम्बद्धार्थ रूप सामर्थ्य द्वित्व विधि में नही है। (यद्यपि नित्यता, वीप्सा आदि विशेष अर्थों का द्वित्व होने पर) बोध होता है किन्तु वस्तुतः ये अर्थ प्रकृति गम्य है। सत्यपिप्रकृतेर्द्वित्वे द्विरूक्तयोः पकृत्यनतिरेकात्। बालमनोरमा। इससे यह द्वित्व विधि द्वितीय अध्याय में समासादि प्रकरण में भी नहीं रखी गई। आदेशरूप होने से तथा अर्थ- विशेषद्योतक होने से षष्ठाध्याय के अभ्याद्वित्व में भी इस द्वित्व को स्थान न मिला अतएव संज्ञा, परिभाषा, प्रत्यय, प्रकृति प्रत्यय सम्बन्धी कार्यों का उपदेश करने के बाद अष्टम अध्याय के प्रथमपाद में पद संबंधी इस द्वित्व का उपदेश हुआ क्योंकि अष्टमाध्याय के दूसरे पद से असिद्ध काण्ड आरम्भ होता है अतः इसे प्रथमपाद में ही रखा गया।

षष्ठ अध्याय के अभ्यास द्वित्त्व प्रकृति या अङ्ग सम्बन्धी कार्य है अतएव अङ्गकार्य सम्बन्धी प्रकरण में भी इसका उपदेश हो गया। अष्टम अध्याय के चतुर्थ पाद का वर्ण द्वित्त्व संधि या संहिता सम्बन्धी विकारों के प्रकरण में पढ़ गया। यहाँ इसका पाद असिद्धत्व रूव विशेष प्रयोजन के होतु किया गया है। पाणिनीय शास्त्र में कभी-कभी सम्पूर्ण शब्द कभी आगम, आदेश, प्रकृति प्रत्यय आदि निपातन द्वारा सिद्ध किये गये है। यथा- कपिष्ठल में षत्वादेश निपातन है। अनायय में आय् आदेश निपातन है। (आनाययोऽनित्ये 3.1.127)

आत्मम्भीर में मुम् आगम निपातन सिद्ध है। (फलेग्रहिरात्मम्भ रिश्च 3.1.127, सूत्रभाष्य)।

सूत्र अपचितश्च (6.2.30) में प्रकृति को चिभाव निपातन हुआ है। 'मस्कर मस्करिणो वेणुपरिब्राजकयोः' सू0 में तच्छील्य अर्थ में 'हनि' प्रत्यय निपातन किया गया। (जब कि णिनि प्राप्त था) विभिन्न विषय में निपातन होने देखा गया है। अब प्रश्न उठता है कि इनका निपातन क्यों किया गया विधिसूत्रों द्वारा विधान क्यों नहीं किया गया इसके उत्तर में निपातन में विशेष स्वरूप को दर्शाने वाली वैयाकरणों की कुछ उक्तियाँ प्रस्तुत की जाती है -

काशिकाकार के अनुसार- 'यदिह लक्षणेन अनुपपन्न तत् सर्व निपातनात् सिद्धम्।'

(काशिका वृत्ति, तृतीय अध्याय, प्रथम पाद,123 सूत्रभाष्य)

(अर्थात् पाणिनीय सूत्रों द्वारा जो सिद्ध नहीं है वह सब निपातनात् सिद्ध हो गया है।) एक कारिका में तीन प्रकार के निपातन कार्यों की चर्चा की गई है-

''अप्राप्तं प्रापणं चाऽ पि प्राप्तेर्वारणमेव वा।

अधिकार्थविवक्षा च त्रमेतन्निपातनात् ।।''

उपर्युक्त दोनों कथनों में निपातन के द्वारा सिद्ध हुए कार्यों की चर्चा हुई है। अब निपातन के स्वरूप का विचार प्रसंगतः प्राप्त है इस सम्बन्ध में निम्न उक्तियाँ विचारणीय हैं-

''इमें विशत्यादयः सप्रकृतिकाः सप्रत्ययकाश्च निपात्यन्ते तत्र न ज्ञायते- का प्रकृतिः कः प्रत्ययः, कः प्रत्ययार्थ इति।''

भाष्यकार के इस वाक्यांश की व्याख्या कैयट ने इस प्रकार की है- 'अथ प्रकृतित्वमेषां कस्मान्न विज्ञायते? पंचम्याः प्रत्ययस्य चानुपादानात्, अनिष्पन्नस्य च प्रकृतित्वाभावात। प्रत्ययत्वं तर्हि कस्मादेषां न भवति? लोके केवलानाम् प्रयोगदर्शनात्। शताच्च उन्यतावशते' 'विशत्यादिभ्यः' इति शास्त्रे च केवलानामुच्चारणात्।

इन उद्धृत् वाक्यांशो के आधार पर हम कह सकते हैं कि निपातित शब्द न प्रकृति है न प्रत्यय है पर प्रकृति प्रत्ययात्मक अवश्यमेव है। भाष्यकार ने इनमें प्रकृति एवं प्रत्यय की परिकल्पना करने का सुझाव दिया है- 'तत्रवक्तव्यं इयं प्रकृतिः, अयं प्रत्ययः अयं प्रत्ययार्थः इति। इस प्रकार विंशति इत्यादि शब्दों में प्रकृति प्रत्यय की परिकल्पना।' प्रारम्भ कर व्युत्पत्ति पक्ष में दोष देखकर भाष्यकार ने इन्हें अव्युत्पन्न प्रातिपादिक मान लिया है- 'विशत्यादयोऽव्युत्पन्नानि प्रातिपदिकानि। यथा सहस्त्रादिषु (माहभाष्य 5.1.59)' भाष्यकार का यह मत वार्तिककार कात्यायन के वार्तिक 'अनारम्यो वा प्रातिपदिक विज्ञानात् यथा सहस्त्रादिषु पर आधारित है। इस प्रकार यहाँ वार्तिककार एवं भाष्यकार 'विंशति' आदि निपातन सिद्ध शब्दों को अव्युत्पन्न शब्द मानते हैं। किन्तु सर्वत्र इनका ऐसा व्यवहार नहीं हैं। ''वा दान्तशान्तपूर्ण' 6.2.26 सू. एवं 'अपचितश्च' 6.2.30 में वार्तिककार एवं भाष्यकार ने उपधादीर्धत्व, उपधाह्रस्वत्व तथा धि आदेश का निपातन स्वीकार किया है।

जो निपातित शब्दों की व्युत्पत्ति प्रदर्शित करने की इनकी चेष्टा का परिचायक है। अस्तु निपातन सिद्ध शब्द भले ही रूढ़िशब्द हो, लोक में व्यवहृत होने स इनके साधुत्व निष्पादन हेतु इनकी

व्युत्पत्ति की चेष्टा करना उचित है अतएव इनकी व्युत्पत्ति प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया और येन केन प्रकारेण इनमें प्रकृति प्रत्ययादि अवएव प्रकल्पित हुए।

व्युत्पत्ति प्रदर्शन के इस क्रम में कुछ कार्य तो शास्त्र सिद्ध हो जाता है और कुछ सिद्ध नहीं हो पाता है। सूत्रों द्वारा जो कार्य सिद्ध नहीं होता उसे निपातन सिद्ध मान लेते हैं यथा 'विष्टरः' यहाँ विपूर्वक स्तृसे अप् (ऋदोरप् सू0 से) इतना कार्य शास्त्र सिद्ध है। इस प्रकार विस्तर शब्द बना। प्रयोगस्थ मूर्धन्य षकार की व्याख्या षत्वविधायक सूत्रो द्वारा न हो सका तो उसका निपातन मान लिया गया। 'वृक्षासनयोर्विष्टरः' सूत्र में निर्दिष्टं निपातित शब्द विष्टर की- विर्पूस्य स्तृणातेः षष्वं निपात्यते।' (द्रष्टव्य काशिक वृत्ति। सू0 वृक्षासन, 8.3.93)

इत्यादि व्याख्याएँ इसी प्रवृत्ति की सूचक है।

यहाँ निपातन में विषय में कैयट का एक वाक्यांश विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन्होने लिखा है- "विधिनिपातनयोश्चायं भेदो यत्रावयवा निर्दिश्यन्ते, समुदायोऽनुमीयते स विधिः। यत्र तु समुदायः श्रूयते अवयवाश्चानुमीयन्ते तन्निपातनम्।" (महाभाष्यप्रदीप, सूत्रांक, 5.1.59, पंक्ति विंशति सू0)।

अतएव इन उद्धरणों के आधार पर हम निपातन को हरदत्त के शब्दों में 'विपरातो विधिः' कह सकते हैं। आदेश भी विधिसूत्र का ही एक विषय है अतएव उसके विषय में भी यही दृष्टि धटती है। विधि सूत्र विहित आदेश साक्षात् विहित आदेश है जबकि निपातन सिद्ध आदेश अनुमित है। प्रकृति, प्रत्यय, अगमादि के समान आदेश का भी निपातन किया जाता है अतएव आदेश के निपातन होने से यह विधि सूत्र विहित आदेश से भिन्न है। निपातन एवं विधि के इसी भेद के कारण निपातित, आदेश, को विधि सूत्र द्वारा विहित नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार आदेश एवं आगम, लोप, द्वित्व निपातन आदि में कुछ समताएँ एवं कुछ भेद भी है। आगम को आदेश मानकर भाष्यकार ने नित्यशब्द वादियों के मत में खण्डित होने से बचाया लोप को आदेश न मानने से कई दोष गिनाए तथा पद द्वित्व को स्पष्ट रूप में आदेश स्वीकार किया फिर भी इन विधियों का आदेश विधि से भिन्न होना भी सिद्ध है।

आगम में स्थानी का न होना, लोप में आदेश का अभाव रूप होना तथा द्वित्व में एक जैसे रूप एवं अर्थवाले को शब्दों का स्थापन्न होना आदेश विधि से इन विधियों का अन्तर स्पष्ट करता है। इसलिए भाष्यकार के अनुसार- हम उन्हें आदेश कहना भी चाहेंगे तो आगमादेश, लोपआदेश, द्वित्वादेश

इस प्रकार का अन्तर रखना ही पड़ेगा। यदि आदेश एवं इन विधियों में भेद न होता तो एकमात्र आदेशविधि द्वारा ही इन सबका विधान किया गया होता और पाणिनि को लोप, आगम, द्वित्वादि विधि से सम्बन्धित सूत्रोपदेश करने की आवश्यकता न होती। इसके अतिरिक्त आगम एवं आदेश में भिन्न प्रयोजनों के सिद्ध्यर्थ जुड़े भिन्न-भिन्न अनुबन्ध भी इनके परस्पर भिन्न होने के पचायक है।

आगमों के अनुबन्ध इस विषय का निर्धारण करते हैं कि आगम कहां होगें शब्द के आदि में, अन्त में अथवा शब्द के अन्त्य अच् से परे दूसरी ओर आदेशों के अनुबन्ध इस विषय का निर्धारण करते हैं कि आदेश किसके स्थान पर होगा- शब्द के अन्त्य वर्ण के स्थान पर अथवा सम्पूर्ण शब्द के स्थान पर। पाणिनि ने आदेशों के साथ ही अनुबन्धों का योग किया है ङ् एवं श् का। ङि.त्करण का फल हैं- आदेश का शब्द के अन्तिम वर्ण के स्थान पर आना। तथा शित्करण का फल है आदेश का सम्पूर्ण शब्द के स्थान पर आना। (प्रत्यय के स्थान पर होने वाले आदेशों के शित्करण का अन्य प्रयोजन भी है- सार्वधातुक संज्ञक होना)।

यद्यपि ऐसा नियम नहीं किया जा सकता कि एकाल् स्थानी को एकाल् आदेश तथा अनेकाल् स्थानी को अनेकाल् आदेश होगे। तथापि अधिकांश आदेश विधान इसी प्रकार के है। उदाहरणार्थ- इक् को यण् निष्ठानत्व, णत्व, षत्व इत्यादि के स्थानी एवं आदेश एकाल् तथा अस् को भू, तू को वच् चक्षिङ् को ख्याञ् इत्यादि के स्थानी एवं आदेश अनेकाल् है किन्तु सर्वत्र ऐसा करना सम्भव नहीं। किन्ही प्रयोगों में एकाल् स्थानी के स्थान पर अनेकाल् आदेश एवं कही-2 अनेकाल् स्थानी को एकाल् आदेश विहित करना आवश्यक होता है। (उदाहरणार्थ- गाण्डीवधनुष, शब्द के अन्त्य अवयव को अन् आदेश, सुधातृ के अन्त्य ऋकार को अक् आदेश इदम, एतद् को 'अ' आदेश किए बिना क्रमशः गान्डीवधन्ता सौधातकि, अन्वादेश विषयक आभ्याम्, अत्र, अतः आदि शब्द प्रयोग नहीं सिद्ध हो सकते।)

अतएव इस प्रकार के आदेश विहित किए गये एवं शब्द के अन्त्य वर्ण के स्थान पर एकवर्णात्मक आदेश लाने हेतु आदेश शित् किया गया तथा अनेकल् वर्णात्मक आदेश लाने हेतु आदेश ङित् किया गया। अलोऽन्त्यस्य (1.1.52) 'ङिच्च' (1.1.53) सूत्र द्वारा शब्द के अन्त्य वर्ण को तथा 'अनेकाल्शित्सर्वस्य (1.1.55) द्वारा सम्पूर्ण शब्द के स्थान पर आदेश प्राप्ति की व्यवस्था की गई। इस प्रकार इन अनुबन्धों एवं सूत्रों के द्वारा स्थानी एवं आदेश के विषय में कुछ इस प्रकार का नियम बना। एकाल् स्थानी को एकाल् आदेश, अनेकाल स्थानी को अनेकाल आदेश होंगे। शित् आदेश एकाल् होते

हुए भी सम्पूर्ण शब्द के स्थान पर होंगे और ङित आदेश अनेकाल् होते हुए भी शब्द के अन्तिम वर्ण के स्थान पर होंगे। अष्टाध्यायी के समस्त आदेश विधान नियमों के आधार पर किए गए हैं किन्तु कुछ ऐसे स्थल भी है जहाँ इन नियमों से डटकर आदेश विधान हुआ है। उदाहरणार्थ- 'तुहयोस्तातङाशिष्यन्यतरस्याम, णिश्रिद्रु- सुभ्यः कर्तरि चङ्, अस्यतिवक्तिम्यातिभ्योऽङ्' इत्यादि सूत्रों द्वार तु एवं हि को तातङ् 'च्लि का चङ्' चिल को अङ् इत्यादि आदेश विधान ङि् त् होकर भी अन्त्य वर्ण के स्थान पर न होकर सम्पूर्ण शब्द के स्थान पर होते है। इन आदेशों के ङि्त्करण का विशेष प्रयोजन है। यह प्रयोजन है- ङि त् करने को फलस्वरूप गुणवृद्धि का निषेध होना। अकङ्, इयङ्, उवङ्, अनङ् इत्यादि ङि त् आदेशों के ङित्करण का एकमात्र प्रयोजन अन्तादेश की सिद्धि है इनके अन्त्य वर्ण के स्थान पर न होकर सम्पूर्ण के स्थान पर अभीष्ट सिद्धि न हो सकेगी। किन्तु तातङ् के ङि त्करण को अन्तादेश सिद्ध्यर्थक मानने पर अभीष्ट शब्द नहीं सिद्ध हो सकेगा। गुणवृद्धिप्रितिषेधार्थक मानने पर अभीष्ट सिद्धि हो सकेगी। इसीलिए ङिच्च ङित्करण गुणवृद्धि प्रतिषेधार्थक स्वीकार किया है। (भाष्यकार के अनुसार गुणवृद्धि निषेध रूप विशेष प्रयोजन होने के कारण तातङ् का ङित्व सावकाश है इससे 'ङिच्च' 1.1.52 सूत्र का अपवाद निर्बल होकर प्रवृत्त नहीं हो पाता। तब ङित्वात् अन्तादेश - तथा अनेकाल्त्वात् सवदिश ।

विधायक शास्त्र के एक साथ प्रवृत्त होते हैं और विप्रतिषेध नियम से परे होने से सर्वदिश हो जाता है। अकङ्, इनङ् इत्यादि के ङित्व का गुणवृद्धि निषेध जैसा कोई विशेष प्रयोजन नहीं है। इनके ङित्व का एकमात्र प्रयोजन अन्तादेश की सिद्धि है। अतएव अन्तादेश के प्रति ङित्व के सावकाश होने से अनेकाल्त्वात् सर्वदिश विधादिश विधायक शास्त्र के विरूद्ध ङिच्च 1.1.52 सूत्र का अपवाद प्रवृत्त हो कर अन्तादेश कर देता है। तातङ् के ङित्करण को गुणवृद्धिप्रतिषेधार्थक मानने पर 'ब्रूतात्' प्रयोग में इगन्त अङ् ब्रु को 'सार्वधातुका- र्धधातुकयोः से प्रप्त गुण का 'क्ङितिच' सूत्र से निषेध हो सकेगा। इसी प्रकार 'मृष्टात्' प्रयोग में 'मृजेर्वृद्धि' सूत्र से प्राप्त वृद्धि का 'क्ङिति च' से निषेध हो जाएगा। इस प्रकार इस ङित्व का गुणवृद्धिप्रतिषेधार्थक मानना चाहिए तथा इस आदेश में 'ङिच्च' सूत्र की अप्रवृत्ति माननी चाहिए और आदेश को सवदिश मानना चाहिए। चङ्, अङ् इत्यादि आदेशो में भी 'चङि' सूत्र से द्वित्व तथा दोनों में ङित्वलक्षण गुण वृद्धि निषेधादि विशेष प्रयोजन हेतु ङित्करण हुआ है। लेकिन इन कुछ उदाहरणों में ङित्वकरण को अन्यार्थक पाकर अन्तादेश हेतु ङित्करण को अनुपयुक्त कहना उचित नहीं क्योंकि अनङ्, इनङ्, अकङ्, इयङ्, उवङ् आदेशो में यह चरितार्थ है। वस्तुतः कोई अन्य विशिष्ट प्रयोजन न हो तो

अदेशों का ङित्वकरण अन्तादेश की सिद्धि हेतु ही है। इसी आधार पर यह ज्ञात होता है कि 'ऊधसोऽनङ्', जायाजा निङ्, इत्यादी सूत्र आदेश विहित करते है प्रत्यय नहीं। यदि ये प्रत्यय होते तो कुछ विशिष्ट प्रयोजन न होने से इनका ङित्करण व्यर्थ हो जाता है। आदेश-पक्ष में अन्तादेश रूप प्रयोजन सिद्ध होने से इनका ङित्करण सार्थक है। आचार्य पाणिनि का कोई कार्य प्रयोजनहीन नहीं हो सकता। अर्द्धमात्रालाधव वैयाकरण के लिए पुत्रप्राप्तिसदृश आनन्दप्रव होता है। अतः एक वर्ण का भी अनावश्यक प्रयोग कैसे किया जा सकता है। अतएव इन सूत्रों द्वारा विहित अनङ् निङ् आदि आदेश है, प्रत्यय नहीं यह सुनिश्चित होता है। और यह निश्चय ङकार अनुबन्ध के कारण ही हो सका है। आदेशो के सम्बन्ध में एक बात विशेष रूप से विचारणीय है। पाणिनीय संप्रदाय में शब्द को नित्य माना गया है। 'सिद्धे शब्दार्थ सम्बन्धे' वार्तिक में वार्तिककार ने शब्द अर्थ एवं इनके सम्बन्ध को नित्य माना है। भाष्यकार के अनुसार इस वार्तिक के 'सिद्ध' शब्द का अर्थ नित्य है- सिद्धे शब्दार्थ सम्बन्ध इत्यत्र नित्ययर्यायवाची सिद्ध शब्दः। (महाभाष्य) वाक्यपदीपकार ने भी- "नित्याः शब्दार्थ सम्बन्धः।"

इत्यादि कारकांश में शब्द को नित्य स्वीकार किया है। इस प्रकार शब्द का नित्य होना सुविदित है। अब जो नित्य है उसे कूटस्थ अविचाली लोपागमविकाररहित होना चाहिए। आदेश क्रिया में हम स्थानी का विनाश होता हुआ तथा आदेश को उत्पन्न होता देखते है। स्थानी होकर भी नहीं होता और आदेश न होते हुए भी हो जाता है।

(स्थानी हि नाम यो भूत्वा न भवति, आदेशो हि नाम योऽभूत्वा भवति।)

इस प्रकार शब्द का विनाश एवं उसकी उत्पत्ति स्पष्ट है फिर शब्द नित्य कैसे है? इसका उत्तर इस प्रकार दिया गया- स्थान्यदेशभावबुद्धि का विपरिणाममात्र है। 'अस्तेर्भूः' का यह अर्थ नहीं है। कि अस् को नष्ट कर भू उत्पन्न हो अपितु यह है कि अस् की बुद्धि में भू कि बुद्धि करनी चाहिए। या आर्ध धातुक के विषय में अस् के उच्चारण की प्राप्ति में भू का उच्चारण करना चाहिए। इस प्रकार बृद्धि मात्र में या उच्चारण मात्र में विपरिणाम होता है, शब्द में कोई विकार नहीं होता। इसे एक दृष्टान्त देकर भाष्यकार ने इस प्रकार स्पष्ट किया है- कश्चित् के चिदुपदिशति प्राचीनग्रामावामा इति। तस्य सर्वत्राम्रबुद्धि प्रसक्ता। ततः पश्चादाह ये क्षीरीणोऽवरोहवन्तः पृथुपर्णास्ते न्यूग्रोद्या इति। स तत्राम्- बुद्धया न्यूग्रोधबुद्धि प्रतिपद्यते सः ततः पश्यति बुद्ध्या आमांश्चापकृष्यमाणान न्यूग्रोधाराचोपधीयमानान्। (इग्यणः सम्प्रसारणम्) महाभाष्य।

अर्थात् कोई किसी से कहता है कि गाँव से पूर्व की ओर आम के वृक्ष हैं यह सुनकर श्रोता सभी वृक्षों को आम समझने लगता है। इसके पश्चात् फिर उस व्यक्ति से कहता है कि जो दूध वाले, नीचे लटकती जड़ो (अवरोह) वाले और चौड़े पत्ते वाले है वे वट हैं यह सुनकर श्रोता आमों का विचार छोड़ देता है और वरगद के वृक्षों के का विचार करने लगता है। वस्तुतः न आम नष्ट होते है न बरगद उत्पन्न होते है, बोध में परिवर्तन होता है। आम अपनी जगह बरगद अपनी जगह नित्य अवस्थित है। इसी प्रकार अस्तेर्भूः से अस् के स्थान में भू कहने से अस् का विचार छूटकर भू का विचार हो जाता है। बुद्धि में अस् हटता हुआ और भू उपस्थित होता हुआ अनुभव होता है। अस् और भू अपने विषय में नित्य अवस्थित है। न अस् नष्ट होता है और न ही भू उत्पन्न होता है। अतः अस् के विषय में भू बोधान्तर ही स्थान्यादेश भाव है।

वस्तुतः उपकर्ष (हटाना) तथा उपधान (लगाना) यह दोनो बुद्धि के धर्म है ये बुद्धि मे होते हैं, वृक्षों में इनका आरोप हो जाता है इसी प्रकार स्थानी का हटना तथा आदेश का आना बुद्धि में ही होता है शब्दो में इसका आरोप हो जाता है अतएव स्थान्यादेश के कारण शब्द नित्यत्व की अनुपपत्ति नहीं होती।

'स्थानिवदादेशाऽनल्विधौ' सूत्र में कार्य विपरिणामाद्वा सिद्धम्' वार्तिक द्वारा यह सिद्धान्त स्थापित किया गया है। व्याकरण दर्शन में यह सिद्धान्त 'बुद्धि-विपरिणामा वाद' कहा जाता है।

स्थानिवद सूत्र के समान ही कई ऐसे सूत्र है जो आदेश विधान तो नही करते पर आदेशों से सम्बन्धित नियम अतिदेश, संज्ञाए, परिभाषाएँ इत्यादि करते है। यहाँ इनका संक्षिप्त विवेचन करना उचित होगा।

इको गुणवृद्धी 1.1.3- इस परिभाषा का अर्थ है जहाँ (जिस सूत्र में) गुण एवं वृद्धि शब्द से गुण एवं वृद्धि का विधान हो वहाँ षष्ठयन्त पद 'इकः' उपस्थित हो।

इस सूत्र के फलस्वरूप 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र द्वारा इगन्त अङ्ग को गुण हो पाता है। इस सूत्र में इसके पूर्वके सूत्रों से अङ्गस्य एवं गुण की अनुवृत्ति हो रही है और आलोच्य परिभाषा द्वारा इकः इस पद की उपस्थिति होती है और इस सूत्र का अर्थ होगा 'इगन्त, अङ्ग को गुण हो सार्वधातुक आर्धधातुक प्रत्यय परे हो तो । अचश्च सूत्र का अर्थ है हृस्य दीर्घ एवं प्लुत शब्दों का प्रयोग कर जहाँ कुछ विधान हो वहाँ 'अचः' इस षष्ठयन्त शब्द की उपस्थिति हो।

इस सूत्र के बल से 'श्रीपम्' जैसे प्रयोगो में पा के अन्त्य अच् को ह्रस्व हो पाता है। इस प्रयोग में 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' सूत्र द्वारा प्रातिपादिक को ह्रस्व विधान हुआ है और इस परिभाषा द्वारा 'षष्ठयन्तअचः' पद की उपस्थिति होती है और 'ह्रस्वोनपुंसके' सूत्र में इस पद का अन्वय हो जाता है और अजन्त प्रातिपादिक को नपुंसक में ह्रस्व हो ऐसा अर्थ फलित होता है।

जहाँ गुण, वृद्धि तथा ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत का प्रयोग कर किसी कार्य का विधान हो वही इन परिभाषाओं 'इको गुणवृद्धी' तथा 'अचश्च' की उपस्थिति होती है। इससे 'वृद्रधीर्यस्यामचामादिर्तद् वृद्धम्' इत्यादि में 'इकः' की उपस्थिति नहीं होती क्योंकि वृद्धि शब्द यहाँ विधीयमान स्वरूप का नहीं है। इस सूत्र में वृद्ध संज्ञक शब्द के अर्थ के निरूपण के क्रम में वृद्धि शब्द प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार 'प्यदादीनाम' तथा 'दिवउत्' में विधीयमान अकार एवं उकार भी गुण, वृद्धि या ह्रस्व दीर्घ प्लुत शब्दों का प्रयोग कर विहित नहीं हु ए है अतः क्रमशः 'इकः' एवं 'अचः' पद इन सूत्रों के विषय में उपस्थित नहीं हो सकेंगे। वस्तुतः इन सूत्रों द्वारा इक् ही गुण एवं वृद्धि का स्थानी हो तथा ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत इत्यादि के स्थानी अच् ही हों नियम किया गया है।

इग्यणः सम्प्रसारणम् 1.1.45 यह संज्ञा सूत्र है। सूत्रार्थ है- यण् के स्थान पर प्रयुज्यमान जो इक् वह संप्रसारणसंज्ञक हो। इससे 'ष्यङः सम्प्रसारण पुत्रपत्यो - स्तत्परूषे' इत्यादि सूत्रों द्वारा ष्यङः के यकार को संप्रसारणसंज्ञक इक हो जाता है। तथा 'सम्प्रसारणच्च' सूत्र के द्वारा प्रसारण एवं संप्रसारण से परे जो अच् उनके स्थान में पूर्वरूप एकादेश हो जाता है। ष्यङः सम्प्रसारणं सूत्र में सम्प्रसारण का अर्थ 'यण् के स्थान पर इक् होना' लगाया जाता है तथा 'सम्प्रसारणाच्च सूत्र में सम्प्रसारण का अर्थ 'इक् जो यण् के स्थान पर हो चुका हो लगाया जाता है। सम्प्रसारणसंज्ञा के फलस्वरूप यण् के स्थान में इक् हुआ और द्वितीय मे यण् के स्थान में हो जाने के कारण सम्प्रसारण संज्ञा हुई। इस प्रकार यहाँ 'अन्योन्याश्रय' दोष की आपत्ति आ पड़ती है।

आचार्य ने दोनों अर्थों का आश्रयण कर सूत्रोंपदेश किया है अतएव उभयपक्ष आश्रयणीय है- 'विभक्तिविशेषनिर्देशस्तु ज्ञापक उभय संज्ञात्वस्य।

भाष्यकार ने इस दोष का कारण भावीसंज्ञा मानकर किया है। इनके अनुसार संप्रसारणविद्यायक सूत्रो का ऐसा अभिप्राय समझाना चाहिए कि जिस इक् की यण् के स्थान में होने पर आगे चलकर संप्रसारण संज्ञा होगी वह इक् आदेश हो ऐसा अभिप्राय निकालने पर अन्योन्याश्रय दोष नहीं होगा। भावी

संज्ञा का आश्रय लोक मे भी बहुत होता है यथा- 'अस्य सूत्रस्य शाटकं तय इस वाक्य में भी पूर्व प्रकार से अन्योन्याश्रय दोष है। इस दोष का निराकरण भावीसंज्ञा मान लेने से हो जाता है। तथाहि- यदि साड़ी है तब उसको क्या बुनना? और यदि अभी बुनना तो उसे साड़ी केसे कहा जा सकता है। साड़ी तो बुनने के बाद ही कहा जाएगा। इस दशा में इस वाक्य में भावीसंज्ञा का आश्रय लेकर यह अभिप्राय निकाला जाता है कि इस सूत्र से वह वस्तु बनी जो बुने जाने पर साड़ी कहलाएगा।

सम्प्रसारण संज्ञा किए बिना भी यण् को इक् विहित किया जा सकता है। किन्तु सम्प्रसारण संज्ञा करने से विशेष प्रयोजन सिद्ध होता है। जब ऐसे इक् को कोई कार्य कहना हो जो यण् के स्थान पर आदेश हुआ हो अन्य उक् को नहीं तो यह संज्ञा उपयोगी सिद्ध होती है इसीलिए यण् के स्थान पर हुए इक् आदेश की संप्रसारण संज्ञा की गई।

एच इग्घ्रस्वादेशे 1.1.48 :- यह सूत्र ह्रस्व आदेश के विषय में यह नियम बनाता है कि जब एचो को ह्रस्व आदेश विहित किया जाए तो इनके स्थान पर इक् वर्ण ही आदेश हो इस प्रकार ए के स्थान पर इ ऐ के स्थान पर इ, ओ के स्थान पर उ, ओ के स्थान पर उ आदेश ही होंगे यदि ए, ऐ, ओ, औ, को ह्रस्व आदेश विहित किया जाए तो।

षष्ठी स्थानेयोगा 1.1.49 :- इस सूत्र का अर्थ है जिस षष्ठी का किसी विशेष सम्बन्ध में प्रयुक्त होना निर्धारित न हो उसे स्थानरूप सम्बन्ध हेतु प्रयुक्त हुई समझना चाहिए- 'अनिर्धारित सम्बन्धविशेषा षष्ठी स्थानेयोगा बोध्या।' वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी, षष्ठी स्थाने योगा सूत्र वृत्ति।

सम्बन्ध कई प्रकार के हैं। जैसे- स्वस्वामिभाव, जन्यजनकभाव, अवयव-अवयविभाव इत्यादि। इन सभी सम्बन्धों में षष्ठी विभक्ति आती है। शब्द का शब्द के साथ तीन प्रकार का सम्बन्ध है- अनन्तर्य, सामीप्य तथा स्थान या प्रसंग।

इनमें प्रसंड्ग रूप सम्बन्ध के लिए ही इस व्याकरण शास्त्र में षष्ठी का प्रयोग हुआ है।

स्थानेऽन्तरतमः 1.1.50 :- इस सूत्र का अर्थ है- एक़ स्थानी के स्थान पर कई आदेशो की प्राप्ति को अवस्था में उन आदेशों में जो स्थानी के सबसे अधिक सदृश हो वह आदेश हो (प्रसड्ग सति सदृशतमः आदेशः स्यात्- सिद्धान्त कौमुदी, अच्सन्धि प्रकरणम् स्थानेऽन्तरतमः- सूत्रवृति।)

सादृश्य चार प्रकार का होता है- स्थानकृत, अर्थकृत, गुणकृत, प्रमाणकृत।

स्थानकृत साम्य का उदाहरण है- दध्यत्र। यहाँ 'इकोयणचि' द्वारा दधि के इक् इकार के स्थान पर यण्, य्, र्, ल्, व्, आदेश प्राप्त होने पर इकार के सादृश स्थान यकार का होने से इ को यकारादेश हुआ। अर्थकृत-कोष्टु। यहाँ तृज्वत्क्रोष्टुः सूत्र द्वारा उकारान्त क्रोष्टुः शब्द को तृजन्त आदेश प्राप्त होने पर क्रोष्टु शब्द ही आदेश हो जाता है। क्योंकि क्रोष्टु का स्थानी क्रोष्टु से अर्थकृत साम्य है। गुणकृत (प्रयत्नकृत) साम्य का उदाहरण है- वाग्धरिः। यहाँ वाक् + हरिः - वाग्हरिः इस दशा में हकार का पूर्व सवर्ण आदेश 'झयो होऽन्यतरस्याम्ः सूत्र से प्राप्त होने पर हकार के स्थान में घो षनादसंवादमहाप्राणप्रयत्नवान् घकारादेश ही होता है। क्योंकि हकार का भी घोषनादसंवार- महाप्राण प्रयत्न है। प्रमाणकृत सादृश्य का उदाहरण है 'अ-दसोऽसेर्वा

सूत्र द्वारा ह्रस्व स्थानी के स्थान पर दीर्घ-ऊकाररेश होगा। उपर्युक्त सूत्र द्वारा एक स्थानी के स्थान पर कई आदेशो की प्राप्ति होने पर सदृशतम् आदेश किया जाए इस प्रकार व्यवस्थित होने पर सूधी + उपास्यः यहाँ इकार को य, व, र, ल में क्या आदेश किया जाए ऐसा सन्देह नहीं रह जाता क्योकि तीनों में यकार ही इकार के सर्वाधिक सदृश है अतः ईकार को यकारादेश हो जाता है और सुध् यु उपास्यः - सुध्युपास्यः ऐसा प्रयोग निष्पन्न होता है।

उपर्युक्त चारों प्रकार के सादृश्य में स्थानकृत सादृश्य सर्वाधिक बलवान होता है। इसी लिए कहा गया है- 'यत्रानेकविधमान्तर्य तत्र स्थानत आन्तर्य बलायः।'

अर्थात जहां कई प्रकार के आन्तर्य प्राप्त हों वहाँ स्थानकृत आन्तर्य बलवान है। स्थानकृत आन्तर्य ही गृहीत हो। इसीलिए चेता, स्तोता में चिञ्, स्तु को गुण प्राप्त होने पर इकार को हकार तथा उकार को ओकार हो जाता है। गुण-संज्ञक वर्ण तीन है अ, ए, ओ। अका स्थान कण्ठ, ए का कण्ठतालु, ओ का कण्ठाष्ठ है। इका स्थान तालु है तथा उ का ओष्ठ। ए तथा उ एवं ओ के स्थान सदृश हो अतएवं इ, उ के स्थान पर अकार न हो कर क्रमशः ए, ओ आदेश हुए। यहाँ अकार का भी इकार उकार के साथ प्रमाणकृत सादृश्य है किन्तु स्थानकृत सादृश्य न होने से अकारादेश नहीं हो सका।

उरण् रपरः (1.1.51) :- इस सूत्र का अर्थ है- ऋ के स्थान में जो अण् आदेश हो वह रपर ही प्रवृत्त हो। अर्थात् ऋ की विहित अकारादेश रपर होकर अर् इस रूप में आदेश हो, इकारादेश, इर्, उकारादेश, उर, अकारादेश आर् रूप में आदेश हों।

इससे कृष्ण + ऋद्धिः, इस अवस्था में 'आद्रगुणः' सू द्वारा प्राप्त गुण एकादेश - अकारादेश

रपर होकर 'अर्' इस रूप में प्रवृत्त हागा- कृष्ण आर् द्धि - कृष्णर्द्धिः; कृ य (ण्यत्) में वृद्धि प्राप्त होने पर क् आर् य - कार्य्य स् अम् - कार्य्यम्, कृ तव्य में गुण प्राप्त होने पर क् अर् तव्य - कर्त्तव्य आदि में अण् कार्य रपर होकर प्रवृत्त हुआ।

अलोऽत्यस्य 1.1.52 :- इस सूत्र का अर्थ है षष्ठ् यन्त का उच्चारण कर जहाँ आदेश विधान किया गया हो वहाँ षष्ठ्यन्त निर्दिष्ट के अन्त्य वर्ण को आदेश हो। उदाहरणार्थ- 'त्वदादीनामः' सूत्र द्वारा त्यादादिगणपठित शब्दों को अकारादेश विहित हुआ है। यहाँ 'त्यद्दीनाम्' इस षष्ठ्यन्त उच्चरित शब्द के द्वारा निर्दिष्ट त्यद्, तद्, यद् आदि अङ्गों के अन्त्य अवयव को ही यह आदेश होगा ऐसा 'अलोङत्यस्य सूत्र द्वारा सुस्थिर होता है। इसी प्रकार सूत्र द्वारा इकोयणचि में इकः इस षष्ठ्यन्त पद के द्वारा निर्दिष्ट सुधी + उपास्यः के ईकार को ही यणादेश होगा। इसी प्रकार 'संयोगान्तस्य लोपः' सूत्र द्वारा विहित लोप 'अलोऽन्त्यस्य' परिभाषा के बल से संयोगान्त पद के अन्त्य का ही हो ऐसा नियम बनाता है। इसी लिए बालमनोरमा टीकाकार वासुदेव दीक्षित ने- 'स्थाने बिधीयमान आदेशः षष्ठीनिर्दिष्टस्य यः अन्त्यः अल् तस्य स्यादित्यर्थः' ऐसा सूत्रार्थ किया है।

ङिच्च 1.1.53 :- यह परिभाषा आदेशों के विषय में ऐसा नियम बनाती है कि जो आदेश ङित् विहित किये गये हो वे अनेकाल् होते हुए भी स्थानी के अन्त्य वर्ण को ही सम्पूर्ण शब्द को नहीं।

अनेकाल्शित्सर्वस्य सूत्र द्वारा अनेकाल् आदेश सम्पूर्ण शब्द के स्थान पर विहित होगें किन्तु सभी अनेकाल् आदेश सर्वदिश हो जाएगे तो अभीष्ट सिद्धि न हो सकेगी अतएव जो अनेकाल् आदेश अन्त्य के स्थान पर हो उनमें ङ कार अनुबन्ध जोड़कार अन्तादेश के प्रकरण में 'ङिच्च' सूत्रपाठ कर दिया गया।

इस प्रकार 'अलोऽन्त्यस्य' एवं 'ङिच्च' द्वारा स्थानी के अन्त्य वर्ण को आदेश हो यह नियम हुआ।

आदेः परस्य 1.1.54 :- इस परिभाषा सूत्र द्वारा आदेश के विषय में यह नियम बना कि पर पद को विहित जो कार्य वह पर के आदि वर्ण के स्थान में करना चाहिए। परस्य यद् विहितं तत् तस्यादेर्बोध्यम्!- सिद्धान्त कौमुदी। इससे 'द्वयन्तरूपसर्गेभ्योऽप ईत्' द्वारा द्वि अप्, अन्तर, अप् इनमें अप् को ईकारादेश प्राप्त होने पर ईकार अकार को हो या पकार को इस प्रकार का सन्देह उठने पर आलोच्य परिभाषा द्वारा यह स्थिर होता है कि पर को विहित आदेश उसके अद्यावयव के स्थान पर होगा, और

तब अकार को ईकारादेश हो द्वि, ईपू, अन्तर ईप, द्वीप, अन्तरीप आदि शब्द बने।

यह सूत्र 'आलोऽन्त्यस्य' का अपवाद है।

अनेकाल्शित् सर्वस्य 1.1.55 :- जिस आदेश में अनेक अल् हों तथा जिसका शकार इत्संज्ञक हो वह सम्पूर्ण स्थानी के स्थान में होता है। यह इस सूत्र का अर्थ है। इससे यह नियम बना कि अनेकाल् आदेश सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर होगा और एकाल् आदेश में इत्संज्ञक शकार अनुबन्ध लगा हो तो वह भी सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर होगा।

यह सूत्र भी 'अलोऽन्त्यस्य' का अपवाद है। पर होने से यह 'आदेःपरस्य' का भी बाधक है। 'अस्तेर्भूः' सूत्र में अस् को भू आदेश विहित है यह आदेश अनेकाल् है अतएव आलोच्च परिभाषा द्वारा सम्पूर्ण अस् के स्थान में होता है। 'इदमइश्' सूत्र द्वारा इदम् के स्थान पर इश् विहित हुआ। इश् शित् है अतएव सम्पूर्ण इदम् के स्थान पर आदेश होता है। 'अतो भिस ऐसः' यहा अकार से परे भिस् को ऐस् आदेश विहित किया गया है। पर को आदेश विहित होने से यहां 'आदेः परस्य' सूत्र की प्राप्ति होता है और भिस् के 'मू' के स्थान पर ऐस् आदेश प्राप्त होता है तब ऐस् के अनेकाल् होने से अनेकाल्शि 'सर्वस्य' सूत्र द्वारा सम्पूर्ण भिस को ऐस आदेश प्राप्त होता है। यहाँ परत्वात् 'अनेकाल्शित्सर्वस्य' 'आदेःपरस्य को बाध लेगा और भिस् के स्थान पर ऐस् सर्वदिश् हो जाएगा इसी प्रकार 'अष्टाभ्यः औश्' सूत्र विहित जस्, शस्, के स्थान पर औश्, आदेश, भी सम्पूर्ण जस्, शस के स्थान पर होता है जस्, शस् के आदि अकार के स्थान पर नहीं।

इस परिभाषा सूत्र में शित्ग्रहण रूप ज्ञापक से एक परिभाषा सिद्ध की गई है- नानुबन्धकृतमनेकाल्त्वम्' अर्थात्- अनुबन्धकृत अनेकाकाल्त्व नहीं होता। यदि ऐसा न होता तो इश् अश् इत्यादि अनेकाल् होने से ही सर्वदिश प्राप्त था सूत्र में 'शित्' कहने की कोई आवश्यकता न थी किन्तु आचार्य ने 'शित्' ग्रहण किया जो यह ज्ञापित करता है कि अनुबन्ध के कारण आदेश अनेकाल् नहीं माना जाता। शित्वात् सवदिश का उदाहरण काशिका कार सर्वे, कुण्डानि इत्यादि देते हैं, दूसरी ओर सिद्धान्त कौमुदी कार सर्वे शब्द की सिद्धि की व्याख्या करते हुए कहते है- 'अनेकाल्त्वात् सवदिशः।'

अर्थात् 'जसःशी' सूत्र विहित 'शी' आदेश अनेकाल् होने से सम्पूर्ण जस् के स्थान पर हुआ। उद्योतकार नागेश का कहना है कि नानुबनधकृतमनेकाल्त्वं परि भाषा मान लेने पर 'जसःशीं' आदि में शित्वात् सर्वदिश मानना चाहिए। इस प्रकार शि एवं शी आदेश अनेकाल होने से सवदिश होगे या शित्

होने से इस विषय में वैयाकरणों में मत भेद है।

यहाँ शकार अनुबन्धवाले आदेशों एवं शकार की इत्संज्ञा करने वाले सूत्रों का अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वस्तुतः सिद्धान्तकौमुदीकार का मत ही उचित हैं यह शकार अनुबन्ध आदेशों का आद्यवयव भी है यथा- शि, शी तथा अन्त्य अवयव भी यथा- इश्, अश्, औश्। 'हलन्त्यम्' सूत्र द्वारा उपदेश में अन्त्य हल की इत्संज्ञा होती है। आदेश भी उपदेश है। धातु-सूत्र - गणोणादि - वाक्य लिंगानुशासनम्। आगम - प्रत्ययादेशाः उपदेशाः प्रकीर्तिता - महाभाष्य।

और शकार हल् है अतः इस सूत्र के द्वारा आदेश के अन्त्य शकार की इत्संज्ञा हो जाती है। अब आदेशों के आदि शकार को लेते है। ऐसा कोई सूत्र नही जो आदेश के आदि अवयवभूत शकार की इत्संज्ञा करता हो। प्रत्यय (तद्धित भिन्न प्रत्यय) के आदि शकार की इत्संज्ञा। सू0 'लशक्वतद्धिते' द्वारा प्रत्यय के आदि शकार की इत्संज्ञा होती है।

विषयक शास्त्र अवश्य हे किन्तु आदेश प्रत्यय तो है नहीं प्रत्यय तो यह तब होगा जब किसी प्रत्यय के स्थान पर आदेश कर दिया जाए और स्थानिवद्भाव से प्रत्यय रूप बन जाए। अतएव शि, शी आदेश वस्तुतः शित् हैं ही नहीं क्योंकि इनके शकार की इत्संज्ञ सिद्ध नहीं है कि इनको शित् मानकर सर्वदिश करने की सोचे। इस दशा में इनका सर्वदिश अनेकाल्त्वेन होता है यही माननो उचित है। इस स्थिति में उद्योतकार नागेश का यह कथन कि 'नानुबन्धकृतमनेकाल्त्वम्' परिभाषा ज्ञापित हो जाने के बाद 'जसःशी' मे शित्वात् सवदिश मानना चाहिए ठीक नहीं लगता क्योकि 'शी' आदेश में शकार के इत्संज्ञा के योग्य न होने से इसका अनुबन्ध होना ही उपपन्न नहीं है तो इसे शित् कहेंगे कैसे? जब इसे शित्व प्राप्त होगा उसके पहले ही इसका सवदिश करना पड़ेगा और यह सवदिश अनेकाल्त्वेन ही हो सकेगा। अश्, इण, इत्यादि का तो शित्वेन ही सवदिश होगा अनेकाल्त्वेन नहीं। कारण यह है कि 'हलन्त्यम्' द्वारा इनकी इत्संज्ञा इन्हे उपदेश काल से ही अर्थात् आदेश किये जाने के पहले ही प्राप्त हो जाती है। अतः इनका शित् होना स्पष्ट है।

नागेश के अनुसार शी, शि इत्यादि का 'नानुबन्धकृतमनेकाल्त्वम् के ज्ञापित होने के बाद शित् होने से सवदिश होना स्वीकार करने पर एक और कठिनाई उत्पन्न होती है। डा, णल् आदि आदेश भी तब एकाल् ही होगे 'अर्वणस्त्रसावनञः द्वारा विहित तृ में जिस प्रकार अनुबन्ध कृत अनेकालत्व न होने से तृ (तृ) त - अनुबन्ध लोप होकर) का अन्तादेश होता है उसी प्रकार डा, णल् आदेश भी एकाल् होने

से अन्त्य के स्थान पर होने लगेंगे सम्पूर्ण प्रत्यय के स्थान पर नहीं। डा, णलू आदेश में तो ऐस कोई लिंग नहीं (जैसे शी, शि में है) जिसके आधार पर सवदिश हो सके। इस दशा में डा, णलू, सवदिश तभी होंगे जब इन्हे अनेकालू माने। सवदिश होने के बाद इनकी प्रत्यय संज्ञा होगी और ड, ण, इत्यादि 'चुटू' सूत्र से इत्संज्ञक हो सकेगे तथा अनुबन्ध लोप हो जाएगा। अतएव इन्हे अनेकाल मानकर ही इनका सवदिश होना चहिए।

भाष्यकार के अनुसार शि, शी के शित्करण का अन्य प्रयोजन है वह है- 'सर्वनामसथानमू', 'विभाषाड़िश्योः' इन सूत्रों में शि, शी शब्दों को ग्रहण हो सके। अतः 'इदमू इशू' अष्टाभ्यः औशू की तरह इनका शित्करण भी सवदिश प्रयोजन के सिद्ध्यर्थ ही है। अन्यथा शित्करण व्यर्थ होगा ऐसा नहीं कहा जा सकता।

स्थानिवदादेशोऽनल्विधो 1.1.56 :- यह अतिदेश सूत्र है। इस सूत्र द्वारा आदेश को स्थानिवद् भाव का अतिदेश होता है। सूत्र का अर्थ है- आदेश स्थानी के समान हो (स्थानिधमक हो) किन्तु स्थानी सम्बन्धी अलावयावधि मे न हो।

राम ड़े - इस दशा में 'डेर्यः' सूत्र से ड़ि को य आदेश हो गया राम या अब 'सुपि च' अदन्त अंग को दीर्घ करना है। किन्तु 'य' आदेश सुपू प्रत्यय तो है नहीं अतः दीर्घ कैसे हो इस विषय में प्रकृत सूत्र सुपू 'ड़े' के स्थान पर हुए 'य' को स्थानिवद्भाव से 'ड़े' के धर्म सुप्त्व की प्राप्ति कराता है और स्थानिवद्भाव से सुपू होकर य भी अपने अदन्त अङ् ग को दीर्घत्व प्राप्त कराता है- रामाय-रामाय इस प्रकार शब्द सिद्ध होता है। 'अनल्विधौ' का तात्पर्य यह है कि अलाश्रय विधि में स्थानिवद्भाव नहीं होता। अलू प्रत्याहार में सभी वर्ण आ जाते है। अतएव स्थानी सम्बन्धी वर्णाश्रय विधि को करने में स्थानिवद्भाव नहीं होता। उदा0-

व्यूढोरस्केन यहाँ सकार विसर्ग के स्थान में हुआ है। विसर्ग अटू है। जिस प्रकार विसर्ग के अटू होने से उसके व्यवधान में 'अटकुत्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' से नकार को उरः केण आदि स्थल में णत्व हुआ है उसी प्रकार विसर्गस्थानिक सकार में भी स्थानी का धर्म अटूत्व लाकर उसके व्यवधान में भी णकार की प्राप्ति होती है परन्तु ऐसा नहीं होता क्योंकि णत्वविधि में 'अड्व्यवाय' रूप से विसर्ग रूप एक वर्ण का आश्रयण किया गया है अतः इस प्रसंग में णत्वविधि स्थानी सम्बन्धी अलाश्रयविधि है।

जिसमें स्थानिवद्भाव नहीं होता। इसी प्रकार 'दिवू औतू' सूत्र से अकार के स्थान पर ओकार

आदेश होकर दि और स् (सु) इस दशा में 'इकोयणचि' से यण हो झ द्यौ स् ऐसा रूप बना, अब औकार को स्थानिष्द्भाव से स्थानी वकार का धर्म हल्त्व लाने पर 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्' सूत्र से सकार का लोप प्राप्त होता है पर 'हल्ङ् यादि विधि' में हल् वकार रूपी एक वर्ण के आश्रयण से यह अल् विधि है अतः यहाँ 'स्थानिवद्भावातिदेश' संभव नहीं अतः सकार लोप नहीं होता। इस प्रकार अभीष्ट 'धौः' शब्द सिद्ध हो जाता है।

इस सूत्र में भाष्यकार ने एक बहुत उपयोगी परिभाषा को स्वीकार किय है परिभाषा है- 'एकदेशविकृतमनन्य वद्भवति' शब्द के एक देश में आदेश होने से भी शब्द को वही शब्द मानकर कार्य सम्भव हो जाता है। जिस प्रकार अस् को भू आदेश हो जाने पर प्रकृति बदल जाती है उसी प्रकार लोट् मे ति के एकादेश इकार को उकार आदेश हो जाने पर तु को अन्य शब्द समझना चाहिए ति नहीं ऐसा विचार ठीक नहीं क्योंकि एकदेशविकृत शब्द अन्य शब्द जैसा नहीं हो जाता। जिस प्रकार कुत्ते की पूँछ कट जाए तो वह घोड़ा या गधा नहीं बन जाता कुत्ते ही रह जाता है। उसी प्रकार ति के (तिप्) एकदेश में विकार होने पर अर्थात् तु होने पर भी वह तिङ् तिप ही माना जाएगा। इससे भवतु भवन्तु भी पद संज्ञक होंगे।

'एकदेशविंकृत' परिभाषा मानने पर शब्दानित्यत्व दोष उठ खड़ा हुआ और वैयाकरणों द्वारा मान्य सिद्धान्त 'शब्द नित्य है' अनुपपन्न होने लगा जिसके परिहार के लिए बुद्धि विपरिणामवाद का आश्रयण किया गया इस सिद्धान्त द्वारा यह निरूपित किया गया कि बुद्धि का परिवर्तन मात्र ही स्थानी आदेशभाव है। शब्द उसी प्रकार व्यवस्थित रहते हैं हमारी बुद्धि ही स्थानी या आदेशरूप से परिवर्तित होती है।

अचः परस्मिन पूर्वविद्यौ (1.1.57) :- स्थानिवदादेशो, सूत्र स्थानी सम्बन्धी अलाश्रय विधि में स्थानिषद्भाव का निषेध करता है। प्रकृत सूत्र स्थानी सम्बन्धी अलाश्रयविधि में भी स्थानिवद्भाव का अतिदेश करता है। सूत्र का अर्थ है- पर निमित्त मानकर हुआ जो अच् के स्थान में आदेश, वह पूर्व को कार्य करने में स्थानिवद् होता है। (अजादेशः परिनिमित्तकः पूर्वस्य विधि प्रति स्थानिवद् भवति। अचः परस्मिन सूत्रभाष्य महाभाष्य)

उदाहरण- 'वव्रश्च' इस उदाहरण में व्रश्च से लिट् तिप् णल् द्वित्व, अभ्यास को सम्प्रसारण हो, पूर्व रूप हो वृ व्रश्च ऐसी दशा हुई। अभ्यास के ऋकार को 'उरत्' सूत्र से अत्, रपर्, हलादिशेष हो

व व्रश्च बना अभ्यास के वकार को सम्प्रसारण प्राप्त होने पर वकारोत्तरवर्ती अकार को स्थानिवद्भाव से ऋकार- सम्प्रसारण मानकर 'न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम्' सूत्र से सम्प्रसारण का निषेध हो जाता है।

न पदान्त द्विर्वचनवरेयलोप स्वर सवर्णानुस्वारदीर्घजश्चर्विधिषु (1.1.58) :- यह सूत्र अल् विधि में स्थानिवद् भाव के अतिदेश के निषेध के सम्बन्ध में है। सूत्रार्थ है- पदान्त कार्य में, द्विर्वचनकार्य में (द्वित्त्व) वरच् प्रत्यय परे रहते, यलोप, स्वर, सवर्ण, अनुस्वर, दीर्घ, जश् चर् आदि करने में पर निमित्तक आजादेश स्थान्वित् नहीं होता।

द्विर्वचनेऽचि - 1.1.59 :- इस सूत्र के अर्थ में पांच पक्ष संभव है। द्रष्टव्य व्याकरण महाभाष्य प्रथम नवाह्नि नक, हिन्दी व्याकरणकार चारूदेव शास्त्री।

1. अच् परे रहते हुआ जो अच् के स्थान में आदेश वह द्वित्व करने में स्थानिवत् होता है।
2. अजादि प्रत्यय परे रहते हुआ जो अच् के स्थान में आदेश वह द्वित्त्व करने में स्थानिवत् होता है।
3. द्वित्त्व निमित्तक अच् पर रहते हुआ जो अच् के स्थान वह स्थानिवत् होता है।
4. द्वित्वनिमित्तक अच् परे रहते अच् के स्थान में आदेश का निषेध होता है। अर्थात् आदेश नहीं होता।
5. द्वित्वनिमित्तक अच् परे रहते हुआ जो अच् के स्थान में आदेश वह द्वित्त्व करने में ही स्थनिवत् होता हे उसके बाद नहीं या द्वित्वनिमित्तक अच् परे रहते द्वित्व करने तक ही अच् के स्थान में आदेश नहीं होता। उसके बाद हो जाता है। इनमें पॉचवा पक्ष ही निर्दोष होने स्वीकार किया गया है।

द्रष्टव्य- 'द्विर्वचने' सूत्रभाष्य, महाभाष्य।

यह सूत्र द्वित्व के सम्बन्ध में स्थानिवद्भाव के लिए नियम बनाता है। इस सूत्र से विधीयमान अतिदेश कार्यातिदेश नहीं अपितु रूपातिदेश है ऐसा अज्ग्रहण तु ज्ञापक रूपस्थानिवद्भावस्य इस वार्तिक द्वारा स्पष्ट है।

तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य 1.1.66 :- इस सूत्र का अर्थ है सप्तभ्यन्त पद का उच्चारण कर जिस कार्य का विधान किया जाता है, वह कार्य वर्णान्तर से अत्यवहित व्यवधानरहित पूर्व वर्ण के स्थान में होता है। इससे यह निर्धारित हुआ कि आदेश विधायक सूत्रों में जो सप्तम्यन्त पद होगा उससे अत्यवहित पूर्व के स्थान में आदेश होगा। यथा- 'इकोयणचि' इस सूत्र में 'अचि' यह सप्तम्यन्त है

अतः अच् से अत्यवहित पूर्व जो इक् उसके स्थान में यण् आदेश होगा। इससे सूधी + उपास्यः यहां अच् से अत्यवहित पूर्व इक् उपास्यः के उकार से पूर्व का इकार है अतः इस ईकार को ही यणदेश प्राप्त होता है।

तस्मादित्युत्तरस्य (1.1.67) :- सूत्र में पंचम्यन्त पद का उच्चारण कर जिस कार्य का विधान किया गया हो वह कार्य उस पंचम्यन्त के द्वारा बोधित वर्ण से अव्यवहित परवर्ण के स्थान में हो ऐसा इस सूत्र का अर्थ है। इस सूत्र द्वारा आदेश के लिए ऐसा नियम बना कि आदेश विधायक सूत्र में जो पंचम्यन्त पद हो उसके द्वारा बोध्य वर्ण अथवा पद (उदाहरण प्रयोग आदि में) से व्यवधान रहित पर वर्ण को आदेश होगा। इससे 'उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य' इस सूत्र मे पंचम्यन्त पद उद् से अव्यवहित पर स्थाद्व, स्तम्भ के स्थान में पूर्वसवर्ण होगा। 'आदेः परस्य' के नियम से यह पूर्व सवर्ण सकार को होगा। इससे उद् + स्थानम्, उद् + स्तम्भनम् इत्यादि के सकार को पूर्व दकार का सवर्ण थकारादेश हो गया- उद् थ् थानम्, उद् थ तम्भनम्।

यथासंख्यमनुदेशः समानाम् 1.3.10 :- इस सूत्र का अर्थ समसंबंधी विधि यथासंख्या होती है अर्थात् यदि उद्देश्य तथा प्रतिनिर्देश्य (स्थानी तथा आदेश) की संख्या सामान हो तो वहां पर आदेश क्रम से हो- प्रथम स्थानी को प्रथम आदेश, द्वितीय स्थानी को द्वितीय आदेश इत्यादि। इससे 'एचोऽयवायावः' सूत्र विहित आदेश, अय, अव्, आय, आव् आदि क्रम से ए, ओ, ए, औ इनके स्थान पर होते है।

ये सभी सूत्र आदेश एवं आदेश कार्य के सम्बन्ध मे विभिन्न नियम बनाते हैं। इन नियमों के द्वारा ही हमें यह निश्चय हो पाता है कि आदेश का स्थानी कौन है, आदेश का स्थानी कितना है। किस स्थानी के स्थान पर क्या आदेश हो, स्थानी को प्राप्त कार्य आदेश को भी हो सकता है। इन संज्ञासूत्रों, परिभाषासूत्रों के अतिरिक्त कुछ अन्य संज्ञासूत्र भी आदेशविधि के सम्बन्ध में विशेष महत्वपूर्ण है। क्योंकि आदेश विधायक सूत्रों में इनके द्वारा की गई संज्ञाओं को बहुलता से प्रयोग हुआ है। उदाहरण के लिए गुण हो, वृद्धि हो, सवर्ण हो, टि, उपधा इत्यादि संज्ञाओं का ज्ञान अत्यावश्यक है क्योंकि गुण हो वृद्धि हो, सवर्ण हो, पूर्व सवर्ण हो, परसवर्ण हो, टिके स्थान में आदेश हो, उपधा हृस्व हो इत्यादि प्रकार के आदेश विधान बड़ी संख्या में दृष्ट होते है।

इनमें भी गुण, वृद्धि एवं सवर्ण संज्ञाएं तो ऐसा लगता है मानो आदेश विधि में प्रयोग के लिउ

ही है आदेश विधान में इनका जितना प्रयोग किया गया है उतना अन्य विधि मे नहीं। इनके अतिरिक्त धातु, प्रातिपादिक, प्रत्यय, अङ्ग, प्रगृह्य, पद, अभ्यासादि अष्टाध्यायी में प्राप्त होने वाली जितनी भी संज्ञाए है उनमें से अधिकांशतः आदेश विधायक सूत्रों में प्रयुक्त हुई है। उनका विवेचन करने में विषय अत्यन्त विस्तृत हो जाएगा अतः कुछ ऐसी संज्ञाओं एवं परिभाषाओं का भी यहाँ विवेचन किया गया जो आदेशविधि में अत्यन्त उपकारक है। यह अध्याय परिचयात्मक प्रकृति का है। इसमें आदेश शब्द की व्युत्पत्ति, उसके अर्थ, आदेश सूत्र का अर्थ, आदेश के प्रकार, आदेश में जुड़ने वाले अनुबन्ध तथा उनके प्रयोजन इत्यादि का विवेचन किया गया। आदेश स्वरूप को स्पष्ट करने के क्रम में आदेश से सम्बन्धित कुछ प्रमुख सिद्धान्तो एवं सुत्रों का वर्णन करना आवश्यक होने से उन्हे भी इस अध्याय में सम्मिलित किया गया। आदेश की कुछ सजातीय विधियों से इसका साम्य वैषम्य निरूपण भी इसके स्वरूप को स्पष्ट करने का एक प्रयास है। आगे के अध्यायो में आदेश सूत्रों का विवेचन करना है। इस समीक्षात्मक विवेचन को प्रस्तुत करने के पूर्व इसी अध्याय में अष्टाध्यायी में उपदिष्ट आदेशो का अष्टाध्यायी के अध्याय पादक्रमानुसार संक्षिप्त विवरण तथा शोध-प्रबन्ध में सुविधापूर्वक विवेचन करने की दृष्टि से किए गये आदेशों में वर्गीकरण को स्पष्ट कर देना आवश्यक है।

अष्टाध्यायी मे हम प्रकरण व्यवस्था नहीं कर सकते। जहाँ प्रथम अध्याय के प्रथम पाद में संज्ञा एवं परिभाषा सम्बन्धी सूत्र उपदिष्ट हुए है वही अष्टम अध्याय में भी संज्ञासूत्र उपलब्ध है। इसी प्रकार अष्टाध्यायी के प्रथम अध्याय से लेकर अष्टम अध्याय तक सभी अध्यायो के विभिन्न पदों में आदेश प्रकरण जैसे किसी प्रकरण की व्यवस्था नहीं हो सकती। इतना अवश्य है कि किसी अध्याय के किसी पद में आदेश विधायक सूत्र बहुत है किसी में कम है तो किसी में एक भी नहीं है। यदि इन सूत्रों का सूक्ष्म अध्ययन किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि क्यों सभी आदेश सूत्र एक ही अध्याय में नहीं रखे गये और भिन्न-2 अध्यायों के भिन्न-2 पादों सन्निविष्ट किए गये। वस्तुतः विभिन्न अध्यायों के भिन्न-2 पादों में उपदिष्ट आदेशसूत्रों की कुछ अपनी विशेषताएँ है। जिनके कारणवश इनको इस प्रकार भिन्न-2 अध्यायों के भिन्न-2 पादों में रखा गया। उदाहरण के लिए द्वितीय एवं षष्ठ अध्यायों में आर्धधातुक विषयक धात्वादेश उपदिष्ट हुए हैं। इनका एकत्र उपदेश क्यों नहीं किया गया इसका उत्तर यह है कि 'षष्ठाध्यायगत आर्धधातुकीय' सूत्रों द्वारा निर्दिष्ट कार्य के लिए यह आवश्यक है। कि 'आर्धधातुक प्रत्यय वस्तुतः अंङ्ग के पर में उपस्थित रहें। क्योंकि इस अध्याय के आर्धधातुके 6.4.46

(आर्धधातुकें)।

सूत्र में जो सप्तमी है,वह पर सप्तमी है। द्वितीय अध्याय में जो आर्ध धातु के 2.4.34 सूत्र है वह विषय सप्तमी है। अर्थात् इस अध्याय में जो कार्य विहित हुए है। उनके लिए यह आवश्यक नहीं कि अङ्ग से परे आर्धधातुक प्रत्यय विद्यमान ही हो। भविष्य में आर्धधातुक प्रत्ययों के आने का विषय होने में भी ये आदेश होते हैं। इनमें इसी भेद या वैशिष्ट्य के कारण इनका एकत्र उपदेश नहीं किया गया। अष्टाध्यायी के प्रथम से लकर अष्टम अध्याय तक उपन्यस्त आदेश सूत्रों का अष्टाध्यायी के अध्याय-पाद-क्रमानुसार संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है -

प्रथम अध्याय :- इस अध्याय के प्रथम पाद में आदेश विषयि संज्ञाएँ तथा परिभाषाएँ उपदिष्ट हुई है। 'इकोगुणवृद्धी' षष्ठी स्थानेयोगा, 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य;'तस्मादित्युत्तरस्य 'अलोऽन्त्यस्य', 'आदेः परस्य, 'अनेकाल्शित्सर्वस्य, 'ङिच्च' 'इग्यणः सम्प्रसारणम्' इत्यादि सूत्रों का आदेश क्रिया में बड़ा महत्व है। वृद्धि, गुण, उपधा, सवर्ण इत्यादि आदेश के लिए अत्यन्त उपयोगी संज्ञाएँ प्रथम अध्याय के प्रथम पाद में ही सनिविष्ट हुई है। प्रथम अध्याय के प्रथम पाद में ही अष्टाध्यायी का एवं इस अध्याय का प्रथम आदेश- विधायक सूत्र उञः ऊँ: 1.1.17-18 उपदिष्ट हुआ है। इस अध्याय के शेष तीन पादों में कोई आदेश विधायक सूत्र नही प्राप्त होता।

द्वितीय अध्याय :- इस अध्याय के प्रथम तीन पादों में आदेश विधायक सूत्र नहीं मिलते। चतुर्थ पाद में कुल 29 सूत्र है जो आदेशों का विधान करते है। इनमें 'इदमोऽन्वा' 'एतदस्त्रतसो' तथा 'द्वितीयाटौस्स्वेनः' - ये तीन सूत्र अन्वादेश विषय में आदेश विधान करते हैं पाणिनी ने अन्वादेश को विशेष पद की तरह पढ़ा है। क्योंकि अन्वादेशजन्य पद राम आदि पद सामान्य की तरह नहीं है। अन्वादेश जन्य पद का अर्थ अन्य-पदार्थ सापेक्ष है जबकि रामादि का अर्थ त्वप्रतिष्ठ है। समास के समान (एकाधिक बोध से सम्पृक्त होने के कारण) अन्वादेश भी एक विशिष्ट पद हैं (क्योंकि बोधान्तर सापेक्ष है)। इसीलिए द्वितीय अध्याय में समास, कारकादि सम्बन्धी सूत्रोपदेश के बाद इसका भी पाठ कर दिया गया। अन्वादेश विषयक आदेश विधान के बाद 'आर्धधातु के इस सूत्र के अधिकार में आर्धधातुक विषय में धातु प्रकृति के स्थान पर होने वाले आदेशो के विधायक सूत्र उपन्यस्त हुए हैं। इस अर्धधातुक विषय में प्राप्त होने वाले आदेशो की विशेषता यह है कि इनके लिए आर्धधातुक प्रत्यय का परे होने अनिवार्य नहीं अपितु आर्धधातुक विवक्षा में भी (भविष्य में आर्धधातुक प्रत्यय होने की दशा में) ये आदेश धातु प्रकृति को हो

जाते है। इनकी दूसरी विशेषता यह है कि इनमें से अधिकांश आदेश धातु के रूप में भी प्राप्त होते है यथा- अस् को भू, इण् को गा, इङ्, को गाङ्, अज को वा आदि धातु रूप में पठित हुए भी प्राप्त होते हैं। (धातु पाठ में गा, गाङ्, भू, वी, ख्या इत्यादि धातुएँ भी पठित है।

डॉ0 रामशंकर भट्टाचार्य के अनुसार इस प्रकारण का आदेश यथार्थ आदेश नहीं है क्योंकि जितनी धातुएँ आदिष्ट हुई है वे सत् स्वतन्त्र धातु है अन्य अध्यायों के आदेशों में यह बात सर्वतोभाव से घटती नहीं है संभवतः प्रक्रियालाघव हेतु पाणिनी ने दो धातुओं में स्थान्यादेशभाव की कल्पना की है।

इस अध्याय के आदेश विधायक अन्तिम चार सूत्र आर्धधातुक विषय में होने वाले प्रकृत्यादेश से भिन्न है। इनमें 'आगस्त्कौण्डि' सूत्र गोत्रप्रत्ययान्त आगस्त्य, कोण्डिन्य को क्रमशः अगस्ति, कुण्डिनच् आदेश विहित करता है। 'नाव्ययीभावादतोऽम्त्व पञ्चम्याः 2.4.83 सुप् के स्थान पर अम् आदेश तथा 'तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् सू0 भी तृतीया एवं सप्तमी विभक्ति प्रत्यय को बहुलता से अमादेश विहित करता है। इस अध्याय का आदेश विधानपरक अन्तिम सूत्र है। 'लुटः प्रथमस्य डारौरसः' 2.4.85 यह सूत्र आदेश सम्बन्धी है किन्तु तृतीयाअध्याय के प्रत्ययाधिकार में इसलिए नहीं पठित हुआ कि इस अध्याय में पठित होने से यह आदेश प्रतययसंज्ञक होता। इससे 'ड्' की इत्संज्ञा हो जाती तो अनुबन्ध होने से डा का अनेकाल्त्व संभव न होता (नानुबन्धकृतमनेकाल्त्वम्) तब इसका सवदिशत्व सिद्ध न होता और बिना सबदिश किए 'भविता' इत्यादि प्रयोगें की सिद्धि दुष्कर थी अतः प्रक्रिया लाघव हेतु इसे प्रत्ययाधिकार से ठीक पहले द्वितीय अध्याय के चतुर्थ पाद में पढ़ लिया गया।

तृतीय अध्याय :- इस अध्याय में आदेश सूत्रों की प्रचुरता है प्रथम से लेकर चतुर्थ अध्याय तक आदेश सूत्र प्राप्त होते है। यह अध्याय शब्दों की प्रकृति प्रत्ययात्मक विश्लेषण प्रणाली के अन्तर्गत प्रत्ययों के उपदेश से प्रारम्भ हुआ है 'अतएव सम्पूर्ण अध्याय में बड़ी मात्रा में आदेश विधायक सूत्रों का सन्निविष्ट होना स्वभाविक है। इनका पादक्रमानुसार अति संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत है :-

प्रथम पाद :- इस पाद में सर्वप्रथम विकरणों के स्थान पर होने वाले प्रत्ययादेश पठित है उदा0 च्लि को सिच् आदेश, च्लि को चङ् आदेश, च्लि को अङ् आदेश आदि इसके अतिरिक्त हन् को तकार अन्तादेश, खन् को ईकार अन्तादेश इत्यादि विधायक शास्त्र भी इस पाद में सन्निविष्ट हैं।

द्वितीय पाद :- इस पद में लिट् के स्थान पर कानच् क्वसु, लट् के स्थान में शतृ, शानच्, विधायक सूत्र सन्निविष्ट हुए हैं इस पाद में कई निपातन सूत्र भी हैं जिन में आदेश निपातन भी देखा गया है।

तृतीय पाद :- इस पाद के आदेश शब्दों के प्रकृत्यंश को आदेश विधान सम्बन्धी है यथा- हन् को वध, घन, ध आदि। ये आदेश प्रत्यय विशेष के साथ विहित हैं। अतएव तत्तद् प्रत्यय के सन्नियोग में ही होंगे उदा0 'परो धः' सूत्र में परिपूर्वक हन् धातु से करण कारक में अप् प्रत्यय तथा अप् अत्यय के सन्नियोग में हन को 'ध' आदेश होगा।

चतुर्थ पाद :- तृतीय अध्याय के इस पाद में अन्य पादों की तुलना में अधिक आदेश सूत्र है। इस पाद में लादेश विधायक 'तिप्तसृझि' (3.4.78) सूत्र है जो लकारों के स्थानों पर नौ परस्मैपद एवं नौ आत्मनेपद के प्रत्यय विहित करता है। सुप् एवं तिङ् प्रत्ययों में बड़ा भेद है कि सुप तो साक्षात् प्रकृति (प्रातिपादिक) से हो जाते है किन्तु तिङ् धातु प्रकृति से विहित लट्, लिट, लुट् आदि लकारों के स्थान पर आदेश होने वाले प्रत्यय है। इस पाद में क्रियासमभिहार एवं क्रिया समुच्चय में लट् लकार एवं लट् के त् ध्वम् को हि, स्व आदेश विधायक शास्त्र भी उपन्यस्त है। आदेशो सूत्रों का विषय है अष्टादशलादेशों में सम्मिलित आदेशों के स्थान पर विभिन्न लादेश विहित करना। इसमें टित् लकारों के स्थान पर होने वाले आदेश पहले और ङित लकारों के स्थान पर होने वाले आदेश उनसे बाद में कहे गये है।

चतुर्थ अध्याय :- तृतीय अध्याय में धातु, धातु से होने वाले प्रत्यय तथा धातु एवं प्रत्यय के मध्य अनुपतनशील विकरणों से सम्बन्धित ओदश विधान हुआ है। चतुर्थ अध्याय में प्रातिपदिक एवं प्रातिपरिक से होने वाले सुप् तद्धित एंव स्त्रीप्रत्यय का विधान करने वाले शास्त्र उपदिष्ट हुए है। अतएव इस अध्याय के आदेश सूत्र भी एतद् विषयक ही है। इस अध्याय में आदेश विधायक सूत्रों की संख्या अत्यल्प है। प्रथम पाद में कुल 13, द्वितीय पाद में 2 तथा तृतीय पाद में 3 सूत्र है जिनके द्वारा आदेश विहित किएगए हैं। इन आदेश विधयक शास्त्रों में अधिकांश में प्रत्यय एवं आदेश दोनों साथ-2 विहित हुए है।

पंचम अध्याय :- इस अध्याय में छः ढक् यत् आदि तद्धित प्रत्यय आदि स्वार्थिक प्रत्यय तथा समासान्त प्रत्ययों का उपदशे किया गया है। इस अध्याय के आदेश प्रकृतिस्थानिक एवं प्रत्यय स्थानिक दोनों ही प्रकार के है। इस अध्याय के प्रथम पाद में 1 सूत्र, द्वितीय पाद में 4 सूत्र तथा तृतीय पाद में 14 सूत्र तथा चतुर्थ पाद में 17 सूत्र ऐसे है जो आदेश विधान करते है। इस अध्याय में प्रकत्यादेश, प्रत्ययादेश, समासान्त आदेश इत्यादि विहित हुए है इस अध्याय में एक सूत्र है- 'एतदोऽन्' यह सूत्र

काशिकावृत्ति में 'एतदोदश्' रूप में प्राप्त होता है। किन्तु पाणिनिकृत सूत्र 'एतदोऽन्' ही है क्योंकि भाष्य सम्मत हैं। समासान्त प्रत्यय भी स्वार्थिक प्रत्यय है (समासान्ता अपि स्वार्थिकाः - महाभाष्य, ङ्याप्प्रातिपदिकात् सूत्र भाष्य 4.1.1 अतः स्वार्थिक तद्धित प्रत्ययों के साथ इनका भी पाठ हुआ हैं समासान्त प्रत्यय विधान क्रम में समासान्त आदेश भी कहे गये है।

षष्ठाअध्याय :- इस अध्याय में आदेश सूत्रों की संख्या बहुत अधिक है। इस अध्याय में द्वित्व सम्बन्धी शास्त्र तथा सम्प्रसारण, एकादेश, हृस्व, विधान, उपधादीर्घ विधान तथा सामास के पूर्व या उत्तर पद को होने वाले आदेश विधान सम्बन्धी सूत्र उपदिष्ट हुए है।

इस अध्याय में धातु के स्थान पर होने वाले प्रकत आदेश भी पठित हुए है। ये आदेश विधान भिन्न प्रकार के है एवं इनकी संख्या बहुत है। इतः प्रत्येक पाद में प्राप्त होने वाले आदेशों का अतिसंक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है :-

प्रथम पाद :- यह पाद धातुसम्बन्धी अभ्यास द्वित्व निरूपणपूर्वक प्रारम्भ हुआ है। द्वित्त्व के पश्चात् सम्प्रसारण एवं उसके बाद आत्व विधि (आकारादेश विधान) संबन्धी सूत्रोपदेश किया गया है। सूत्रों का क्रम विप्रतिषेध नियम के अनुसार है। इस पाद में 'संहितायाम्' 6.1.72 सूत्र के अधिकार में सन्धिसम्बन्धी वार्ण विकारों का भी उपदेश हुआ है। यथा इक् को यण् ए ओ ऐ, औ, को क्रमशः अय्, अव्, आय्, आव् एकादेश पूर्वसवर्ण, परसवर्ण, पूर्वरूप, वृद्धि, गुण, दीर्घ इत्यादि।

द्वितीय पाद :- इस पाद में आदेश विधायक सूत्र नहीं है।

तृतीय पाद :- इस पाद में समास से सम्बन्धित आदेश विहित है। ये आदेश समास के पूर्वपद को विहित हुए है। कुछ आदेश समास के पूर्वपद के स्थानपर विहित किए गया है। कुछ इसके अन्ताणयव को। जैसे- आजि,, आति, ग आदि उत्तरपद हो और पाद पूर्वपद हो तो पाद को पद आदेश, उत्तरपद परे रहते उषस् शब्द को उषासा आदेश तथा समानाधिकरण एवं जातीय-प्रत्यय परे रहते महत् को आकार अन्तादश, द्वि, अष्टन् को संख्या उत्तरपद रहते आकारादेश इत्यादि। अन्तादेश में हृस्व, दीर्घ, एवं आत्त्व विहित हुए है। इस पाद के कुछ सूत्र प्रत्यय विशेष के परे रहते है प्रकृत्यंश को आदेश विधान करते है किन्तु अधिकांश सूत्र सामासिक-पद-सम्बन्धी आदेश विधान करते है।

चतुर्थ पाद :- इस पाद का प्रथम सूत्र 'अङ्गस्य'। यह अधिकार सूत्र है तथा पादान्त तक इसका अधिकार है अतएव जितने भी कार्य इस पाद के सूत्रों द्वारा सिद्ध होगें वे प्रत्यय पर रहते अंग को

ही होंगे। इस प्रकार इस पाद के आदेश सूत्र अड्ग सम्बन्धी आदेश विधान करते हैं। अड्ग को इकार, आकार, एकार, ईकार, अकार, हृस्व, दीर्घ आदि आदेश या अन्तादेश, उपधा दीर्घ आदि इस पाद के आदेश सूत्रों का विषय है। षष्ठ अध्याय के इस पाद में आदेशसूत्रों की संख्या अन्य विधि विधायक सूत्रों की अपेक्षा बहुत अधिक है। इन सूत्रों द्वारा विधेय आदेश एकाल् प्रकृति के हैं। इस पाद में असिद्धवद्भाव सम्बन्धी एक सूत्र है 'असिद्धवदत्राभात् 6.4.22। इस सूत्र का अधिकार पादान्त तक है। इस सूत्र से पादान्त तक के सूत्र 'आभीयशास्त्र' कहे जाते है। सूत्र का अर्थ है समानाश्रय कार्य करने में अभीय शास्त्र एक दूसरे के प्रति असिद्ध के समान हो जाते है। जैसे- 'जहि'- इस प्रयोग मे हन् से लोट् सम्बन्धी सिप्, शप्, विकरण, शप् का लोप हो, सिप् को हि आदेश हो हन् हि ऐसी स्थिति हुई इस स्थिति में आभीय शास्त्र 'हन्तेर्जः' 6.4.33 से 'हन्' को 'ज' आदेश हो गया जहि। अब परवर्ती आभीय शास्त्र 'अतो हेः' 6.4.105 से आकारान्त 'ज' से परे 'हि' का लोप प्राप्त हुआ। तब असिद्धवत् शास्त्र के द्वारा यह नियम हुआ कि 'अतो हेः' 6.4.105 शास्त्र की दृष्टि में 'हन्तेर्जः' शास्त्र असिद्धवत् हो जाए इससे अकारान्त अड्ग न मिलने से हि लोप की प्राप्ति अवरूद्ध हो गई (यतः लोप विषय में अड्ग 'ज' न होकर हन् ही है।) इस पाद में आर्धधातुके 6.4.46 से पूर्व दो प्रकृत्यादेश विधायक सूत्र है 'शा हौ 6.4.25 तथा हन्तेर्जः' 6.4.36 द्वितीय अध्याय के धातु प्रकृत्यादेश में इनके सम्मिलित न किए जाने के कारण इनमें इस असिद्ध भाव का अतिदेश करना है।

इसी कारणवश द्वितीय अध्याय के अस्तेर्भुः आदि सूत्र भी आभीय प्रकरण में नहीं पढ़े गये अन्यथा अस् को भू आदेश एवं भू को तुगागम् दोनों के अभीय होने से आगम करने मे भू आदेश असिद्ध्वत् होता और भू प्रकृति न रहने से बुगागम न हो पाता फलतः वभूव आदि प्रयोग सिद्ध न हो सकते षष्ठ अध्याय के इसी आभीय प्रकारण में 'आर्धधातुके 6.4.46' सूत्र भी है। यह अधिकार सूत्र है। और पाद समाप्ति पर्यन्त इसका अधिकार है। आभीय प्रकरण सूत्रांक 6.4.22से'न ल्यपि'6.4.69 तक ही है अतएव इसके (सू0 न ल्यपि) के बाद द्वितीय अध्याय के धात्वादेश रखे जा सकते थे किन्तु ऐसा इस लिए नहीं हुआ कि द्वितीय अध्याय के अधिकार सूत्र के अन्तर्गत विहित आदेश आर्धधातुक विषय में या उसकी विवक्षा में होते हैं जबकि इस अध्याय के इस पाद के आदेश आर्धधातुक परे रहते ही होते है जबकि इस अध्याय के इस पाद के आदेश आर्धधातुक पर रहते ही होते है। इस आभीय प्रकरण के परवर्ती आदेश सूत्रों में कुछ सूत्र प्रकृति सम्बन्धी आदेश विधान परक एवं कुछ प्रत्यय सम्बन्धी आदेश विधानपरक भी है।

किन्तु इस पाद के अधिकांश आदेश एकाल् ही है।

सप्तम् अध्याय :- इस अध्याय के आदेश सूत्रों का विषय है प्रत्यय के स्थान पर आदेश विधान, वृद्धि कार्य विधान, अभ्यास सम्बन्धी आदेश विधान तथा हृस्वादि कार्य विधान।

प्रथम पाद :- इस पाद में आरम्भ से 45 वे सूत्र तक 'तप्तनप्तनथनाश्च 7.1.45' प्रात्यय के स्थान पर होने वाले आदेशो का विवरण है। इन आदेशो के स्थानी सुप, तिङ् तद्धित आदि सभी प्रकार के प्रत्यय है। इस पाद में कुछ प्रकृत्यादेश एवं कुछ प्रकृति अथवा अङ् सम्बन्धी वर्णादेश भी कहे गये है।

द्वितीय पाद :- इस पाद में वृद्धि विधायक, आदेश सूत्र, दीर्घादिश विधायक सूत्र, अङ्ग विकार-विधायक सूत्र तथा कुछ प्रत्ययदेश भी प्राप्त होते है।

तृतीय पाद :- इस पाद के अधिकांश आदेश सूत्रो द्वारा विहित आदेश एकाल् प्रकृति के है। पाद में मुख्यतः आदेश विधान भी हुआ है। अन्य विषयें से सम्बन्धित सूत्र कम ही है। वृद्धि, दीर्घ, क वर्ग दिश चवर्गदिश, ह्रस्व, गुण, एकारादेश तथा कुछ प्रकृति एवं कुछ प्रत्यय के स्थान पर आदेश विधायक शास्त्र भी है। इस पाद के आधे से भी अधिक सूत्र आदेशविधायक सूत्र है।

चतुर्थ पाद :- इस पाद में भी आदेश सूत्र की संख्या बहुत अधिक है इनका विषय विकरण को हृस्व विधान, उपधा के स्थान पर हृस्व दीर्घ आदि विधान ऋकारान्त अङ्ग को गुणविधान तथा अभ्यास एवं अङ्ग को सम्बन्धी हृस्व, दीर्घ, गुण, इकार, उकार, विधान। इस पाद में उपदिष्ट अभ्यास विकाराय सूत्रों की यह विशेषता है कि इनमें परस्परबाध्य बाधकभाव नहीं है (अभ्यास विकारेषु बाध्य बाधक भावो नास्ति- परिभाषेन्दुशेखरः 67, परिभाषावृत्ति 99)

संभवतः इसी लिए द्वित्त्व एवं अभ्यास संज्ञा अभ्यस्तसंज्ञा करने के बाद भी षष्ठ अध्याय में इनका समावेश न होकर सप्तम अध्याय के अन्त में किया गया।

अष्टम अध्याय -

इस अध्याय में पदाद्वित्तव, षत्व, णत्व, संहिता सम्बन्धी वार्ण, विकार, रुत्व, विसर्जनीय, सत्यादेश संबंधी सूत्र है। इस अध्याय के अन्तिम तीन पादों में सन्निविष्ट शास्त्र शेष सातों अध्याय एवं अध्याय के प्रथम पाद की दृष्टि में असिद्ध हैं। इस अध्याय में वर्णद्वित्व विधान संबंधी सूत्र भी हैं।

प्रथम पाद

इस पाद का सर्वप्रथम सूत्र पदद्वित्तव सम्बन्धी सूत्र 'सर्वस्य द्वे' है। भाष्यकार के मत में यह

द्वित्तव स्थानेर्द्विवचन है अर्थात् द्वित्वादेश है - ऐसा आदेश जिसमें सम्पूर्ण पद का शब्दतः एवं अर्थतः द्वित्व हो। षष्ठाध्यागत द्वित्व को भाष्यकार द्विस्चारणम् द्विर्वचनम् या द्विः प्रयोगो द्विर्वचनम् कहते हैं। इस दृष्टि से षष्ठाध्यायस्थ द्वित्व आगम की कोटि का सिद्ध होता है। इनके इसी अन्तर के कारण इनका एक स्थान पर उपदेश नहीं किया गया। यह द्वित्व पौनः, पुन्य, नित्यता, वीप्सा आदि विशेष अर्थों का बोधक है जब कि अभ्याय द्वित्व में ऐसा नहीं होता। विशेष अर्थ का बोधक होते हुये भी समास, तद्धितादि के साथ इसे इसलिये नहीं रखा गया क्योंकि 'समर्थः पदविधिः' सम्बन्धी सामर्थ्य इसमें नही। इस सूत्र का अन्वय द्वित्व के विधायक शास्त्र के साथ नहीं क्योंकि द्वित्व सिद्ध पदों का होता है प्रातिपादिक का नहीं। यह विधि प्रकृति प्रत्यय, या इनसे सम्बन्धित कोई कार्य विशेष नहीं है (जैसा कि अभ्यास द्वित्व है) अतः इसका सभी कार्यों का उपदेश करने के बाव असिद्धकाण्ड से पूर्व उपदेश किया गया। इस पाद में अस्मद् एवं युष्मद् प्रकृति को वाम्, नौ, नस्, ते में आदि आवेश विहित हुये हैं।

द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ पाद

इन पादों को 'असिद्ध-काण्ड' नाम से भी जाना जाता है। द्वितीय पाद का प्रथम सूत्र है - 'पूर्वत्रासिद्धम्'। इस सूत्र का अर्थ है सपादसप्ताध्यायी के प्रति त्रिपादीशास्त्र असिद्ध हो तथा त्रिपादी शास्त्रों में भी पूर्व के प्रति परशास्त्र असिद्ध हो। हर इह यहाँ हरे इह < हरय् इह इस दशा में 'लोपः शाकल्यस्य' 8.3.19 से यकार लोप हो गया है और हर के अन्त्य अकार से परे इह से इकार को 'आद्गुणः' 6.1.87 से गुण एकादेश प्राप्त है इस गुण एकादेश विधायक शास्त्र के प्रति लोप शास्त्र असिद्ध है। क्योंकि लोप न हुआ सा है अतः गुण एकादेश नहीं हो पाता।

इस असिद्ध काण्ड में द्वितीय पाद में मतुप् के मकार को वकारादेश, रेफ को लत्वादेश, चवर्ग को कवर्गादेश, जश्त्व, चर्त्व, निष्ठा के तकार को नकार, सकार के स्थान पर रुत्व, उपधा दीर्घ इत्यादि से संबंधित सूत्र हैं। तृतीय पाद में रुत्व, विसर्जनीय, विसर्ग के स्थान पर सकारादेश, सकार को षत्वादेश इत्यादि विधायक शास्त्र प्राप्त होते हैं। चतुर्थ पाद में नकार को णत्वादेश, जश्त्व, चर्त्व, पूर्वसवर्ण, परसवर्ण आदि विधायक शास्त्र उपदिष्ट हुये हैं।

असिद्धकाण्ड के सभी आदेश सूत्र प्रायः एकाल् आदेश विधायक सूत्र है। इस काण्ड में तृतीय अध्याय में रेफ एवं षत्व आदेश का निरूपण करने के बाद चतुर्थ अध्याय में णत्वादेश संबंधी सूत्र रखे गये हैं क्योंकि रेफ एवं षत्व दोनों णत्वादेश के निमित्त हैं। वस्तुतः असिद्धकाण्ड में आदेश विधायक शास्त्रों

की अधिकता है। अष्टाध्यायी के आरंभ में शास्त्रोपयोगी संज्ञाओं, परिभाषाओं के बाद, शब्दों की प्रकृति एवं उससे होने वाले प्रत्ययों का निरूपण किया गया है। अब शेष रह जाता है इनसे संबंधित विकारों का उपदेश जो इस असिद्ध काण्ड में किया गया है। किन्तु आदेशादि विधायक शास्त्र सम्पूर्ण अष्टाध्यायी में यत्र तत्र उपदिष्ट हुये हैं मात्र त्रिपादी में नहीं। वस्तुतः जो आदेश अन्य कार्यों एवं अन्य आदेशों के प्रति असिद्ध हैं वे ही इस असिद्ध काण्ड में उपदिष्ट हुये हैं। षष्ठ अध्याय के आभीय प्रकरण का असिद्ध कार्य संबंधी शास्त्र इस अष्टम अध्याय के असिद्ध काण्ड में क्यों नही सन्निविष्ट किया गया इसका उत्तर यह है कि इन दोनों प्रकरणों के असद्वित्व में मौलिक अन्तर हैं। जहाँ अष्टम अध्याय के असिद्धत्व में पूर्वम् प्रति पर शास्त्रमसिद्ध नियम प्रवृत्त होता है वहीं आभीय असिद्धत्व के विषय में ऐसा आवश्यक नहीं है। उदाहरणार्थ - जहि में 'हन्तेर्जः' 6.4.33 द्वारा हुआ ज आदेश पर शास्त्र 'अतो हेः' 6.4.105 द्वारा विहित कार्य हिलोप के प्रति असिद्ध माना गया अर्थात् पर शास्त्र के प्रति पूर्वशास्त्र असिद्ध माना गया। इसी प्रकार 'एधि' - यहाँ अस, हि, स हि, ए हि इस स्थिति में 'ध्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च' 6.4.119 द्वारा विहित एकारादेश 'हुझल्भ्यो हेर्धिः' 6.4.101 के द्वारा प्राप्त हि को धि आदेश करने में असिद्ध है अर्थात् पर शास्त्र पूर्वशास्त्र के प्रति असिद्ध है। इन दोनों उदाहरणों के आधार पर निष्कर्ष निकलता है कि पूर्वम् प्रति पर शास्त्रमसिद्धम् नियम षाष्ठिक असिद्ध प्रकरण में नहीं प्रवृत्त होता इस प्रकरण में पहले ही चुका कार्य पीछे होने वाले कार्य की दृष्टि में असिद्ध होता है ऐसा मान सकते हैं।

इन दोनों असिद्ध कार्यों में दूसरा अन्तर यह है कि आभीय असिद्धत्व समानाश्रय विधियों में ही होता है अर्थात् जिस शास्त्र-विहित कार्य को अन्य शास्त्र-विहित कार्य के करने में असिद्ध माना जा रहा है उन दोनों कार्यों का समानाश्रय होना आवश्यक हैं; उनका आश्रय-निमित्त समान होना चाहिये।

इनके मध्य तीसरा अन्तर यह है कि पूर्वत्रासिद्धम शास्त्र सम्बन्धी अस्द्धित्व सम्पूर्ण अष्टाध्यायी में प्रवृत्त होता है (क्योंकि सपादसप्ताध्यायी के प्रति त्रिपादी एवं त्रिपादी में भी पूर्व के प्रति पर शास्त्र असिद्ध है अर्थात् इस असिद्वत्व की व्यापकता सम्पूर्ण अष्टाध्यायी में है) दूसरी ओर आभीय असिद्धत्व कुछ वशिष्ट स्थान में अपेक्षित असिद्धत्व है और इसी कारणवश आभीय प्रकरण में इससे सम्बन्धित सूत्रों का सन्निवेश हुआ है। इन्हीं भिन्नताओं के कारण आभीय प्रकरण के सूत्र असिद्धत्व में सन्निविष्ट नहीं किये गये।

आदेशों के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि ये विभिन्न आकार एवं प्रकार के है।

जिन निमित्तों को आधार बनाकर इनका विधान किया गया है तथा जिन विषयों में ये होते है उनमें भी विविधता है। कुछ आदेश एक वर्णात्मक स्वरूप के है तो कुछ अनेकवर्णात्मक। कुछ आदेश शब्दों के अन्त्य वर्ण के होते है, कुछ आदि वर्ण को तथा कुछ सम्पूर्ण शब्द के स्थान पर। कुछ आदेश नित्यरूप में विहित किये गये हैं तो कुछ विकल्प से। कुछ प्रकृति के स्थान पर। कुछ के लिये प्रत्यय विशेष का विषय होना ही पर्याप्त है तो कुछ के लिये प्रत्यय का परे विद्यमान होना आवश्यक है। कुछ वैदिक प्रयोग विषय में ही विहित हुये हैं। तो कुछ लौकिक प्रयोग विषय में ही तथा कुछ दोनों प्रयोग विषय में। कहीं किसी वर्ण विशेष के पूर्व या परे स्थिति होने पर आदेश प्राप्त होता है तो कहीं प्रत्यय विशेष के परे रहते अथवा शब्द विशेष के परे रहते। प्रत्ययों में भी कभी सार्वधातुक प्रत्यय, कहीं आर्धधातुक प्रत्यय, कभी विभक्ति प्रत्यय, कभी सुप् प्रत्यय इत्यादि को निमित्त बनाकर आदेश विधान हुआ है। कभी-कभी किसी विशेष विषय में ही प्रयुक्त होने की स्थिति में आदेश विधान किया गया है (जैसे संज्ञा और अन्दादेश विषय में प्रयुक्त होने की स्थिति में ही)। कभी-कभी शब्दविशेष का किसी विशेष अर्थ में प्रयोग होने पर आदेश विहित किया गया है (जैसे 'निनदिभ्यां स्नातेः कौशले' सूत्र में स्ना धातु के सकार को मूर्धन्यादेश 'कुशलता' अर्थ में) कुछ आदेश प्रकृति प्रत्यय सापेक्ष नहीं हैं (जैसे - संहिता एवं समास विषयक आदेश ये पूर्ववर्ण-परवर्ण तथा पूर्वपद-उत्तरपद सापेक्ष हैं। इन विविधताओं के होते हुये कोई ऐसा आधार सुनिश्चित करना जिसके अनुसार इनका वर्गीकरण किया जा सके बड़ा कठिन प्रतीत होता है।

सिद्धान्त कौमुदी की तत्व-बोधिनी टीका के रचयिता ज्ञानेन्द्र सरस्वती ने अपनी इस टीका में दो प्रकार के आदेशों की चर्चा की है - प्रत्यक्ष तथा आनुमानिक। 'अस्तेभूः' सूत्रविहित अस् स्थानी को भू-आदेश प्रत्यक्ष उपदेश है। ति के स्थान पर हुआ तु अनुमानिक है। 'एरुः' इस सूत्र में इ से इकारान्त स्थानी तथा उ से उकारान्त आदेश अनुमित होता है तथा ति को त हो यह अर्थ फलित होता है।

आधुनिक विचारकों में डॉ. रामशंकर भट्टाचार्य ने भी आदेशों का विभाजन करने का प्रयास किया है। इनके अनुसार - "आदेश के दो मौलिक विभाग है, प्रथम - वर्णसम्बन्धी सम्बन्धी तथा द्वितीय - पदसंबंधी। वर्ण सम्बन्धी आदेश भी दो प्रकार के हैं - एकवर्णात्मक तथा अनेकवर्णात्मक। प्रथम का नाम 'विकार' तथा द्वितीय का 'आदेश' यह प्राक्पाणिनीय वैयाकरण आपिशलि का मत था। परवर्तीयकाल में इस भेद का व्यवहार नहीं रहा पाणिनी ने भी इस भेद को मानकर प्रकरण-व्यवस्था नहीं की है। आचार्य पाणिनी ने वर्ण विकार को अपनी दृष्टि से दो भागों में बाँटा है - पदद्वय संबंधी वर्णाद्वयादेश एवं

एकादेश।''

आदेश सूत्रों पर गंभीरतापूर्वक विचार करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि यद्यपि जिन विषयों एवं निमित्तों को आदेश होने में हेतु रूप में लिया गया है। विविध प्रकार के हैं तथा उन्हें वर्गीकरण का आधार बनाना कठिन है किन्तु आदेश के स्वरूप एवं इनके स्थानी के आधार पर इनका वर्गीकरण संभव है। सभी आदेश या तो एकाल् हैं या अनेकाल्। ये या तो किसी एक वर्ण के स्थान पर आदेश किये जाते हैं या सम्पूर्ण के स्थान पर। ये दोनों बातें सर्वतोभाव से स्थानी आदेश पर घटती हैं। प्रत्यक्ष एवं आनुमानिक इन दो वर्गों में वर्गीकरण करने पर आदेशों की उपर्युक्त दोनों मौलिक विशेषतायें स्पष्ट नहीं हो पातीं। वस्तुतः आदेशों का प्रत्यक्ष या आनुमानिक होना यह सूत्रोपदेश शैली की विशिष्टता है (अर्थात यह पाणिनी का शैली की विशेषता है कि कुछ स्थानी एवं आदेश सूत्रार्थ करने पर स्पष्ट रूप में बोधित हो जाते हैं पर कुछ स्थानी एवं आदेश का सूत्रार्थ के आधार पर अनुमान लगाया जाता है। आदेशों के स्वरूप एवं इसके स्थानी के आधार पर आदेशों का वर्गीकरण उचित भी है और पाणिनिसम्मत भी। 'अनेकाल्शित् सर्वस्य', 'अलोऽन्त्यस्य', 'ङि च्च' इत्यादि सूत्रों के आधार पर ही एकाल् एवं अनेकाल् जैसे वर्ग बनाये गये हैं अतएव यह वर्गीकरण अपाणिनीय नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार के वर्गीकरण में आदेशों की मौलिक विशेषतायें भी स्पष्ट हो जाती है।

आदेश के स्वरूप (एकाल्त्व एवं अनेकाल्त्व) एवं इनके स्थानी के आधार पर इनका चार वर्ग बनाया जा सकता है -

1. एकाल् स्थानी संबंधी एकाल् आदेश।
2. एकाल् स्थानी संबंधी अनेकाल् आदेश।
3. अनेकाल् स्थानी संबंधी एकाल् आदेश।
4. अनेकाल् स्थानी संबंधी अनेकाल् आदेश।

आदेशों की कुछ अन्य विशेषताओं को स्पष्ट किया जा सके इसलिये उपर्युक्त वर्गीकरण में कुछ परिवर्तन करना आवश्यक है। आदेशसूत्रों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि एकाल् स्थानी संबंधी एकाल् आदेशों की संख्या बहुत अधिक है। इन एकाल् आदेशों में भी कुछ ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, वृद्धि, सम्प्रसारण तथा कुछ चर्त्व, जश्त्व, भषत्व, मूर्धन्यभाव आदि पारिभाषिक पदों का प्रयोग कर विहित किये गये हैं। इन एकाल् स्थानी संबंधी एकाल् आदेशों को यदि एक ही अध्याय में रखा जाये तो वह अध्याय

बहुत बड़ा हो जायेगा तथा इन पारिभाषिक पदों द्वारा बोध्य गुणधर्म स्पष्ट नहीं हो सकेगा। क्योंकि ह्स्व, दीर्घ, गुण, वृद्धि इत्यादि हल् वर्णों के विषय में तथा चर्, जश्, भष् आदि अच् वर्णों के विषय में निरर्थक हैं। अतः इन्हें दो वर्गों में बाँट दिया गया - अज्वणदिश तथा हल्वणदिश। अज्वणदिश प्रकरण में ऐसे एकाल् स्थानी संबंधी एकाल आदेश रखे गये जो स्वर वर्ण (अच्) है या ह्स्व, दीर्घ, प्लुत, गुण, वृद्धि, सम्प्रसारण आदि शब्दों का प्रयोग कर विहित किये गये हैं। हल्वणदिश प्रकरण में ऐसे एकाल् स्थानी संबंधी एकाल् आदेश रखे गये हैं जो व्यंजन वर्ण (हल्) है या चर्, जश्, भष्, मूर्धन्य आदि शब्दों का प्रयोग कर विहित किये गये हैं। दूसरा परिवर्तन यह किया गया कि अनेकाल स्थानी के स्थान पर विहित एकाल् आदेशों का पृथक वर्ग नहीं बनाया गया कारण यह है कि ऐसे अनेकाल् स्थानी संबंधी एकाल् आदेश शित हैं और सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर होते हैं तथा इनकी संख्या भी बहुत कम है अतः इनका पृथक वर्ग नहीं बनाया जा सका और इन्हें अनेकाल् स्थानी संबंधी अनेकाल् आदेशों में ही सम्मिलित कर लिया गया। अनेकाल् आदेश भी सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर होते हैं यही शित् प्रकार के एकाल् आदेशों से इनका साम्य प्रकट करता है। आचार्य पाणिनी ने अनेकाल एवं शित् दोनों का एक ही सूत्र में ग्रहण किया है - अनेकालशित् सर्वस्य।

अनेकाल एवं शित् आदेश सर्वादिश हैं - सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर होते है। इन आदेशों को सूत्र 'स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ' से स्थानिवद्भाव का अतिदेश प्राप्त है इस प्रकार इनमें स्थानिवद्भाव से प्रकृति या प्रत्यय कहलाने की क्षमता होती है। प्रकृति एवं प्रत्यय का अपना अर्थ होता है (मात्र में प्रकृति एवं प्रत्यय की अर्थवत्ता होती है लोक में नहीं) इनके स्थान पर होने वाले अनेकाल् आदेश भी प्रकृति या प्रत्यय के अर्थ से युक्त हो जाते है। आदेशों की इसी विशिष्टता को स्पष्ट करने के लिये इनका दो वर्ग बनाया गया - प्रकृत्यादेश एवं प्रत्ययादेश। प्रकृत्यादेश में सम्पूर्ण प्रकृति के स्थान पर हुये अनेकाल् एवं शित् सर्वादिशों को रखा गया। इस क्रम में समस्त संबंधी आदेशों को भी प्रकृत्यादेश वर्ग में रख दिया गया। यद्यपि ये आदेश सम्पूर्ण प्रकृति को न होकर उसके अंशरूप पूर्वपद या उत्तरपद को होते हैं तथापि एक सम्पूर्ण शब्द - जो समास का पूर्वपद हो या उत्तरपद हो; के स्थान पर सर्वादेश होने से तथा स्थानिवद्भाव से उस अर्थ के प्रत्यायक होने से इन्हें भी प्रकृत्यादेश प्रकरण में सम्मिलित कर लिया गया। तीसरे परिवर्तन में ये सारी व्यवस्थायें की गई।

एकाल् स्थानी संबंधी एकाल् आदेश तथा अनेकाल् स्थानी संबंधी एकाल् और अनेकाल्

आदेशों के वर्गीकरण के संबंध में उपर्युक्त परिवर्तन करने के बाद शेष रह जाता है एकाल् स्थानी संबंधी अनेकाल् आदेश। ये आदेश अनेकाल् होते हुये भी सर्वादेश नहीं किये जाते अतएव इनमें सम्पूर्ण प्रकृति या प्रत्यय कहलाने की तथा स्थानिवद्भाव से इनके अर्थ की प्रतीति कराने की क्षमता नहीं होती। इसी कारणवश इन्हें प्रकृत्यादेश या प्रत्ययादेश में नही रखा गया। एकाल् स्थानी संबंधी एकाल् आदेश न होने से इन्हें अज्वर्णादिश एवं हल्वणादिश वर्गों में भी नहीं रखा जा सकता अतः इनका पृथक वर्ग बनाना ही उचित है। आचार्य पाणिनी ने भी ऐसे आदेशों के लिये ङकार अनुबन्ध का प्रयोग किया है और 'ङि च्च' सूत्र द्वारा अलग हो इनका अन्तादेशत्व विहित किया है ('अलोडन्त्यस्य' सूत्र में इन्हें नही सम्मिलित किया)। अतः इन्हें उपर्युक्त चारों वर्गों में नहीं रखा गया। ऐसे अनेकाल् आदेश को एकाल् स्थानी को विहित किये गये हैं, संस्था में अत्यल्प हैं अतः इनके नाम से एक सम्पूर्ण अध्याय नहीं बन सकता इसलिये इन्हें प्रकीर्ण वर्ग में सम्मिलित किया गया।

पदद्वित्त्व को पतंजलि ने आदेश कहा है अतः इनको भी प्रबन्ध में समाविष्ट करना पड़ा। उपर्युक्त चारों वर्गों में जिन कारणों से ये सूत्र नहीं रखे गये वे स्पष्ट हैं। ये प्रकृति, प्रत्यय के स्थान पर हुये अनेकाल् या एकाल्-अन्तादेश नहीं हैं अतः इन्हें उपर्युक्त चारों वर्गों से पृथक रखा गया एवं प्रकीर्ण वर्ग में द्वित्वादेश रूप से समाविष्ट किया गया। इसी वर्ग में अभ्यास एवं वर्ण संबंधी द्वित्त्व भी सम्मिलित कर लिये गये यद्यपि ये आदेश नहीं द्विरुच्चारण हैं फिर भी एक जैसे दो वर्ण या वर्ण समुदाय सभी प्रकार के द्वित्त्व में उपलब्ध होते है अतः द्वित्वादेश के विवेचन के क्रम में इनको भी सन्निविष्ट किया गया। 'द्विरुच्चारण' प्रकार के ऐसे द्वित्त्व विधायक शास्त्रों की संख्या बहुत ही कम है अतः इससे किसी बड़े अप्रसंग दोष की संभावना नही है। प्रकीर्ण वर्ग में ही 'टि' के स्थान पर विहित आदेश भी सन्निविष्ट किये गये हैं क्योंकि टि एकाल् भी हो सकती है अनेकाल् भी अतः अज्वणादिश, हल्वणादिश में इन्हें रखा नहीं जा सकता। ये आदेश सर्वादेश नहीं होते हैं अतः प्रकृत्यादेश या प्रत्ययादेश वर्गों में भी नहीं रखे गये। इसी वर्ग में 'एचोऽयवायावः' जैसे सूत्र भी रखे गये हैं। इनके स्थानी को एकाल् हैं किन्तु आदेश अनेकाल् है पर ङित् नहीं अनेकाल् होते हुये भी ये सर्वादेश नहीं होते अतः इनको आगमों के अनुबंध इस विषय का निर्धारण करते हैं कि आगम कहाँ होंगे शब्द के आदि में, अन्त में अथवा शब्द के अन्त्य अच् से परे दूसरी ओर आदेशों के अनुबंध इस विषय का निर्धारण करते हैं कि आदेश किसके स्थान पर होगा – शब्द के अन्त्य वर्ण के स्थान पर अथवा सम्पूर्ण शब्द के स्थान पर। पाणिनि ने आदेशों के साथ दो

अनुबन्धों का योग किया है ङ एवं श् का। ङि त्करण का फल है - आदेश का शब्द के अन्तिम वर्ण के स्थान पर आना तथा शित्करण का फल है आदेश का सम्पूर्ण शब्द के स्थान पर आना। यद्यपि ऐसा नियम नही किया जा सकता कि एकाल् स्थानी को एकाल् आदेश तथा अनेकाल् स्थानी को अनेकाल् आदेश होंगे तथापि अधिकांश आदेशविधान इसी प्रकार के हैं। उदाहरणार्थ - इक् को यण्, निष्ठानत्व, णत्व, षत्व इत्यादि के स्थानी एवं आदेश एकाल् तथा अस् को भू, ब्रू को वच्, चक्षिङ् को ख्यात्र् इत्यादि के स्थानी एवं आदेश अनेकाल् हैं। किन्तु सर्वत्र ऐसा करना संभव नहीं। किन्हीं प्रयोगों में एकाल् स्थानी के स्थान पर अनेकाल् आदेश एवं कहीं कहीं अनेकाल् स्थानी को एकाल् आदेश विहित करना आवश्यक होता है। उदाहरणार्थ - गाण्डीवधनुष् शब्द के अन्त्य अवयव को अन् आदेश, सुधातु के अन्त्य ऋकार को अक आदेश, इदम्, एतद् को 'अ' आदेश किये बिना क्रमशः गाण्डीवधन्वा, सौधातकि, अन्वादेश विषयक आभ्याम, अत्र, अतः आदि शब्द प्रयोग नहीं सिद्ध हो सकते। अतएव इस प्रकार के आदेश विहित किये गये एवं शब्द के अन्त्य वर्ण के स्थान पर अनेक वर्णात्मक आदेश लाने हेतु आदेश को ङि त् एवं समय शब्द के स्थान पर एकवर्णात्मक आदेश लाने हेतु आदेश शित् किया गया तथा 'अलोऽन्त्स्य' (1.1.52.) 'ङि च्च' (1.1.53.) सूत्र द्वारा शब्द के अन्त्य वर्ण को तथा 'अनेकाल्शित्सर्वस्य' (1.1.55) द्वारा सम्पूर्ण शब्द के स्थान पर आदेश प्राप्ति की व्यवस्था की गई। इस प्रकार इन अनुबन्धों एवं सूत्रों के द्वारा स्थानी एवं आदेश के विषय में कुछ इस प्रकार का नियम बना एकाल् स्थानी को एकाल् आदेश, अनेकाल् स्थानी को अनेकाल् आदेश होंगे। शित् आदेश एकाल् होते हुये भी सम्पूर्ण शब्द के स्थान पर होंगे और ङि त आदेश अनेकाल् होते हुये भी शब्द के अन्तिम वर्ण के स्थान पर होंगे। अष्टाध्यायी के समस्त आदेश विधान नियमों के आधार पर किये गये हैं किन्तु कुछ ऐसे स्थल भी हैं जहाँ इन नियमों से डटकर आदेश विधान हुआ है। उदाहरणार्थ - 'तुह्योस्तातङाशिष्यन्यतरस्याम्' 'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्' अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् इत्यादि सूत्रों द्वारा तु एवं हि को तातङ्, च्लि को चङ्, च्लि को अङ् इत्यादि आदेश विधान ङि त होकर भी अन्त्य वर्ण के स्थान पर न होकर सम्पूर्ण शब्द के स्थान पर होते है। इन आदेशों के ङित्करण का विशेष प्रयोजन है। यह प्रयोजन है - ङि त् करने के फलस्वरूप गुणवृद्धि का निषेध होना। अकङ् - इयङ्, उवङ्, अनङ इत्यादि ङि त आदेशों के ङित्करण का एकमात्र प्रयोजन अन्तादेश की सिद्धि है इनके अन्त्य वर्ण के स्थान पर न हो कर सम्पूर्ण के स्थान पर होने पर अभीष्ट सिद्धि न हो सकेगी किन्तु तातङ् के ङित्करण को अन्तादेश-सिदध्यर्थक मानने पर अभीष्ट शब्द नही सिद्ध

हो सकेगा। गुणवृद्धिपितिमेधार्थक मानने पर अभीष्ट सिद्धि हो सकेगी। इसीलिये 'ङि च्च' सूत्रभाष्य में भाष्यकार ने तातङ् को सर्वादेश तथा इसका ङित्करण गुणवृद्धिप्रतिषेधार्थक स्वीकार किया है। भाष्यकार के अनुसार गुणवृद्धि निषेध रूप इस प्रकीर्ण वर्ग में ही रखा गया। ऐसे आदेशों को आचार्य ने ङ् त् रूप में पढ़ा है यहाँ डकार अनुबन्ध न लगाने का कारण यह है कि अय् अव् आदि आदेश संधि संबंधी आदेश हैं और एच् से अच् परे रहते एच् को विहित हुये है इनका अन्त्य वर्ण हल् है जबकि ङित् आदेशों का अन्त्य वर्ण अच् है।

प्रकीर्ण वर्ग में ही एकादेशों को भी रखा गया है। एकादेशों की विशेषता यह है कि इनमें आदेश तो एक वर्णात्मक है किन्तु स्थानी द्विवर्णात्मक यह द्विवर्णात्मक स्थानी भी दो भिन्न-भिन्न पदों से गृहीत होता है। एकादेशों का स्थानी पूर्वपद का अन्त्य एवं परपद का आदिवर्ण संयुक्त रूप में होता है। आदेश भी पूर्व के अन्त एवं पर के आदि वर्ण के तुल्य गुण धर्म वाला होता है अर्थात् एकादेश विधि के आदेश में दोनों स्थानियों का स्थान एवं प्रयत्न आदि का साम्य अपेक्षित है। एकादेश भी वस्तुतः संहिताजन्य वर्ण विकार है। द्विवर्णात्मक स्थानी को एक वर्णात्मक रूप विशेष स्वरूप के कारण इस आदेश को भी प्रकीर्ण वर्ग में सन्निविष्ट किया गया। इस प्रकार आदेश सूत्रों का वर्गीकरण इस प्रकार हुआ -

1. अज्वणदिश प्रकरण   2. हल्वणदिश प्रकरण   3. प्रकृत्यादेश प्रकरण

4. प्रत्ययादेश प्रकरण   5. प्रकीर्ण वर्ग

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि अज्वणदिश, हल्वणदिश इत्यादि शीर्षकों के 'अच्', 'हल' आदि आदेशों के विशेषण है स्थानियों के नहीं। अज्वणदिश का तात्पर्य है ऐसा एकाल् आदेश जो अच् हो और जिसका स्थानी एकाल हो। हल्वणदिश का अर्थ है - ऐसा एकाल् आदेश जो हल् हो और जिसका स्थानी एकाल् हो। इसी प्रकार प्रकृत्यादेश का तात्पर्य शब्द के प्रकृत्यंश को होने वाले आदेश तथा प्रत्ययादेश का तात्पर्य शब्द के प्रत्ययांश को विहित आदेश है। अगले अध्यायों में इसी आधार पर विभिन्न आदेशसूत्रों का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

द्वितीय अध्याय

अध्याय - 2

''अज्वणादिश''

1. मान्वधदान्शान्भ्यो दीर्घश्चाभ्यासस्य (3.1.6.)

मान्, बध, दान्, शान् इनसे सन् प्रत्यय हो तथा अभ्यास के दूकार को दीर्घ हो।

उदाहरण - मीमांसते, वीभत्सते, दीदांशते, शीशांसते।

मीमांसते - मान् सन् त > मि मान सते। अभ्यास की 'इ' को दीर्घ हो मीमांसते-मीमासंते।

वीभत्सते - बध् सन् > विभत्स। अभ्यास के विकास इ को दीर्घ होकर वीभत्स। वीभत्स त > वीभत्सते। सूत्र में सन् प्रत्यय एवं अभ्यास दीर्घ एक साथ विहित है इससे मान्, बध आदि के आकार एवं अकार को ही होने लगता हैं इसलिये भाष्यकार ने 'दीर्घ श्चाभ्यासस्य' का पदच्छेद - 'दीर्घश्च अभ्यासस्य, आभ्यासः - अभ्यासस्य विकारः। (द्रष्टव्य पतञ्जलि भाष्य) किया है इससे अभ्यास के विकार 'इ' को ही दीर्घ होता है और ईष्ट रूप बन जाता है।

2. 'धिन्विकृण्व्योर च' (3.1.80.)

धिवि, कृवि धातुओं से 'उ' प्रत्यय होता है तथा अन्त में अकारादेश भी होता हैं।

उदाहरण - धिनोति, कृणोति

धिनोति - धिव् तिप् > धि न व् ति। अब उ प्रत्यय एवं अकार अन्तादेश होने पर - धिन् अ उति बना। आकार लोप एवं उ को गुण होकर धिनोति बना।

सूत्रोपदिष्ट अकार अन्तादेश का 'अतोलोपः' में लोप हो जाता है और यह किसी प्रयोग में दिखता नहीं तथापि इस आदेश की यह उपयोगिता है कि यदि आदेश विहित न किया जाता और वकार का लोप करा दिया जाता तो धातु की उपधा में लघु इकार को लघुपद्य गुण प्राप्त होने लगता है।

3. 'ई च खन'' (3.1.111.)

खन् धातु से क्यप् प्रत्यय और धातु के अन्तावयष को ईकारादेश होता है।

उदाहरण - खेयम्।

खेयम् खन् धातु से सूत्रविहित क्यप् प्रत्यय तथा धातु को ईकार अन्तादेश होने पर - ख ई क्यप् > खेय। खेय सु > खेयम्।

4. 'एरुः' (3.4.86.)

लोट् के स्थान में हुये आदेश के इकार के स्थान में उकारादेश हो जाता है। पचतु - पच् लोट् > पच् तिप् > पचति। सूत्र द्वारा प्राप्त उकारादेश होकर पचत् उ = पचतु।

5. 'एत ऐ' (3.4.93.)

लोट सम्बन्धी उत्तम पुरूष के एकार को ऐकारादेश हो जाता है।

उदाहरण - एध लोट् > एध इट् > एधे। लोट सम्बन्धी उत्तम पुरूष के एकार को सूत्र विहित ऐकार आदेश होने पर - एध् ऐ = एधै।

6. 'आत ऐ' (3.4.95.)

वेद विषय में लेट् लकार के आकार के स्थान पर ऐकारादेश होता है।

उदाहरण - मादऐते करवैथे आदि।

मादयैते - मद णिच् लेट > मादय उत्तम। लेट सम्बन्धी आकार को ऐकार होने पर - मादय् ऐताम् = मादयैताम्। मादयैताम > मादयैते

7. वैतोऽन्यत्र (3.4.96.)

आत् ऐ सूत्र के विषय को छोड़कर लेट् को एकार के स्थान पर विकल्प से ऐकार आदेश हो।

उदाहरण - एधतै, शासै, इशै आदि। पक्ष - एधते, शासे, इशे।

शासै - शास् लेट > शास् इट > शास्। लेट सम्बन्धी - ए को ऐ आदेश हो - शास् ऐ = शासै।

8. 'पूतक्रतौरे च' (4.1.36.)

पूतक्रतु शब्द के स्थान में स्त्रीत्व - विवक्षा में ऐकारादेश और ङीप् प्रत्यय भी होते हैं।

उदाहरण - पूतक्रतायी। पूतक्रतायी - पूतक्रतोः स्त्री इस अर्थ में पूतक्रतु शब्द में ङीप् प्रत्यय तथा पूतक्रतु को ऐकार अन्तादेश होने पर - पूतक्रतु ऐ ङीप् > पूतक्रते ई। पूतक्रते ई > पूतक्रतायी।

9. वृषाकप्यग्निकुसितकुरिनदानामुदात्तः (4.1.37.)

वृषाकपि, अग्नि, कुसित, कुसीद इन प्रातिपादिकों को स्त्रीलिंग में उदात्त ऐकारादेश तथा ङीप्

प्रत्यय हो।

उदाहरण - वृषाकपायी अग्नायी, कुसितायी।

10. 'मनोरो वा' (4.1.38)

मनु शब्द के स्थान में स्त्रीत्व - विवक्षा में विकल्प से औकारादेश अथवा उदात्तत्व विशिष्ट ऐकारादेश और ङीप् प्रत्यय होते हैं।

उदाहरण - मनावी। पक्ष में - मनायी तथा मनुः।

मनावी, मनायी - मनु > मनु औ ङीप् > मनी ई। मनी ई > मनावी। औकारादेश न होने पर ऐकारादेश पक्ष में 'मनायी' तथा ङीप् एवं औकारादेश के अभाव में 'मनु' प्रयोग बनते हैं।

11. 'कस्येत्' (4.2.25.)

'सास्य देवता' अर्थ में क शब्द से अण् प्रत्यय तथा तत्सन्नियुक्त क को ईकारादेश होता है।

उदाहरण - कायं = कायं - 'को देवताऽस्य' अर्थ में क से अण् प्रत्यय तथा क को ईकार अन्तादेश होने पर क ई अण् > की अण् बना। की अण् > कायं।

12. गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः (5.4.135.)

उत्, पूति, स, सुरभि इन शब्दों से उत्तर गन्ध शब्द को बहुब्रीहि में समासान्त इकारादेश होता है।

उदाहरण - उद्गन्धिः, पूतगन्धि, सुगन्धि, सुरभिगन्धिः।

उद्गन्धिः - उद्गन्ध शब्द को इकार अन्तादेश हो उद्गन्ध इ = उद्गन्धि। उद्गन्धि सु उद्गन्धिः।

13. 'अल्पाख्यायाम्' (5.4.136.)

यदि अल्प की आख्या हो तो बहुब्रीहि समास में गन्ध शब्द को समासान्त इकारादेश होता है।

उदाहरण - अल्पमस्मिन् भोजने घृतम् इति घृतगन्धिः।

घृतगन्धिः घृतगन्ध् इ = घृतगन्धि। घृतगन्धि सु > घृतगन्धिः।

14. 'उपमानाच्च' (5.4.137.)

बहुव्रीहि समास में उपमानवाची शब्दों से उत्तर गन्ध शब्द को भी समासान्त इकारादेश हो

जाता है।

उदाहरण - पद्मस्येव गन्धोऽस्य इति पद्मगन्धिः।

पद्मगन्धिः - पद्मगन्ध शब्द को समासान्त इकार अन्तादेश हो पद्मगन्ध् इ = पद्मगन्धि। पद्मगन्धि सु > पद्मगन्धिः।

15. तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य' (6.1.7.)

तुजादि धातुओं के अभ्यास को दीर्घ होता है।

उदाहरण - तूतुजानः मामहानः, दाधानः।

तूतुजानः - तृज् शानच् > तूतुजान। सूत्र द्वारा विहित अभ्यास दीर्घ होकर तूतुजान। तूतुजान सु = तु तूतुजानः।

16. आदेच उपदेशेऽशति (6.1.45.)

शित् प्रत्यय से भिन्न प्रत्ययों के परे उपदेश में एजन्त धातु के स्थान में आकार आदेश हो जाता है।

उदाहरण - ग्लातुम, क्षायति आदि।

ग्लातुम - ग्लै तुमुन। ग्लै एजादि धातु है अतः इसे सूत्र द्वारा अत्वादेश प्राप्त है। आत्व होने पर - ग्लातुम = ग्लातुम्।

17. स्फुरतिस्फुलत्योर्धञि (6.1.47.)

धञ् प्रत्यय के परे स्फुर एवं स्फुल धातुओं के स्थान में भी आकारादेश हो जाता है।

उदाहरण - विस्फारः, विस्फालः आदि।

विस्फारः - वि स्फुर धञ् > वि स्फोर् धञ। धातु के एच् को आत्व होने पर वि स्फार अ = विस्फार। विस्फार सु = विस्फारः।

18. क्रीङ्जीनां णौ। (6.1.48.)

क्री इङ् और जि धातुओं के एच् के स्थान में णिच् प्रत्यय परे रहते आकारादेश होता है।

उदाहरण - क्रापयति, अध्यापयति, जापयति आदि।

क्रापयति - क्री णिच् > क्रै इ। धातु के एच् को आकार होकर क आ इ बना क्रा इ तिप् > क्रा पुक् इ तिप् = क्रापयति।

19. 'सिध्यतेरपारलौकिके' (6.1.49.)

पार लौकिक भिन्न - विषयक सिध् धातु के एच् के स्थान में भी णिच् के परे आकारादेश हो जाता है।

उदाहरण - अन्नं साधयति, ग्रामं साधयति।

साधयति - सिध् णिच् > सेध् इ। सिध् के एच् को आत्व होने पर साध् इ = साधि। साधि लट् > तिप् = साधयति। 'तपस्तापसं सेधयति' यहाँ सिध धातु द्वारा बोध्य क्रिया परलोक सम्बन्धी अभ्युदय बताती है अतः धातु को आत्व नही हुआ।

20. मीनातिमीनोतिदीङ्गं ल्यपि च' (6.1.50.)

मीञ् डुमिञ् एवं दीङ् इन धातुओं को ल्यप अथवा एच् निमित्तक प्रत्यय के प्रसंग में आत्व हो जाता है।

उदाहरण - दाता, माता, प्रमायः इत्यादि।

दाता - वीड़ लुट् > देङ् तिप्। देङ को आत्व हो दा तिप्। दा तिप् > दा तास् डा > दाता।

प्रमायः - प्र मिञ् ल्यप् > प्र मे य। धातु के एच् को गुण हो प्र मा य ।प्रमाय सु = प्रमायः।

21. 'विभाषा लीयतेः (6.1.51.)

लीङ् तथा ली धातु के ईकार को ल्यप् परे रहने पर या एज्निमित्तक प्रत्यय परे रहने पर विकल्प से आत्व होता है।

उदाहरण - विलाता, विलाय। पक्ष में - विलेता, विलीय।

विलाता - वि ली अथवा लीङ् लुट् > वि ली तिप्। एज्निमित्तक प्रत्यय परे होने से धातु के ईकार को आत्व होने पर - वि ला तिप्, वि ला तिप् > वि ला डा > विलाता।

विलेता - वि ली तिप्। ईकार न होने पर गुण होकर वि ले तिप् > वि ले डा > विलेता।

22. खिदेश्छन्दसि (6.1.52.)

वेद विषय में खिद् धातु के एच् को वैकल्पिक आकारादेश होता है।

उदाहरण - चिखाद। पक्ष में चिखेद।

चिखाद - खिद् लिट् > खिद् णल् > खेद णल्। धातु को आत्व हो - खाद् णल् > चिखाद।

23. 'अपगुरो णमुलि' (6.1.53.)

णमुल प्रत्यय परे 'अप' पूर्वक गुर् धातु के एच के स्थान में भी विकल्प से आकारादेश हो जाता है।

उदाहरण - अपगारमपगारम्। पक्ष में अपगोरमपगोरम्।

अपगारमपगारम् - अप गुर् णमुल् > अप् गोर णमुल्। धातु के एच् को आत्व हो - अपगार् णमुल् = अपगारमपगारम्। आत्व के अभाव में अपगोरमपगोरम।

24. चिस्फुरोर्णौ (6.1.54.)

णिच् के परे चि एवं स्फुर् धातुओं के एच् के स्थान में भी विकल्प से आकारादेश हो जाता है।

उदाहरण - चापयति, स्फारयति। पक्ष में - चाययति, स्फोरयति।

चापयति, चाययति - चि णिच् > चै इ। धातु के एच् को आत्व हो - च आ इ = चा इ। चा इ तिप > चापयति। आत्व के अभाव में चै इ तिप > चाययति।

25. 'प्रजने वीयतेः' (6.1.55.)

प्रजन अर्थ विद्यमान वी धातु के एच् के स्थान से भी विच् हो विकल्प से आकारादेश हो जाता है।

उदाहरण - वापयति, वाययति।

वापयति - वी णिच्। धातु को आत्व हो वा इ। वा इ तिप > वा प् अयति = वापयति। आत्वाभाव में वाययति।

26. 'विभेतेर्हेतुभये (6.1.56.)

हेतु अर्थात् प्रयोजक ही जब भय का कारण बन रहा हो तो भी धातु के एच् के स्थान में णिच् परे रहते वैकल्पिक आत्वादेश हो।

उदाहरण - भापयते। पक्ष में भीषयते।

भापयते, भीषयते - भी णिच् > भै इ। धातु के एच् को आत्व हो भा इ। भाप इ तिप् > भापयति। आत्वाभाव पक्ष में - भै इ तिप > भाययति। कुन्चिकया एनं भाययति इस प्रयोग में प्रयोजक > देवदत्त आदि > भय का हेतु नहीं अतः यहाँ भापयति प्रयोग नहीं होगा।

27. 'नित्यं स्मयतेः' (6.1.57.)

णिच् प्रत्यय परे रहते स्मिङ् धातु के एच् को नित्य ही आत्व होता है। यदि स्मय हेतु अर्थात् प्रायोजक हो तो।

उदाहरण - जटिलो विस्मापयते।

28. ख्यत्यात् परस्य (6.1.110.)

ख्य् एवं त्य् से परे ङसि तथा ङस् के अकार को उकारादेश होता है यदि संहिता का विषय हो तो।

उदाहरण - सख्युः, पत्युः।

सख्युः - सखि, ङसि या ङस् > सख् य् अस्। ख्य् से परे ङसि एवं ङस् के अकार को उकार आदेश होने पर - सख्य् - अस् > सख्युः। पत्युः - पति ङसि या ङस् > पत्य अस्। प्रत्यय के अकार को उकारादेश होने पर - पत्य् उस् > पत्युः

29. 'अतो रोरप्लुतादप्लुते' (6.1.111.)

संहिता विषय में अप्लुत अकार से पूर्व जो रु उसके रेफ को उकारादेश होता है।

उदाहरण - शिवोऽर्च्यः।

शिवोऽर्च्यः - शिवस् अर्च्यः > शिव रु अर्च्यः। रु से परे अप्लुत अकार है अतः रु के रेफ को उकार आदेश होगा - शिव उ अर्च्यः। शिव उ अर्च्यः > शिवोऽर्च्यः।

30. 'हशि च' (6.1.112.)

हश् परे रहते भी अप्लुत अकार परक रु को उकार आदेश होता है।

उदाहरण - शिवो वन्द्यः।

शिवो वन्द्यः - शिवस् वन्द्यः। यहाँ शिव के अप्लुत अकार से परे रू के रेफ को उकार प्राप्त है क्योंकि रेफ से परे हश् वकार है। शिव र वन्द्यः > शिव उ वन्द्यः। शिव उ वन्द्यः > शिवो वन्द्यः।

31. 'आङोऽनुनासिकश्छन्दसि' (6.1.124.)

अच् के परे छन्दो विषय में आङ् के स्थान में अनुनासिकादेश भी हो जाता है और वह प्रकृतिपत भी बना रहता है।

उदाहरण - अभ्रः आँ अपः। अनुनासिक नहीं हुआ - इन्द्रोबाहुभ्याम् आतरत्। अभ्र आँ अपः - यहाँ

आङ् को अच् अकार (अपः) परे रहते अनुनासिक हो गया है।

32. 'इकोऽसवर्णेशाकल्यस्य ह्रस्वश्य' (6.1.125.)

शाकल्य ऋषि के मत में इक् को असवर्ण अच् परे ह्रस्व होगा और प्रकृतिभाव होगा।

उदाहरण - चक्रि अत्र।

यहाँ 'चक्री अत्र' इस दशा में इक् से परे असवर्ण अच् रहते इक् को ह्रस्व एवं प्रकृतिभाव हो 'चक्रि अत्र' शब्द प्रयोग बना।

ऋषि का नामोल्लेख विकल्प फलित करता है अतः पक्ष में उपर्युक्त कार्य नहीं होंगे और यण् होकर चक्र या अत्र य चक्रअत्र।

33. 'ऋत्यकः' (6.1.126.)

ऋत् के परे अक् का भी शाकल्याचार्या के मत में वद् प्रकृतिवद्भाव तथा ह्रस्वादेश हो जाता है।

उदाहरण - खट्व ऋश्यः। पक्ष में - खट्वर्श्यः।

खट्व ऋश्यः - खट्वा ऋश्यः। यहाँ अक् आकार से परे ह्रस्व ऋकार है अतः सूत्र द्वारा अक् को ह्रस्व तथा प्रकृति भाव होकर - खट्व ऋश्यः बना। ह्रस्व एवं प्रकृतिभाव के अभाव में गुण हो खट्वर्श्यः बना।

34. 'दिव उत्' (6.1.129.)

दिव् पद को उकारादेश होता है।

उदाहरण - द्युभ्याम्।

द्युभ्याम् - दिवभ्याम्। उकारादेश होने पर दि उ भ्याम्। दि उ भ्याम् > द्युभ्याम्।

35. 'ईदग्नेः सोमवरूणयोः' (6.3.27.)

देवतावाची द्वन्द्व समास में सोम या वरूण शब्द उत्तरपद हों तो अग्नि को ईकारादेश होता है।

उदाहरण - अग्नीषोमौ, अग्नीवरूणौ।

अग्नीषोमौ - अग्नि एवं सोम का देवतावाची द्वन्द्व समास होने पर सोम उत्तरपद रहने से अग्नि के ईकार को दीर्घ हो - अग्नीसोम बना। अग्नीसोम औ > अग्नीषोमौ।

36. 'इद्वृद्धौ' (6.3.28.)

देवतावाची शब्दों के द्वन्द्व समास में यदि वृद्धि किया हुआ शब्द उत्तरपद हो तो अग्नि शब्द को इकारादेश होता है।

उदाहरण - आग्निवारुणीम्, आग्निमारुतम्।

इन उदाहरणों में वरुण एवं मरुत शब्दों में वृद्धि हुई है। ईदग्नेः से प्राप्त दीर्घ ईकार के निवृत्यर्थ सूत्र द्वारा ह्रस्व इकार विहित हुआ है और अग्नि का इकार ह्रस्व ही रह गया है।

37. 'घरूपकल्पचेलड्ब्रुवगोत्रमतहतेषु ङ्योऽनेकाचो ह्रस्वः' (6.3.43.)

भाषित पुस्तक शब्द से उत्तर जो ङि तदन्तं अनेकाच् शब्द को ह्रस्व हो जाता है घ, रूप, कल्प, चेलट्, लुव, गोत्र, मत तथा हत शब्दों के परे रहते।

उदाहरण - ब्राह्मणितरा, ब्राह्मणितमा (तरप्तमपौ घः) ब्राह्मणिरूपा, ब्राह्मणिहता ब्राह्मणिकल्पा, ब्राह्मणिब्रुवा, ब्राह्मणि गोत्रा, ब्राह्मणिमता आदि। इन शब्दों में पूर्वपद ब्राह्मणी ङ्यन्त हैं एवं भाषित पुंस्क है अतः रूप - कल्पादि शब्दों के उत्तरपद होते इसको ह्रस्व अन्तादेश हुआ है।

"भाषित पुंस्क" पारिभाषिक शब्द है। इस शब्द का अर्थ है - वह शब्द जो पुल्लिंग एवं नपुंसक लिंग दोनों में एक ही अर्थ में प्रयुक्त हो। सुधी शब्द का अर्थ है बुद्धिमान और यह शब्द पुर्लिंग तथा स्त्रीलिंग दोनों में इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है अतएव यह भाषित पुंस्क हैं। 'पीलु' शब्द का वृक्ष और फल दोनों अर्थों में प्रयोग होता है किन्तु पुर्लिंग में वृक्ष अर्थ एवं नपुंसक लिंग में फल अर्थ होने से यह भाषित पुंस्क है। पुर्लिंग में इसका रूप 'पीलवे' तथा नपुंसक लिंग में 'पीलुने' बनता है।

38. 'नद्याः शेषस्यान्यतरस्याम्' (6.3.44.)

पूर्व सूत्र के लक्ष्य से भिन्न भाषितपुंस्क से विहित नदी - संज्ञक (ईकार और ऊकार) को भी विकल्प से 'घ' संज्ञक आदि प्रत्ययों और चेलट् शब्दों के परे रहते ह्रस्व हो जाता है।

उदाहरण - ब्रह्मबन्धुतरा, ब्रह्मबन्धुतमा, वीरबन्धुतरा आदि। ह्रस्व के अभाव में ब्रह्मबन्धूतरा, ब्रह्मबन्धूतमा आदि।

39. 'उगितश्च' (6.3.45.)

उगित अर्थात् वे शब्द जिनका उकार अथवा इकार या ऋकार इत्संज्ञक हो, से परे जो नदी तदन्त को धावियों के परे रहने पर विकल्प से ह्रस्व होता है।

उदाहरण - विदुषितरा, विदुषितमा। पक्ष में - विदुषीतरा, विदुषीतमा आदि।

विदुषितरा, विदुषीतरा - विदुषी शब्द नदी संज्ञक है तथा विद् धातु से वसु प्रत्यय हो, सम्प्रसारण कर विदुष् शब्द बना है अतः वसु के उगित होने से विदुष् उगित है अतः उगित् नदी संज्ञक विदुषी से परे घसंज्ञक तरप् के परे रहने से विदुषी को विकल्प से ह्रस्वादेश प्राप्त है। ह्रस्व होने पर विदुषितरा तथा ह्रस्वाभाव में विदुषीतरा शब्द बनें।

40. 'आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः' (6.3.46.)

समानाधिकरण तथा जातीयर् प्रत्यय परे हो तो महत् शब्द को अकार अन्तादेश होता है।

उदाहरण - महादेवः, महाब्राह्मणः, महाबाहुः।

महादेवः - महत् एवं देव का 'महान् च असौ देवश्च' इस विग्रह में समास हुआ। महान् एवं देव दोनों ही प्रथमान्त है अतः समानाधिकरण है इस स्थिति में आलोच्य सूत्र से महत् के तकार को आकार का अन्तादेश हो जाता है - मह आ देव = महादेव, महादेव सु = महादेवः। महाजातीयः - महत् जातीय। जातीयर् प्रत्यय परे रहते महत् को आकार अन्तादेश होने पर - मह आ जातीय > महाजातीय

41. 'द्वयष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीलोः' (6.3.47.)

द्वि तथा अष्टन शब्दों को संख्या उत्तरपद रहते आत्वादेश हो किन्तु अशीति परे हो तो न हो।

उदाहरण - द्वादश, अष्टादश आदि।

द्वादश - 'द्वि च दश च' इस विग्रह में द्वि एवं दस का समास होने पर सूत्र द्वारा द्वि को अत्वादेश प्राप्त हुआ - द्व आ दश > द्वादश। अष्टादश - अष्टन् एवं दश का समास होने पर अष्टन् को आकार अन्तादेश हो - अष्ट आ दश = अष्टादश शब्द बना।

42. 'इको ह्रस्वोऽङ्यो गालवस्य' (6.3.61.)

गालवाचार्य के मतानुसार ङ्यन्त भिन्न इगन्त शब्द को भी उत्तरपद के परे रहते विकल्प से ह्रस्वादेश हो जाता है।

उदाहरण - ग्रामणिपुत्रः। पक्ष में - ग्रामणी पुत्रः।

ग्रामणी इगन्त और ङ्यन्त है अतः इसे ह्रस्व अन्तादेश हुआ। गालव आचार्य का नाम ग्रहण करने से विकल्प फलित होता है। अतः पक्ष में ह्रस्व नहीं भी होगा।

43. 'एकतद्धिते च' (6.3.62.)

एक शब्द को तद्धित तथा उत्तरपद परे रहते ह्रस्व होता है।

उदाहरण - एकता, एक शाटी इत्यादि।

एकता - एक टाप् > एका, एक तल्। एका को तद्धित तल् को रहते ह्रस्व होने पर - एक तल् > एकता।

एकशाटी - एका शाटी। - उत्तरपद परे परे रहते एक को ह्रस्व हो। एकशाटी शब्द बना।

सूत्र में गृहीत एक शब्द टाबन्त एक शब्द (स्त्रीलिंग सम्बन्धी) ही है क्योंकि पुल्लिंग एवं नपुंसक लिंग में ह्रस्व विधान व्यर्थ है कारण यह है कि एक शब्द स्वतः ह्रस्वान्त है। इसलिये टाबन्त 'एका' को ही एक शब्द से ग्रहण करना चाहिये क्योंकि इसी के विषय में ह्रस्व विधान सार्थक है।

44. ङ्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलम्' (6.3.63.)

ङ्यन्त एवं आप् - प्रत्ययान्त शब्दों को संज्ञा तथा वेद विषय में ह्रस्व होता है।

उदाहरण - रेवतिपुत्रः, रोहिणिपुत्रः, कुमारिदारा आदि। बाहुलकात् विहित होने से कहीं कहीं नही भी होता है। यथा - नान्दीकरः फाल्गुनीपौर्णमासी आदि।

रेवती एवं रोहिणी दोनो ङ्यन्त शब्द है इन्हे संज्ञा विषय में ह्रस्व हुआ है। 'कुमारिदारा' वेद विषय में ह्रस्व का उदाहरण है। 'नान्दीकरः' संज्ञा विषय में एवं 'फाल्गुनी पौर्णमासी' वेद विषय में ह्रस्वाभाव का उदाहरण है।

45. 'त्वे च' (6.3.64.)

त्व प्रत्यय परे रहते भी ङ्यन्त तथा आबन्त को बाहुलकात् ह्रस्व होता है।

उदाहरण - अजत्वम्, रोहिणित्वम्। बाहुलकात् होने से अजात्वम्, रोहिणीत्वम् भी बनते है। अजा आबन्त एवं रोहिणी ङ्यन्त के उदाहरण है।

46. 'इष्टकेषीकामालानां चिततूलभारिषु' (6.3.65.)

इष्टका, इषीका, माला - इन तीन शब्दों को क्रमशः चित, तूल, भारिन् शब्दों के परे रहने पर ह्रस्व हो जाता है।

उदाहरण - इष्टकचितम्, इषीकतूलम्, मालभारिणी इन प्रयोगों में पूर्वपद् के अन्त्य अच् को ह्रस्व हो गया है।

47. 'खित्यनव्ययस्य' (6.3.66.)

खित् शब्द के उत्तरपद रहते अव्ययभिन्न शब्द को ह्रस्व हो जाता है।

उदाहरण - कालिम्मन्या।

कालिम्मन्या - काली मुम् मन् श्यन् खश् टाप् > कालीम्मन्या। मन्या खित् शब्द है अतः काली को ह्रस्व अन्तादेश हो कालि म् मन्या कालिम्मन्या शब्द बना।

48. 'आ सर्वनाम्नः' (6.3.91.)

दृग्, दृश् या वतुप परे हो तो सर्वनाम संज्ञक शब्दों को आत्वादेश होता है।

उदाहरण - तादृक्, तादृशः, तावान्, इत्यादि।

तादृक् - तद् दृश् क्विन सु > तद् तृश् सु > तद् दृश सु। आत्वादेश हो - त आ दृश् सु > ता दृश सु। ता दृश् सु > तादृक्। तादृशः - तद् दृश् फन्। दृश परे रहते सर्वनाम शब्द दृश् को अकार अन्तादेश हो - त आ दृश् अ - तादृश। तादृश सु = तादृशः।

49. 'द्वयन्तरूपसर्गेभ्योऽप ईत्' (6.3.97.)

द्वि अन्तर् तथा उपसर्ग से उत्तर अप् शब्द को ईकार होता है।

उदाहरण - द्वीपम्, अन्तरीयम्, समीपम्, वीपम्, नीपम्, आदि।

द्वीपम् - द्वि से परे अप् के अकार को ईकार हो द्वि ईप् > द्वीप बना। द्वीप सु > द्वीप् अम् = द्वीपम्। इसी प्रकार अन्तर शब्द तथा सम्, वि . नि आदि उपसर्ग से परे अप् के अकार को ईकार होने पर अन्तरीपम्, समीपम्, वीपम्, नीपम् आदि बने।

50. 'ऊदनोर्देशे' (6.3.98.)

अनु शब्दों से उत्तर अप् शब्द को अकारादेश होता है। यदि देश का अभिधान करना हो तो।

उदाहरण - अनूप।

अनूप एक देश विशेष का नाम है। अतः अनु से परे अप् के ऊकार को अकार आदेश हुआ है। अनु अप् > अनूप > अनूप अच् सु अनूपः।

51. 'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः' (6.3.111.)

जहाँ ढकार या रेफ का लोप हुआ हो। उसके पूर्व अण् को दीर्घ होता है।

उदाहरण - लीढम्, मीढम्, उपगूढम्, मूढः आदि।

लीढम् - लिह् क्त > लिह् त > लिढ् त > लिढ् ध् > लिढ् ढ > लिढ। यहाँ ढ का लोप हुआ है। अतः सूत्र विहित दीर्घ प्राप्त है। दीर्घ हो - लीढ। लीढ सु। लीढम्।

52. 'सहिवहोरोदवर्णस्य' (6.3.112.)

ढकार और रेफ का लोप होने पर सह् तथा वह् धातु के अवर्ण को ओकारादेश होता है। उदाहरण - सोढा, वोढा, सोढुम्, वोढुम् आदि। सोढा, वोढा - सह् या वह् से तृच्। हकार को ढत्व, तृच् के तकार को ध, ध को ढ धातु से ढ का लोप हो स ढ् व ढ् बने। धातु के अवर्ण को ओकारादेश होकर - सोढ्, वोढ्। प्रथमा एकवचन में सोढा, वोढा, शब्द बनते हैं।

53. 'कर्णे लक्षणस्याविष्टाष्ट पञ्चमणिभिन्नछिन्नच्छिद्रस्रुवस्वस्तिकस्य' (6.3.115.)

विष्ट, अष्टन्, पञ्चन्, मणि, भिन्न, छिन्न, छिद्र, स्रुव, स्वस्तिक - इन शब्दों को छोड़कर कर्ण शब्द उत्तर पद रहते लक्षणवाची शब्दों के अण् को दीर्घ होता है संहिता के विषय में।

उदाहरण - दात्राकर्णः, अङ्गुलाकर्णः, द्विगुणाकर्णः आदि। लक्षण से तात्पर्य है वह विशेष चिन्ह जो पहचान के लिये पशुओं के शरीर पर अंकित किया गया हो।

54. 'नहिवृत्तिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषुक्वौ' (6.3.116.)

संहिता में नहि, वृत्ति, वृषि, व्यधि, रूचि, सहि तनि - इन क्विप् प्रत्ययान्त शब्दों के उत्तर पद रहते पूर्व अण् को दीर्घ हो जाता है।

उदाहरण - उपानत्, नीवृत्, प्रावृट्, मर्माावित्, नीरूक्, ऋतीषट्, परीतत् आदि।

उपानत् - उप नह् क्विप्। पूर्व अण् को दीर्घ हो - उपा नह। उपानह् सु > उपानत।

नीरूक् - नि रूच् क्विप् > नि रूच्। रूच् परे रहते पूर्ण अण् को दीर्घ होने पर नी रूच्। नीरूच् स > नीरूक्।

55. 'वनगिर्योः संज्ञायां कोटर किंशुलुकादीनाम्' (6.3.117.)

वन तथा गिरि शब्द उत्तरपद में हो तो कोटरादिगण एवं किंशुलकादिगण में पठित शब्दों को संज्ञा विषय में दीर्घ होगा।

उदाहरण - कोटरावणम्, मिश्रकावणम्, पुरगावणम्, सिध्रकावणम् किंशुलकागिरिः, शाल्वकागिरिः, अन्जनागिरिः, भन्जनागिरिः आदि। इन उदाहरणों में कोटर, किंशलुक इत्यादि शब्दों का अन्त्य अच् दीर्घ हुआ है।

56. 'वले' (6.3.118.)

वलच् प्रत्यय परे हो तो पूर्व अण् को दीर्घ होता है।

उदाहरण - कृषीबलः। कृषीबलः - कृषि वलच्। वल के परे रहने पर पूर्व अण् को दीर्घ होने पर - कृषीवल। कृषीवल सु कृषीवलः।

57. 'मतौ बह्वचोऽनजिरादीनाम्' (6.3.119.)

आजिरादि को छोड़कर बहुवचक शब्दों के अण् को दीर्घ होता है संज्ञा विषय में यदि मतुप प्रत्यय परे हो तो।

उदाहरण - पुष्करावती, अमराबती, उदुम्बरावती आदि। पुस्कर, अमर, उदुम्बर आदि बहुबच्क शब्दों के परे मतुप प्रत्यय होने से इनके अण् को दीर्घ हो गया है।

58. 'शरादीनां च' (6.3.120.)

शरादिगण पठित शब्दों को मतुप् परे रहते दीर्घ होता है यदि शब्द संज्ञा के रूप में प्रयुक्त हो रहा हो तो।

उदाहरण - शरावती, वंशावती, धूमावती आदि। उदाहृत शब्द संज्ञा रूप में प्रयुक्त होगें, तथी इनके प्रकृति भाग के अन्त्य अण् को दीर्घ होगा।

59. 'इको वहेऽपोलोः' (6.3.121.)

पीलु शब्द को छोड़कर जो इगन्त पूर्व पद वाले शब्द उनको दीर्घ होगा यदि वह शब्द उत्तर पद हो तो।

उदाहरण - ऋषीवहम्, कपीवहम् आदि।

ऋषीवहम् - ऋषि एवं वह शब्दों का समास होने पर इगन्त ऋषि के अन्त्य इकार को दीर्घ होकर ऋषी वह बना। ऋषिवह् सु > ऋषीवहम् बना।

60. 'उपसर्गस्य धञ्यमनुष्ये बहुलम्' (6.3.122.)

धञन्त उत्तरपद रहते अमनुष्य अभिधेय होने पर उपसर्ग के अण् को बहुलता से दीर्घ होता है।

उदाहरण - वीक्लेदः, वीमार्गः, अपामार्गः।

वीक्लेदः - वि क्लिद् धञ्। गुण हो वि क्लेद् अ। धञन्त क्लेद शब्द परे रहते उपसर्ग के अण् को दीर्घ होकर ही क्लेद। वील्लेद सु > वी क्लेदः।

61. 'इकः काशे' (6.3.123.)

इगन्त उपसर्ग को काश शब्द उत्तरपद रहते दीर्घ होता है, यदि संहिता का प्रसंग हो तो।

उदाहरण - नीकाशः, वीकाशः, अनूकाशः आदि।

नीकाशः - नि काश। उपसर्ग के अण् को दीर्घ होकर नी काश। नीकाश सु = नीकाशः।

62. 'दस्ति' (6.3.124.)

दा के स्थान में हुआ जो तकारादि आदेश उसके परे रहते इगन्त उपसर्ग को दीर्घ होता है।

उदाहरण - नीत्तम्, वीत्तम्, परीत्तम् आदि।

नीत्तम् - नि दा क्त > नि द् त् त > नि त् ता दा के स्थान में तकारादि आदेश हुआ है अतएव उसके पूर्व इगन्त उपसर्ग को दीर्घ होकर - नीत्त बना। नीत्त सु > नीत्तम् बना।

63. 'अष्टनः संज्ञायाम्' (6.3.125.)

उत्तरपद परे रहते अष्टन् शब्द को दीर्घ होगा संज्ञा विषय में।

उदाहरण - अष्टावक्रः अष्टाबन्धुरः, अष्टापदम्, अष्टाध्यायी।

अष्टावक्रः - अष्टन् एवं वक्र का समास होने पर अष्टन् वक्र बना। अष्टन् वक्र > अष्ट वक्र। अब अष्ट को दीर्घ होने पर अष्टावक्र बना।

64. 'छन्दसि च' (6.3.126.)

वेद विषय में भी उत्तरपद परे रहते अष्टन को दीर्घ होता है।

उदाहरण - अष्टाकपालम्, अष्टाहिरण्या, अष्टापदी।

अष्टाकपालम् - अष्ट कपाल इस दशा में अष्ट को दीर्घ हो अष्टाकपाल। स्वादि कार्य हो - अष्टाकपालम्।

65. 'चितेः कपिः' (6.3.127.)

कप् प्रत्यय परे हो तो चिति शब्द को संहिता विषय में दीर्घ होता है।

उदाहरण - एक चितीकः, द्विचितीकः, त्रिचितीकः आदि।

एक चितीकः - एक चिति कप्। कप् परे रहते चिति को दीर्घ होकर एक चिती क। एक चितीक सु = एक चितीकः।

66. 'विश्वस्य वसुराटो' (6.3.128.)

यदि वसु अथवा राट् शब्द परे हो तो विश्व शब्द को दीर्घ होगा।

उदाहरण - विश्वावसु विश्वराट।

67. 'नरे संज्ञायाम्' (6.3.129.)

नर शब्द परे हो तो संज्ञा विषय में विश्व शब्द को दीर्घ हो जायेगा।

उदाहरण - विश्वानर।

68. 'मित्रे चर्षौ' (6.3.130.)

मित्र शब्द परे हो और ऋषि अभिधेय हो तो विश्व शब्द को दीर्घ होता है।

उदाहरण - विश्वामित्र।

69. 'मन्त्रे सोमाश्वेन्द्रिय विश्वदेव्यस्य मतौ' (6.3.131.)

मन्त्र विषय में सोम, अश्व, इन्द्रिय, विश्वदेव्य - इन शब्दों को मतुप् परे रहने पर दीर्घ हो जाता है।

उदाहरण - सोमावती, अश्वावती, इन्द्रियावती, विश्वदेव्यावती आदि।

सोमावती -सोमावती - सोमवतुप्। सोम को दीर्घ हो सोमावत्। स्त्रीलिंग में सोमावती।

70. 'ओषधेश्च विभक्तावप्रथमायाम्' (6.3.132.)

मन्त्र विषय में प्रथमा को छोड़ अन्य विभक्तियों के परे रहने पर औषधि शब्द को दीर्घ होता है।

उदाहरण - नाम ओषधीभ्यः। यहाँ औषधि के अन्त्य इकार को दीर्घ हुआ है।

71. 'ऋचितुनुघमक्षुतङ्कुत्रोरूष्याणाम्' (6.3.133.)

तु, नु, घ, मक्षु, तङ् कु, त्र, उरुष्य- इन शब्दों को ऋचा विषय में दीर्घ हो जाता है।

उदाहरण - आ तू न इन्द्र वृत्रहन्। नू मर्तः उत वा घा स्यालात्, मक्षू गोमन्तमीमहे। भरता जातवेदसम्, कूमनः, अत्रा गौः। उरुष्याः णोऽग्नेः।

72. 'इकः सुञि' (6.3.134.)

इगन्त शब्द को मन्त्र विषय में सुञ् (निपात) परे रहने पर दीर्घ होता है।

उदाहरण - अभी षु णः सखीनाम्।

73. 'द्वयचोऽतस्तिङः' (6.3.135.)

द्वि - अच्क अकारान्त क्रिया पद के अकार को ऋचा विषय में दीर्घ होता है।

उदाहरण - विद्मा हि त्वा। यहाँ विद्म - इरु द्वि - अच्क क्रिया पद को दीर्घ हुआ।

74. 'निपातस्य च' (6.3.136.)

ऋचा विषय में निपात को भी दीर्घ होता है।

उदाहरण - एवा ते। एव निपात को दीर्घ हुआ है।

75. 'अन्येषामपि दृश्यते' (6.3.137.)

कहे गये प्रसंगों के अतिरिक्त (अन्य शब्दों को) भी दीर्घ दिखायी पड़ता है।

उदाहरण - केशाकेशि, जलाषाट्, नारकः, पुरूषः।

76. 'चौ' (6.3.138.)

चु (अन्चु) का अकार एवं अकार लोप करने के बाद बचा हुआ स्वरूप परे हो तो पूर्व अण् को दीर्घ होता है।

उदाहरण - दधीचः।

दधीचः - दधि च (अन्चु) शस्। च से पूर्व जो अण् उसे दीर्घ हो दधी च शस् > दधीचः।

77. 'सम्प्रसारणस्य' (6.3.139.)

सम्प्रसारणान्त पूर्वपद के अण् को उत्तरपद परे रहने पर दीर्घ हो जाता है।

उदाहरण - कारीषगन्धीपुत्रः।

कारीष एवं गन्ध का समास, अण् प्रत्यय, अण् का ष्यङ्, चाप् प्रत्यय हो कारीषगन्ध्या शब्द बना। कारीषगन्ध्या एवं पुत्र का समास होने पर कारीषगन्ध्या के यकार का सम्प्रसारण, पूर्व रूप हो कारीषगन्धि पुत्र बना। कारीषगन्धि सम्प्रसारणान्त पूर्वपद है अतः दीर्घ होकर कारीषगन्धी पुत्र बना। स्वादिकार्य हो अभीष्ट शब्द बना।

78. 'हलः' (6.4.2.)

अङ्ग का अवयव जो हल् उससे उत्तरवर्ती सम्प्रसारणान्त अंग को दीर्घ होता है।

उदाहरण - जीनः, संवीतः।

जीनः - ज्या क्त > ज् इ आ क्त > जि त। ज अंग का अवयव हल् है इससे परे सम्प्रसारण इकार है अतः सम्प्रसारणान्त जि को दीर्घ होगा - जी ता। जी त > जी ना जीन सु > जीनः।

79. 'नामि' (6.4.3.5)

नाम् परे हो तो अजन्त अंग दीर्घ होता है।

उदाहरण - रामाणाम्। रामाणाम् - राम आम् > राम् न् आम् > रामनाम्। दीर्घ होने पर - रामानाम् > रामाणाम्।

80. 'नोपधायाः' (6.4.7.)

नकारान्त अंग की उपधा को नाम् परे रहते दीर्घ होगा।

उदाहरण - पंचानाम्, अष्टानाम्, दशानाम्।

पंचानाम् - पञ्चन् नाम्। नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ होकर पञ्चान्। पञ्चान् नाम् > पञ्चानाम्।

81. 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' (6.4.8.)

सर्वनामस्थानसंज्ञक विभक्ति के यदि वह सम्बुद्धि की न हो तो परे रहने पर नान्त अंग की उपधा को दीर्घ होता है।

उदाहरण - राजा, राजानौ, राजानः, राजानम्, राजानौ।

राजा-राजन् सु। नान्त अंग की उपधा को दीर्घ हो - राजान् सु। राजान सु > राजा।

राजानौ - राजन् औ। उपधा दीर्घ हो - राजान् औ = राजानौ।

82. 'वा षपूर्वस्य निगमे' (6.4.9.)

वेद विषय में नकारान्त अंग की उपधा को विकल्प से दीर्घ होता है। यदि उपधा के अच् से पहले षकार हो तो।

उदाहरण - ऋभुक्षाणमिन्द्रम। पक्ष में - ऋभुक्षणम्। ऋभुक्षिन् नान्त अंग है। तथा उपधा के अच् से पूर्व षकार (क्ष = क + ष) है अतः इसकी उपधा को दीर्घ हुआ।

83. 'सान्तमहतः संयोगस्य' (6.4.10.)

सकारान्त संयोग का जो नकार तथा महत् को जो नकार उसकी उपधा को दीर्घ होता है यदि

सम्बुद्धि भिन्न सर्वनाम स्थान विभक्ति परे हो तो।

उदाहरण - श्रेयान, श्रेयांसौ, श्रेयांसः, महान, महान्तौ, महान्तः आदि।

महान - महत् सु > महन्त् सु > महन् सु। महत् के नकार की उपधा को दीर्घ होकर > महान स् > महान्।

श्रेयान् - श्रेयस् सु > श्रेयन् स् सु > श्रेयन् स्। उपधा दीर्घ हो -श्रेयान् स् > श्रेयान्।

84. अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टत्वष्ट क्षतृहोतृपोतृप्रशास्तृणाम् (6.4.11.)

अप्, तृन्, तृच्, स्वसृ, नप्तृ, नेष्ट, त्वष्ट्, क्षतु होतृ, पोतृ, प्रशास्तृ - इन अंगों की उपधा को दीर्घ होता है। सम्बुद्धिभिन्नसर्वनामस्थान प्रत्यय परे हो तो।

उदाहरण - आपः, कर्त्तारः कर्त्तारों, स्वसारौ, नप्तारौ, नेष्टारौ, त्वष्टारौ, क्षत्तारौ होतारौ, पोतारौ, प्रशास्तारौ आदि।

आपः - अप् जस्। उपधा दीर्घ हो - आप् जस्। आप जस् > आपः। कर्त्तारः - कृ तृन् > कर्तृ। कर्तृ जस् > कर्त्त अस्। उपधा दीर्घ हो कर्त्तार् अस्। कर्त्तार् अस् > कर्त्तारः।

स्वसारौ - स्वसृ औ > स्वसर् औ। उपधा दीर्घ हो - स्वसार् औ = स्वसारौ।

85. 'इन्हन्पूषार्यम्णां शौ' (6.4.12.)

इन प्रत्ययान्त हन्, पूषन्, अर्यमन् - इन अंगों की उपधा को शि विभक्ति परे रहते दीर्घ हो जाता है।

उदाहरण - बहुदण्डीनि, बहुवृत्रहाणि, बहुपूषाणि, बह्वर्यमाणि।

बहुदण्डीनि - बहुदण्डिन् शि। दण्डिन् इन प्रत्ययान्त है अतः शि परे रहते इसकी उपधा को दीर्घ हो गया - बहुदण्डीन् शि = बहुदण्डीनि।

86. 'सौ च' (6.4.13.)

लम्बुद्धि भिन्न सु विभक्ति परे रहते भी इन्, हन्, पूष्ण, अर्यमन् - इन अंगों की उपधा दीर्घ हो जाती है।

उदाहरण - दण्डी, वृत्रहा, पूषा, अर्यमा आदि।

वृ त्रहा - वृत्रहन् सु। हन् अंग की उपधा को दीर्घ होने पर - वृत्रहान् सु > वृत्रहा रूप सिद्ध हुआ।

दण्डी - दण्डिन् सु। इन् प्रत्ययान्त दण्डिन् की उपधा दीर्घ हो - दण्डीन् स बना। दण्डीन् सु > दण्डी।

87. 'अत्वसन्तस्यचाधातोः' (6.4.14.)

अतु अन्तवाले और अस् अन्त धातु भिन्न अंग की उपधा को भी दीर्घ हो जाता है यदि सम्बोधन से भिन्न सु प्रत्यय परे हो तो।

उदाहरण - भवान्, कृतवान्, गोमान, सुपयाः, सुयशाः।

गोमान - गोमत् सु। गोमत् शब्द अलन्त है (गो मतुप) अतः प्रथमा एकवचन की सु विभक्ति परे रहते इसकी उपधा को दीर्घ हुआ। - गोमात् सु झ गोमान्।

सुयशः - सुयशस् सु। सुयशस् शब्द असन्त है (यु युद् अश् अज्ञुन) अतः इनकी उपधा को दीर्घ होकर - सूयशाम् सूत्र बना। सुयवशास् झ सु सुयज्ञः।

88. अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति (6.4.15.)

क्वि झलादि कित, ङित प्रलयों के परे अनुनासिकान्त अंग की उपधा को भी दीर्घ होता है।

उदाहरण - प्रशान्, प्रदान, प्रतान्, शान्तः, शंशान्तः आदि।

प्रशान् - प्र शमु क्विप्। क्विप् परे रहते अनुनासिकान्त अंग शम् की उपधा दीर्घ हो - प्र शाम् क्विप्। प्र शाम् क्विप् > प्रशान्। शान्तः - शम् क्त्। झलादि कित - क्व परे रहते अनुनासिकान्त अंग को उपधा दीर्घ होने पर - शाम् त। शाम् त सु > शान्तः। शंशान्तः - शम यङ्। झलादि यङ् परे रहते अनुनासिकान्त अंग की उपधा दीर्घ हो - शाम यङ् हुआ। शाम् यङ् तस् > शंशान्तः।

89. 'अण्झनगमां सनि' (6.4.16.)

अजन्त अंग, हन् तथा गम् - इनसे परि झलादि सन् हो तो इन्हे दीर्घ होता है।

उदाहरण - विवीषति, चिकीर्षति, जिहीर्षति, जिघांसति, अधिजिंगासति।

चिकीर्षति - कृ सन्। कृ अजन्त अंग है अतः इससे परे झलादि सन् रहते इसे दीर्घ प्राप्त हुआ। दीर्घ हो - कृ सन्। कृ सन् तिप् > चिकीर्षति।

जिंघासति - हन् सन्। उपधा दीर्घ होकर - हान् स। हान् स तिप > घान् स् ति > घ घान सति > ज घान मति > जिंघासति। अधिजिंगासति - अधि इङ् सन् > अधि गम् सन्। गम् की उपधा दीर्घ हो - अधि गाम् स। अधि गाम् स लट् > तिप = अधि जिंगासति।

90. 'तनोतेर्विभाषा' (6.4.17.)

तन् अंग को झलादि सन् परे रहते विकल्प से दीर्घ होता है।

उदाहरण - तितांसति। पक्ष में तितंसति।

तितांसति, तितंसति - तन् सन्। दीर्घ पक्ष में - तान् स्। तान् स् तिप् > तितांसति। दीर्घ के अभाव में तन् सन् तिप् > तितंसति।

91. 'क्रमश्च क्त्वि' (6.4.18.)

क्रम की उपधा को झलादि क्त्वा प्रत्यय परे रहते विकल्प से दीर्घ होता है।

उदाहरण - क्रान्त्वा। पक्ष में - क्रन्त्वा।

क्रान्त्वा - क्रम क्त्वा। उपधा दीर्घ होकर - क्राम् त्वा > क्रनत्वा क्रान्त्वा। उपधा दीर्घ न होने पर क्रम क्त्वा > क्रन्त्वा।

92. 'च्छ्वोः शूडनुनासिके च' (6.4.19.)

अनुनासिक प्रत्यय फ्कि प्रत्यय और झलादि कित्. ङित् प्रत्तयों के परे भी तुगागमविशिष्ट 'छ' (= च्छ) और वकार के स्थान में क्रमशः श् और ऊठ् आदेश हो जाते है।

उदाहरण - प्रश्नः, विश्नः, प्राट्, पृष्टवा, द्यूतः, द्युभ्याम्।

प्रश्नः - प्रच्छ नङ्। नङ् अनुनासिकादि प्रत्यय है अतः प्रच्छ के 'च्छ' को श आदेश हो जाता है। प्रश् न = प्रश्न, प्रश्न सु = प्रश्नः।

प्राट् - प्रच्छ् क्विप् > प्राच्छ् क्विप्। च्छ् को श् हो - प्र श् क्विप्। प्राश् क्विप् > प्राश्। प्राश् सु > प्राट।

द्यूतः - दिवक्त। झलादि क्ति परे रहते वकार का ऊठ हो दि ऊ त > द्यूत। द्यूत सु = द्यूतः।

93. 'ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च' (6.4.20.)

ज्वर, त्वर, स्रिहवि, अव, मव - इन अंगों की उपधा एवं वकार के स्थान पर ऊठ् आदेश होता है, क्वि झलादि कित्, ङित् एवं अनुनासिकादि प्रत्यय परे हों तो -

उदाहरण - जूः, जूरः, जूर्त्तिः, तूः, तूरः, तूर्तिः, तूर्णः, सूः, स्रुवौ, स्रुवः, ऊः, औ, उवः, मूः, मुवौः, मुवः, मूतः, मूतिः, मूतिः इत्यादि।

जूः = ज्वर् क्विप्। ऊठ् आदेश हो जू ऊ र क्विप् > जूर्। जूर् सु जूः।

तूर्णः = त्वर क्त्। ऊठ् हो त् ऊ र् त = तूरत। तूरत > तूर्ण तूर्ण सु = तूर्णः।

ऊः = अव क्विप् सु > अव सु। ऊठ् हो अऊ सु। अ ऊसु > ऊ सू > ऊः।

मूतिः = मव क्तिन्। ऊठ् हो म ऊ ति। मऊ ति > मूति सु > मूतिः।

94. 'शास इदङ्हलोः' (6.4.34.)

शास् अंग की उपधा को इकारादेश होगा हलादि कित् कित् प्रत्यय परे हो तो।

उदाहरण - शिष्टः, अशिष्मः, अन्वशिषत्।

शिष्टः = शास् क्त। उपधा को इकार हो - शिस् त। शिस् त > शिष्ट, शिष्ट सु = शिष्टः।

अशिष्मः - अट् शास् मस्। उपधा को इकार हो अ शिस् मस्। अशिस् मस् > अशिष्यः।

अन्वशिषत् - अनु अट् शास् च्लि तिप् > अन्व शास् अंग त्। शस् की उपधा को इकार हो अन्वशिस् अत् = अन्वशिषत्।

95. 'विडबनोरनुनासिकस्यात्' (6.4.41.)

विट् तथा वन् प्रत्यय परे हों तो अनुनासिकान्त अंग को आकारादेश होता है।

उदाहरण - अब्जाः, गोजाः, ऋतजाः, अद्रिजाः, विजावा आदि।

अब्जाः = अप् जन् विट्। विट् परे रहते अनुनासिकान्त अंगजन् को आकारादेश हो - अप् च आ विट्। अ प् ज आ विट् > अब्जा। सु हो अब्जा।

विजावा - वि जन् वनिप् > वि जन् वन् > जन को आकार अन्तादेश होने पर - वि ज आ वन् > विजावन्। विजावन् सु > विजावा।

96. 'तनोतेर्यकि' (6.4.44.)

तनु अंग को विकल्प से यक् परे रहते आकारादेश होता है।

उदाहरण - तायते। पक्ष में - तन्यते।

तन्, अक् त। आत्व हो - त आ य त। त आ य त > तायते आत्वाभाव पक्ष में - तन् य त > तन्यते।

97. 'सनः क्तिचि लोपश्चास्यान्यतरस्याम्' (6.4.45.)

क्तिच् प्रत्यय परे रहते सन् अंग को आकारादेश हो जाता है तथा विकल्प से इसका लोप भी होता है।

उदाहरण - सातिः। लोप पक्ष में सतिः।

सन् क्तिच्। आकारादेश हो - स आ क्तिच् > साति। स्वादि कार्य हो सातिः। आत्व के अभाव में न् का लोप होकर - सति = सति, सति सु = सतिः।

98. 'युप्लुवोदीर्घश्च्छन्दसि' (6.4.58.)

यु और प्लु - इन्हे वेद विषय में ल्यप् परे रहने पर दीर्घ हो जाता है।

उदाहरण - दान्त्यनुपूर्वं वियूय। यत्रा यो दक्षिणा परिप्लूय।

वियूय वि यु ल्यप्। यु को दीर्घ हो वि यू य = वियूय परिप्लूय - परि प्लु ल्यप्। प्लु को दीर्घ हो - परिप्लु य = परिप्लूय।

99. 'जनसनखनां सञ्झलोः' (6.4.42.)

जन्, सन, खन - इन अंगो को आकारादेश होता है यदि झलादि सन् तथा झलादि कित् ङित् प्रत्यय परे हों तो।

उदाहरण - जातः, सिषासति, सातः, खातः, आदि।

जातः - जन क्त। जन् को आकारादेश होकर ज आ त > जात। जात सु = जातः।

सिषासति - सन् सन्। सन् धातु को आकार अन्तादेश हो स आ सन्। स आ सन् >सिषास तिप् = सिषासति।

खातः - खन क्त खन् को आकार अन्तादेश होकर - ख आ त। ख आ त > खात। खात सु हो = खातः।

100. 'ये विभाषा' (6.4.43.)

यकारादि कित् ङित् प्रत्यय परे हो तो जन्, सन्, खन् धातु को आकार अन्तादेश विकल्प से होता है।

उदाहरण - जायते, खायते, सायते। पक्ष में जन्यते, खन्यते, सन्यते।

जायते, जन्यते - जन् यक् त। यकारादि कित् यक् परे रहते जन् के नकार को आत्व हो - ज आ य ते। ज आ य ते > जायते आत्वाभाव में जन् य ते = जन्यते।

101. 'क्षियः' (6.4.59.)

क्षि को दीर्घ होता है ल्यप् परे रहते।

उदाहरण - प्रक्षीयः। प्रक्षीय - प्र क्षि ल्यप्। दीर्घ होकर - प्र क्षी य स्वादिकार्य हो - प्रक्षीयः।

102. 'निष्ठायामण्यदर्थे' (6.4.60.)

ठयत् के अर्थ से भिन्न अर्थ में वर्तमान जो निष्ठा, वह क्षि से परे हो तो क्षि अंक को दीर्घ होता है।

उदाहरण - आक्षीणः, प्रक्षीणः, परिक्षीणः।

आक्षीणः - आङ् पूवर्क क्षि से कर्त्ता अर्थ में क्त। अण्यदर्थ होने से क्षि को दीर्घ हो - आ क्षी त > अक्षीण, आक्षीण सु = आक्षीणः।

'व्योरेव कृत्यक्त खलर्थाः' सू से स्पष्ट है कि कृत्य ण्यत् भाव कर्म में होता है अतः जहाँ क्त, क्तवतु भाव कर्म में नहीं होंगे - कर्त्ता में होंगे वहाँ क्षि को दीर्घ होगा। इससे 'अक्षितम्' में क्षि को दीर्घ नहीं होता।

103. 'वाक्रोशदैन्ययोः' (6.4.61.)

क्षि अंग को अण्यदर्श निष्ठा के परे रहने पर आक्रोश तथा दैन्य गम्यमान होने पर विकल्प से दीर्घ होता है।

उदाहरण - क्षीणायुरेधिः क्षीणकः। पक्ष में - क्षितायुः क्षितकः।

क्षीणायुः, क्षितायुः यहाँ आक्रोश अर्थ में क्षि से अण्यदर्थ में क्त हुआ है। सूत्र द्वारा क्षि को विकल्प से दीर्घ प्राप्त है दीर्घ हो - क्षी त > क्षीण तथा दीर्घ के अभाव में क्षित शब्द बने। आयुः में सन्धि हो क्षीणायुः, क्षितायुः बने।

क्षीणकः क्षितकः - क्षि क्त। यहाँ दैन्य अर्थ में अण्यदर्थ निष्ठा - क्त प्रत्यय हुआ है अतः क्षि को वैकल्पिक दीर्घ प्राप्त है। दीर्घ हो - क्षीत > क्षीण तथा दीर्घाभाव में क्षित बना। कत् प्रत्यय, स्वादिकार्य हो क्षीणकः एवं क्षितकः शब्द बने।

104. 'ईद्यति' (6.4.65.)

अकारान्त अंग को ईकारादेश होता है यत् प्रत्यय परे हो तो।

उदाहरण - देयम्, धेयम्। देयम् - दा यत्। ईकारादेश हो - दी य।

दी य > देय। देय सु > देयम्।

105. 'घुमास्थागापाजहातिसां हलि' (6.4.66.)

घुसंज्ञक मा, स्था, गा, पा, ओहाक्, षो - इन अंगों की उपधा को हलादि कित् ङित् आर्धधातुक परे रहते ईकारादेश होता है।

उदाहरण - मीयते, मेमीयते, स्थीयते, तेष्ठीयते, गीयते, जेगीयते, पीयते, पेपीयते, हीयते, जेहीयते, अवसीयते, अव सेसीयते।

गीयते - गा यक् त। धातु को ईकारादेश हो - गी य त > गीयते। पेपीयते - पा यङ्। पा को ईकारादेश होने पर - पी यङ्। पी य त > पे पी यते।

106. 'एर्लिङि' (6.4.67.)

कित्, ङित्, लिंङ् आर्धधातुक परे रहने पर घु, मा, स्था, गा, पा, हा, सा - इन अंगों को एकारादेश होता है।

उदाहरण - देयात्, मेयात्, धेयात्, स्थेयात्, गेयात्, पयात्, अवसेयात् आदि।

देयांत् - दा लिङ् > दा यासुट तिप्। दा घुसंज्ञक है तथा यामुट कित् (किद् आशिषि सू. से) है अतः दा का एकार होगा - दे यास् ति > देयात्।

मेयात् - या यासुट तिप् > मा या त्। मा का एकारादेश हो - मे यात् = मेयात्।

107. 'वान्यस्य संयोगादेः' (6.4.68.)

घु, मा, स्था आदि से अन्य जो संयोगादि आकारान्त अंग उसको कित्, ङित्, लिङ् आर्धधातुक प्रत्यय परे रहने पर विकल्प से एकारादेश होता है।

उदाहरण - ग्लेयात्, ग्लायात्, म्लेयात्, म्लायात् आदि।

ग्लेयात्, ग्लायात् - ग्लै यामुट, तिप > ग्ला सास् त्। ग्ला को एकारादेश हो - ग्ले या त् = ग्लेयात्। एकारादेश के अभाव में ग्लायात् = ग्लायात्।

108. 'मयतेरिदन्यतरस्यांम्' (6.4.70.)

मेङ् अंग को ल्यप् परे रहने पर विकल्प से इकारादेश होता है।

उदाहरण - अपमित्यः, अपमायः।

अपमित्यः अपमायः - अप मेङ् क्त्वा > अप में ल्यप् इकारादेश हो - अपमि य। अप मि य > अपमित्य। एकादिकार्य हो - अपमित्यः। इकारादेश वैकल्पिक है अतः इकारादेश के अभाव में अप

में य सु > अपमायः शब्द बना।

109. 'ऊदुपधाया गोहः' (6.4.89.)

गोह अंग की उपधा को ऊकारादेश होता है अजादि प्रत्यय परे हो तो।

उदाहरण - निगूहयति, निगूहकः, निगूही इत्यादि।

निगूहयति - नि गुह् णिच्, शप्, तिप् > नि गोह् इ अ ति गोह् की उपधा ओकार को ऊकार होकर - नि गूह इ अ ति। नि गूह इ अ ति > निगोहयति।

110. 'दोषो णौ' (6.4.90.)

दोष अंग की उपधा को णि परे रहने पर ऊकार आदेश होता है।

उदाहरण - दूषयति।

दुष् णिच् शप् तिप् > दोष इ अ ति। दोष की उपधा को ऊकार होकर - दू ष इ अति = दूषयति।

111. 'वा चित्तविरागे' (6.4.91.)

चित्त के विकार अर्थ में दोष अंग की उपधा को णि परे रहने पर विकल्प से ऊकारादेश होता है।

उदाहरण - चित्तं दूषयति दोषयति वा।

दूषयति - दुष् णिच् शप् तिप् > दोष् इ् अ ति। दोष की उपधा को ऊकार होकर - दूष् इ अति > दूषयति। ऊकारादेश के अभाव में दोषयति।

112. 'मितां ह्रस्वः' (6.4.92.)

मित् अंग की उपधा को ह्रस्व होता है, णि परे रहने पर।

उदाहरण - घटयति, व्यथयति, जनयति, शमयति इत्यादि।

घटयति - घट् णिच् > घाट् णिच् (वृद्धि होकर) प्रकृत सूत्र द्वारा उपधा ह्रस्व होने पर घट् णिच्। घट् णिच् तिप् > घटयति।

113. 'चिण्णमुलोदीर्घोऽन्यतरस्याम्' (6.4.93.)

चिण्परक अथवा णमुल्परक णि परे हो तो मित् अंग की उपधा को विकल्प से दीर्घ होगा।

उदाहरण - अशामि अशमि वा। तामन्तामम् तमन्तम्बा।

अशामि, अशमि - अट् शम् णिच् चिण् तिप्। उपधा दीर्घ हो - अट् शाम् इ चिण् तिप् > अशामि। दीर्घ के अभाव में अशमि तामन्तामम्, तमन्तमम् - तम् णिच् णमुल। उपधा दीर्घ होकर ताम् णि अम् > तामन्तामम्। दीर्घ के अभाव में तम् णिच् णमुल् > तमन्तमम्।

114. 'खचि ह्रस्वः' (6.4.94.)

खच्परक णि परे रहते अंङ्ग की उपधा को ह्रस्व होता है।

उदाहरण - द्विषन्तपः, परन्तपः।

द्विषन्तपः - द्विषत् तप् णिच् खच् > द्विषत् ताप् णिच् खच्। अङ्ग की उपधा को ह्स्व होकर - द्विषत् तप णिच् खच् > द्विषन्तप। स्वादिकार्य हो द्विषन्तपः।

115. 'ह्लादो निष्ठायाम्' (6.4.95.)

निष्ठा परे हो तो हलाद् अंग की उपधा को ह्स्व होता है।

उदाहरण - प्रह्लन्नः, प्रहलन्नतान्।

प्रह्लन्नः - प्र ह्लाद् कत्। उपधा ह्स्व हो - प हलद् क्त > प्रह्लन्नः।

116. 'छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य' (6.4.96.)

ऐसे ण्यन्त छादि अंग जो दो उपसर्गों से युक्त न हो के परे घ प्रत्यय हो तो अङ्ग की उपधा को ह्स्व हो जाता है।

उदाहरण - प्रच्छदः, वत्तच्छदः।

प्रच्छदः - प्र छद् णिच् च > प्र छादि घ। उपधा ह्स्व होकर - प्र छवि घ > प्रच्छद। प्रच्छदसु = प्रच्छदः।

117. 'इस्मन्त्रन्क्विषु च' (6.4.97.)

ष्यन्त छादि धातु की उपधा को ह्स्व होगा यदि इस, मन, त्रन, क्वि प्रत्यय परे हो तो।

उदाहरण - छदिः, छदम्, छव्त्रम्, उपच्छत् आदि।

छदिः - छद् णिच् इस् > छाद् णिच् इस्। ह्स्व हो - छद् णिच् इस् > छदिः।

118. 'अत उत्सार्वधातुके' (6.4.110.)

उ प्रत्ययान्त कृ धातु के अकार के स्थान पर उकार आदेश होता है यदि क्ति, ङित् सार्वधातुक परे हो तो।

उदाहरण - कुरुतात्, कुर्वन्ति।

कुरुतात् - कृ उ तिप् > कर् उ तातङ् करुतात्। धातु के अकार को उकार हो - कुरुतात्।

119. 'ई हल्यघोः' (6.4.113.)

घुसंज्ञक को छोड़कर जो श्नान्त अंग एवं अभ्यस्त संज्ञक अंग उनके ऊकार को ईकारादेश होता है, हालादि कित् ङित् सार्वधातुक परे हो तो।

उदाहरण - लुनीतः, पुनीतः, लुनीथः, पुनीथः।

लुनीतः लुञ् श्ना तस् > लु ना तस्। ईकार आदेश हो - लु नी तस् = लुनीतः।

120. 'इद्दरिद्रस्य' (6.4.114.)

दारिद्रा धातु के आकार को इकारादेश होता है हालादि कित् ङित् सार्वसाधुक प्रत्यय परे हो तो।

उदाहरण - दरिद्रतः, दरिद्रियः।

दरिद्रितः - दरिद्रा तस्। धातु के आकार को इकार हो - दरिद्रि तस् = दरिद्रितः।

121. 'भियोऽन्यतरस्याम्' (6.4.115.)

हलादि कित्, ङित् सार्वसाधुक परे हो तो अस् को विकल्प से इकारादेश होता है।

उदाहरण - बिभितः। पक्ष बिभीतः।

बिभितः - भी तस्। अंग को इकार आदेश हो भि तस्। भि तस् बिभितः। ह्स्व के अभाव में भी तस् > बिभीतः।

122. 'जहातेश्च' (6.4.116.)

ओहाक् अंग को भी हलादि कित् ङित सार्वसाधुक प्रत्यय परे रहने पर विकल्प से इकारादेश होता है।

उदाहरण - जहितः, जहीतः वा।

हा तस् > हा शप् तस् > ही तस् > ज ही तम् > अम् को इकार हो जा हि तस् - जहितः। इकार के अभाव में 'ई हल्यघोः' से प्राप्त ईकार ही रह गया औ ज ही तस् = जहीतः शब्द सिद्ध हुआ।

123. 'आ च हौ' (6.4.116.)

ओहाक् अंग को विकल्प से आकारादेश तथा चकारात् इकारादेश भी होता है कित् ङित्

सार्वसाधुक प्रत्यय परे हों तो।

उदाहरण - जहाहि, जहिहि, जहीहि।

हा सिप् > हा हि > ज हा हि। हा को 'ई हल्पघो' से ईकार हो ज ही हि। प्रकृत सूत्र से आत्व हो ज हा हि = जहाहि। आत्व न होने पर पाक्षिक इत्व को जहिहि। आत्व या इत्व न होने पर ज ही हि - तीन रूप बने।

124. 'ध्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च' (6.4.119.)

घुसंज्ञक अंग को एवं अस् को एकारादेश तथा अभ्यास का लोप होता है कित् ङित् परे रहने पर।

उदाहरण - वेहि, धेडि, एधि।

देहि - द दा हि। वा घुसंज्ञक है अतः अंग को एकार आदेश होगा। द दे हि। द दे हि > देहि = देहि। एधि - अस् हि स हि। एत्वहो - ए हि। ए हि > एधि = एधि।

125. 'अत् एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि' (6.4.120.)

लिट् परे रहते अनावेशादि पूर्व पर एक एक हल् हो जिसके ऐषे मध्य में विद्यमान धातु के अकार को एकारादेश हो और अभ्यास का लोप हो यदि कित् ङित् प्रत्यय परे हो तो।

उदाहरण - पेचतुः येमतुः रेणतुः आदि।

पेचतुः = पच् लिट् > पच् अलुस् > पपच अतुस्। धातु के अकार को एकार एवं अभ्यास का लोप हो - पेच् अतुम = पेचतुः।

126. 'थलि च सेटि' (6.4.121.)

लिट् परे रहते जिस अंग के आद्यवयव को आदेश न हुआ हो, इसके ऐसे अकार को एकार हो जो दो हलों के मध्य हो। (अर्थात् अकार से पूर्व एवं परे असंयुक्त हल् हो) तथा अभ्यास का लोप भी हो यदि सेट थल पर हो तो।

उदाहरण - पेचिथ।

पच् थल् > प पच् इट् थल्। सूत्र द्वारा एत्व एवं अभ्यास लोप हो पेच् इ थ > पेचिथ।

127. 'तृफलभजत्रपश्च' (6.4.122.)

तृ, फल, भज, त्रपः इन अंगों के अकार को एकारादेश होगा तथा अभ्यास लोप भी होगा यदि कित्, ङित् लिट और सेट थल् परे हो तो।

उदाहरण - तेरतुः, फेलतुः, भेजतुः, त्रेपे, तेरिथ।

तेरतुः - तृ अतुस् > तर तर् अतुस्। धातु के अकार को एकार एवं अभ्यास लोप होने पर - तेर अतुस > तेरतुः।

तेरिथ - तृ थल् > तृ इट् थल् > तर् इ थ। एत्व हो - तेर इ थ = तेरिथ

128. 'राधो हिंसायाम्' (6.4.123.)

हिंसा अर्थ में वर्तमान राध् अंग के अकार के स्थान पर एकार आदेश हो जाता है तथा अभ्यास का लोप भी होता है। कित्, ङित्, लिट परे हो तो तथा सेट थल् परे हो तो।

उदाहरण - अपरेधतुः, अपरेधिथ आदि।

अपरेधतुः - अप राध् अतुस्। अभ्यास लोप एवं धातु को ऐकार होने पर - अप रेध अतुस् = अपरेधतुः।

अपरेधिय - अप राध् थल् > अप राध इट थल् धातु के अकार को एकार हो - अप रेध् इ य - अपरेधिय।

129. 'वा जृभ्रमुत्रसाम्' (6.4.124.)

जृ भ्रमु, त्रस् - इन अंगो के अकार को एत्व तथा अभ्यास लोप विकल्प से होता है यदि कित्, ङित्, लिट् तथा सेट थल् परे हो तो।

उदाहरण - जेरतुः, भ्रेमिथ, त्रेसुः आदि।

जेरतुः - जृ अतुस् > जर् जर् अतुस्। एत्व एवं अभ्यास लोप ही जेर् अतुस = जेरतुः।

भ्रेमिथ - भ्रमु थल् > भ्रम इट् थल। अकार को एत्व हो भ्रम् इ थ = भ्रेमिथ।

130. 'फणां च सप्तानाम्' (6.4.125.)

फण, राजृ, दुभ्राश्र, टुभ्राजृ, टुभ्लाशृ, स्यमु, स्वन - इन सात धातुओं के अवर्ण के स्थान में विकल्प से एत्व एवं अभ्यास लोप होता है। यदि कित्, ङित्, लिट् तथा सेट् थल् परे हों तो।

उदाहरण - फेणतुः, रेजतुः, भ्रेजे, भ्रेमे, भ्लेशे, स्येमतुः, स्वेनतुः आदि।

पक्ष में - पफणतुः, रराजतः, बभ्राये, बभ्राशे, बम्लाशे, सस्यमतुः सस्वनतुः आदि।

फेणतुः - फण् अतुस् > फण फण अतुस धातु को शब्द एवं अभ्यास लोप होने पर फेणु अतुस् = फेणुतः।

131. 'उद् ईत्' (6.4.139.)

उत् से उत्तर भसंज्ञक अच् को ईकारादेश होता है।

उदाहरण - उदीचः। उत् अन्चु उत् अन्च > उत् अच्। ईकारादेश हो उत् ईच् उदचि। स्वादि हो उदीचः।

132. 'ओर्गुणः' (6.4.146.)

उवर्णान्त भसंज्ञक अंग को गुण होता है, तद्धित परे रहते।

उदाहरण - औपगवः।

उपगु अण्। उपगु भसंज्ञक अंग है ('यचि भम्' सूत्र से) इसे तद्धित अण् प्रत्यय परे रहते गुण होकर - उपगो अण् > आपगव। स्वादि कार्य हो- औपगवः।

133. 'स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां यणादिपरं पूर्वस्य च गुणः' (6.4.156.)

स्थूल, दूर, युप, ह्स्व, क्षिप्र, क्षुद्र - इन अंगों को जो यणादि भाग उसको लोप होता है यदि इष्ठन्, ईयसुन परे हो तथा यषादि से पूर्व को गुण होता है।

उदाहरण - स्थाविष्ठः, स्थवीयान् दविष्ठः, दवीयान, यविष्ठ, यवीयान्, हसिफ, हसीयान्, क्षेपिष्ठः, क्षेपीयान, क्षोविष्ठः, क्षोदीयान्।

स्थाविष्ठः - स्थूल इष्ठन्। इष्ठन् से पूर्व स्थूल का यणादि भाम 'ल' का लोप तथा उस भाग से पूर्व को गुण हो - स्थ् ओ इष्ठन्। स्थो इष्ठन् > स्थविष्ठ स्वादिकार्य हो स्थविष्ठः।

यवीयान् - युवन् ईयसुन। युवन के यणादि पर भाग का लोप तथा उससे पूर्व को गुण हो - यो ईयसुन। यो ईयसुन > यवीयान। स्वादिकार्य हो - यवीयान्।

134. 'ज्यादादीयस' (6.4.160.)

ज्य अंग से उत्तर ईयस् को आकार आदेश होता है।

उदाहरण - ज्यायान्।

ज्य ईयसुन्। ईयस् को आकार आदेश हो - ज्य आयस् > ज्यायस्। ज्यायस् सु > ज्यायान्।

135. 'ई च द्विवचने' (7.1.77.)

द्विवचन के विभक्ति प्रत्यय परे हों तो अस्थि आदि शब्दों को वेद विषय में ईकारादेश होता है और उदात्त होता है।

उदाहरण - अक्षी ते इन्द्र पिङ्गले कपेरिव। अक्षीभ्याः ते नासिकाभ्यां।

अक्षी - अक्षि औ। औ प्रथमा द्विवचन की विभक्ति है अतः अक्षि के अन्तावयव इकार को उदात्त ईकारादेश होकर अक्षी औ बना। पूर्वसवर्ण होकर 'अक्षी' शब्द सिद्ध हुआ।

अक्षीभ्याम् - अक्षि ग्याम्। सूत्र विहित कार्य होकर अक्षीभ्याम् अक्षीभ्याम्।

136. 'दि व् औत्' (7.1.84.)

दिव् अंग को सु परे रहते औकारादेश होता है। उदाहरणार्थ - द्यौः।

उदाहरण - द्यौः - दिव् सु। अब सूत्र द्वारा प्राप्त औकारादेश होकर दि और सु - ऐसा स्वरूप बना। इकार को यण् तथा सु को क्त विषयादि कार्य होकर अपेक्षित रूप सिद्ध हुआ।

137. 'पथिमथ्यृभुक्षामात्' (7.1.85.)

पथिन्, मथिन, फमुक्षिन् - इन अंगो को सु परे रहते आकारादेश होता है

जैसे - पन्थाः, मन्थाः, ऋभुक्षाः आदि।

पन्थाः - पथिन् सु। पथिन् के अन्तावयव नकार को सूत्र विहित आकारादेश होकर पथि आ सु - ऐसी स्थिति हुई। इकार को अकार, थकार को नृ थ आदेश, सवर्णे दीर्घ रुत्व विसर्गादि होकर अभीष्ट रूप बना।

138. 'इतोऽत्सर्वनामस्थाने' (7.1.86.)

पथिन, मथिन, ऋभुक्षिन् - इन अंगों के इकार के स्थान में अकारदेश होता है। सर्वनामस्थान परे रहते।

उदाहरण - पन्था, पन्थानौ, पन्थानः। पन्थानम्, पन्थानौ। मन्थाः, मन्थानौ, मन्थानः, मन्थानम्, मन्थानौ, ऋभुक्षा, ऋभुक्षाणौ, ऋभुक्षाणः, ऋभुक्षाणम्, ऋभुक्षाणौ।

पन्थाः - पथिन् सु। पथिन् के इकार को सूत्र विहित अकार होने पर - पथ् न् सु, ऐसी स्थिति हुई। 'थ' को 'नथ' आदेश न को आत्व, सु को रुत्व विसर्ग होकर यथेष्ठ सिद्धि हुई। इसी प्रकार मन्थाः त्रटभुक्षाः आदि भी सिद्ध होंगे।

139. 'ऋत इद्धातोः' (7.1.100.)

यह सूत्र ऋकारान्त धातु अंग को इकारादेश विहित करता है।

उदाहरण - किरति, गिरति आदि।

सूत्र विहित इकार रपर होकर प्रवृत्त होगा (सू. 'उरण् रपरः के द्वारा) अतः ऋकार के स्थान

पर इर् आदेश होगा। इसके अतिरिक्त यदि अंग धातु की अपेक्षा अन्य जैसे प्रातिपादिक हो तो यह आदेश न होगा।

किरति - कृ तिप > कृ श तिप्। कृ धातु अंग है और ऋकारान्त है अतएव सूत्रविहित कार्य होकर क् इर् अ ति = किरति बना गिरति - गृ तिप > गृ श तिप्। ऋकार को इकार करने पर ग् इर् अ ति = गिरति बना।

140. 'उपधायाश्च' (7.1.101.)

धातु अंग की उपधा में स्थित जो ऋकार उसे भी इकारादेश होता है। (सू. उरण् रपर के बल से ऋकार को विहित अण् कार्य - इकारादेश रपर् होकर प्रवृत्त होगा, अतएव उपधा के ऋकार को इर् आदेश होगा)।

उदाहरण - कीर्त्तयति, कीर्तयतः, कीर्तियन्ति।

कीर्तयति - कृत् णिच् तिप्। सूत्र विहित कार्य होकर क् इर् त् णिच्, तिप् - ऐसा रूप बना। किर् त णिच् तिप् इस दशा में इकार को दीर्घ णिच् के इकार को गुण तथा परवर्ती शप् के अकार एवं णिच् के गुण एकार के स्थान पर अयादेश होकर रूप सिद्ध हुआ।

141. 'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' (7.1.102.)

ओष्ठ्य वर्ण जिस प्रकार से पूर्व में है उस ऋकारान्त धातु को उकारादेश होता है।

उदाहरण - पूर्त्ताः, मुमूर्षति आदि।

पूर्त्ताः - पृ क्त > पृ त। यहाँ पृ ऋकारान्त धातु है तथा ऋकार से पूर्व ओष्ठ्य पकार है अतएव उपर्युक्त सूत्र विहित आदेश प्राप्त होता है। आदेश होकर - प् उर् त ऐसी स्थिति हुई। पश्चात् उकार को दीर्घ होकर प्रथमा बहुवचन में पूर्त्ताः स्वरूप सिद्ध हुआ।

142. 'बहुलं छन्दसि' (7.1.103.)

वेद विषय में ऋकारान्त धातु के अंग को बहुल करके उकारादेश होता है।

उदाहरण - मित्रावरूणौततुरिः। दूरे ह्यध्वा जगुरिः।

ततुरिः - तृ क्रिन्। उकारादेश होकर - त् उर् इ = तुरि बना। ङित्व अभ्यास के उकार को अकारादेश होकर अभीष्ट शब्द बना।

जगुरिः - गृ क्रिन् > गृ इ। सूत्र विहित कार्य होकर ग् इर् इ > गिरि। द्विवचन, अभ्यासादि

कार्य होकर अभीष्ट रूप सिद्ध होगा।

143. 'सिचि वृद्धि परस्मैपदेषु' (7.2.1.)

जिस् सिच् के परे परस्मै पद के प्रत्यय हैं ऐसे सिच् के परे रहते इगन्त अंड्ग को वृद्धि होती है।

उदाहरण - अचैषीत्, अनैषीत्, अलावीत्।

अचैषीत् - अट् चिञ् सिच् तिप् > अ चि स् ईट् ति > अ चि स् ई ति > अ चि स् ई त्। चि इगन्त है जिससे परस्मै पद प्रत्यय परक सिच् परे है। अतएव वृद्धि होकर अ चै सी त् बना। षष्व होकर रूप सिद्ध हुआ।

144. 'अतो ल्रान्तस्य' (7.2.2.)

अकार के समीप जो रेफ तथा लकार तदन्त अंग के अकार के स्थान में ही वृद्धि होती है। यदि परस्मैपदपरक सिच् परे हो तो।

उदाहरण - अक्षारीत्, अत्सारीत्, अलावीत्।

अक्षारीत् - क्षर्, लुङ > अट् क्षर्, च्लि, तिप् > अट्, क्षर, इट, सिव्, ईट, तिप्। क्षर में रेफ अकार के समीप है। क्षर से परे परस्मै पद तिप् प्रत्यय परक सिच् है अतएव धातु अंग क्षर के अकार को सूत्र द्वारा वृद्धि प्राप्त हुई। तब अकार की सवर्ण वृद्धि आकार होकर - अट् क्षार् इ सिच् ई तिप् ऐसी दशा बनी। तिप् के इकार का लोप् सिच् के सकार का लोप इट् तथा ईट् के इकार को सवर्ण दीर्घ हो अपेक्षित शब्द सिद्ध हुआ।

145. 'वदव्रजहलन्तस्याचः' (7.2.3.)

वद्, व्रज तथा हलन्त अंगों के अन् के स्थान में वृद्धि होती है यदि परस्मैपदपरक सिच् परे हो तो

उदाहरण - अवादीत्, अव्राजीत्, अपाक्षीत्, अगादीत् आदि।

अवादीत् - अट् वद् इट् सिच् ईट्, तिप = अ वद् इ, स, ई, त् वद् के अच् को सूत्र विहित वृद्धि प्राप्त होने पर अकार को सवर्ण वृद्धि आकार होकर - अ वाद् इ स ई त् ऐसी स्थिति हुई। सिच्, लोप इ एवं ई का सवर्ण दीर्घ हो रूप सिद्ध हुआ।

अव्राजीत् - अ ब्रज इ स ई त्। वृद्धि होने पर अ वाज् इ स ई त्। अन्य कार्य होकर अभीष्ट रूप बना।

अपाक्षीत् - अप पच् स ई त्। पच् हलन्त धातु है अतः सूत्र विहित वृद्धि होकर अ पाच् स ईत् बना। पश्चात् सकार को कुत्व एवं वर्णमेल हो प्रयोग सिद्ध हुआ।

146. 'ग्रहोऽलिटि दीर्घः' (7.2.37.)

ग्रह धातु से उत्तर लिट्भिन वलादि आर्धधातुक परे रहते इट् को दीर्घ होता है।

उदाहरण - ग्रहीता, ग्रहीतुम आदि।

ग्रहीता - ग्रह तृच् > गृह इट् तृच् = ग्रह इ तृ तृच। वलादि एवं आर्धधातुक प्रत्यय है अतएव इट् को सूत्र विहित दीर्घ होकर ग्रह् ई तृ > गृहीत बना। इससे प्रथमा एकवचन में ग्रहीता रूप सिद्ध हुआ।

147. 'वृतो वा' (7.2.38.)

वृ तथा ऋकारान्त धातु से उत्तर लिट् को विकल्प से दीर्घ हो यदि उससे परे वलादि आर्धधातुक प्रत्यय हो तो

उदाहरण - वरिता, वरीता। तरिता, तरीता।

वरिता, वरीता - वृ (वृङ या वृञ्) तृच् > व् अर् त् > वर इट् तृ > व् र् इ तृ। सूत्र द्वारा वैकल्पिक दीर्घ प्राप्त होने पर दीर्घ पक्ष में वर् ई तृ = तथा दीर्घ अभाव पक्ष में वरितृ दो प्रतिपादिक बने। इनसे प्रथमा एकवचन में क्रमशः वरीता एवं वरिता ये दो रूप बने।

तरीता, तरिता - तृ तृच् > तर तृ > तर् इ तृ। इट्, दीर्घ होकर तरीतृ तथा दीर्घाभाव पक्ष में तरितृ। प्रथमा एकवचन में। तरीता एवं तरिता ये दो रूप बने।

148. 'ईदास' (7.2.83.)

आस् से उत्तर आन् शब्द को ईकारादेश होता है।

उदाहरण - आसीन्।

आसीनः - आस् शप् शानच् > आस् आन। आन के आकार को "आदेः परस्य" नियम से > ईकारादेश होने पर - आस् ईन् आसीन्। स्वादिकार्य हो कर शब्द सिद्ध हुआ।

149. 'अष्टन आ विभक्तौ' (7.2.84.)

अष्टन अंग को विभक्ति प्रत्यय परे रहते आकारादेश होता है।

उदाहरण - अष्टाभिः, अष्टाभ्यः, अष्टानाम्, अष्टासु।

अष्टाभिः - अष्टन् भिस्। अष्टन् को आकार अन्तादेश होकर - अष्ट आ भिस् ऐसा रूप

हुआ। सवर्णदीर्घ रुत्व विसर्गादि होकर यथेष्ट स्वरूप बना

अष्टाभ्यः - अष्टन् भ्यस्। आत्वादेश हो - अष्ट आभ्यस्। अष्टाभ्यः रूप सिद्ध हुआ।

150. 'रायो हलि' (7.2.85.)

रे अंग को हलादि विभक्ति परे रहते आकारादेश होता है।

उदाहरण - राभ्याम्, राभिः।

राभ्याम् - रै भ्याम्। सूत्र विहित आत्वादेश होकर र आ भ्याम् = राभ्याम्।

राभिः - रे भिस्। सूत्र द्वारा प्राप्त आत्वादेश होकर र् आ भिस् = राभिस् बना। रुत्वविसर्ग हो राभिः बना।

151. 'युष्मदस्मदोरनादेशे' (7.2.86.)

युष्मद् तथा अस्मद् अंग को आदेश रहित विभक्ति के परे रहते आकारादेश होता है।

उदाहरण - युष्माभिः, अस्माभिः, युष्मासु, अस्मासु।

युष्माभिः - युषाद् भिस्। यहाँ भिस् मूल विभक्ति प्रत्यय है जिसे कोई भी आदेश नहीं हुआ है अतएव सूत्र द्वारा युष्मद् अंग को साकार अन्तादेश प्राप्त हुआ। युष्म आ भिस् - आदेश होकर यह रूप बना। सवर्णदीर्घ, रुत्व विसर्ग हो रूप सिद्ध हुआ अस्माभिः - अस्मद् भिस्। आत्वादेश होकर अस्म आ भिस् अस्माभिः।

युष्मासु - अस्मद् सुप्। सूत्र विहित आत्वादेश होकर अस्म आ सु - ऐसी दशा हुई। सवर्ण दीर्घ एवं वर्णमेल होकर अस्मासु बना।

152. 'द्वितीयायां च' (7.2.87.)

द्वितीया विभक्ति के परे रहते भी युष्म तथा अस्मद अंग को आकारादेश होता है।

उदाहरण - त्वाम्, माम्, युवाम्, आवाम्, युष्मान्, अस्मान्।

त्वाम्, माम् - युष्मद् अम्, अस्मद् अम् > त्व अद् अम्, म, अद्अम ('त्वमावेकवचने' से) त्वद्, अम्, मद्, अम्। अब प्रकृत सूत्र द्वारा प्राप्त आत्व होकर त्व आ अम्, म आ अम् - ऐसा रूप हुआ अब पूर्व अकार एवं आकार को सवर्ण दीर्घ होकर आकार एवं इस आकार एवं अम् के अकार को सवर्ण दीर्घ आकार हो रूप सिद्ध हो गये।

युवाम् - युष्मद् औट् > युष्मद् अम् ("ङे प्रथमयोरम्" सूत्र से) युव अद् अम् ('युवाऽवौ

द्विवचने' से) युवद् अम्। सूत्र विहित आत्व होकर युव आ अम् - ऐसा रूप हुआ। वकरोत्तवर्ती अकार एवं आकार को सवर्ण दीर्घ आकार एवं आकार एवं अकार को सवर्ण दीर्घ आकार हो युवाम् शब्द बना। इसी प्रकार आवाम् भी सिद्ध होगा।

युष्मान् - युष्मद् शस् > युष्मद् अस् > युष्मद् न् स् (शसो न सूत्र से) अब सूत्र विहित आत्वादेश होकर युष्म आ न् स् यह रूप हुआ। मकारोन्तवर्ती अकार एवं उसके परवर्ती आकार को सवर्णदीर्घ तथा सकार का संयोगान्त लोप होकर रूप सिद्ध होगा।

153. 'प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्' (7.2.88.)

भाषा में अर्थात् लौकिक संस्कृत में प्रथमा विभक्ति के द्विवचन के परे रहते भी युष्मद एवं अस्मद् को आकारादेश होता है।

उदाहरण - युवाम्, आवाम्।

युवाम् - युष्मद् औ > युष्मद अस् > युव अद् अम् > युवद् अम् सूत्र द्वारा प्राप्त आत्वादेश होकर युव आ अम् बना। पहले युव एवं आ के अकार एवं आकार का सवर्ण दीर्घ पश्चात् उस सवर्णदीर्घ आकार एवं अम् के अकार का सवर्ण दीर्घ हो अभीष्ट रूप बना।

आवाम् - आवद् अम्। आत्व होकर - आव आ अम् बना सवर्ण दीर्घ होकर रूप बना।

154. 'त्यदादीनामः' (7.2.102.)

त्ययादि अंगों को विभक्ति परे रहते अकारादेश होता है।

उदाहरण - व्यद् - स्यः, त्यौ, त्ये।

तद् - सः, तौ, ते।

यद् - यः, यौ, ये।

एतद् - एषः, एतौ, एते।

इदम् - अयम्, इमौ, इमे।

अदस् - असौ, अमू, अमी।

द्वि - द्वौ, द्वाभ्याम्

स्यः - त्यद् सु > स् तद् सु। सूत्र विहित अकारादेश होकर - स्य अ सु - इस प्रकार की स्थिति हुई।

अकार द्वय के स्थान पर पर रूप एकादेश एवं सु को रुत्व - विसर्ग होकर प्रयोग सिद्ध हुआ।

त्यै - त्यद् औ > स् य द् औ। अकारादेश होकर स्य अ औ बना। यकार के अकार एवं परवर्ती अकार को पर रूप एकादेश अकार एवं उस अकार एवं औंकार के स्थान पर पर रूप ओंकार ही रूप सिद्ध होगा।

ते - तद् जश् > तद् शी। सूत्र विहित अकारादेश होने पर - त अ ई। पररूप अकार एवं इस अकार ईकार को गुण एकारादेश होकर 'ते' बना।

यः - यद् सु > ए स द् सु। सूत्र विहित आत्वादेश होकर ए स अ स्। सकार के अकार एवं अकार को पररूप अकार एकादेश, षत्व, रुत्व विसर्ग हो प्रयोग सिद्ध हुआ।(2) त्य दारिगण में पठित शब्दों में त्यद से लेकर द्विपर्यन्त शब्दों को ही अत्व होता है। परवर्ती भवत आदि शब्दों में यह अकारादेश नहीं होता।

155. 'अदस औ सुलोपश्च' (7.2.107.)

अदस् को सु परे रहते 'औ' आदेश और सु का लोप होता है।

उदाहरण - असौ।

असौ - अदस् सु। सूत्र विहित 'औ' आदेश एवं 'सु' लोप होकर - अद् औ बना। द को स एवं पररूप एकादेश होकर रूप सिद्ध हुआ।

156. 'मृजेर्वृद्धिः' (7.2.114.)

मृज अंग के इक् के स्थान में वृद्धि होती है।

उदाहरण - मार्ष्टा, मार्ष्टुम, मार्ष्टव्यम्।

मार्ष्टा - मृज तृच्। वृद्धि होकर - म् आर् ज् तृ बना। षत्व एवं ष्टुत्व होकर प्रथमा एकवचन में प्रयोग सिद्ध होगा। मार्ष्टुम - मृज् तुमुन। वृद्धि होकर - म् आर् ज् तुम। षत्व ष्टुत्वादि होकर प्रयोग सिद्ध होगा।

157. 'अचोञ्णिति' (7.2.115.)

ञित्, णित्, प्रत्यय परें हों तो अजन्त अंग को वृद्धि होती है।

उदाहरण - ञित - कारः, हारः

णित् - कारकः

कारः - कृ घञ्। सूत्र द्वारा प्राप्त वृद्धि करने पर - कृ आर् अ, ऐसा रूप बना। प्रथमा एकवचन में 'कार' शब्द सिद्ध हुआ। कारकः - कृ ण्वुल > कृ वु > कृ अक। सूत्रविहित वृद्धि होकर कृ आर् अक = कारक बना। प्रथमा एकवचन में कारकः शब्द बना।

158. 'अत उपधायाः' (7.2.116.)

अंग की उपधा अकार के स्थान में वृद्धि हो यदि ञित् अथवा णित् प्रत्यय परे हों तो।

उदाहरण - ञित् - पाकः त्यागः।

णित् - पाचकः, पाठयति।

पाकः - पच् घञ्। पच् अंग की उपधा अकार को वृद्धि होकर - पाच् अ ऐसी स्थिति हुई। चकार को कुत्व एवं स्वादिकार्य हो शब्द सिद्ध हुआ।

पाचकः - पच् ण्वुल। पच् अक्। उपधा के अकार को वृद्धि होकर पाच् अक = पाचकः।

159. 'तद्धितेष्वचामादेः' (7.2.117.)

ञित्, णित्, तद्धित परे हो तो अंग के अचों में आदि अच् को वृद्धि होती है।

उदाहरण - ञित् - गार्ग्यः, वात्स्यः।

णित् - औपगवः कापटवः।

गार्ग्यः - गर्ग यञ् > गर्ग य। यञ् प्रत्यय ञित् है एवं तद्धित प्रत्यय है। अतएव अंग गर्ग के आदि अच् को वृद्धि प्राप्त होती है। वृद्धि होकर - गार्ग य बना। अकार क लोप एवं स्वादिकार्य होकर अभीष्ट रूप बना।

औपगव : - उपगु अण्। सूत्रविहित आदि अच् की वृद्धि होकर औपगु 'अ' बना। गुण, अवादेश हो शब्द सिद्ध हुआ।

160. 'किति च' (7.2.118.)

कित् तद्धित प्रत्यय परे हो तो अंग के अचों में आदि अच् को वृद्धि होती है।

उदाहरण - नाडायनः, चारायणः, आक्षिकः।

नाडायनः .... नड फक्। फक् कित् प्रत्यय है अतः अंग नड के आदि अच् नकारोत्तरवर्त्ती अकार को वृद्धि प्राप्त हुई तब अकार का सवर्ण आकार अक्षर अकार के स्थान पर होकर नाड फ ऐसा रूप बना। पश्चात् फ को आयन एवं डकारोत्तवर्ती अकार का लोप एवं स्वादिकार्य होकर

अभीष्ट रूप सिद्ध हुआ।

आक्षिक - अक्ष्, ठक्। ठक् कित् तद्धित प्रत्यय है अतएव सूत्रविहित वृद्धि प्राप्त हुई तब आदि अच् अकार के स्थान पर उसका सवर्ण तद्धित संज्ञक वर्ण आकार आदेश हो - आक्ष ठ बना।

161. 'देविकाशिंशपादित्यवाट्दीर्घसत्रश्रेयसामात्' (7.3.1.)

देविका, शिंशया, दिव्याट, दीर्घसूत्र, श्रेयस् - इन शब्दों के आदि अच् को वृद्धि का प्रसंग हो तो आकारादेश होता है यदि ञित् अथवा णित् या कित् तद्धित प्रत्यय परे हो तो।

यह सूत्र देवकारि पाँच शब्दों को आदि वृद्धि के अपवाद स्वरूप आत्वादेश का विधान करता है। फलतः जहाँ देविका, शिंशपा आदि के एकार इकार को वृद्धि होती वहाँ अब वृद्धि बांछित होकर आकारादेश प्राप्त होगा।

उदाहरण - दाविकम्, शांशपः, दात्यौहम्, दीर्घसत्त्रम्, श्रायसम्।

दाविकम् - देविका अण्। इस स्थिति में देविका शब्द को सूढ 'तद्धितेष्वचामादेः' 7.2.117. से अभिवृद्धि प्राप्त है तब आलोच्य मान सूत्र वृद्धि का बाध करके आत्वादेश का विधान करता है और - द आ विका अ > दाविका अ ऐसा स्वरूप बनाता है पश्चात् अन्त्याकार का लोप एव सु, सु को अम् हो अभीष्ट प्रयोग सिद्ध होता है।

शांशपः - शिंशपा अञ् अथवा अण्। यहाँ भी "सू. तद्धितेष वचामादेः" से आदि अच् को वृद्धि प्राप्त है। इस वृद्धि को बाधित कर आत्वादेश प्राप्त हुआ और - श् आंशय् अ = शांशप् अ ऐसी स्थिति हुई। अन्त्य अकार का लोप हो एवं स्वादिकार्य होकर 'शांशयः' शब्द सिद्ध हुआ।

दात्यौहम् - दित्यवाह् अण्। सूत्र द्वारा विहित आदि अच् को आत्व करने पर - द आ त्यवाह् अ - दात्यवाह बना। सम्प्रसारण पूर्वरूप एवं विभक्त्यादि कार्य होकर रूप सिद्ध हुआ।

दीर्घसूत्रम् - दीर्घसत्र अण्। आदि अच् को आत्व होकर - द् आ र्घसत्र अ = दीर्घसत्र अ > दीर्घसत्र सु = दीर्घसत्र अम् = दीर्घसूत्रम्।

श्रायसम् - श्रेयस् अण्। आदि अच् को आत्व होकर श्र आ यम् अ = श्रायस। विभक्ति कार्य करने पर अपेक्षित रूप सिद्ध हुआ।

162. 'अवयवाध्तोः' (7.3.11.)

अवयववाची पूर्वपद से उत्तर ऋतुवाची उत्तरवद् शब्द के अचों में आदि अच् को तद्धितभिन्न

ञित्, णित्, कित् प्रत्यय परे रहते वृद्धि होती है।

उदाहरण - पूर्ववार्षिकम्, अपरहैमनम्।

पूर्ववार्षिकम् - पूर्व वर्षा ठक्। यहाँ उत्तरपद ऋतुवाचक है तथा पूर्वपद असका अवयववाची है अतएव उपर्युक्त सूत्र द्वारा उत्तरपद के आदि अच् को वृद्धि प्राप्त हुई। तब अकार के स्थान पर सवर्ण संज्ञक आकार वृद्धि वर्ण आदेश होकर पूर्व व् आ र्षठ > पूर्ववार्षा ठ बना। ठ को इक् अन्त्य आकार का लोप एवं विभक्ति कार्य होकर रूप सिद्ध हुआ।

अपरहैमनम् - अपर हेमन्त अण्। उत्तरपद के आदि अच् हकारोत्तरवर्त्ती एकार को सवर्ण वृद्धि वर्ण एकार होकर अपर है ऐ मन्त अ, ऐसी स्थित हुई, तब अण् प्रत्यय के साथ विहित तकार लोप एवं विभक्ति कार्य होकर 'अपर है मनम्' शब्द सिद्ध हुआ।

163. 'सुसर्वार्धाज्जनपदस्य' (7.3.12.)

सु, सर्व तथा अर्द्ध शब्द से उत्तर जनपदवाची उत्तरपद के अचों में आदि अच् को ञित्, णित् अथवा कित् तद्धित प्रत्यय परे रहते वृद्धि होती है।

उदाहरण - सुपाञ्चालकः, सर्वपाञ्चालकः, अर्द्धपाञ्चालकः।

सुपाञ्चालकः - सुपाञ्चाल वुन। सुपाञ्चाल शब्द में उत्तरवर्ती पद पाञ्चाल एक विशेष जनपद का बोधक है अतएव आलोच्य सूत्र द्वारा इसके आदि अच् को वृद्धि होगी। अब अकार को वृद्धि आकार होकर - सु प् आ ञ्चाल वु। क्षुपाञ्चाल अक सुपाञ्चालक सु = सुपाञ्चालकः।

सर्वपाञ्चालकः - सर्वपाञ्चाल वुन। सर्व शब्द से परे जनपदवाची पाञ्चाल शब्द होने से सूत्र द्वारा उत्तर पद के आदि अच् को वृद्धि होकर सर्व पाञ्चाल बु बना। बु को अक् और विभक्ति कार्य होकर प्रयोग सिद्ध होगा।

अर्द्धपाञ्चालकः - अर्द्धपाञ्चालकाः - अर्द्ध पाञ्चाल वु। उत्तरपद के आदि अच् को वृद्धि होकर अर्द्ध प् आञ्चाल वु = अर्द्धपाञ्चाल अक बना। अपेक्षित कार्य होकर अभीष्ट प्रयोग सिद्ध होगा।

164. 'दिशोऽमद्राणाम्' (7.3.13.)

दिशावाची शब्दों से उत्तर यदि जनपदवाची शब्द हो तो उत्तरपद के आदि अच् को तद्धित ञित् णित् तथा कित् प्रत्यय परे होते वृद्धि होती है। किन्तु उत्तरपद यदि जनपदवाची मद्र शब्द हो तो वृद्धि नहीं होगी।

उदाहरण - पूर्वपाञ्चालकः, दक्षिण पाञ्चालकः।

पूर्वपाञ्चालकः - पूर्वपाञ्चाल बुन। पूर्व शब्द यहाँ पूर्व दिशा का बोधक है अतएव उत्तरपद के आदि अच् को वृद्धि होगी - पूर्व प आ ञ्चाल वु = पूर्व पाञ्चाल वु = पूर्वपाञ्चालकः।

पूर्व शब्द यदि अवयववाची हो जैसे - पूर्व पाञ्चालानां पूर्वपाञ्चालः। तत्रभवः इस प्रसंग में उत्तरपद के आदि अच् को वृद्धि नहीं होगी और 'पौर्वपाञ्चालः' ऐसा प्रयोग बनेगा।

165. 'प्राचां ग्रामनगराणाम्' (7.3.14.)

दिशावाची शब्दों के परे यदि प्राच्य देश के वाचक ग्राम एवं नगर के वाचक शब्द हों तो उत्तरपद के आदि अच् को वृद्धि होगी यदि ञित्, णित् अथवा कित् तद्धित प्रत्यय परें हों तो।

उदाहरण - पूर्वेषुकामशमः, पूर्वपाटलिपुत्रकः।

पूर्वेषुकामशम - पूर्वइषुकामशमी ञ। यहाँ 'पूर्व' एवं 'इषुकामशमी' शब्दों से बने समस्त शब्द 'पूर्वेषुकामशमी' से 'तत्र-भवः' अर्थ में ञ प्रत्यय हुआ है। 'पूर्व' शब्द दिशावाचक है, इषुकामशमी ग्राम वाचक है और इनसे परे ञित् ञ प्रत्यय है अतएव सूत्र द्वारा उत्तरपद इषुकामशमी को इकार को वृद्धि होगी - पूर्व ऐषुकामशमी। पश्चात् एकादेश एवं विभक्त्यादि कार्य होकर अभीष्ट रूप सिद्ध होगा।

पूर्व पाटलिपुत्रकः - पूर्व पाटलिपुत्र वुन् उत्तरपद 'पाटलिपुत्र' के आदि अच् आकार को वृद्धि प्राप्त हुई। आकार को वृद्धि आकार ही होगा। क्योंकि स्थान प्रयत्न का साम्य आकार से ही है। इस प्रकार वृद्धि होने पर - पूर्व पाटलिपुत्र वुन हुआ।

166. 'संख्यायाः संवत्सरसंख्यस्थ च' (7.3.15.)

संख्यावाची शब्द से उत्तर संवत्सर शब्द के तथा संख्यावाची के आदि अच् को वृद्धि होती है। यदि ञित् अथवा णित् अथवा कित् तद्धित प्रत्यय परे हों तो।

उदाहरण - द्विषाटिकः, द्विसांवत्सरिकः।

द्विसांवत्सरिकः - द्वि संवत्सर ठञ्। द्वि संख्यावाची शब्द है इससे उत्तर संवत्सर शब्द है तथा इन शब्दों से बने समास शब्द से परे ञित् ठञ् प्रत्यय हुआ है तब सूत्र द्वारा संवत्सर शब्द के आदि अच् को वृद्धि प्राप्त हुई। सकारोत्तरवर्ती अकार को वृद्धि आकार हो - द्वि सांवत्सर ठञ ऐसी स्थिति हुई ठ को इक्, अन्त्य अकार लोप, विभक्ति कार्य होकर अभीष्ट रूप सिद्ध होगा।

द्विषाष्टिकः - द्वि षष्टि उञ्। इस शब्द में संख्यावाची 'द्वि' से परे संख्यावाची 'षष्टि' शब्द

है अतः सूत्र द्वारा संख्यावाची षष्टि के आदि अच् को वृद्धि होगी - द्वि षाष्टि ठञ्। द्वि षाष्टि ठञ् > द्विषाष्टिक।

167. 'वर्षस्याभविष्यति' (7.2.16.)

संख्या शब्द से उत्तर वर्ग शब्द के अर्थों में आदि अच् को ञित्, णित् तथा कित् तद्धित प्रत्यय परे रहते वृद्धि होगी यदि वह प्रत्यय भविष्यत अर्थ में न हुआ हो तो।

उदाहरण - द्विवार्षिकः, त्रिवार्षिकः।

द्विवार्षिक : द्वि वर्ष ठञ्। सूत्र विहित वृद्धि होकर - द्वि वार्ष ठञ् वर्ष के अन्त्य अकार का लोप 'ठ' को इक् तथा विभक्ति कार्य होकर अभीष्ट रूप बना।

168. 'परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोः' (7.3.17.)

जिसके अन्त में परिमाणवाची शब्द हो ऐसे अंग के संख्यावाची शब्द से परे जो उत्तरपद उसके आदि अच् को वृद्धि होती है यदि अम् से ञित् अथवा णित् या कित् तद्धित प्रत्यय परे हो किन्तु संज्ञा विषय में अथवा शाण शब्द उत्तरपद हो तो सूत्रोपदिष्ट कार्य नहीं होगा।

उदाहरण - द्विनैष्किकम्, द्विसौवर्णिकम्।

द्विनैष्किकम् - द्वि निष्क ठञ्। द्वि संख्यावाची शब्द है और निष्क परिमाणवाची। परिमाणान्त द्वि निष्क से ञित् ठञ् परे है अतः उत्तरपद निष्क के आदि अच् इकार को वृद्धि प्राप्त हुई। तब आन्तर्तम्य होने से इकार के स्थान पर ऐकार वर्ण होकर - द्विनैष्क ठञ हुआ। ठञ् को इक् अन्त्य अकार लोप एवं स्वादिकार्य हो प्रयोग सिद्ध हुआ।

द्विसौवर्णिकम् - द्वि सुवर्ण ठञ्। उत्तरपद के आदि अच् अकार की दृष्टि प्राप्त है। उकार का सवर्ण औकार हे अतः उकार को औकार होकर - द्विसौवर्ण ढञ्।

169. 'जे प्रोष्ठपदानाम्' (7.3.18.)

जात् अर्थ में विहित जो नित् णित् या कित् तद्धित प्रत्यय उसके परे रहते प्रोष्ठपद अंग के उत्तरपद के अचों में आदि अच् को वृद्धि होती है।

उदाहरण - प्रोष्ठपादः।

प्रोष्ठपादः - प्रोष्ठपद अण्। यहाँ 'प्रोष्ठपदासुजातः' इस अर्थ में प्रोष्ठपद से णित् अण् तद्धित प्रत्यय हुआ है अतः अंग के उत्तरपद पद के आदि अच् को वृद्धि हुई - प्रोष्ठ पाद अण्। प्रोष्ठपाद के

अन्त्य अकार का लोप एवं विभक्ति कार्य होकर 'प्रोष्ठपादः' बना।

170. 'हृदभगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च' (7.3.19.)

हृद, भग, सिन्धु - ये शब्द जिन अंगों के अन्त में हों उनके पूर्वपद के तथा उत्तरपद के अचों में आदि अच् को वृद्धि होती है ञित्, णित् तथा कित् प्रत्यय परे रहते।

उदाहरण - सौहार्दम्, सौहादर्यम्, सौभाग्यम्, साक्तुसैन्धवः आदि।

सौहार्दम् - सुहृदय अण् > सुहृद् अण्। सुहृद् शब्द के अन्त में हृद शब्द है तथा इससे परे णित् अण् प्रत्यय है अतः सूत्रविहित वृद्धि होगी। पूर्वपद सु के आदि अच् उकार को वृद्धि ओकार तथा हृद के आदि अच् ऋकार को वृद्धि रपर होकर - सौ हार् द् अ = सौहार्द बना। प्रथमा एकवचन में 'सु' सु को अम् होकर प्रयोग सिद्ध हुआ।

सौभाग्यम् - सुभग् यत्। पूर्व एवं उत्तरपद के आदि अचों को वृद्धि होकर - सौ भाग य = सौभाग्य बना।

साक्तु सैन्धवः - सक्तु सिन्धु अण्। पूर्व एवं उत्तरपदों के आदि अच् को सूत्रविहित वृद्धि होकर - साक्तु सैन्धु अण्।

171. 'अनुशतिकादीनाम् च' (7.3.20.)

अनुशतिक - आदि अंगों के पूर्वपद तथा उत्तरपद के अचों में आदि अच् को ञित्, णित्, कित्, तद्धित परे रहते वृद्धि होती है।

उदाहरण - आनुशातिकम्, आनुसांवत्सरिकः, आन्गारवैणतः आदि।

आनुशातिकम् - अनुशतिक अण्। पूर्व पद के आदि अच् आकार एवं उत्तरपद के आदि अच् शकारोत्तरवर्ती अकार को सूत्र द्वारा वृद्धि विहित हुई। तब दोनों के स्थान पर इनका सवर्ण वृद्धि संज्ञक वर्ण आकार का आदेश होगा - आनुशातिक अण्। आनुशातिक सु = आनुशातिकम्।

आन्गारवैणवः - अन्गारवेणु अण्। पूर्वपद के आदि अच् अकार को सूत्र द्वारा वृद्धि आकार एवं उत्तरपद के आदि अच् एकार को वृद्धि ऐकार होकर - अन्गारवैषु अण् बना। अवादेश, स्वादिकार्य होकर आन्गारवैणवः सिद्ध हुआ।

अनुशातिकादि गण को शब्द(3) - अनुशतिक अनुहाह, अनुसवरण, अनुसंवत्सर, अङ्गारवेणु, असिहत्य, वध्योग, पुष्करसत्, अनुहरत, कुरुकत्, कृरुपान्चाल, उदकशुद्ध, इहलोक, परलोक, सर्वलोक,

सर्वपुरूष, सर्वभूमि, प्रयोग, परस्त्री, सूत्रनऽ। इन सभी शब्दों से ञित्, णित् या कित् तद्वित होने पर पूर्व एवं उत्तर पदों के आदि अच् को वृद्धि होगी।

172. 'देवताद्वन्दे च' (7.3.21.)

देवतावाची द्वन्द्व समास में भी पूर्व पद् तथा उत्तरपद के अचों में आदि अच को ञित् अथवा णित् अथवा कित् तद्धित परे रहते वृद्धि होती है।

उदाहरण - आग्निमारुतम्, आग्निवारुणम्।

आग्निमारुतम् - अग्निमरुत अण्। यहाँ अग्नि एवं मरुत देवतावाची शब्दों के छन्द समास से 'सास्य देवता' अर्थ में णित् अण् प्रत्यय हुआ है। अतएव आलोच्य सूत्र द्वारा समास के पूर्व एवं उत्तर पदों के आदि अचों के स्थान पर वृद्धि वर्ण के आदेश का विधान प्राप्त होता है तब अग्नि के आदि अच् अकार को वृद्धि वर्ण आकार एवं मरुत के मकारोत्तरवर्ती अकार को वृद्धि आकार होकर आग्निमारुत अण् स्वादिकार्य हो आग्निमारुतम्।

173. 'प्राचां नगरान्ते' (7.3.24.)

प्राच्य देश में नगर अन्त वाला जो अंग उसके पूर्वपद तथा उत्तर पद के अचों में आदि अच् को ञित्, णित् तथा कित् तद्धित परे रहते वृद्धि होती है।

उदाहरण - सौह्मनागरः, पौण्ड्रनागरः आदि।

सौहम्नागरः - सुह्मनगर अण्। यहाँ नगर शब्दान्त प्राच्य देशवाची शब्द सुह्मनगर से ''तत्र भवः'' अर्थ में णित् तद्धित प्रत्यय अण् हुआ है। सूत्र द्वारा अंग के पूर्व पद एवं उत्तरपद के आदि अच् को वृद्धि विहित को पर है। तब आन्तर्तम्यात् उकार को औकार एवं अकार को आकार आदेश होकर - सौह्मनागर अण् > सौह्मनागरः। इसी प्रकार तत्र भवार्थक अण् परे रहते पुण्ड्रनगर के पूर्ववद एवं उत्तरपद के अचों को सवर्णवृद्धि वर्ण आदेश होगा - पौण्ड्रनागर > पौण्डनागरः।

प्राच्य देशवाची शब्दों के लिये ही यह विधि विहित हुई है इससे उदीच्य नगरवाची माद्रनगर से तत्रभवार्थक अण् परे रहते पूर्वोत्तरपदों को आद्यवों को वृद्धि नहीं होगी जैसे - माद्रनगर

174. 'जङ्गलधेनुवलजान्तस्य विभाषितमुत्तरम्' (7.3.25.)

जड्गल, धेनु, वलज ये शब्द जिसका अंग के अन्त में हो उनके पूर्व पद के आदि अच् को वृद्धि होती है तथा उत्तरपद के आदि अच् को विकल्प से वृद्धि होती है। यदि ञित्, णित् या कित तद्धित

प्रत्यय परे हो।

उदाहरण - कौरुजाङ्गलम्, कौरुजङ्गलम्। वैश्यधेनतम्, वैश्वधेनतम्, सौवर्ण वालजः, सौवर्णवलजः।

कौरुजाङ्गलम् - कुरुजनाल अण्। सूत्र द्वारा पूर्वपद कृत के आदि अच् ककारोत्तरवर्ती उकार को वृद्धि औकार तथा उत्तरपद के आदि अच् जकारोत्तरवर्ती अकार को वैकल्पिक वृद्धि आकार प्राप्त हुआ। उत्तरपद के आदि अच् जो वृद्धि पक्ष में कौरु जाङ्गल अण् > कौरुजाङ्गलम्।

175. 'अर्धात् परिमाणस्य पूर्वस्य तु वा' (7.3.26.)

अर्ध शब्द से उत्तर परिमाणवाची उत्तरपद के अचों में आदि अच् को वृद्धि होती है पूर्वपद को विकल्प से होती है यदि अंग के परे ङित्, णित् अथवा कित् तद्धित प्रत्यय हों तो।

उदाहरण - आर्धद्रौणिकम्, अर्धद्रौणिकम्, आर्धकौडितम्, अर्धकौडविकम् आदि।

आर्धद्रौणिकम्, अर्धद्रौणिकम् अर्धद्रोण् ठञ्। 'तेन क्रीतम्' अर्थ में अर्धद्रोण शब्द से ञित् तद्धित 'ठञ्' प्रत्यय हुआ है। द्रोंण परिमाणवाची शब्द है। सूत्र में उल्लेख की गई सभी स्थितियों यहाँ उपस्थित है अतः अंग के पूर्वपद के आदि अच् को वैकल्पिक वृद्धि एवं उत्तरपद के आदि अच् को नित्य वृद्धि प्राप्त हुई। पूर्वपद के वृद्धि पक्ष में - आर्ध द्रौणिकम् अभाव पक्ष में - आर्धद्रौणिकम् शब्द बने।

176. 'प्रवाहणस्य ढे' (7.3.28.)

प्रवाहण अंग के उत्तरपद के आदि अच् को नित्य एवं पूर्वपद को विकल्प से वृद्धि होती है। यदि 'ढ' तद्धित प्रत्यय परे हो तो।

उदाहरण - प्रावाहणेयः, प्रवाहणेयः।

प्रवाहणेयः - प्रवाहणेयः - प्रवाहण ढक्। यहाँ प्रवाहण शब्द से 'तस्यापत्यं' अर्थ में 'ढक' तद्धित प्रत्यय हुआ है, तब सूत्र द्वारा प्रवाहण शब्द के उत्तरपद के आद्यच् वकारोत्तरवर्ती आकार तथा पूर्वपद के आदि अच् 'प्र' के अकार को वृद्धि प्राप्त हुई। पूर्वपद को वैकल्पिक वृद्धि विहित है। अतएव वृद्धि पक्ष में प्रावाहण ढ = प्रावाहणेय एवं पूर्वपद को वृद्धि के अभाव पक्ष में प्र वाहण ढ = प्रवाहणेय दो रूप बने।

177. 'तत्प्रत्ययस्य च' (7.3.29.)

ढक् प्रत्ययान्त प्रवाहण शब्द के उत्तरपद के अचों में आदि अच् को तथा पूर्वपद के आदि अच् को विकल्प से वृद्धि होती है यदि तद्धित प्रत्यय परे हो तो।

उदाहरण - प्रावाहणेयिः, प्रवाहणेयिः। प्रवाहाणेयकम्, प्रवाहणेयकम्।

प्रावाहणेयिः प्रावाहणेयिम् - प्रवाहण ढक् > प्रवाहणेय (- ढ > इख) ढक् प्रत्ययान्त प्रवाहण शब्द से पूर्वपद वृद्धि के अभाव पक्ष में बने 'प्रवाहणेय' शब्द से 'प्रवाहणेयस्यापत्य' अर्थ में 'इन' प्रत्यय हुआ। अब तद्धित इन पर रहते "तद्धितेष्वचामादेः" सूत्र द्वारा अंग के आदि अच् को वृद्धि प्राप्त होती है। तब प्रकृत सूत्र द्वारा उसका बाध होकर अंग के उत्तरपद के आदि अच् को वृद्धि एवं पूर्वपद के आदि अच् को विकल्प से वृद्धि का विधान किया गया और उत्तरपद को तथा पूर्वपद को वृद्धि पक्ष में प्रावाहणेय इन > प्रावाहणेयीः और उत्तरपद को वृद्धि की ओर पूर्वपद को वृद्धि के अभाव पक्ष में प्रवाहणेय इन् > प्रवाहणेयी बना।

178. 'नञः शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणानाम्' (7.3.30.)

नञ् से उत्तर शुचि, ईश्वर, क्षेत्रज्ञ, कुशल, निपुण इन शब्दों के अचों में आदि अच् को वृद्धि होती है तथा पूर्वपद को विकल्प से वृद्धि होती है यदि ञित् णित् अथवा कित् तद्धित प्रत्यय परे हों तो।
उदाहरण - आशौचम्, अशौचम्, आनैश्वर्यम्, अनैश्वर्यम्। आक्षेत्रज्ञम्, अक्षेत्रज्ञयम्, आकौशलम्, अकौशलम्, आनेपुणम्, अनैपुणम्।

आशौचम्, अशौचम् अशुचि अण् "नास्तिशुचिरस्य" अथवा "न शुचिः" अशुचि इस नञ् पदघटित समास से भाव अर्थ में अथवा 'तस्य इदम्' अर्थ में 'अण्' हुआ है। इस दशा में सूत्र द्वारा पूर्वपद के आदि अच्को नित्य वृद्धि प्राप्त होती है। पूर्वपद को एवं उत्तरपद को वृद्धि पक्ष में आ शोचि अण् > अशौच तथा उत्तरपद के आदि अच् को वृद्धि तथा पूर्वपद के आदि अच् को वृद्धि के अभाव पक्ष में अ शौचि अण् > अशौच दो शब्द बने। स्वादिकार्य ही आशौचम्, अशौचम् दो रूप बने।

आनैश्वर्यम्, अनैश्वर्यम् - अनीश्वर ष्यञ् पूर्वोत्तर पदों के आदि अचों को वृद्धि होने पर आनैश्वर्यम् तथा पूर्वपद के आदि अच् को वृद्धि के अभाव में अन ऐश्वर्यम् > अनैश्वर्यम् दो रूप बने। एवमेव अन्य उदाहरणों में उत्तरपद को नित्य एवं पूर्वपद को वैकल्पिक वृद्धि हो तो दो-दो रूप बने हैं।

179. 'यथातथयथापुरयोः पर्यायेण' (7.3.31.)

नञ् से उत्तर 'यथातथ' तथा 'यथापुर' अंगों के पूर्वपद को पर्याय से वृद्धि होगी ञित्, णित्, कित्, तद्धित प्रत्यय परे रहते।

उदाहरण - आयथातथ्यम्, अयाथातथ्यम्, आयथापुर्यम्, अयाथापुर्यम्।

'पर्यायेण' शब्द का अर्थ है - कभी पूर्वपद को हो कभी उत्तरपद को[4] अतः जब पूर्वपद को वृद्धि होगी तो उत्तरपद को नहीं और जब उत्तरपद को होगी तो पूर्वपद को नहीं। आयथतथ्यम्, अयाथातथ्यम् - अयथातथा ष्यञ्। पर्यायेण प्राप्त आदि अच् की वृद्धि पूर्वपद के आदि अच् को करने पर आ यथा तथा ष्यञ् > आयथातथ्यम्। उत्तरपद के आदि अच् को वृद्धि होने पर - अ याथातथ ष्यञ् > अयाथातथ्यम्।

आयथापुर्यम्, अयाथापुर्यम् - अयथापुर ष्यञ्। सूत्रविहित वृद्धि पूर्वपद के आदि अच् के पक्ष में होने पर - आ यथापुर य > आयथापुर्यम्। उत्तरपद के आदि अच् के पक्ष में वृद्धि होने पर अयाथापुर् य > अयाथापुर्यम्।

180. 'प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात् इदाप्यसुपः' (7.3.44.)

प्रत्यय में स्थित ककार से पूर्व अकार के स्थान में इकारादेश होता है यदि अथ परे हो पर वह आप् सुप् से उत्तर न हो।

उदाहरण - गो-पालिका, सर्विका, कारिका आदि।

गौ-पालिका - गो पालक टाप्। यहाँ अकच् प्रत्ययस्थ ककार से पूर्व अकार है और अंग से परे आबन्त टाप् प्रत्यय है। अतः ककार पूर्ववर्ती अकार को इकारादेश हुआ - गो-पालिका सर्विका - सर्वक टाप्। प्रत्यय के अवयव ककार से पूर्ववर्ती अकार को इकारादेश हो - सर्विक टाप् > सर्विका। कारिका टाप् ककार के पूर्ववर्ती रकारपरक अकार को सूत्र द्वारा इकारादेश प्राप्त हुआ। आदेश होकर - का रि क टाप् > कारिका।

181. 'उदीचामातःस्थानेयकपूर्वायाः' (7.3.46.)

यकार तथा ककार पूर्व में हैं जिस आकार के उसके आकार के स्थान में जो प्रत्ययस्थ ककार से पूर्ववर्ती अकार, उस अकार को इकारादेश होता है। उदीच्य आचार्यों के मत में।

उदाहरण - आर्यकाः, आर्यिका। चटककाः, चटकिका।

आर्यका, आर्यिका - आर्या क > आर्य का आर्यक् टाप्। यहाँ आर्या शब्द से स्वार्थिक 'क' प्रत्यय हुआ औ "केऽणः" सूत्र द्वारा ह्रस्व हो आर्य क बना। आर्यक में यकारोत्तरवर्ता अकार आकार स्थानिक है अतः इस अकार को सूत्रविहित वैकल्पिक ह्त्वादेश प्राप्त हुआ। आदेश के अभाव में 'आर्यका' तथा आदेश भाव पक्ष में - आर्यिका बना।

182. 'शमामष्टानां दीर्घः श्यनि' (7.3.74.)

शमादि आठ धातुओं को श्यन् परे रहते दीर्घ होता है। शमादि आठ धातुएं इस प्रकार है - (1) शम् (2) तम् (3) दम् (4) थम् (5) क्षम् (6) भ्रम (7) क्लम् (8) मद्। सूत्र विहित कार्य युक्त उदाहरण हैं - शम्यति, ताम्यर्ति, दाम्यति, थाग्यति, भ्राम्यति, क्षाम्यति, क्लाम्यति, माद्यति।

शाम्यति - शम् श्यन् तिप् > शम् य ति। शम् के परे श्यन् विकरण है, अतएव धातु को दीर्घ प्राप्त हुआ तब धात्वस्थ अकार को दीर्घ होकर - शाम् य ति > शाम्यति प्रयोग सिद्ध हुआ। इसी भाँति अन्य उदाहरणों में भी धातु को दीर्घ होता है।

183. 'ष्टिवुक्लमुचमां' (7.3.75.)

ष्ठिवु, क्लमु, चमु - इन धातुओं को शित् प्रत्यय परे रहते दीर्घ होता है।

उदाहरण - ष्ठीवति, क्लामति, आचामति।

ष्ठीवति - ष्ठितु, शप् तिप् > ष्ठिव अ ति = ष्ठिवति। ष्ठिव से परे शित् शप् प्रत्यय है अतएव धातु को दीर्घ होगा ष्ठीवति।

184. 'क्रमः परस्मैपदेषु' (7.3.76.)

क्रम धातु को परस्मै पदपरक शित् प्रत्यय के परे रहते दीर्घ होता है।

उदाहरण - क्रामति, क्रामतः, क्रमन्ति आदि।

क्रामति - क्रम शप् तिप् > क्रम अ ति, तिप् परस्मैपद प्रत्यय है और धातु से परे शित्, शप् है अतः सूत्रस्थ सभी लक्षण सहित होने से धातु को दीर्घ प्राप्त हुआ। दीर्घ होकर - क्राम अ ति = क्रामति शब्द सिद्ध हुआ। इसी प्रकार तस् एवं झि आदि परस्मैपदपरक शित् क प्रसंग में भी धातु को दीर्घ होकर अन्य प्रयोग सिद्ध होंगे।

185. 'प्वादीनां ह्रस्वः' (7.3.80.)

पूञ् इत्यादि धातुओं को शित् प्रत्यय परे रहते ह्रस्व होता है।

उदाहरण - पुनाति, लुनाति, स्तृणाति।

पुनाति - पूञ् श्ना तिप्। शित् 'श्ना' परे रहते धातु को ह्रस्व होकर - पुनाति = पुनाति।

लुनाति - लूञ् श्ना ति > लू ना ति। सूत्र विहित धातु ह्रस्व होने पर - लुनाति = लुनाति।

स्तृणाति - स्तृञ् श्ना ति > स्तृ ना ति। धातु को सूत्र विहित ह्रस्व हो - स्तृ ना ति > स्तृ

णाति - स्तृणाति।

186. 'मीनातेर्निगमे' (7.3.81.)

मीञ् अंग को शित् प्रत्यय परे रहते निगम विषय में ह्रस्व हो जाता है।

उदाहरण - प्रमिणन्ति, व्रतानि।

प्रमिणन्ति - प्र मीञ् श्ना झि > प्र मी ना अन्ति > प्र मी न् अन्ति = प्र मी णन्ति सूत्र द्वारा शित् श्ना परे रहते मीञ् अंग को ह्रस्व हो - प्र मि णन्ति = प्रमिणन्ति। निगम विषय से अन्यत्र धातु दीर्घ ही रहेगी - प्रमीणन्ति।

187. 'मिदेर्गुणः' (7.3.82.)

मिद् अंग के इक् को शित् प्रत्यय परे रहते गुण हो जाता है।

उदाहरण - मेद्यति, मेद्यतः, मेदयन्ति।

मेद्यति - मिद् श्यन् तिप् > मिद् य ति। शित् श्यन विकरण परे होने से अंग के इक् इकार को गुण प्राप्त है। इकार को सवर्ण गुण संज्ञक, वर्ण एकार है अतएव इकार को एकारादेश होकर - मेद य ति = मेदयति।

188. 'जुसि च' (7.3.83.)

जुस् प्रत्यय परे रहते भी इगन्त अंग को गुण होता है।

उदाहरण - अजुहवुः - अविभयुः - अविभरुः।

अजुहवुः - अट् हृ शप् झि > अ हु झि > अ हु हु जुस् > अजु हु उस्। जुस् परे होने से इगन्त अंग हु को गुण प्राप्त हुआ। आन्तर्तम्य होने से उकार को गुण ओकार हुआ - अ जू हो उस। अवादेश, रुत्व विसर्ग हो अजुहुवः सिद्ध हुआ। अविभयुः - अ बि भी जुस् - अवि भी उस्। इगन्त अंग त्रिभी को गुण होकर - अ वि भे उस्। एकार को आवादेश षकार को रुत्व विसर्गादि कार्य होकर - आविभयुः। अबिभरु - अ बि भृ उस्। इगन्त अंग भृ को सूत्र विहित गुण हो - अधि भर् उस् = अबिभरुः।

189. 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (7.3.84.)

सार्वधातुक तथा आर्धधातुक प्रत्यय परे रहते इगन्त अंग को गुण होता है।

उदाहरण - तरति, नयति, भवति - सार्वधातुक प्रत्यय। कर्त्ता, चेता, स्तो - आर्धधातुक के उदाहरण।

तरति - तृ शप् तिप् = तृ अति। शप् तथा तिप् सार्वधातुक प्रत्यय हैं अतएव इनके परे रहते सूत्र द्वारा इगन्त अंग तृ को गुण हो - तर् अ ति = तरति।

भवति - भू शप् तिप् = भू अ ति। सार्वधातुक तिङ एवं शिप् प्रत्यय परे होने से इगन्त अंग भू को गुण होकर - भो अति अवादेश होकर भवति बना।

चेता - चिञ् तृच - चि तु। अंग को सूत्र द्वारा विहित गुण हो - चे तृ। प्रथमा एकवचन में चेता।

स्तोता - स्तृ तृच् अंग को गुण करने पर स्तो तु = स्तो।

190. 'जाग्रोऽविचिण्ल्ङित्सु' (7.3.85.)

जागृ अंग को गुण होता है वि, चिण्, गल् तथा ङित् प्रत्ययों से भिन्न सार्वधातुक अथवा आर्धधातुक प्रत्यय परे रहते।

उदाहरण - जागरयति, जागरकः, जागरितः।

जागरयति - जागृ णिच्। णिच् वि्, चिण्, णल् अथवा ङित् प्रत्यय नहीं है। आर्धधातुक प्रत्यय होने से इसके परे रहते उपर्युक्त सूत्र द्वारा अंग को गुण होता है - जाग्, अर्, इ > जागरि। तिप् शप् आदि होकर प्रयोग सिद्ध होगा।

जागरकः - जागृ ण्वुल् > जागृ अक। ण्वुल आर्धधातुक प्रत्यय है तथा सूत्र में इसका निषेध भी नही हुआ है अतः इसके परे रहते जागृ को गुण होगा - जाग् अर् अक् > जागरक। स्वादि कार्य होकर - जागरकः।

191. 'पुगन्तलघूपधस्य च' (7.3.86.)

ह्युगन्त अंग के इक् को तथा जिस अंग की उपधा लघुसंज्ञक हो उस लघू पध इक् को इस सूत्र द्वारा गुण विहित किया गया यदि अंग से परे सार्वधातुक या आर्धधातुक प्रत्यय हो तो।

उदाहरण - लघूपद्य गुण - भेदनम्, छेदनम् आदि। पुगन्त गुण - छेदयति। पुगन्त गुण - छेपयति।

भेदनम् - भिद् ल्युट्। भिद् धातु की उपधा मे ह्रस्व इकार है और अंग के परे आर्धधातुक संज्ञक ल्युट प्रत्यय है अतः धातु के इक् को गुण प्राप्त हुआ। इकार का सदृश गुण संज्ञक वर्ण एकार है अतः धातु के इकार के स्थान पर ऐकार होकर - भेद् ल्युट् = भेदनम्। हेपयति - ही णिच् > ही प् इ्। णि परे रहते ही धातु को पुक् आगम हुआ है इससे धातु पुगन्त हो गई तब धातु के इक् इकार को गुण

होकर - हे प् इ = हेपि बना। तिप्, शप् आदि होकर प्रयोग सिद्ध हुआ।

192. 'उतो वृद्धिर्लुकि हलि' (7.3.89.)

उकारान्त अंग को लुक् हो जाने पर हलादि पित् सार्वधातुक के रहते वृद्धि होती है।

उदाहरण - यौति, नौति, स्तौति आदि। यौति - यु शप् तिप् > यु तिप् > शप् को श्लु अर्थात् लुक् हो जाने पर उकारान्त अंग को वृद्धि प्राप्त होती है क्योंकि अंग से परे पित् सार्वधातुक तिप् है। उकार का सदृश वृद्धिसंज्ञक वर्ण औंकार आदेश होकर - यौ तिप् = यौति।

193. 'ऊर्णोतेर्विभाषा' (7.3.90.)

हलादि णित् सार्वधातुक परे रहते उर्णुञ् धातु को विकल्प से वृद्धि होती है।

उदाहरण - प्रोर्णौति, प्रोर्णोति। प्रोर्णौमि, प्रोर्णोमि।

प्रोर्णोति, प्रोर्णोति - प्र ऊर्णञ् शप् तिप् > प्र ऊर्णु ति = प्रोर्णुति। प्र उपसर्ग पूर्वक ऊर्णु धातु से हलादि पित् सार्वधातुक प्रत्यय 'तिप' परे है अतएव सूत्रविहित वैकल्पिक वृद्धि प्राप्त होती है। वृद्धि पक्ष में - प्रोर्णौति = प्रोर्णोति तथा वृद्धि के अभाव में गुण होकर 'प्रोर्णोति' दो प्रयोग बने। सिप् एवं मिप् भी हलादि पित् सार्वधातुक है अतएव इनके परे रहते भी अंग को वैकल्पिक वृद्धि होगी।

194. 'गुणोऽपृक्ते' (7.3.91.)

ऊर्णुञ् धातु को अपृक्त हल् पित् सार्वधातुक परे रहते गुण होता है।

उदाहरण - प्रोर्णोत्।

प्रोर्णोत् - प्र ऊर्ण् तिप्। प्र ऊर्णु शप् तिप् - प्रोर्णुत्। लोट् में ङिद्वद्भाव होने से प्रत्यय के इकार का लोप हो गया। तब तिप् एकाल् प्रत्यय हो गया जिससे यह अपृक्त संज्ञक हो गया। सूत्र में वर्णित सभी स्थितियाँ उपस्थित होने से धातु को गुण प्राप्त हुआ। तब णकार उत्तरवर्ती उकार को गुण ओकार होकर - प्रार्णो त् = प्रोर्णोत् बना।

195. 'अतो दीर्घो यञि' (7.3.101.)

अकारान्त अंग को दीर्घ होता है यञादि सार्वधातुक प्रत्यय परे हो तो।

उदाहरण - भवामि, भवावः, भवामः, पचामि आदि।

भवामि - भू शप् मिप् > भव मि। मिप् सार्वधातुक प्रत्यय है। प्रत्यय का आदि वर्ण मकार यञ् प्रत्याहारान्तर्गत आने वाला वर्ण है अतएव यह यञादि भी है तब अकारान्त अंग को दीर्घ होकर

भवामि = भवामि बना। इसी प्रकार वस् एवं मस् के यञादि सार्वधातुक होने से इन प्रत्ययों के रूपों में भी सूत्र विहित दीर्घ होगा।

पचामि - पच् शप् मिप् = पच मि। अकारान्त अंग को दीर्घ होकर - पचामि।

196. 'सुपि च' (7.3.102.)

यञादि सुबन्त परे हों तो भी अकारान्त अंग को दीर्घ होता है।

उदाहरण - वृक्षाय, प्लक्षाय, वृक्षाभ्याम्।

वृक्षाय - वृक्ष ङि > वृक्ष य। ङि के स्थान पर हुआ 'य' स्थानिवद्भाव से सुप् है। यह यञादि भी है अतएव अकारान्त अंग को दीर्घ होगा - वृक्षा य = वृक्षाय।

वृक्षाभ्याम् - वृक्ष भ्याम। प्रत्यय का आदि वर्ण मकार यञ् प्रत्याहार में आने वाला वर्ण है अतएव 'भ्याम्' यञादि सुप् हुआ तब अंग को सूत्रविहित दीर्घ होकर - वृक्षाभ्याम् = वृक्षाभ्याम्।

197. 'बहुवचने झल्येत्' (7.3.103.)

झलादि बहुवचन सुप् प्रत्यय परे हों तो अकारान्त अंग को एकारादेश होता है।

उदाहरण - रामेभ्यः, वृक्षेभ्यःआदि।

रामेभ्यः - राम भ्यस्। भ्यस् झलादि विभक्ति है अतएव अकारान्त अंग को ऐकार अन्तादेश हो - रामे भ्यस् = रामेभ्यः।

198. 'ओसि च' (7.3.104.)

ओस् (विभक्ति प्रत्यय) परे रहते भी अकारान्त अंग को एकारादेश होता है।

उदाहरण - रामयोः।

रामयोः - राम ओस्। सूत्र विहित एकार अन्तादेश होकर - रामे ओस् = रामयोः।

199. 'आङि चापः' (7.3.105.)

आबन्त अंग को आङ् (टा) परे रहते तथा ओस् परे रहते एकारादेश होता है।

उदाहरण - रमया, रमयोः।

रमया - रमा टा। रमा आबन्त प्रतिपादिक है इससे परे आङ् है अतएव अंग को एकार अन्तादेश होगा - रमे आ > रमया। रमयोः - रमा ओस्। आबन्त प्रातिपदिक अंग को एत्वादेश हो - रमे ओस्। अच्, रुत्व विसर्ग होकर प्रस्तुत रूप बना।

200. 'सम्बुद्धौ च' (7.3.106.)

सम्बुद्धि परे रहते भी आबन्त अंग को एकारादेश होता है।

उदाहरण - हे लते।

लते - लता सु। सु सम्बुद्धि का प्रत्यय है अतएव आकारान्त अंग को ऐकार अन्तादेश होगा - लते सु। सम्बुद्धि के ''सु'' का लोप होने पर लते शब्द सिद्ध होगा।

201. 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्व' (7.3.107.)

अम्बा (माता) के अर्थ वाले अंगों को तथा नदीसंज्ञक अंगों को सम्बुद्धि परे रहते ह्रस्व हो जाता है।

उदाहरण - हे अम्ब, हे अक्क, हे अल्ल - अम्बार्थक।

नदी संज्ञक - हे कुमारि। हे वीर बन्धु, अम्बा, अक्का, अल्ला, कुमारी, वीर बन्धू - इन अम्बार्थक एवं नदी संज्ञक (दीर्घ ईकारान्त, ऊकारान्त शब्द) शब्दों के अन्त्य अच् को सम्बुद्धि के परे रहते ह्रस्व हुआ है।

202. 'ह्रस्वस्य गुणः' (7.3.108.)

ह्रस्वान्त अंग को सम्बुद्धि परे रहते गुण होता है।

उदाहरण - हे अग्ने। हे वायो। हे पटो। अग्नि वायु और पट ये सभी ह्रस्वान्त अंग हैं। सम्बोधन की प्रथमा विभक्ति परे रहते इनको गुण प्राप्त हुआ। अग्नि के ह्रस्व इकार को एकार, वायु के उकार को ओकार तथा पटु के उकार को ओकार हुआ।

203. 'जसि च' (7.3.109.)

जस् परे रहते भी ह्रस्वान्त अंग को गुण होता है।

उदाहरण - अग्नयः, वायवः आदि।

अग्नयः - अग्नि जस्। ह्रस्वान्त अंङ्ग अग्नि के इकार को गुण एकार होकर - अग्ने अस् = अग्नयः।

वायवः - वायु जस। वायु के उकार को गुण होकर - वाये अस् = वायवः।

204. 'ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः' (7.3.110.)

ऋकारान्त अंग को ङि तथा सर्वनाम स्थान विभक्ति परे रहते गुण होता है।

उदाहरण - ङि परे रहते - मातरि, भ्रातरि, कर्तरि। सर्वनाम स्थान पर रहते - कर्तारौ, कर्तारः।

मातरि - मातृ ङि। ङि परे होने से ऋकारान्त अंग मातृ को गुण प्राप्त हुआ। ऋकार को गुण एवं रपर होकर अर् आदेश होगा - मात् अर् ङि = मातरि।

पितरौ .... पितृ औ। गुण होकर .... पित् अर् औ = पितरौ। और् में भी यही रूप बनता है।

पितरः .... पितृ जस्। गुण होकर .... पितृ अर् अस् > पितरस् पितरः।

205. 'घेर्ङिति' (7.3.111.)

घि संज्ञक अंग को ङित् सुप् प्रत्यय परे रहते गुण होता है।

उदाहरण - हरये, विष्णवे आदि।

हरये - हरि ङे। ह्रस्व इकारान्त होने से हरि घिसंज्ञक हुआ इससे परे ङित् सुप् प्रत्यय 'ङे' है अतः सूत्र द्वारा अंग को गुण प्राप्त हुआ। 'अलोऽन्त्यस्य' के बल से यह गुण अंग के अन्त्य अल् को होगा हरे ए = हरये।

विष्णवे - विष्णु ङे। गुण होकर - विष्णो ए = विष्णवे।

206. 'णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः' (7.4.1.)

चङ् जिसके बाद हो ऐसे णिच् के परे रहते अंग की उपधा को ह्रस्व होता है।

उदाहरण - अलीलवत्, अपीपवत्।

अलीलवत् - अ लूञ्णिच चङ् तिप् > अ ल् अ त्। सूत्र विहित ह्रस्व होकर - अ लु अ त्। द्वित्व, अभ्यास के उकार को इत्व उसे दीर्घ लु के उकार को ओकार अवादेश हो 'अलीलवत्' सिद्ध हुआ। इसी प्रकार अपीपवत् में पूञ् को ह्रस्व हुआ है।

207. 'भ्राजभासभाषदीपजीवमीलपीडामन्यतरस्याम्' (7.4.3.)

भ्राज्, भास्, भाष्, दीप्, जीव्, मील, पीङ् - इन अंगों की उपधा को चङ्परक णि परे रहते विकल्प से ह्रस्व होता है।

उदाहरण - अबिभ्रजत, अबभ्राजत। अबीभसत् अबभासत्। अदीदिपत् अदिदीपत्। अजिजीवत् अजीजिवत्। अमीमिलत् अमिमीलत्। अपिपीडत् अपीपिडत्।

अबिभ्रजत, अबभ्राजत - भ्राज् णि > अट् भ्राज णि चङ् तिप् > अ व भ्राज अ त। सूत्र

विहित उपधा ह्रस्व होकर - अ ब भ्रज अत् = अविभ्रजत्। ह्रस्व न होने पर अ ब भ्राज अ त् = अबभ्राजत।

अबीभसत्, अबभासत् - अ ब भास् (णि) अ त् = अ ब भास् अ त्। उपधा ह्रस्व हो अ ब भस् अ त् = अबभसत् > अबीभसत्। हस्वाभास पक्ष में अवभासत्। अदीदिपत्, अदिदीपत् - अ दि दीप् अ त्। अङ् की उपधा ह्रस्व होकर - आदि दिप् अ त् = अदिदिपत् > अदीदिपत्। उपधाह्रस्व न होने पर - अ दि दीप् अ त् = अदिदीपत्।

208. 'लोपः पिबतेरीच्चाभ्यासस्य' (7.4.4.)

पा अंग की उपधा का चङ् परक णि परे रहते लोप होता है तथा अभ्यास को ईकारा देश होता है।

उदाहरण - अपीप्यत्, अपीप्यताम्, अपीप्यन्।

अपीप्यत् - अ पा णिच् चङ् तिप् > अ पा चङ् तिप् > अ पा युक् चङ् तिप् > अ पा य् अ त् > अ पा पा य त्। सूत्र द्वारा विहित अंग की उपधा का लोप तथा अभ्यास को ईत्व हो - अ पी प् य त् = अपीप्यत्।

209 'तिष्ठतेरित् (7.4.5.)

ष्ठा अंग की उपधा को चङपरक णि परे रहते ईकारादेश होता है।

उदाहरण - अतिष्ठिपत्।

अतिष्ठिपत् - अ ष्ठा णिच् चङ् तिप् > अ ष्ठा पुक् णिच् चङ् तिप् > अ ष्ठा प् अ त् > अ तिष्ठा प त्। 'ष्ठा' की उपधा को इकारादेश हो .... अ ति ष्ठिप् अत् = अतिष्ठिपत्।

210. 'जिघ्रतेर्वा' (7.4.6.)

घ्रा अंग की उपधा को चङ्परक णि परे रहते विकल्प से इकारादेश होता है।

उदाहरण - अजिघ्रिपत्, अजिघ्रपत।

अजिघ्रिपत्, अजिघ्रपत् - अट् घ्रा पुक् णि चङ् तिप > अ घा प अ त् > अ जि घ्रा प् अ त्। आलोच्य सूत्र द्वारा प्राप्त इत्वादेश होने पर - अजि घ्रिप् अत् = अजिघ्रिपत्। इत्वादेश के अभाव में सू. ''णौ चङ्युपधाया ह्रस्व'' से उपधा ह्रस्वः होकर - अ जि घ्रप अत् = अजिघ्रपत्।

211. 'उर्ऋत्' (7.4.7.)

चङ्परक णि परे रहते उपधा ऋ वर्ण के स्थान पर विकल्प से ऋकारादेश होता है।

उदाहरण - अचिकीर्त्तत्, अचीकृतत्। अववर्तत्, अवीवृवत्। अममार्जत् अमीमृजत्।

अचिकीर्त्तत्, अचीकृतत् - अ कृत णिच् चङ् तिप् = अ चि कृत अ त्। कृत के ऋकार को "ऋत इद्धातोः" से इर् आदेश प्राप्त था जिसका इस सूत्र से बाध हुआ और ऋकार के स्थान पर ऋकार हो गया - अ चि कृत् अत् = अचीकृतत्। सूत्र विहित कार्य के अभाव में "ऋत इद्धातोः" से इर् आदेश हो - अचि क् इर् त् अत् > अचिकीर्त्तत्।

अवर्त्तत्, अवीवृतत् - अ व वृत् णिच् चङ् तिप् = अव वृत अत्। वृत् को लघूपध गुण प्राप्त है जिसे बाधकर उपर्युक्त सूत्र द्वारा वैकल्पिक ऋकारादेश विहित हुआ। ऋकार पक्ष में - अ व वृ त् अत् > अवीवृवत् तथा ऋकार के अभाव में लघूपध गुण होकर - अव व् अर् त् अत् > अववर्तत्।

अममार्जत्, अमीमृजत् - अ म् मृज् अत् ऋकार पक्ष में अ म मृज अत् > अमीमृजत् अभाव पक्ष में "मृजेवृद्धि" सूत्र वृद्धि हो अ म मार् ज् अत् > अममार्जत्।

212. 'नित्यं छन्दसि' (7.4.8.)

वेद विषय में चङ्परक णि परे रहते अंग की उपधा ऋकार के स्थान में नित्य ही ऋकारादेश होता है।

उदाहरण - अवीवृधत्पुरोडारोन।

अवीवृधत् - अ वृध् णिच् तिप् > अ वृध् इ चङ् त् > अ व वृध् अ त्। लघुपध गुण का उपर्युक्त सूत्र द्वारा बाध हो ऋकारादेश विहित किया गया। तब - अ व वृध् अत् > अ वी वृधत् = अवीवृधत् रूप बना।

213. 'ऋतश्च संयोगादेर्गुणः' (7.4.10.)

लिट् के परे रहते संयोगादि ऋदन्त अङ को गुणादेश हो जाता है।

उदाहरण - सस्मरतुः, सस्मरुः। सस्वरतुः, सस्वरुः। दध्वरतुः, दध्वरुः

सस्मतुः - स्मृ अतुस् > स स्मृ अतुस्। स्मृ धातु के आदि में स् एवं म् वर्णों का संयोग है। धातु ऋकारान्त है तथा इससे परे लिट् का अतुस् प्रत्यय है अतएव अंग को गुण प्राप्त हुआ। गुण

होकर - स स्म् अर् अतुस् = सस्मरतुः।

सस्मरुः - स्मृ उस् > स स्मर् उ स् - सूत्र विहित गुण होकर। सस्मरुः। इसी प्रकार संयोगादि ऋकारान्त स्वृ, ध्वृ आदि धातु अंगों को भी लिट् प्रत्यय परे रहते गुण होगा।

214. 'ऋच्छत्यृताम्' (7.4.11.)

ऋच्छ, ऋ तथा ऋकारान्त अंगो को लिट् परे रहते गुण आदेश होता है।

ऋच्छ - आनर्च्छ, आनर्च्छतुः, आनर्च्छुः। ऋ - आरतुः, आरुः।

ऋकारान्त - निचकरतुः, निचकरुः। निजगरतुः, निजगरुः आदि। आनर्च्छ - ऋच्छ णल्। सूत्र विहित गुण हो - अर् च्छ थल्। द्वित्व अभ्यास कार्य, नुट् आदि कार्य होकर अभीष्ट रूप बनेगा। आनर्च्छतुः - ऋछ अतुस्। सूत्र विहित गुण होकर - अर् च्छ अतुस्।

आरुः - ऋ उस्। अंग को सूत्र विहित गुण होकर - अर् उस्। द्वित्व अभ्याय कार्य अभ्यास दीर्घ हो 'आरुः' प्रयोग सिद्ध होगा। निचकरतुः - नि कृ अतुस्। अंग को गुण हो - नि कर् अतुस्। द्वित्व, अभ्यास कार्य होकर निचकरतुः।

निजगरुः - नि गृ उस्। सूत्र विहित गुण हो - नि गर् उस्। द्वित्व, अभ्यास कार्य होकर 'निजगरुः' बना।

215. 'शृदृप्रां ह्रस्वो वा' (7.4.12.)

शृ, दृ तथा पृ अंगों को लिट् परे रहते विकल्प से ह्रस्व होता है।

उदाहरण - विशश्रतुः, विशश्रुः। विशशरतुः, विशशरुः। विददतुः विददरतुः। निपप्रुः, निपपरुः।

विशश्रतुः विशशरतुः - वि शृ अतुस्। सूत्र द्वारा प्राप्त ह्रस्व हो - वि शृ अतुस्। यण्, द्वित्व, अभ्यास कार्य हो विशश्रतुः बना। ह्रस्व के अभाव में सू0 ''ऋच्छत्यृताम्'' से गुण होगा - वि श् अर् अतुस्। द्वित्व अभ्यास कार्य होकर विशशरतुः बना। इसी प्रकार दृ पृ को ह्रस्व पक्ष में यण् एवं ह्रस्व के अभाव में ऋकार को गुण हो विद्दतुः, निपप्रुः एवं विददरतुः निपपरुः आदि प्रयोग बनेंगे।

216. 'केऽणः' (7.4.19.)

क प्रत्यय परे रहते अण् को ह्रस्व होता है।

उदाहरण - ज्ञका - कुमारिका, किशोरिका

ज्ञका - ज्ञा क टाप्। 'ज्ञा' से परे क प्रत्यय है अतएव अंग के अण् आकार को ह्रस्व हो -

ज्ञ क आ > ज्ञका।

कुमारिका - कुमारी क टाप्। सूत्र द्वारा अंग के अण् को ह्रस्व प्राप्त हुआ। 'अलोऽन्त्यस्य' के बल से यह ह्रस्व अन्त्य अल् ईकार को होगा। ईकार अण् प्रत्याहार (अ, इ उ) के अन्तर्गत आने वाला वर्ण है अतः सूत्र की प्रवृत्ति होती है। ह्रस्व होकर - कुमारि क आ = कुमारिका।

217. 'ऋदृशोऽङि गुणः' (7.4.16.)

ऋवर्णान्त तथा दृशिर् अंग को अङ् परे रहते गुण होता है।

उदाहरण - ऋकारान्त - अकरत्, असरत्।

दृशि - अदर्शत्।

अकरत् - अट् कृ अङ् तिप > अ कृ अ त्। कृ ऋकारान्त अंग है अतऐव इसे आलोच्य सूत्र द्वारा गुण विहित हुआ। गुण होकर - अ क अर् अ त् = अकरत्। इसी प्रकार सृ को गुण होकर लुङ के एकवचन प्रथम पुरूष में असरत् रूप बनेगा।

अदर्शत् - अट् दृश् अङ् तिप् > अ दृश अ त। गुण होकर अ द् अर् श् अत् > अदर्शत्।

218. 'श्वयतेरः' (7.4.18.)

टुओश्वि अंग को अङ् परे रहते अकारदेश होता है।

उदाहरण - अश्वत्, अश्वताम् आदि।

अश्वत् - श्वि लुङ् > अट् श्वि अङ् तिप् = अ श्वि अत्। 'श्वि' को सूत्र विहित अकार आदेश होकर - अ श्व अ त्। वकारपरक अकार एवं अङ् के अकार को पररूप एकादेश होकर शब्द सिद्ध हुआ।

219. 'शीङः सार्वधातुके गुणः' (7.4.21.)

सार्वधातुक प्रत्ययों के परे रहते शीङ् धातु को गुणादेश होता है।

उदाहरण - शेते, शयाते, शेरते।

शेते - शीङ् शप् त > शीङ् त। शीङ् के इकार को सवर्ण गुण संज्ञक, एकारादेश होकर - श् ए त > शेत। आत्मनेपद में टि को एत्व हो 'शेते' शब्द बना।

शयाते - शीङ् लट् > शीङ आताम्। शीङ् को गुण हो - शे आताम्। शे आताम् > शयाते।

शेरते - शीङ् झ > शीङ् अत् > शीङ् रुट् अत् > शीङ् र् अत > शी रत। शीङ् अंग को

गुण हो - शे रत शेरत > शेरते।

220. 'उपसर्गाद्घ्रस्व ऊहतेः' (7.4.23.)

यकारादि कित् और यकारादि ङित् प्रत्ययों के परे रहते अंग संज्ञक शीङ् धातु के स्थान में अयङ् आदेश हो जाता है।

उदाहरण - समुह्यते, अभ्युह्यते।

समुह्यते - सम् ऊह् यासुट् त > सम् ऊह् य ते। अंग का ह्रस्व होकर - सम् ऊह् यते = समुह्यते।

221. 'एतेर्लिङि' (7.4.24.)

उपसर्ग पूर्वक इण् धातु (के अण्) को यकारादि कित् (और ङित्) लिङ् (= आशीर्लिङ) के परे रहते ह्रस्वादेश हो जाता है।

उदाहरण - उदियात्, समियात्, अविन्यात्।

उदियात् - उत् इण् यासुट् तिप्। आशीलिंङ में उत् इ या त् इस दशा में "अकृत्सार्वधातुकयोदीर्घः" से अजन्त अंग दीर्घ हुआ - उत् ई या त्। अब प्रकृत सूत्र द्वारा अंग को ह्रस्व होगा क्योंकि आशीलिंङ का यासुट् कित् होता है। तब सूत्र विहित कार्य होकर - उत् इ या त् > उदियात्।

समियात् .... सम् इ या त् > सम् ई या त् यकारादि कित् यासु ट् परे होने से अंग को ह्रस्व हो - सम् इ या त् समियात्।

222. 'अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः' (7.4.25.)

कृत तथा सार्वधातुक से भिन्न कित् ङित् यकार परे रहते अजन्त अंग को दीर्घ होता है।

उदाहरण - भृशायते, सुखायते, दुःखायते, चीयते, चीयात्, स्तूयात्।

भृशायते - भृश्, क्यङ् त। क्यङ् आर्धधातुक कित्, यकारादि प्रत्यय है अतः इसके परे रहते अजन्त अंग को आलोच्य सूत्र द्वारा दीर्घ हुआ - भृशा य त > भृशायते।

चीयते - चिञ् यक् > चि य त > चियते। अंग को दीर्घ होकर - ची य ते = चीयते।

स्तूयात् .... स्तु यासुट् तिप्। आर्शीलिङ् का यासुट् कित् होता है अतएव स्तु अंग को दीर्घ होगा - स्तूयात्।

223. 'च्वौ च' (7.4.26.)

च्वि प्रत्यय परे रहते भी अजन्त अंग को दीर्घ होता है।

उदाहरण - शुचीकरोति, शुचीभवति, शुचीस्यात्, पटूकरोति।

शुचीकरोति - शुचि च्वि कृ > शुचि कृ। शुचि अजन्त अंग है अतएव सूत्र द्वारा दीर्घादेश होगा। तब अंग के अन्त्य अल् इकार को दीर्घ होकर - शुची कृ। तिबादि होकर शुचीकरोति।

224. 'गुणोऽर्ति संयोगाद्योः' (7.4.29.)

ऋ तथा संयोगादि में हो जिनके ऐसी ऋकारान्त धातुओं को यक् तथा यकारादि असार्वधातुक लिङ् परे रहते गुण होता है।

उदाहरण - अर्यते, अर्यात्, स्मर्यते आदि।

अर्यते - ऋ यक् त > ऋयते। यक् परे रहते ऋ धातु को प्रकृत सूत्र गुण प्राप्त हुआ। गुण और रपर हों - अर् य ते = आर्यते।

स्मर्पते - स्मृ यक् त् > स्मृ या ते। स्मृ ऋकारान्त संयोगादि धातु है। इससे परे यक् है अतः धातु को गुण होगा - स्म अर् य में स्मर्यते।

स्मर्यात् - स्मृ यासुट् तिप् > स्मृ या त्। आर्शीलिंग सम्बन्धी आर्धधातुक, यकारादि विकरण यासुट् परे रहते संयोगादि ऋकारान्त धातु के अन्त्य अल् को गुण होकर - स्म् अर् या त् = स्मर्यात्।

225. 'यङि च' (7.4.30.)

ऋ तथा संयोग आदि वाले ऋकारान्त अंग को यङ् परे रहते भी गुण होता है।

उदाहरण - असर्यते, सास्वर्यते, दाद्ध्वर्यते, सास्मर्यते।

असर्यते - ऋ यङ्। सूत्र विहित गुण हो अर् य त्, द्वित्व आदि हल् शेष हो, दीर्घ हो - अर्सयते प्रयोग सिद्ध हुआ।

226. 'ई घ्राध्मोः' (7.4.31.)

घ्रा तथा ध्मा अंग को यङ् परे रहते ईकारादेश होता है।

उदाहरण - जेघ्रीयते = घ्रा यङ्। अंग को सूत्र द्वारा विहित ईकारादेश होकर - घ्री य। त प्रत्यय, डित्व, हलादि, शेष, अभ्यास कार्य, टि को एत्व हो प्रयोग सिद्ध होगा।

देध्मीयते - ध्मा यङ्। ईकारादेश हो - ध्मी य। लट् आत्मने पद में त प्रत्यय - द्वित्व -

अभ्यास कार्यादि होकर शब्द सिद्ध होगा।

227. 'अस्य च्वौ' (7.4.32.)

च्वि परे रहते अ वर्ण को ईकारादेश होता है।

उदाहरण - शुक्लीभवति, शुक्लीस्यात्।

शुक्लीभवति - शुक्ल च्वि भू > शुक्ल भू। सूत्र द्वारा प्राप्त ईत्व हो शुक्ली भू लट् प्र पु. एकवचन में शुक्लीभवति।

228. 'क्यचि च' (7.4.33.)

क्यच् प्रत्यय परे रहते भी अवर्णान्त अंग को ईकारादेश होता है।

उदाहरण - पुत्रीयति, घटीयति, मालीयति आदि।

पुत्रीयति - पुत्र क्यच् तिप्। पुत्र अवर्णान्त अंग है अतः क्यच् परे रहते ईकारादेश होगा। ईकार अन्तादेश हो - पुत्री य ति = पुत्रीयति इसी प्रकार घट के अत्न्य अकार को ईत्व हो घटीयति, माला के अन्त्य आकार को ईत्व होकर मालीयति शब्द सिद्ध हुये।

229. 'अश्वाधस्यात्' (7.4.37.)

अश्व्, अध - इन शब्दों को वेद विषय में क्यच् परे रहते आकारादेश होता है।

उदाहरण - अश्वायन्तो मधवन्।

अश्वायन्तः - अश्व क्यच्। क्यच् परे रहते अश्व शब्द को आकार अन्तादेश हो - अश्वा य। लट्, लट् को शतृ नुम् आदि हो अश्वायन्तः बनेगा।

अश्वायन्तः - आश्व क्यच् अश्व शब्द को आकारादेश प्राप्त होने पर "अलोडन्त्यस्य" नियम से अन्त्य अकार को आत्व होकर - अश्वा य। शत् नुम् आदि को अभीष्ट रूप बना।

230. 'देव सुम्नयोर्यजुषि काठके' (7.4.38.)

देव तथा सुम्न अंग को क्यच् परे रहते आकारादेश होता है यजुर्वेद की कठ शाखा में।

उदाहरण - देवायन्तो यजमानाय। सुग्नायन्ता हवामहे।

देवायन्तः - देव क्यच् शत्। देव अंग को आकार अन्तादेश हो दे वा य शतृ = देवायन्त स्वादि कार्य हो - देवायन्तः।

सुम्नायन्तः = सुम्न क्यच् शत्। सुम्न को आकार अन्तादेश हो सुम्ना या शत् = सुम्नायन्तः।

231. 'द्यतिस्यतिमास्थामित्ति किति' (7.4.40.)

दो, षो मा स्था - इन अंगो को तकारादि कित प्रत्यय परे रहते इकारादेश होता है।

उदाहरण -दो - निर्दितः, निर्दितवान्।

षो - अवसितः, अवसितवान्।

मा - मितः, मितवान्।

स्था - स्थित स्थितवान्।

निर् दो क्त। अङ्ग को इकार आदेश होकर - निर्दित। स्वादिकार्य होकर निर्दितः बना।

निर्दितवान् - निर् दो क्तवत् > निर् दो तवत्। अंग को इत्वादेश हो - निर् दि तवत्। प्रथमा एकवचन में निर्दितवान्। अवसितः - अव सो क्त। धातु को इत्व हो - अव सि त = अवसितः।

मितः - मा क्त। अंग को सूत्रविहित इत्वादेश होकर मित = मितः।

स्थितः - स्थाक्त = स्था त। धातु को इकार आदेश हो - स्थित > स्थितः।

232. 'शाच्छोरन्यतरस्याम्' (7.4.41)

शा, छा - इन अंगो को विकल्प से इकारादेश होता है यदि तकारादि कित् प्रत्यय परे हो तो।

उदाहरण - निशितम्, निशितवान्, निशातम्, निशातवान्।

विछा - अवच्छितम्, अवच्छातम्, अवच्छितवान्, अवच्छातवान्।

निशितम् निशातम् - नि शा क्त। इत्वादेश पक्ष में - नि शि त।

स्वादिकार्य हो - निशितम् इत्वादेश अभाव पक्ष में - नि शा त = निशातम्।

अवच्छितवान्, अवच्छातवान् - अब छा क्तवत्। धातु को वैकल्पिक इत्वादेश प्राप्त होने पर इत्वा देश पक्ष में - अव छि तवत् = अवच्छितवान्।

233. 'आप्ज्ञप्यृधामीत्' (7.4.55)

सकारादि सन् प्रत्यय के परे रहते आप, ज्ञप और ऋध् धातुओं के अच् के स्थान में ईकारादेश हो जाता है।

उदाहरण - ईप्सति, ज्ञीप्सति, ईर्त्सति।

ईप्सति - आप् सन् तिप्। सन् परे रहते अंग के अच् को ईकार आदेश होकर - ईप् स ति = ईप्सति।

ज्ञीप्सति - ज्ञपि (ज्ञा पुक् णिच्) सन् तिप् > ज्ञप् स ति। अंग के अच् को ईत्व हो - ज्ञीप् स ति = ज्ञीप्सति।

ईर्त्सति - ऋृध् सन् तिप् > ऋृध् स तिं। अंग को सूत्रविहित ईत्व, रपर होकर - ईर्ध्स ति > ईर्त्सति।

234. 'दम्भ इच्च' (7.4.56)

दम्भ अंग के अच् के स्थान में ईकारा देश होता है तथा चकार से ईत्व भी होता है सकारादि सन् परे रहते।

उदाहरण - धिप्सति, धीप्सति।

धिप्सति - दम्भ् सन् तिप् > दभ् स ति > धभ स ति > ध् प् स ति। सूत्र विहित इत्व हो - धि प् स ति।

सूत्रोपात्र चकार के बल से पक्ष में ईत्वादेश भी प्राप्त है। ईत्वादेश पक्ष में - धी प् स ति।

235. 'मुचोऽकर्मकस्य गुणो वा' (7.4.57)

अकर्मक मुच् धातु (के इक) को विकल्प से गुण होता है यदि सकारादि सन् प्रत्यय परे तो।

उदाहरण - मोक्षते, मुमुक्षते।

मोक्षते - मुच् सन् त > मुच् स ते। सूत्रविहित गुण होकर - मोच् स ते। द्वित्व, अभ्यास लोप चकार को कुत्व, स को षत्वादि कार्य हो शब्द सिद्ध हुआ।

मुमुक्षते - मुच् सन् त। गुण के अभाव में द्वित्व, अभ्यास कार्य, कुत्व षत्व टि को एत्वादि हो इस प्रकार रूप बना।

236. 'ह्रस्वः' (7.4.59)

अंग के अभ्यास को ह्रस्व होता है।

उदाहरण - बुभूषति, चिकीर्षति।

बुभूषति - भू सन् तिप् > भू भू स ति। आलोच्य सूत्र द्वारा अभ्यास को ह्रस्व हो - भु भू स ति। बुभूषति।

चिकीर्षति - कृ सन् > कृ सन् > किर् स कीर् स > कीर् कीर् स > की कीर् स अभ्यास को ह्रस्व हो ...... कि कीर् स। चिकीर्ष, चिकीर्ष तिप् > चिकीर्षति।

237. 'उरत्' (7.4.66)

ॠवर्णान्त अभ्यास को अकारादेश होता है।

उदाहरण - ववृते, ववृधे आदि।

ववृधे - वृध् त > वृध् एश् > वृध् ए वृ वृध ए। अभ्यास को अकारादेश हो - व् अर् वृध् ए। वर् वध ए। हलादि रोष हो ववृधे रूप बना।

ववृते - वृत् ए > वृ वृत् ए। अभ्यास को अकारादेश होकर - वर् वृते।

पुनः हलादिशेष हो ववृते शब्द बना।

238. 'दीर्घ इणः किति' (7.4.69)

कित् लिट् के परे रहते इण्धातु के अभ्यास को दीर्घ होता है।

उदाहरण - ईयतुः, ईयुः।

ईयतुः - इण् अतुस्। "असंयोगपल्लिट् कित्" सूत्र से अतुस् कित् हुआ। इकार को यण् हुआ तथा स्थानिवद्भाव से यकार को द्वित्व हुआ। अब आलोच्य सूत्र द्वारा इण् अंग के अभ्यास को दीर्घ विहित हुआ। इय अतुस् - इस दशा में सूत्र विहित दीर्घ हो - ई य अतुस् > ईयतुः।

ईयुः - इण् उस् > य् उस् > इ य् उस् सूत्र द्वारा विहित अभ्यास दीर्घ हो - ई य् उस् = ईयुः।

239. 'अत आदेः' (7.4.70)

अभ्यास के आदि अकार को लिट् परे रहते दीर्घ होता है।

उदाहरण - आट, आटतुः, आटुः।

आट - अट णल् > अ अट् अ। ' अतो गुणे' से प्राप्त पररूप को है बाधकर आलोच्य सूत्र द्वारा दीर्घ हुआ - आ अट् अ। सवर्णदीर्घ होकर आट रूप बना।

आटतुः - अ अट् अतुस्। सूत्रविहित अभ्यास दीर्घ हो - आ अट् अतुस् = आटतुः।

240. 'भवतेरः' (7.4.73)

भू अंग के अभ्यास को अकारादेश लिट् परे रहते होता है।

उदाहरण - बभूव, बभूवतुः, बभूवुः।

बभूव - भू णल् > भु भूव अ। अंग के अभ्यास को अकारादेश हो - भ भूव = बभूव।

बभूवतुः - भू अतुस् > भु भूव् अतुस् अभ्यास को अकारादेश होकर - भ भूव अतुस् = बभूवतुः।

241. 'निजां त्रयाणां गुणः श्लौ' (7.4.75)

श्लु होने पर निज् (= निजिर्) विजिर् और विष् (= विषमृ) धातुओं के अभ्यास को गुण आदेश हो जाता है।

उदाहरण - नेनेक्ति, वेवेक्ति, वेवेष्टि।

नेनेक्ति - णिज् तिप् > निज् शप् तिप् > निज् तिप् > नि निज् तिप्। धातु के जुहोत्यादिगणीय होने से शप् को श्लु हुआ है। अतएव अभ्यास को गुण प्राप्त हुआ - विज् शप् तिप् > वि वेज् ति। अभ्यास को गुण हो - वे वेज् ति - वेवेक्ति।

वेवेष्टि - विष्लृ शप् तिप् > विप् ति > वि वेष् ति। अभ्यास को गुण हो - वे वेष् ति = वेवेष्टि।

242. 'भृञामित्' (7.4.76)

भृञ्, माङ् और ओहाङ् धातुओं के अभ्यास को, श्लु होने पर, इत् (= इकार) आदेश हो जाता है।

उदाहरण - बिभर्ति, मिमीते, जिहीते।

बिभर्ति - भृ (डु भृञ्) शप् तिप् > ब भर् ति। अभ्यास को इकारादेश होकर - वि भर् ति = बिभर्ति।

मिमीते - मा (माङ) त। मा शप् त > म मा त > म मी ते। अभ्यास को सूत्रविहित इकारादेश होकर - मि मी ते = मिमीते। जिहीते - हा (ओहाङ्) शप् त > हा त > ज ही ते। अभ्यास को सूत्रविहित इकार आदेश होने पर - जि ही ते > जिहीते।

243. 'अर्तिपिपर्त्योश्च' (7.4.77)

ऋ तथा पृ धातुओं के अभ्यास को भी श्लु होने पर इकारादेश होता है।

उदाहरण - इयर्ति, पिपर्ति।

इयर्ति - ऋ तिप् > ऋ शप् तिप् > ऋ तिप् > ऋ ऋ ति। अभ्यास को विहित इकारादेश रपर होकर - इर् ऋ ति। हलादि शमू, उत्तरखण्ड के ऋ को गुण रपर हो तथा इयङ् हो इयर्ति रूप

बनेगा।

पिपर्ति - पृ तिप् > पृ शप् तिप् > पृ ति > पृ पृ ति। अभ्यास की इकारादेश प्राप्त हुआ। यह इत्व रपर होकर प्रवृत्त होगा। {"उरण रपरः" सूत्र से} सूत्र विहित कार्य हो - प् इर् पृ इति = पिपर्ति।

244. 'बहुलं छन्दसि' (7.4.78)

वेद विषय के अभ्यास को बहुल करके श्लु होने पर इकारादेश होता है।

उदाहरण - पूर्णी विवंष्टि। जनिमा विवक्ति वत्सं न माना सिषक्ति। जिघर्ति सोमम्।

इकारादेश का आभाव - ददातीत्येवं ब्रूयात्। जजनमिन्द्रं माता यद्वीर धधनन्धनिष्ठा।

विवष्टि - वश् शप् तिप् > वश तिव वश् ति। इत्व हो - वि वश् ति = विवष्टि।

विवक्ति - वच् शप् तिप् > व वक् ति। अभ्यास को इत्वादेश हो - वि वक् ति = विवक्ति।

सिषक्ति - सच् शप् तिप् > स सक् ति। अभ्यास को इकारादेश हो - सि सिक् ति = सिषक्ति।

ददाति - दा शप् ति > द दा ति। यहां इत्व नहीं होता।

जजनम् - जन लुङ् > जन् मिप् > जन् अम् > ज जन् अम् = जजनम् - अभ्यास इत्व नहीं हुआ।

245. 'सन्यतः' (7.4.79)

सन् प्रत्यय के परे रहते भी अदन्त अभ्यास को इकारादेश होता है।

उदाहरण - पिपठिषति, जिगमिषति।

पिपठिषति - पठ् सन्। प पठ् स तिप् > प पठि ष ति। अभ्यास 'प' अकारान्त है अतएव इसके अकार को इकारादेश होगा - पिपठिषति।

जिगमिषति - ज गम् इ ष ति। अभ्यास 'ज' अकारान्त है अतएव इसे इकारादेश हुआ - जि गमिषति।

246. 'ओः पुयण्ज्यपरे' (7.4.80)

सन् प्रत्यय के परे रहते अंङ्गसंज्ञक के अभ्याय अवयव उकार के स्थान में, अवर्णपरक (= अवर्ण हो जिनके उन) पवर्ग, यण और जकार के परे रहते, इकार हो जाता है।

उदाहरण - पवर्ग, पिपविषते।

यण् - यियविषति।

जकार परे रहते - जिजावयिषति।

पिपविषते - पू (पूङ्) सन् त् > पु पवि ष ते। यहाँ उकारान्त अभ्यास के परे पवर्ग का पवर्ण है। पकार के बाद पावर्ण है अतः अभ्यास के उकार को इकार हुआ - पि पविषते।

यियविषति - यु स् तिप् > यु यव् इ स ति। अभ्यास उकारान्त है जिससे परे यण् यकार है जिसके आगे अवर्ण है अतः अभ्यास के उवर्ण को इत्वादेश होगा - यि यविषति।

जिजावयिषति - जु णिच् सन् तिप् > जु जौ इ स ति > जु जाव् इ स ति > जु जाविषति। अभ्यास के उकार को इकार हो - जि जावयिषति।

247. 'स्रवतिश्रणोतिद्रवतिप्रवतिप्लवतिच्यवतीनां वा (7.4.81)

सन् प्रत्यय परे हो तो स्रु, प्रु, श्रु, प्रुङ्, प्लुङ्, च्युङ् - इन धातुओं के उवर्णान्त अभ्यास को विकल्प से इकारादेश होता है यदि अभ्यास से परे अवर्णपरक यण् प्रत्याहार का वर्ण हो तो।

उदाहरण - स्रु - सिस्रावयिषति, सुस्रावयिषती।

श्रु - शिश्रावयिषति, शुश्रावायिषति।

द्रु - दिद्रावयिषती, दुद्रावयिषति।

प्रुङ् - पिप्रावयिषति, पुप्रावयिषति।

प्लुङ् - पिप्लावयिषति, पुप्लावयिषति।

च्युङ् - चिच्यावयिषति, चुच्यावयिषति।

सिस्रावयिषति - स्रु णिच् सन् तिप् > सु स्रावयि ष ति। अभ्यास के उकार को इकार हो - सि स्रावयि षति = सिस्रावयिषति। इकारादेश के अभाव में उकार ही रह गया। - सु स्रावयिषति = सुस्रावयिषति।

पिप्लावयिषति, पुप्लावयिषति - प्लु णिच् सन् तिप् > पु प्लावयि स ति। अभ्यास को इत्व हो - पि प्लावयि स ति = पिप्लावयिषति। इत्वादेश के अभाव में - पु प्लावयिषति = पुप्लावयिषति।

248. 'गुणो यङ्लुकोः (7.4.82)

यङ् तथा यङ्लुक् के परे रहते इगन्त अभ्यास को गुण होता है।

उदाहरण - चेचीयते, लोलूयते - यङ् परे रहते। जोहवीति - यङ्लुक् परे रहते।

चेचीयते - चि यङ् त > चि चि य ते। 'चि' इगन्त अभ्यास है तथा अंग से परे यङ् है अतः सूत्रविहित गुण प्राप्त होता है। अभ्यास को गुण हो - च ए चि य ते = चेचीयते।

जोहवीति - हु यङ् तिप् > जु हु ति। जु हु इट् ति > जु हो इ ति > जु हव् इ ति > जु हवि ति > जु हवीति। इगन्त अभ्यास के यङ्लुक् परे रहते गुण हो - जो हवीति = जोहवीति।

249. 'दीर्घोऽकितः (7.4.83)

किल्भिन्न अभ्यास को दीर्घ होता है, यङ् तथा यङ्लुक् होने पर।

उदाहरण - पापच्यते, पापचीति।

पापच्यते - पच् यङ् त > प पच् य ते। अभ्यास अकारान्त है तथा अंङ् के परे यङ् है अतएव अभ्यास को दीर्घ होकर - पा पच् य ते - पापच्यते।

पापचीति - पच् यङ् तिप् > पच् तिप् > प पच् तिप्। यङ्लुक होने से अभ्यास का दीर्घ हुआ - पा पच् तिप् = पापचीति।

250. 'उत्परस्यातः' (7.4.88)

चर् तथा फल धातुओं के अभ्यास से परवर्ती अवर्ण को यङ् या यङ्लुक होने पर उकारादेश हो जाता है।

उदाहरण - चञ्चूर्यते, चञ्चूरीति। - चर्

पम्फुल्यते, पम्फुलीति। - फल

चञ्चूर्यते - चर् यङ् त > च न् चर् य ते > चञ् चर्यते।

अभ्यास से परवर्ती अकार - चर् के अकार को उत्व हो - चञ् चुर् यते = चञ्चूर्यते।

चञ्चूरीति - चर् यङ् तिप् > चर् तिप् > च न चर् ईट् ति। अभ्यास से परवर्ती अकार को उत्व हो - च य् चुर ई ति = चुञ्चूरीति।

पम्फुल्यते - फल यङ् त् > फ न् फल् यते > प म् फल्यते। अभ्यास से परवर्ती अकार को उत्व हो - पम् फुल् य ते = पम्फुल्यते।

पम्फुलीति - फल यङ् तिप् > फल् तिप् > पम् फलईट्ति। अभ्यास से परे जो अकार उसे अत्वादेश हो - पम् फुलई ति = पम्फुलीति।

251. 'ति च' (7.4.89)

तकारादि प्रत्यय परे रहते भी चर तथा फल अंग के आकार के स्थान में उकारादेश होता है।

उदाहरण - चूर्तिः, प्रफुल्ताः, प्रफुल्तिः।

चूर्तिः - चर् क्तिन् > चर् ति। चर् अंग के अकार को उकारादेश होकर = चुर् ति = चूर्तिः।

प्रफुल्तिः - प्र फल् क्तिन्। अंग के अकार को सूत्र द्वारा विहित उकारादेश करने पर - पफुल् त। टाप्, जस् हो शब्द सिद्ध।

252. 'दीर्घो लघोः' (7.4.94)

सन्वद्भाव के विषय में लघु अभ्यास को दीर्घादेश हो जाता है।

उदाहरण - अचीकमत्, अपीपचत्।

अचीकमत् - कम् णिच् लुङ् > अ चि कम् अ (चङ्) त्। चङ्परक णि परे रहने से अंग 'अचिकम्' के अभ्यास के लघु इकार को सूत्र द्वारा दीर्घ आदेश प्राप्त हुआ। दीर्घ हो - अचीकमत्।

अपीपचत् - अ पि पच् अ त्। यहाँ पच् से परे लुप्त 'णि' है और णि से परे चङ् है अतः अभ्यास को दीर्घ होगा अ पी पचत् = अपीपचत्।

253. 'अत्स्मृदृत्वरप्रथम्रदस्तृस्पशाम्' (7.4.95)

स्मृ, दृ, त्वर, प्रथ, मद, स्तृ, स्पश - इन अंगों के अभ्यास को चङ्परक णि परे रहते अकारादेश होता है।

उदाहरण - असस्मरत्, अददरत्, अतत्वरत्, अपप्रथत्, अमम्रदत्, अतस्तरत्, अपस्पशत्।

असस्मरत्-अट् सि स्मर् अ त्। अभ्यास को अकारादेश होकर - अ स स्मरत् = असस्मरत्।

अददरत् - अ दि दर् अ त। अभ्यास को अकारादेश हो - अददरत्।

254. 'विभाषा वेष्टिचेष्ट्योः' (7.4.96)

वेष्टि तथा चेष्टि अंग के अभ्यास को चङ्परक णि परे रहते विकल्प से अकारादेश होता है।

उदाहरण - अववेष्टत्, अविवेष्टत् - वेष्टि।

अचचेष्टत्, अचिचेष्टत् - चेष्टि।

अववेष्टत् - अ व वेष्ट् अ त्। अभ्यास को अकारादेश पक्ष में - अ व वेष्ट् अ त् = अववेष्टत्। अकारादेश के अभाव में "ह्रस्वः" 7.4.59 से अभ्यास को ह्रस्व प्राप्त हुआ।

"एच् इग्घ्रस्वादेशे" नियम से एकार के स्थान पर इकार आदेश हो - अ वि वेष्ट अ त् = अविवेष्टत्।

अचचेष्टत् - अ चे चेष्ट् अ त्। अभ्यास को अत्वादेश होकर - अ च चेष्टत् = अचचेष्टत्। अत्वादेश के अभाव में ह्रस्व हो - अ चि चेष्ट् अ त् = अचिचेष्टत्।

255. 'ई च गणः' (7.4.97)

गण धातु के अभ्यास को ईकारादेश तथा चकार के बल से अकारादेश भी होता है, चङ्परक णि परे रहते।

उदाहरण - अजीगणत्, अजगणत्।

अजीगणत् - अ ज गण् अ त्। सूत्र द्वारा विहित ईकारादेश होकर - अ जी गण त्। सूत्रोपात्त चकार के वल से अभ्यास को अकार भी होगा। तब जब ईकार आदेश नहीं होगा तो अकार होकर अजगणत् - ऐसा शब्द बनेगा।

256. 'र्वोरूपधाया दीर्घ इकः' (8.2.76)

रेफान्त तथा वकारान्त जो धातु पद उसकी उपधा इक् को दीर्घ होता है।

उदाहरण - गीः, धूः, पूः, आशीः।

गीः - गृ क्विप् > गिर्। गिर् सु > गिर् सु। रेफान्त धातु पद की उपधा को दीर्घ हो - गीर् सु > गीः।

धूः - धुर् सु। रेफान्त धातु पद की उपधा को दीर्घ हो धूर् सु = धुः।

पूः - पुर् सु। रेफान्त धातु (पृ क्विप् = पुर्) पद् पुर् की उपधा दीर्घ हो-पूर् सु = पूः।

आशीः - आ शु क्विप् > आशिर् सु। रेफान्त धातु पद की उपधा दीर्घ हो - आ शीर् सु > आशीः।

257. 'हलि च' (8.2.77)

हल् के परे रहते भी रेफान्त और वान्त धातुओं के उपधाभूत इक् के स्थान में दीर्घादेश हो जाता है।

उदाहरण - आस्तीर्णम् - आङ् स्तृ क्त > अ स्तिर्न। हल् नकार (क्त > त > न) परे रहते रेफान्त धातु पद की उपधा को दीर्घ हो - आ स्तीर् न > आस्तीर्ण। आस्तीर्ण सु > आस्तीर्ण अम् = आस्तीर्णम्।

दीव्यति - दिव् वकारान्त धातु पद है अतः इसकी उपधा के इक् इकार को दीर्घ हो - दीव् य ति = दीव्यति।

258. 'उपधायां च' (8.2.78)

हल् परे रहते धातु की उपधाभूत जो रेफ एवं वकार उनकी उपधा इक् को दीर्घ होता है। उदाहरण - हूर्छिता, मूर्च्छिता, ऊर्विता, धूर्विता।

हूर्छिता - हुर्छ् कौटिल्ये लुट् > हुर्छ् डा > हुर्छ् तास् डा > हुर्छ् इट् तास् डा > हुर्छ् इ त् आ। हुर्छ् धातु की उपधा रेफ है। धातु के रेफपर्यन्त की उपधा इक् उकार है इस इक् को सूत्रविहित दीर्घ हो - हूर्छ् इ त् आ = हूर्छिता।

ऊर्विता - उर्वी इट् तास् डा। यहाँ उर्व् धातु की उपधा में रेफ (र्व्) है। र्‌ेफपर्यन्त की उपधा का इक् जो उकार उसे सूत्र विहित दीर्घादेश हो - ऊर्व् इ त् आ > ऊर्विता।

सन्दर्भ सूची

1. द्र. उक्त सूत्र का पतञ्जलिकृत भाष्य।
2. द्विपर्यन्तानां व्यदादीनामत्वमिष्यते (सूत्र की काशिका व्याख्या)
3. काशिका वृत्तिः (सुधी प्रकाशनम् वाराणसी द्वारा प्रकाशित, स्वामी द्वारिका दास शास्त्री द्वारा संपादित) षष्ठो भागः प्रष्ठांक-26।
4. सूत्र की बाल मनोरमा टीका - "कदाचितत्पूर्वपदस्य कदाचिदुत्तरपदस्येत्यर्थ"।

'सम्प्रसारणप्रकरण'

1. ''ष्यङः सम्प्रसारणं पुत्रपत्योस्तत्पुरूषे'' (6.1.13)

पुत्र शब्दोत्तर पदक तथा पति शब्द उत्तरपद कहते तत्पुरूष समास में ष्यङ् प्रत्ययान्त के स्थान में पूर्व पद को सम्प्रसारण होता है।

उदाहरण - कारीषगन्धी पुत्रः, कौमुदगन्धीपुत्रः, कौमुदगन्धी पतिः, कारीषगन्धी पतिः आदि।

कारीषगन्धी पुत्रः - ''कारीषगन्ध्यायाः पुत्रः'' इस अर्थ में ष्यङ् प्रत्ययान्त कारीषगन्धी एवं पुत्र शब्द का समास हुआ कारीषगन्धी ष्यङ् पुत्र। अब आलोच्य सूत्र द्वारा पूर्वपद् को सम्प्रसारण प्राप्त हुआ। आदेश ष्यङ् प्रत्ययान्त को प्राप्त है अतः पूर्वपद् का अन्त्य अल् - प्रत्यय के यकार को सम्प्रसारण होकर - कारीषगन्धि इ अ पुत्र सु ऐसी स्थिति हुई। अब इ एवं अ को पूर्वरूप हो इकार तथा 'गन्धि' के इकार एवं पूर्वरूप से प्राप्त इकार दोनों को सवर्णदीर्घ, स्वादिकार्य हो कारीषगन्धीपुत्रः शब्द सिद्ध हुआ।

कौमुदगन्धी पतिः - कौमुदगन्धि ष्यङ् पति सु। ष्यङ् को सम्प्रसारण होकर - कौमुदगन्धि इ अ पति सु = कौमुदगन्धी पतिः।

2. 'बन्धुनि बहुव्रीहौ (6.1.14)

बन्धु शब्द उत्तरपद में हो तो बहुव्रीहि समास में ष्यङ् को सम्प्रसारण होता है।

उदाहरण - कारीषगन्धी बन्धुः।

कारीषगन्धी ष्यङ् बन्धु सु। ष्यङ् को सम्प्रसारण होकर - कारीषगन्धि इ अ बन्धु सु = कारीषगन्धी बन्धुः।

3. ''वचिस्वपियजादीनां किति'' (6.1.15)

कित् प्रत्यय के परे रहते वच्, स्वप्, यज् धातुओं को भी सम्प्रसारण हो जाता है।

उदाहरण - उक्तः, सुप्तः, इष्टः।

उक्तः - वच् क्त। सम्प्रसारण होकर - उ अच् त। पूर्वरूप च को क हो तथा विभक्त्यादि - कार्य होकर उक्तः शब्द सिद्ध हुआ।

सुप्तः - स्वप् क्त। सम्प्रसारण होकर स् उ अ प् त। सुप्तः।

इष्टः - यज् क्त। सम्प्रसारण हो - इ अ ज् त > इष्टः।

4. 'ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनांङ्किति च' (6.1.16)

ग्रह, ज्या, वेञ्, व्यध, वश, व्यच, व्रश्च्, प्रच्छ, भ्रस्ज इन धातुओं को सम्प्रसारण होता है ङित् तथा कित् प्रत्यय परे रहते।

उदाहरण -ग्रह - ग्रहीतः, गृह्णाति।

ज्या - जीनः, जिनाति।

वय - ऊयतुः, ऊयुः।

व्यध - विद्धः, विध्यति।

व्यच - विचितः, विचति।

व्रश्च - वृक्णः, वृश्चति।

प्रच्छ - पृष्टः, पृच्छति।

भ्रस्ज - भृष्टः, भृज्जति।

गृहीतः - गृह क्त। ग्रह इ ट् त।

सम्प्रसारण हो ग् ऋ ह् इ त > गृह् ई त = गृहीत सु > गृहीतः।

गृहणाति - ग्रह् श्ना तिप्। सम्प्रसारण होकर ग् ऋ ह् ना ति > गृहणाति्। इसकी प्रकार ज्या को सम्प्रसारण हो जी, वय को ऊय्, व्यध को विद्ध, व्यच को विच्, व्रश्च को वृश्च, प्रच्छ को पृच्छ, भ्रस्ज को भृस्ज हो जाएगा। तथा अन्य प्राप्त कार्य सम्पन्न हो उपर्युक्त उदाहृत शब्द सिद्ध होंगे।

5. "लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्" (6.1.17)

लिट् लकार के परे रहते वचि, स्वपि, यजादि और ग्रहिज्या सूत्र में वर्णित शब्दों के अभ्यास को सम्प्रसारण होता है।

उदाहरण - उवाच्, सुष्वाप्, इयाज्, उवाप्, जिज्यौं, उवाय, विव्याध, उवास, विव्याच आदि।

उवाच - वच् वच् णल् > व वच् अ > व वाच। अभ्यास को सम्प्रसारण होकर उ अ वाच। पूर्वरूप हो उवाच सिद्ध हुआ।

जिज्यौ - ज्या णल् > ज्या ज्या णल् > ज्या ज्या औ। अभ्यास को सम्प्रसारण हो - ज् इ आ ज्या औ = जिज्यों।

6. ''स्वापेश्चङि'' (6.1.18)

णिजन्त स्वप् अर्थात् स्वापि को चङ् परे रहते सम्प्रसारण हो जाता है।

उदाहरण - असूषुपत्।

असूपुषत् - अट् स्वप् इ (णिच्) अ (चङ्) तिप् > अ स्वपि अत्। स्वापि को सम्प्रसारण हो - अ स् उ अ प् अत् > असुप् अ त्। द्वित्व अभ्यास कार्य हो अ सू सुपत् = असूषुपत्।

7. ''स्वपिस्यमित्येञा यङि'' (6.1.19)

स्वप्, स्यम्, व्येञ् - इन धातुओं को यङ् परे रहते सम्प्रसारण हो जाता है।

उदाहरण - सो षुप्यते, सो सिम्यते, वेवीयते।

सोषुप्यते - सुवप्यङ् > स्वप् य। सूत्रविहित सम्प्रसारण हो स् उ अ प् य = सुप् य हुआ। द्वित्व अभ्यास कार्य हो लट् एकवचन में सोषुप्यते बना।

से सिम्यते - स्यम् यङ् त > स्यम् य ते। सम्प्रसारण हो स् इ अम् य ते सिम्य ते। द्वित्व अभ्यास कार्यादि होकर से सिम्यते बना।

वेवीयते - व्येञ् यङ् ते। सूत्रविहित सम्प्रसारण हो - व् इ ए य ते = वियते। द्वित्व अभ्यास कार्यादि हो वे वी य ते = वेवीयते।

8. 'स्त्यः प्रपूर्वस्यः' (6.1.23)

प्र उपसर्गपूर्वक स्त्या धातु के सम्प्रसारण हो जाता है यदि निष्ठा परे हो तो।

उदाहरण - प्रस्तीतः, प्रस्तीतवान् अथवा प्रस्तीमः, प्रस्तीमवान्।

प्रस्तीतः - प्रस्तीमः - प्र स्त्या क्त। सूत्रविहित सम्प्रसारण हो प्र स्त् इ आ त = प्रस्ति त > प्रस्तीत बना। निष्ठा को सूत्र प्रस्त्योऽन्यतरस्याम् से वैकल्पिक मकारादेश विहित होने से मकारपक्ष में प्रस्तीमः एवं मकारादेश के अभाव पक्ष में प्रस्तीतः बना।

प्रस्तीमूवान्, प्रस्तीतवान् - प्र स्त्या क्तवत्। सम्प्रसारण हो प्र स्त् इ आ तवत् = प्रस्तीतवत् अथवा प्रस्तीमवत् प्रथमा एकवचन में 'सु' हो रूप द्वय सिद्ध हुये।

9. 'द्रवमूर्तिस्पर्शयोः श्यः' (6.1.24)

तरल पदार्थ की मूर्ति कठिनता के अर्थ में वर्तमान तथा स्पर्श अर्थ में वर्तमान जो श्यैङ् धातु उसे निष्ठा परे रहते सम्प्रसारण हो जाता है।

उदाहरण - शीनं घृतम्, शीना वसा, शीतं वर्तते, शीतो वायुः।

शीनं, शीतं - श्यैङ् क्त > श्यै त। सूत्र द्वारा विहित सम्प्रसारण होकर - श् इ ऐ त। पूर्वरूप तथा निष्ठा को वैकल्पिक नत्व हो शीनं, शीतं दोनो शब्द सिद्ध हुए।

10. 'प्रतेश्च' (6.1.25)

प्रति से उत्तर श्यैङ् होने पर भी धातु को सम्प्रसारण हो जाता है, यदि अंग से उत्तर निष्ठा प्रत्यय हो।

उदाहरण - प्रतिशीनः, प्रतिशीनवान्।

प्रतिशीनः - प्रति श्यैङ् क्त > प्रति श्यै त। सम्प्रसारण हो प्रति श् इ ऐ त = प्रति शित। दीर्घ निष्ठानत्व हो प्रतिशीन बना।

प्रतिशीनवान् - प्रति श्यै क्तवत् > प्रति श्यै तवत्। सम्प्रसारण होकर प्रति श् इ ऐ तवत् = प्रति शितवत्। प्रथमा एकवचन में प्रतिशीनवान्।

11. 'विभाषाऽभ्यवपूर्वस्य' (6.1.26)

'अभि' पूर्वक तथा 'अव' पूर्वक श्या धातु को निष्ठा परे रहते विकल्प से सम्प्रसारण हो जाता है।

यथा - अवशीनम् अवश्यानम् वा। अभिशीनम्, अभिश्यानम् वा। अभिशीनम्, अभिश्यानम् - अ भि श्यैङ् क्त।

सम्प्रसारण होकर अभि श् इ ऐ त = अभिशीत = अभिशीन। स्वादि हो अभिशीनम्। सम्प्रसारण के अभाव में - अभि श्यै त > अभि श्या त > अभि श्या न सु = अभिश्यानम्। इसी प्रकार अव पूर्वक श्यैङ को सम्प्रसारण पक्ष में अव शि त > अवशीनम् और सम्प्रसारण के अभाव में अवश्यात = अवश्यानम् दो रूप बनेंगे।

12. 'विभाषा श्वे' (6.1.30.)

लिट् या यङ् परे हो तो श्वि धातु को विकल्प से सम्प्रसारण होता है।

उदाहरण - शुशाव, शिश्वाय वा, शोशूयते शेश्वीयते वा।

शुशाव, शिश्वाय - श्वि णल्। सम्प्रसारण होकर - श उ इ अ = शु अ। द्वित्व अभ्यास कार्य होकर शु शाव् अ = शुशाव बनेगा। सम्प्रसारण न होने पर श्वि श्वि अ > शि श्वि अ > शि श्वै अ

> शि श्व् आय अ = शिश्वाय।

शोशूयते - शेश्वीयते - शिव् यङ् > श्वि य त। सूत्र विहित सम्प्रसारण हो - श् उ इ य त। द्वित्व हलादिशेष, अभ्यास को गुण, अंग को दीर्घ टि को एत्व हो शोशूयते शब्द बना। सम्प्रसारण के अभाव में शि श्वि य ते > शे श्वी यते = शेश्वीयते।

13. 'णौ च संश्चङोः' (6.3.31.)

सन् परे हो या चङ् परे हो जिस णिच् के ऐसे णि के परे रहते भी श्वि धातु को विकल्प से सम्प्रसारणहो जाता है।

उदाहरण - अशूशवत्, अशिश्वत्।

अशूशवत् - अट् श्वि णिच् चङ् तिप् > अ श्वि अ त्। श्वि को सम्प्रसारण हो - अ श् उ इ अत् = अ शु अत्। द्वित्व - अभ्यास कार्य आदि होकर अशूशवत् सिद्ध हुआ।

अशिश्वत् - अ श्वि (णि) अत्। सम्प्रसारण के अभाव में द्वित्वादि हो - अ श्वि श्वि अ त् > अ शि श्वे अ त् = अशिश्वयत्।

14. 'हः सम्प्रसारणम्' (6.1.32.)

सन्परक या चङ्परक णि परे हो तो ह्वेञ् धातु को सम्प्रसारण हो जाता है।

उदाहरण - अजूहवत्, जुहावयिषति।

अजूहवत् - ह्वेञ् णिच् तिप् > लुङ् में - अह्वे (णि) चङ् त। सूत्र द्वारा प्राप्त सम्प्रसारण कार्य हो - अह उ ए चङ् त् = अ हु अत्। द्वित्व अभ्यास कार्य हो अजूहवत्। जुहावयिषति - ह्वेञ् णिच् इट् सन् तिप्। सूत्र द्वारा विहित सम्प्रसारण हो - ह् उ ए इ इ स ति = हू इ इ स ति। द्वित्व अभ्यास के ह को चुत्व झकार, झकार को जश् जकार, अंग के उकार को वृद्धि - आवादेश, णि को गुण अयादेश, सन् को षत्व हो जुहावयिषति शब्द सिद्ध हुआ।

15. 'अभ्यस्तस्य च' (6.1.33.)

अभ्यस्त का कारण जो ह्वेञ् धातु उसे सम्प्रसारण हो।

उदाहरण - जुहाव, जुहूयते, जूहूषति।

जुहाव - ह्वेञ् णल् > ह्वा अ। लिट् में अनभ्यस्त धातु को द्वित्व होता हैं। यहाँ ह्वेञ् धातु अभ्यस्त अर्थ में, सम्प्रसारण प्राप्त। सम्प्रसारण होकर - ह् उ आ अ = हु अ। द्वित्व अभ्यासकार्य, उकार

को वृद्धि आवादेश हो 'जुहाव' सिद्ध होगा। जूहयते - ह्वे यङ्। सम्प्रसारण होकर - ह उ ए या > लट् लकार प्र. पु. एक व. में जूहू यते बना।

'ह्वः सम्प्रसारणम् अभ्यस्तस्य' इस प्रकार के एक सूत्र का योग विभाग किया गया। इससे प्रथम योग द्वारा णि परक सन् और चङ् परे होते ह्वेञ् को सम्प्रसारण विहित हुआ तथा द्वितीय योग द्वारा अभ्यस्त होने वाली ह्वेञ् धातु को सम्प्रसारण विहित हुआ। सन् यङ् तथा लिट् प्रत्यय परे रहते अंग की धातु को द्वित्व एवं अभ्यस्त संज्ञा होती है अतः इनके उदाहरण दिये गये है। इससे 'जिह्वायकीयिषति' के ह्वेञ को सम्प्रसारण नही हुआ।

ह्वाय कमिच्छति, ह्वाय कीयति = ह्वेञ् ण्वुल = ह्वायक क्यच् = ह्वायकीयति। ह्वायकीय सन् = जिह्वाय कीयिषति। ण्वुल् प्रत्ययान्त ह्वेञ् को क्यच् हुआ और इससे निष्पन्न शब्द को सन् हुआ। ह्वेञ् से परे होने वाले ण्वुल् और क्यच् प्रत्यय द्वित्व कार्य के निमित्त नहीं है अतः इनसे व्यवहित होने से द्वित्व निमित्तक सन् परे रहते भी सम्प्रसारण नहीं हुआ। इस प्रकार ह्वेञ् को तभी सम्प्रसारण होगा जब (1) णि परक सन् या चङ् इससे परे हो और (2) अंग भावी अभ्यस्त संज्ञक हो अर्थात् द्वित्व निमित्तक सन्, यङ् या लिट् प्रत्यय इसके पर हों। तथा द्वित्व निमित्तक से भिन्न प्रत्यय का (सूत्र में उल्लिखित णि, चङ् को छोड़कर) व्यवधान होने पर अभ्यस्तभावी धातु को सम्प्रसारण नही होगा। (ऐसा ज्ञापित हुआ)

16. 'बहुलं छन्दसि' (6.1.33.)

वेद विषय में ह्वेञ् धातु को बाहुलकात् सम्प्रसारण होता है।

उदाहरण - इन्द्राग्नी हुवे। ह्वयामि मरुतः।

हुवे - ह्वेञ् शप् इट् > ह्वे इट् सूत्र विहित सम्प्रसारण हो - ह् उ ए इट् = हु इट्। हु को उवङ्, टि को एत्वादि कार्य हो हुवे शब्द बना।

ह्वयामि - ह्वेञ्, मिप् > ह्वे शप् मिप् > ह्वे अ मि > ह् व् अय मि ह्वयमि > हव्यामि - सम्प्रसारण कार्य न होने पर इस प्रकार का रूप बना।

17. 'वसोः संप्रसारणम्' (6.4.131.)

वसु प्रत्ययान्त वाले भसंज्ञक अंग को सम्प्रसारण होता है।

उदाहरण - विदुषः, पेचुषः, पपुषः।

स्वन्त का अर्थ है वसु, क्वसु प्रत्ययान्त शब्द।

विदुषः - विद् वसु शस् > विद्वस् अस्। वस् को सम्प्रसारण हो - विद् उ अस् अस् > विद् उस् अस्। रुत्व विसर्ग, षत्व हो 'विदुषः'।

पेचुषः - पच् लिट् > पच् क्वसु > पच् पच् वस् > पेच् वस्। पेच् वस् शस्। सम्प्रसारण हो - पेच् उ अस शस्। उ एवं अ को पररूप उकार, शस् के सकार को रुत्व विसर्ग वस् के सकार को षत्व हो पेचुषः शब्द सिद्ध हुआ।

पपुषः - पा लिट् > पा क्वस् > प पा वस् > प प् वस्। शस् हो प प् वस् रास्। सूत्र विहित सम्प्रसारण हो प प उ अस् शस्। उकार एवं अकार के स्थान पर पररूप उकार वस् के स् को ष्, शस् के स् को रुत्व - विसर्ग होकर प प् उष अः = पयुषः बना।

18. 'वाह ऊठ्' (6.4.132.)

वाह् अन्त में हो जिस भसंज्ञक अंग के, उसको सम्प्रसारण संज्ञक ऊठ् आदेश होता है।

उदाहरण - विश्वौहः।

विश्ववाह शस्। विश्ववाह् शब्द के अन्त में वाह् है तथा विश्ववाह अंग भसंज्ञक भी है अतः अंग को सम्प्रसारण रूप ऊठ् आदेश होकर - विश्व ऊ आह् अस्। ऊ एवं आ को पूर्वरूप अकार, अकार परवर्ती ऊकार को वृद्धि एकादेश, अस् के स् को रुत्व विसर्जनीय होकर विश्वो ह् अः = विश्वौहः।

19. 'श्वयुवमघोनामतद्धिते' (6.4.133.)

श्वन्, युवन, मघवन् इन भसंज्ञक अंगो को तद्धित भिन्न प्रत्यय परे रहते सम्प्रसारण होता है।

उदाहरण - शुनः, यूनः, मघोनः।

शुनः - श्वन् शस् > श्वन् अस्। शस् तद्धित प्रत्यय नहीं है अतः श्वन् को सम्प्रसारण हो - श् उ अन् अस् > शु अन् अस्। उकार अकार को पूर्वरूप उकार, स् को रुत्व विसर्ग हो शुनः बना। इसी प्रकार युवन्, मघवन् के वकार का शस् (अस्) परे रहते सम्प्रसारण हो उकारादेश हो यूनः, मघोनः शब्द सिद्ध होंगे।

20. 'द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम्' (7.4.67.)

द्युति एवं स्वादि अंग के अभ्यास को सम्प्रसारण होता है।

उदाहरण - दिद्युते, सुण्वापयिषति।

दिद्युते - द्युत् लिट् > द्युत् त। द्युत् द्युत् त। अभ्यास को सम्प्रसारण होकर - द इ उत् द्युत त। पूर्वरूप हलादि शेष हो दि द्युत् त हुआ। त को एश् हो दि द्युत् ए = दिद्युते।

सुष्वापयिषति - स्वप् णिच् सन् तिप्। स्वप् स्वापि इट् स ति। सम्प्रसारण हो - स् उ अ प् स्वापि इ स ति। पूर्वरूप, हलादि शेष हो सु स्वापि इ स ति। गुण, अयादेश षत्व हो सुष्वापयिषति।

21. 'व्यथो लिटि' (7.4.68.)

व्यथ धातु अंग के भी अभ्यास को लिट् परे रहते सम्प्रसारण होता है।

उदाहरण - वित्यथे, विव्यथाते, विव्यथिरे।

विव्यथे - व्यथ त > व्यथ व्यथ एश्। सम्प्रसारण हो - वि अ थ् व्यथ् ए। > वि व्यथे।

तृतीय अध्याय

तृतीय अध्याय

हल् वर्ण दिश

1. ''हनस्त च'' (3.1.108.)

ऐसा सुबन्त उपपद जो उपसर्ग न हो 'हन्' से पूर्व हो, तो भाव में क्यप् प्रत्यय तथा हन् के तकार को नकार अन्तादेश भी होता है।

उदाहरण - ब्रह्म हत्या।

ब्रह्म् हत्या - ब्रह्म हन् > हत् क्यप् = ब्रह्महत्या। टाप् होकर शब्द सिद्ध हुआ।

2. ''दुहः कब्घश्च'' (3.2.70.)

सुबन्त उपपद हो तो दुह् धातु से कप् प्रत्यय तथा दुह् के हकार को घकार अन्तादेश होगा।

उदाहरण - कामदुधा, धर्मदुधा।

कामदुधा - काम दुह् > दुध् कप् = कामदुध। टाप प्रत्यय (स्त्रीलिंग की विवक्षा में) होकर काम दुग्धा शब्द बना। धर्मदुधा - धर्म दुह् > दुध् कप् टाप् = धर्म दुधा।

3. ''वनो र च'' (4.1.7.)

वनन्त प्रातिपादिकों से स्त्रीलिंग में ङीप् प्रत्यय तथा प्रातिपादिक को रेफ अन्तादेश होता है। वनिप्, ह्वनिप्, क्वनिप् प्रत्ययान्त शब्द 'वन्नन्त' पद है अतः वन संभक्तौ, वनु याचने आदि धातुओं को उपर्युक्त कार्य नहीं होंगे।

उदाहरण - धीवरी, पीवरी, शर्वरी।

धीवरी - धीवन् > धीवर् ङीप् - प्रातिपादिक वन्नन्त है अतः स्त्रीलिंग में ङीप् प्रत्यय एवं रेफ अन्तादेश हुआ।

पीवरी - पीवन् > पीवर् ङीप्

शर्वरी - शर्वन् > शर्वर् ङीप्।

4. ''पत्युर्नो यज्ञसंयोगे'' (4.1.33.)

स्त्रीलिंग की विवक्षा में पति शब्द को नकार अन्तादेश होता है यज्ञ संयोग गम्यमान हो तो।

यज्ञसंयोग का अर्थ है - ''यज्ञ के सम्बन्ध में''। त्रैवर्णिक पुरूष अपनी पत्नी के बिना यज्ञ

का निष्पादन नहीं कर सकते। यज्ञ के फल में भी दम्पत्ति का सहभागी होना प्रसिद्ध है। इस तरह स्त्री का यज्ञ से क्रियाकारकत्व एवं फलभोक्तृत्व सम्बन्ध स्पष्ट हुआ। अतएव पति शब्द वाप अर्थ की स्त्रीलिंग में विवक्षा होने पर शब्द को नकार अन्तादेश एवं नान्तत्वात् ङीप प्रत्यय होगा।

पत्नी - पति ङीप्। सूत्र द्वारा विहित नकार अन्तादेश हो पत् न ङीप् = पत्नी।

5. ''विभाषा सपूर्वस्य'' (4.1.34.)

विद्यमान पूर्व (जिस पति शब्द के पूर्व कोई शब्द विद्यमान हो) पतिशब्दान्त अनुपसर्जन भूत प्रातिपादिक को स्त्रीलिंग की विवक्षा में ङीप प्रत्यय तथा पति शब्द को नकार अन्तादेश होता है।

उदाहरण - वृद्धपत्नी। (वृद्धः पतिरस्या) पक्ष में - वृद्धपतिः। स्थूलपत्नी स्थूलपतिः वाः दृढ़पत्नी दृढपतिर्वा।

वृद्धपत्नी = वृद्ध पति ङीप् > वृद्ध पत् न ङीप > वृद्धपत्नी सूत्रविहित कार्य के वैकल्पिक होने से ङीप् प्रत्यय एवं नकारादेश के अभाव में ''वृद्धपतिः'' शब्द सिद्ध होगा। इसी प्रकार ङीप् और नकारादेश पक्ष में स्थूलपत्नी दृढ़पत्नी तथा अभाव पक्ष में स्थूलपतिः, वृढ़पतिः सिद्ध होंगे।

6. ''नित्यं सपत्न्यादिषु'' (4.1.35.)

सपत्नी आदि शब्दों में पति के अनत्य इकार के स्थान पर नित्य नकारादेश् होता है।

उदाहरण - समानः पतिरस्याः - सपत्नी, एकपत्नी, वीर पत्नी आदि।

सपत्नी - स पति। नकारादेश हो स पत् न। ङीप हो - सपत्नी एकपत्नी - एक पति > एक पत् न् ङीप् > एकपत्नी।

वीरपत्नी - वीर पत् न् ङीप् - वीरपत्नी।

7. ''वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः'' (4.1.39.)

वर्णवाची अनुदात्तान्त तकार उपधा वाले प्रातिपदिकों से विकल्प से ङीप् प्रत्यय तथा तकार को नकारादेश होता है।

उदाहरण - एनी, एताः, श्येनी, श्येताः, हरिणी, हरिता आदि।

एनी, एता - एत > एन् ङीप्। एन के अनत्य अकार का लोप हो 'एनी' शब्द सिद्ध हुआ।

सूत्र विहित ङीप् प्रत्यय एवं तकारादेश के अभाव पक्ष में एत टाप् > एता बना।

श्येनी, श्येता - श्येत > श्येन ङीप् = श्येनी - नकारादेश एवं ङीप् होकर।

श्वेत् टाप् > श्येता - नत्वादेश एवं ङीप् प्रत्यय के अभाव में टाप् होकर।

हरिणी, हरिता - हरित शब्द को सूत्रविहित कार्य के भाव पक्ष में - हरिन् ङीप् = हरिणी।

हरिता - तकारोपध हरित शब्द को सूत्रविहित कार्य के अभाव पक्ष में शब्द से टाप् हो - हरित टाप् = हरिता।

8. "राज्ञः क च" (4.2.140.)

राजन् शब्द से शैषिक 'छ' प्रत्यय तथा प्रातिपदिक को ककार अन्तादेश होता है।

उदाहरण - राजकीयम्

राजकीयम् - राजन् शब्द से 'छ' प्रत्यय तथा शब्द को ककार अन्तादेश होकर - राजक् छ > राजकीय सु > राजकीयम्।

9. "किमिदम्भ्यां वोघः" (5.2.40.)

किम्, इदम् प्रातिपदिकों से परे जो वतुप् उसके 'व' को 'घ' आदेश हो।

उदाहरण - कियान्, इयान्।

कियान् - किम् वतुप् > किम् वत् > कि घत् - 'व' को 'घ' आदेश होकर 'घ' को 'इय' तथा प्रथमा एकवचन की विभक्ति हो कियान् रूप बना।

इयान् - इदम् वतुप् सु। सूत्र विहित आदेश हो - इदम् घत्। इ घत् > इयत् सु = इयान्।

10. "कस्य च दः" (5.3.72.)

ककारान्त अत्यय को अकच् प्रत्यय और दकार अन्तादेश भी होता है।

हिरकुत्, पृथकत्, धकित्।

धकित् = धिक् को दकार अन्तादेश तथा अव्यय से अकच् प्रत्यय होकर -' ध अकच् इद् > धकिद् = धकित्।

हिरकुत् - हिरुक् से सूत्रविहित कार्य हो - हिर् अक उद् > हिरकुद् = हिरकुत्।

11. "वश्चास्यान्यतरस्यां किति" (6.1.39.)

इसको - अर्थात् वय के यकार को कित् लिट् परे रहते वकारादेश विकल्स से होगा।

उदाहरण - ऊवतुः, उवुः, उवयिथ। वकारादेश के अभाव में ऊयतुः, उयुः आदि होंगे।

ऊवतुः - वय् अतुस। यकार को वकार होने पर - वव् अतुस् > ऊवतु। वकार के अभाव

में यकार ही रहा और संप्रसारण पूर्वरूप होने पर - ऊय् अतुस् = ऊयतुः।

12. ''धात्वादेः षः सः'' (6.1.63.)

धातु के आदि के सकार के स्थान में सकार आदेश होता है।

उदाहरण - षह - सहते। षिचू - सिञ्चति। षह धातु षोपदेश है इस धातु से जब प्रत्यय इत्यादि लाये जाएंगे धातु के षकार को सत्व हो जायेगा। षह से प्रत्यय करने पर ऐसी अवस्था होगी - सह त > सहते। षिच् से लट् एकवचन प्रथम पुरूष में तिप् प्रत्यय करते समय धातु को सत्वादेश करके प्रत्यय लाया जायेगा - सिच् तिप् सिञ्चति।

13. ''णो नः'' (6.1.64.)

धातु के आदि णकार को नकार हो जाता है उपदेश अवस्था में।

उदाहरण - णह् > नह्, णू > नू, ष्णिह् > स्निह्, ष्णुह > स्नुह।

उपदेशावस्था में इन धातुओं का णकार प्रत्यय लाने पर नकार हो जाता है।

14. ''इकोयणचि'' (6.1.76.)

इक् (इ, उ, ऋ, लृ) को यण् (क्रमशः य्, व्, र्, ल्) आदेश होंगे यदि अच् (अ, आ, इ ई, ऊ, उ, ए, ऐ, ओ, औ) का कोई वर्ण परे हो तो संहिता के विषय में।

उदाहरण - यकार - प्रति + अर्पण = प्रत्यर्पण।

गौरी + आगच्छति = गौर्यागच्छति।

वकार - मधु + अरिः = मध्वरिः।

वधू + आगच्छति = वध्वागच्छति।

लवर्ण - लृ + आकृति = लाकृति। रकार - मातृ + आज्ञा = मात्राज्ञा

15. ''तस्माच्छसो नः पुंसि'' (6.1.101.)

उस् (अर्थात् ''प्रथमयो पूर्वसवर्णः'' 6.1.100 से किये हुये पूर्व सवर्ण दीर्घ) से उत्तर शस् के अवयव सकार को नकारादेश होता है। पुल्लिंग में।

उदाहरण - रामान, मुनीन, साधून, पितृन आदि।

रामान् - राम शस् > रामास्। शस् के सकार को नकारादेश हो रामान्।

मुनीन् - मुनि शस् > मुनीस्। नकार आदेश हो - मुनीन्।

साधून् - साधु शस् > साधूस्। नत्वादेश हो - साधून्।

पितृन - पितृ शस् > पितृस्। पूर्वसवर्ण दीर्घ हुये शस् के सकार नकार आदेश होकर - पितृन्।

16. "एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य" (6.4.82.)

धातु का अवयव जो संयोग - वह जिस इवर्ण के पूर्व में न हो, ऐसे इवर्णान्त अनेकाच् अङ्ग को अच् परे रहते यणादेश होता है।

उदाहरण - कुमार्यो, कुमार्यः, प्रध्यो, प्रध्यः आदि।

कुमार्यौ - कुमारी औ। यण् होकर - कुमार् य् औ = कुमार्यौ।

कुमार्यः - कुमारी अस्। यण् हो - कुमार् य् अस् - कुमार्यः।

17. "ओः सुपि" (6.4.83.)

धात्ववयव जो संयोग वह जिस उवर्ण के पूर्व में नहीं है ऐसे उवर्णान्त अनेकाच् अंग को अजादि सुप् परे रहते यणादेश होता है।

उदाहरण - खलप्वौ, खलप्वः, शतस्वौ, शतस्वः, सकृल्ल्वौ, सकुल्ल्वः, खलप्वौ औ। यण् होकर - खलप् व् औ - खलप्वौ। शतस्वौ - शतस् औ। यण् होकर - शतस् व् औ = शतस्वौ। सकृल्लवः - सकृल्ल् अस् (शस् या जस्) यण् होकर - सकृल्ल् व् अस् = सकृल्लवः।

18. "वर्षाभ्वश्च" (6.4.84.)

'वर्षाभू' अंग को अजादि सुप् परे रहते यणादेश होता है।

उदाहरण - वर्षाभ्वौ, वर्षाश्वः आदि।

वर्षाभ्वौ - वर्षाभू औ। यण् हो - वर्षाभ् व् औ = वर्षाभ्वौ।

वर्षाश्वः - वर्षाभू अस्। यण् हो - वर्षाभ् व् अस् = वर्षाभ्वः।

19. "हुश्नुवोः सार्वधातुके" (6.4.87.)

हु तथा श्नु - प्रत्ययान्त संयोग पूर्व में न हो जिसके ऐसे अंग को अन्त्य अवयव हो यणादेश होता है यदि अजादि सार्वधातुक प्रत्यय परे हो तो।

उदाहरण - जुह्वति, जुह्वतु, सुन्वन्ति, सुन्वन्तु।

जुह्वति - हु झि > हु शप् झि > हु झि > जु हु झि > जु हु अत् इ > जु हु अति। झि

सार्वधातुक प्रत्यय है अतः उसके स्थान पर हुआ आदेश भी सार्वधातुक प्रत्यय है। अजादि सार्वधातुक परे रहते असंयोग पूर्व हु को यण् व् हो - जुह् व् अति = जुह्वति।

सुन्वन्ति - सु श्नु झि > सु नु अन्ति श्नु प्रत्ययान्त असंयोग - पूर्व सुनुअंग को यण् व् हो - सु न् व् अन्ति - सुन्वन्ति।

20. ''अर्वणस्त्रसावनञः'' (6.4.127.)

अर्वन् अंग को तृ आदेश होता है यदि वह अंग नञ् से परे तथा सु से पूर्व न हो।

अर्वन्तौ, अर्वन्तः। अर्वन्तम्, अर्वन्तौ, अर्वतः। अर्वता, अर्वद्भ्याम् आदि। अर्वन्तौ - अर्वन् औ। अर्वन् अंग को तृ आदेश हो - अर्वत औ > अर्व नुम् तृ औ > अर्वन्तौ। असौ एवं अनञः प्रतिषेध कथन होने से अर्वन् सु = अर्वा, नञ् अर्वन औ = अनर्वाणौ। इत्यादि शब्द बने। इनमें अंग को तृ आदेश नहीं हुआ।

21. ''मघवा बहुलम्'' (6.4.128.)

मघवन् अंग को बहुल करके तृ आदेश होता है।

मघवान्, मघवन्तौ, मघवतः। पक्ष में - मघवा, मघवानौ, मघवानः। मघवान्, मघवा - मघवन् सु। मघवन् को तृ अन्तादेश हो - मघवृत सु > मघवन सु > मघवान्। तथा तृ अनादेश में - मघवन् सु > मघवा शब्द सिद्ध हुआ।

22. 'र ऋतो हलादेर्लघोः'' (6.4.161.)

भसंज्ञक हलादि अंग के लघु ऋकार के स्थान पर र आदेश होता है यदि इष्ठन्, इमनिच् या ईयसुन् परे हो तो।

उदाहरण - पृथिष्ठः, प्रथिमा, प्रथीयान्। म्रदिष्ठः, म्रदिमा, म्रदीयान्।

प्रथिष्ठः - प्रथु इष्ठन्। ऋकार को र आदेश हो - प् र् थु इष्ठन् = प्रथिष्ठ। स्वादिकार्य हो प्रथिष्ठः।

प्रथिमा - पृथु इमनिच्। 'र' आदेश हो - प्रथु इमनिच् > प्रथिमा। प्रथीयान् - पृथु ईयसुन। 'ऋ' को 'र' आदेश होकर - प् र थु ईयसुन = प्रथीयान्।

23. ''शशो न'' (7.1.29.)

युष्मद् अस्मद् अंग से उत्तर शस् के स्थान में नकारादेश होता है।

उदाहरण - युष्मान्, अस्मान्।

युष्मान - युषाद् शस् > युषाद् अस्। शस् को नकारादेश हो - ('आदे परस्य' नियम से पर के आदि को होकर) - युष्मद् न् स्। युष्मद् न् स् > युमद् न् > युष्म अ न् > युष्मान् > युष्मान्। अस्मान् - अस्मद् शस् > अस्मद् अस्। शस् को नकारादेश हो असमद् न् स् > अस्म अ न् > अस्मान्।

24. "योऽचि" (7.2.89.)

ऐसी अजादि विभक्ति जिसे कोई आदेश नहीं हुआ है परे हो तो अस्मद् और युष्मद् अंग को यकारादेश होता है।

उदाहरण - त्वयां, मया, त्वयि, मयि, युवयोः, आवयोः आदि।

त्वयां - युषाद् टा > अद् आ > त्वद् आ। सूत्रविहित यत्वादेश (अंग के अन्त्य अल् दकार को) हो - त्वय् आ = त्वया। मया - अस्मद् आ > मद् आ। अंग को यकार अन्तादेश होकर - मय् आ = मया।

25. "अचि र ऋतः" (7.2.100.)

इस सूत्र द्वारा तिसृ एवं चतसृ अंगों के ऋकार के स्थान में अजादि विभक्ति परे रहते रेफ आदेश विहित होता है।

उदाहरण - तिसृ जस् > तिसृ अस् अब सूत्र द्वारा विहित रेफादेश होने पर - तिस् र् अस् > तिस्रः हुआ। इसी प्रकार चतसृ जस् > चतसृ अस् > चतस् र् अस् > चतस्रः। तिसृ शस्, चतसृ शस् सूत्रविहित आदेश होकर तिस् र् अस्, चतस्र, अस् > तिस्रः चतस्रंः।

26. "तदोः सः सावनन्त्ययोः" (7.2.106.)

त्यदादि अंगों के अनन्त्य तकार तथा दकार के स्थान में सु विभक्ति परे रहते सकारादेश होता है। यथा - त्यद् स। आदेश होने पर स् यद् सु > स्यः।

तद् सु > स् अद् सु > सः।

एतद् सु > ए स् अद् सु > एषः।

अदस् सु > अ स् अस् सु > असौ।

27. "इदमो मः" (7.2.108.)

इद्म को सु विभक्ति होने पर रहते मकार अन्तादेश होगा। यथा - इदम् सु > इय् अम् सु

(स्त्रीलिंग में इद् भाग को इयु् आदेश होकर) अब प्रकृत सूत्र से इयम् के अन्त्य मकार को मकारादेश होकर इयम् सु > इयम् पुल्लिंग में इदम् सु > अय् अम् सु > अयम् सु > अयम्। प्रकृत सूत्र द्वारा 'त्यदादीनामः' सूत्र द्वारा प्राप्त अकारादेश का निवारण होकर मकार के स्थान पर मकारादेश ही होता है।

28. "दश्च" (7.2.109.)

इदम् के दकार के स्थान में भी मकार आदेश होगा विभक्ति प्रत्यय परे रहते।

उदाहरण - इदम् औ > इद् अ औ > इद औ। अब उपर्युक्त सूत्र द्वारा विहित आदेश प्रवृत्त होकर इम औ > इमौ। इसी प्रकार इदम् जस् इद शी। आदेश होकर इम शी > इमे।

इमम् - इदम् अम् > इद अम् > इम अम् > इमम्।

इमौ - इदम् औट्। इद औ > इम औ > इमौ।

इमान् - इदम् शस्। इद शस् > इम शस् > इमान्।

इमाः - इदम् जस्। इम अस् > इमाः।

इमानि - इदम् जस् > इद जस् > इम जस्। इम जस् = इमानि (नपुसंक लिंग में)

29. "यः सौ" (7.2.110.)

सु विभक्ति परे हो तो इदम् के दकार के स्थान में यकारादेश होता है।

उदाहरण - इयम्-इदम् सु > इद सु। अब प्रकृत सूत्र द्वारा दकार को यकारादेश होकर इय सु > इयम्।

विशेष - प्रकृत सूत्र द्वारा विहित कार्य स्त्रीलिंग में ही होगा।

उत्तरसूत्र - 'इदोहय् पुंसि' में 'पुंसि' का ग्रहण इस का ज्ञापक है।

30. "हनस्तोऽचिण्णलोः" (7.3.32.)

चिण् तथा णल् प्रत्ययों को छोड़कर, ञित् णित् प्रत्यय परे रहते हन् अंग को नकार अन्तादेश होगा। जैसे - घातयति, घातक, घाती, घातः आदि।

घातयति - हन् णिचु; > घन् इ, अब प्रकृत सूत्र द्वारा न् को तकारादेश होकर - घत् इ। अब आदि वृद्धि, तिप्, शप् आदि होकर 'घातयति' बनता है।

घातः - हन् धञ्। घान् धञ्। तकार अन्तादेश होकर-घात् अ=घात। घात सु= घातः।

31. "स्फायो वः" (7.3.41.)

स्फायी अंग को णि परे रहते वकारादेश होता है।

उदाहरण - स्फावयति। स्फाय णि तिप् > स्फा व इ तिप - सूत्र विहित वकारादेश होने पर।

32. ''शदेर गतौ तः'' (7.3.42.)

शदलृ (शातने) धातु यदि गत्यर्थक न हो तो णि परे रहते धातु को तकारादेश होगा। उदाहरण - शातयति, पुष्णाति आदि - शत्द् णि तिप्। सूत्र द्वारा प्राप्त आदेश करने पर शतृ इ तिप् > शातयति।

33. ''रुहः पोऽन्यतरस्याम्'' (7.3.43.)

रुह् अंग को विकल्प से णि परे रहते पकारादेश होता है।

उदाहरण - रोपयति, रोहयति।

रोपयति - रुह् णि तिप्। पकारादेश होकर रूप् णि तिप् > रोपयति। सूत्रविहित आदेश के अभाव पक्ष में रुह् णि तिप्; इस दशा में तिबादि कार्य होकर रोहयति शब्द बनेगा।

34. ''चजोः कु घिण्ण्यतोः'' (7.3.52.)

घित् तथा ण्यत् प्रत्यय परे हो तो चकार तथा जकार के स्थान में कवर्ग आदेश होता है। उदाहरण - घित् - पाकः, त्यागः, रागः आदि।

ष्यत् - पाक्यम्, वाक्यम्, रेक्यम् आदि।

पाकः - पच् घञ्, इस दशा में सूत्र द्वारा चकार को कवर्गादेश प्राप्त हुआ। तब चकार का सवर्ग ककार होकर पक् अ > पाक सु > पाकः त्यागः - त्यज् घञ्। आदेश होकर त्यग् घञ् > त्यागः।

रागः - रन्ज् घञ्। सूत्र द्वारा जकार को कवर्गादिश प्राप्त होने से वर्ग का तृतीयाक्षर गकरादेश हो रन्ग् घञ् बना।

पाक्यम् - पच् ण्यत्। कवर्गादिश होने पर - पक् ण्यत्।

वाक्यम् - वच् ण्यत्। चकार का सवर्ग कवर्गाक्षर 'क' आदेश होने पर वक् ण्यत् > वाक्य। वाक्य सु = वाक्यम्।

रेक्यम् - रिच् ण्यत् (रिचिर् विरेचने)। ककारादेश होकर रिव् ष्यत्।

35. ''न्यङ्क्कादीनां च'' (7.3.53.)

''न्यङ्क्वादिग'' में पठित शब्दों के चकार एवं जकार को भी कवर्गादेश होता है।''

न्यङ्कुः, मद्गुः, भृगुः, दूरेपाकः, फलेपाकः आदि।

न्यङ्क्वादिगण में पठित शब्द निम्न हैं -

न्यङ्कु, मद्गु, भृगुः, दूरेपाक, फलेपाक, क्षणपाक, दूरेपाका, फलेपाका, दूरेपाकु, फलेपाकु, तक्र (तत्र) वक्र (चक्र), व्यतिषंग, अनुषंग, अवसर्ग, उपसर्ग, श्वपाक, मांसपाक (मासपाक), मूलपाक, कपोतपाक, उलूकपाक। संज्ञा अर्थ में विद्यमान - मेघ, ऊवदाध, निदाघ, अर्घ। न्यग्रोध, वीरुश्त्।

न्यूङ्कुः - नि अन्च् उ। अन्च् के चकार को उपर्युक्त सूत्र से ककारादेश होगा - नि अन्क् उ।

मृद्गुः - मस्ज् उ। कवर्ग गकारादेश होकर मस्म् उ। भृगुः - भ्रस्ज् उ। गकारादेश हो - भ्रस् ग उ।

अवसर्गः - अव सृज् अच् > जकार को गकारादेश अव सृग् अ।

उपसर्गः - उप सृज् अच् > उप् सृग् अ।

व्यतिषंगः - व्यतिषन्ज् अच्। जकार को गकारादेश - व्यतिषन् ग् अ।

श्वपाकः, मांसपाकः आदि शब्दों में पच् के चकार को प्रकृत सूत्र द्वारा ककारादेश होता है।

36. ''होहन्तेञ्णिन्नेषु'' (7.3.54.)

हन् धातु के हकार के स्थान में कवर्गादेश होता है, ञित्, णित् तथा नकार परे रहते। यथा - ञित् परे रहते - घातः। णित् परे रहते - जघान।

नकार परे रहते - वृजध्नः।

घातः - हन् घञ् > हन् अ। सूत्र द्वारा कवर्गादेश प्राप्त होने पर 'ह' के स्थान पर सवर्ण घकारादेश होकर घन् अ।

जघान - हन् णल् > ह हन् अ > ज हान् अ। अब प्रकृत सूत्र द्वारा कवर्ग - घकारादेश होकर जघान् अ = जघान बना।

व्रत्रध्न - वृत्र हन् शस् > वृत्रहन् अस् > वृत्रह्न् अस्। सूत्र द्वारा कवर्गादेश होकर वृत्र घ् न् अस् > व्रत्रध्नः।

37. ''अभ्यासाच्च'' (7.3.55.)

अभ्यास से उत्तर भी हन् धातु के हकार को कवर्गादेश होता है।

उदाहरण - जिंघासति।

जिघांसति - हन् सन् > हान् हान् सन् > ह हान्स > जि हान् स् सूत्र द्वारा हकार को कवर्गादेश विहित हुआ है तब हकार का सवर्ण घकारादेश हो - जि घान् स तिप् इस प्रकार जिघांसति बना।

38. "हेरचङि" (7.3.56.)

अभ्यास से उत्तर हि धातु के हकार को कवर्गादेश होता है, यदि चङ् परे च रहे तो।

उदाहरण - जिघाय - हि णल् > जि हि अ। अब प्रकृत सूत्र द्वारा धातु के। हकार को कवर्गीय घकारादेश हो जि घि अ हुआ।

39. "सन्लिटोर्जेः" (7.3.57.)

अभ्यास से उत्तर जि अंग को सन् तथा लिट् परे रहते कवर्गादेश होता है।

उदाहरण - जिगाय।

जिगाय - जि णल् > जि जि अ। अब प्रकृत सूत्र द्वारा कवर्गादेश होकर जकार का सवर्ण गकार धात्ववयव ज के स्थान पर आदिष्ट होगा। जि मि अ > जिगाय।

40. "विभाषा चेः" (7.5.58.)

अभ्यास से उत्तर चि अंग को विकल्प से कवर्गादेश होता है, सन् तथा लिट् परे रहते।

उदाहरण - सन् - चिकीषति। अभाव पक्ष में चिचीषति।

लिट् - चिकाय। अभाव पक्ष में - चिचाय।

चिकीषति - चि सन् तिप्। चि चि स ति। अब उपर्युक्त सूत्र द्वारा वैकल्पिक कवर्गादेश प्राप्त हुआ तब अंग के चकार को ककारादेश हो चि कि स ति > चिकीषति बना। जब आदेश नहीं होगा तब चि चि स ति > चिकीषति होगा।

चिकाय - चि लिट् > चि चि णल् > च चि णल् > चि चै णल् > चि चाय् अ। अब सूत्र विहित कवर्गादेश करने पर चि क् आय् अ > चिकाय। आदेशाभाव पक्ष में चकार ही रह जायेगा और चि चाय् अ > चिचाय, ऐसा रूप सिद्ध होगा।

41. "इषुगमियमां छः" (7.3.77.)

इषु, गमि (गम्लृ) तथा यम् धातुओं को शित् प्रत्यय परे रहते छकारादेश होता है। जैसे - इच्छति, गच्छति, यच्छति आदि प्रयोगों में।

इच्छति - इष् श तिप्। अब शित् विकरण (प्रत्यय) परे होने से आलोच्यमान सूत्र द्वारा 'ष' के स्थान पर छकारादेश होता है और इछ् अ ति > इच्छति बना।

गच्छति - गम् शप् तिप्। सूत्र द्वारा मकार के स्थान पर छकारादेश हो ग छ अ ति। तुक्, श्चुत्व वर्णमेल आदि होकर गच्छति बना यच्छति - यम् शप् तिप्। यम् के अन्त्य अवयव मकार के स्थान पर सूत्र द्वारा छकारादेश हुआ - य छ् = यच्छति रूप बना।

42. "अच उपसर्गात्तः" (7.4.47.)

तकारादि कित् प्रत्ययों के परे अजन्त उपसर्ग से विशिष्ट दा धातु के अच् स्थान में 'त' हो जाता है।

प्रत्तम्, अवत्तम्, नीत्तम्, परीत्तम् आदि।

प्रत्तम् - प्र दा क्त > प्र द् त् त > प्र त् त् व > प्र त्त > प्रप्त सु > प्रत्तम्

43. "अपो भि" (7.4.48.)

इकारादि प्रत्यय के परे अप् शब्द को भी तकारादेश होता है।

उदाहरण - अद्भिः, अद्भ्यः आदि।

आदिभः - अप् भिस्। सूत्रविहित तकारादेश होकर - अत् भिस। तकार को जश्, दकार एवं सकार को रुत्व - विसर्जनीयादि कार्य होकर 'आदिभः' ऐसा शब्द रूप बना।

अद्भ्यः - अप् भ्यस्। तकारादेश होकर - अत् भ्यस्।

44. 'सः स्यार्धधातुके" (7.4.49.)

सकारान्त अङ को सकारादि आर्धधातुके परे रहते तकारादेश होता है।

उदाहरण - वत्स्यति, अवत्स्यत्, विवत्सति, जिघत्सति आदि।

वत्स्यति - वस् स्य तिप्। 'स्य' विकरण सकारादि एवं आर्धधातुक संज्ञक है। अतएव सकारान्त अङ वस् को तकार अन्तादेश होकर वत् स्य ति = वत्स्यति बना।

अवत्स्यत - अट् वस् स्य तिप् > अ वस् स्य त्। सूत्र विहित तकारादेश होने पर अ वत् स्य त् = अवत्स्यत बना।

45. "ह एति" (7.4.52.)

तास् एवं अस् के सकार को हकारादेश होता है यदि उनके परे एकार हो तो।

उदाहरण - एधिताहे, व्यतिहे।

एधिताहे - एध् इट् तास् इट् > एधि तास् ए (टि को एत्व होकर)। अब तास् के परे एकार होने से आलोच्य सूत्र द्वारा हकारादेश होकर - एधि ता ह् ए = एधिताहे।

व्यतिहे - व्यति (वि + अति) अस् इट्। टि को एत्व - व्यति अस् ए। व्यति स् ए (श्नसोल्लोपः)। अब एकार परे होने से अस् के सकार को हकारादेश होकर - व्यति ह् ए = व्यतिहे।

46. ''कुहोश्चुः'' (7.4.62.)

अभ्यास के कवर्ग एवं हकार को चवर्ग आदेश होता है।

उदाहरण - चकार, चखान, जघान, जगाम, जहार आदि।

चकार - कृ लिट् > कृ णलृ > क कार् अ क कार। कवर्ग को चवर्ग आदेश प्राप्त होने पर क् को च आदेश कर = चकार शब्द बना।

जघान् - हन् णल् > ह घान। हकार को सवर्ण चवर्गीय झकार हो झ घान। झकार को जशत्व हो रूप बना।

जगाम - गम् णल् > ग गाम। गकार को सूत्रविहित कवर्गादेश हो ज गाम = जगाम बना।

47. ''मादुपधायाश्र मतोर्वोऽयवादिभ्यः'' (8.2.9.)

मकारान्त एवं अवर्णान्त तथा मकार एवं अवर्ग उपधा वाले प्रातिपदिक से उत्तर मतुप् को वकारादेश होता है किन्तु यवादि शब्दों से उत्तर मतुप् को व नहीं होता।

उदाहरण - मकारान्त - किंवान्।

अवर्णान्त - वृक्षवान्, मालावान्।

मकारोपध - शमीवान्।

अवर्णोपध - पयस्वान, भास्वान्

किंवान् - किम् मतुप् > किम् मत्।

वत्वादेश हो - किम् वत् = किंवत् सु = किंवान्।

वृक्षवान् - वृक्षमत्। वकारादेश हो वृक्षवत्। प्रथमा एकवचन में वृक्षवान्।

शमीवान् - शमी मतुप् > शमीमत। वत्व होकर - शमी वत्। स्वादिकार्य होकर शमीवान् बना।

भास्वान् - भास् मत्। वत्वादेश होकर भास् वत्।

यवादि गण के शब्द - यव (अकारान्त), दल्मि (मकारोपध), उर्मि (मकारोपध), भूमि (मकारोपध) कृमि (मकारोपध) क्रुंच (अकारान्त), वशा (आकारान्त), द्राक्षा (आकारान्त) इत्यादि, से परे मतुप् के मकार को होने वाला वत्व सूत्र के 'अयवादिभ्यः' पद द्वारा प्रतिषिद्ध हो गया।

48. "झयः" (8.2.10.)

झयन्त के उत्तर मतुप के मकार को वकारादेश होता है।

उदाहरण - कुमुद्वान्, नड्वान्, मरुत्वान् आदि।

कुमुदवान् - कुमुद ड्मतुप् > कुमुद मत् > कुमुद् मत्। दकार झय् है अतः मकार को वत्व हो - कुमुद् वत् बना। स्वादि होकर कुमुद्वान बना। नडवान् - नड् मत् > नड् मत्। वत्व हो नड्वत्। नड्वत् > सु नड्वान्।

49. "संज्ञायाम्" (8.2.11.)

संज्ञा विषय में मतुप् को वकारादेश होता है।

उदाहरण - अहीवती, कपीवती आदि।

अहीवती - अहि मतुप् > अही मत्। प्रकृत सूत्र द्वारा वकारादेश होकर अहीवत्। स्त्रीलिंग में अहीवती।

अहीवती, कपीवती, शरावती आदि शब्द संज्ञा शब्द है अतएव इनमें उपर्युक्त सूत्र द्वारा वत्वादेश हुआ है।

50. "छन्दसीरः" (8.2.15.)

इवर्णान्त तथा रेफान्त से उत्तर वेद विषय में मतुप् को वत्व होता है।

उदाहरण - त्रिवती, गीर्वान्, आशीर्वान् आदि।

त्रिवती - त्रि मत्। त्रि इकारान्त है अतएव मकार को वत्व हो - त्रिवत् स्त्रीलिंग में त्रिवती बना।

गीर्वान् - गृ मत्। गीर् मत् - इस शब्द में रेफान्त से परे मतुप् है तब मतुप् के म को वत्व हो - गीर वत् = गीर्वत् बना। प्रथमा एकवचन के 'गीर्वान्' बना।

51. "कृपो रो लः" (8.2.18.)

कृप् धातु के रेफ को लकारादेश होता है।

उदाहरण - कल्पता, क्लृप्तः, क्लृप्तवान् आदि।

कल्प्ता - कृप् तास् डा >। सूत्र विहित आदेश होने पर - क् लृ प्ता > कलप्ता।

क्लृप्तः - कृप् क्त सु। कृप् त सु। ऋकार के रेफ को लत्व होने पर - क् लृ प् त सु > क्लृप्तः।

क्लृप्तवान् - कृप् क्तवतु सु। रेफ को लत्वादेश करने पर क् लृ प् तवत सु > क्लृप्तवान्।

52. "उपसर्गस्यायतौ" (8.2.19.)

अय् धातु के परे रहते उपसर्ग का जो रेफ उसको लकारादेश होता है। प्लायते, पलायते, पल्ययते आदि प्रयोगो के लकारादेश इसके उदाहरण हैं।

प्लायते - प्र अय त > प्ल अय त > प्लायत > प्लायते।

पलायते - परा अय त > पला अय त > पलायत > पलायते।

प्लय्ययते - प्रति अय त > प्लति अय त > प्लत्य् अयत > प्लत्ययते

53. "ग्रो यङि" (8.2.20.)

गृ धातु के रेफ को यङ् परे रहते लत्वादेश होता है।

उदाहरण - जेगिल्यते, जेगिल्येते, जेगिल्यन्ते आदि।

जेगिल्यते - गृ यङ् त > जे गिर् य त अब यङ् परे रहते गृ के रेफ को लत्व प्राप्त होता है और इस प्रकार जे गिल् यत > जेगिल्यते शब्द सिद्ध होता है।

54. "अचि विभाषा" (8.2.21.)

अजादि प्रत्यय परे रहते गृ धातु के रेफ को विकल्प से लत्वादेश हो।

उदाहरण - गिलति, गिरति। जगाल, जगार, जगलिथ-जगरिथ आदि।

गिलृति गिरति - गृ श तिप् > गिर अ ति। अब सूत्र द्वारा वैकल्पिक लत्वादेश प्राप्त हुआ आदेश के भाव पक्ष में गिल् अ ति > गिलति और अभाव पक्ष में गिर् अ ति > गिरति शब्द सिद्ध हुये।

जगाल् जगार > गृ णल् > गार् अ > ग गार् अ > ज गार् अ। लत्वादेश होने पर - ज गाल् अ > जगाल और आदेश के अभाव में जगार् अ > जगार बने।

जगलिथ - जगरिथ - गृ थल् > गर् थ > गर् थ > ग गर् इट् थ > ज गर् इ थ। लत्वादेश हो जगलिथ। आदेशभाव पक्ष में जगरिथ।

55. "परेश्च घाङ्क्योः" (8.2.22.)

परि के रेफ के घ तथा अंक परे रहते विकल्प से लत्व होता है।

उदाहरण - पलिघः, परिघः, पर्यकः पल्यंकः।

पलिघः - परि ह्न् अव् > परि प, अ हन् की द्वितीय एवं

पल्यङ्कः पर्यङ्कः - परि अङ्क। परि के रेफ को लत्व हो पलि अङ्क > पल्यङ्कः। लत्वादेश के अभाव में परि अङ्क > पर्यङ्कः

विशेष - सूत्रोपदिष्टः 'घ' का आशय घ वर्ण है अतः घसंज्ञक तरप् तमप् प्रत्ययों का ग्रहण नहीं होगा। परि शब्दपूर्वक 'योग' शब्द होने पर भी परि के रेफ को विकल्प से लत्व होगा। पलियोगः परियोगः।

56. "चोः कुः" (8.2.30.)

च वर्ग के स्थान में क वर्ग आदेश होता है ल् परे रहते या पदान्त में।

उदाहरण - झल् परे रहते - वक्ता, वक्तुम्, वक्तव्यम् आदि। पदान्त में वाक्य।

वक्तुम - वच् तुमुन्। झल् तकार परे होने से चकार को ककारादेश होने पर - वक् तुम् > वक्तुम्।

वाक् - वच् क्विप् > वच् > वाच्। अब चकार के पदान्त में होने से उसे कवर्गादेश होगा और 'वाक' शब्द सिद्ध होगा।

57. "हो ढः" (8.2.31.)

हकार के स्थान पर ढकारादेश होता है ल् परे रहते या पदान्त में।

यथा - झल् परे रहते - सोढ़ा, वोढा आदि। पदान्त में - प्रष्ठवाट्।

सोढा - सह तृच्। तृच् प्रत्यय झलादि है अतः हंकार को ढत्वादेश हुआ - सढ तृ > सोढ् > सोढा।

पृष्ठवाट्ं - पष्ठ वह् ण्वि > पष्ठ वह् > पष्ठ वाह्। हकार को ढत्वादेश होकर पष्ठवाढ् > पृष्ठवाट् (ढ को जश् ह्त्व, ड को चर् टकार)

58. ''दादेर्धातो र्घः'' (8.2.32.)

दकारादि धातुओं के हकार के स्थान में घकारादेश होता है - ल् परे हो अथवा पदान्त में। यथा - झल् परे रहते - दग्धा, दग्धुम्, दग्धव्यम्। पदान्त में - काष्ठधक्।

दग्धा - ढह् तृच् > दह् तृ। तकार झल् है अतः हकार को घकारादेश होगा। दध् तृ > दग्धा अथवा दह तास् डा > दह्ता। झल् तकार् परे रहते हकार को घत्व हो ढघ् ता > दग् ता > दग्धा।

काष्ठधक् - काष्ठदह् क्विप् > काष्ठदह् अब हकार के पदान्त में होने से काष्ठदध् बना। दकार को भष् धकार एवं घकार को जश् मकार उसे चर् ककार होकर काष्ठधक् बना।

59. ''वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम्'' (8.2.33.)

द्रुह्, गुह्, ष्णुह्, ष्णिह् - इन धातुओं के हकार को विकल्प से घकारादेश होगा यदि झल् परे हो अथवा यह हकार पदान्त में हो।

उदाहरण - झल् परे रहते - द्रोग्धा, मोग्धा, स्नोग्धा, स्नेग्धा आदि।

पदान्त में - धुक्, मुक्, स्नुक्, स्निक् आदि।

घवत्वादेश के अभाव पक्ष में द्रोढक, मोढा, स्नोढा, स्नेढा तथा घ्रुट, गुट, स्नुट, स्निट् आदि शब्द बनेंगे।

द्रोग्धा - द्रुह तास् डा > द्रुह ता। अब झल् तकार परे रहते हकार को घकारादेश होकर द्रुघ ता बना। घकार को जश् गकार, तकार, धकार तथा उकार को गुण ओकार होकर द्रोग्धा बना।

ध्रुक - द्रुह् सु > द्रुह् स् > दुह् अव हकार के पदान्त में अवस्थित होने से प्रकृत सूत्र द्वारा घत्व होगा - द्रुघ्। पश्चात् दकार को मष्धकार और घकार को जश् गकार उसे चर् ककार को ध्रुक् शब्द सिद्ध हुआ।

स्नुक् - स्नुह् सु > स्नुह्। हकार को घत्व - स्नुघ् > स्नुक। स्निक् - स्निह् सु > स्निह्। हकार को घत्व स्निध् > स्निक्। द्रोढा - द्रुह्, वास् डा > द्रुह ता। घकारादेश के अभाव पक्ष में 'हो ढः' सूत्र से हकार को ढत्व होगा द्रुढ् के ढकार का सूत्र ''ढो ढे > लोपः'' से लोप तथा उकार को गुण होकर 'ढोढा' शब्द सिद्ध हुआ।

मोढा, स्नोढा, स्नेढा इन प्रयोगों की सिद्धि भी द्रोढा के समान होगी। ध्रुट् - द्रुह् सु > द्रुह्स् > द्रुह। घत्वादेश के अभाव में हकार को ढत्व, ढकार को डकार पुनः डकार को ष्टुत्व होकर ध्रुट् बनेगा।

ग्रुट, नुट्, निट् आदि प्रयोगों में भी पदान्त हकार को धत्वादेश के अभाव में ढकार पुनः ढकार को जश् डकार उसे टकार हो रूप सिद्ध होंगे।

60. "नहो धः" (8.2.34.)

णह् (बन्धने) के हकार को धकारादेश होता है, झल् परे रहते या पदान्त में।

उदाहरण - नद्धम्, उपानत्।

नद्धम् - नह् तास् डा > नह् ता। तास् झलादि है अतः हकार को उपर्युक्त सूत्र द्वारा धकारादेश प्राप्त होता है - नध् ता। तकार को धकार तथा नध के धकार को जश् दकार हो रूप सिद्ध होगा। उपानत - उपानह् सु > उपानह् सु > उपानह्। उपानह् का हकार पदान्त में है अतएव सूत्र द्वारा धत्व होगा - उपानध्। पश्चात् धकार को जश् दकार औ दकार को चर् तकार होकर उपानत शब्द सिद्ध हुआ।

61. "आहस्थः" (8.2.35.)

आह् के हकार को थकारादेश होगा यदि झलादि प्रत्यय परे हो।

उदाहरण - आत्थ।

आत्थ - ब्रूञ् सिम् > आह् थल्। अब थल् के झलादि होने से हकार थकार हो आथ् थ बना। फिर इस थकार को चर् तकार हो आत्थ बना।

62. "एकाचो बशोभष्झषन्तस्यरुध्वोः" (8.2.37.)

धातु के झषन्त एकाच् अवयव के वश् के स्थान में भष् आदेश हो यदि सकार और ध्व परे हों अथवा पदान्त में।

उदाहरण - धुक्षु, सधुग्ध्वम्, गोधुक्।

धुक्षु - दुह् सुप् > दुध् सु। अब दुध् के परे सकारादि प्रत्यय हैं तथा दुध् झषन्त है तब इसके बश् दकार के स्थान पर भष् धकारादेश होगा। दुध् सु > धुध् सु। धकार को जश् गकार फिर उसे चर् ककार और सकार को षत्व हो क् ष् के संयोग से 'क्ष' बनकर अभीष्ट सिद्धि हुई।

अधुगध्वम् - अट् दुह् ध्वम् > अ दुध् ध्वम्। ध्वम्, परे होते झषन्त एकाच् दुध् जो व्यपदेशिवद्भाव से दुध् का अवयव है, के बश् दकार को भष् धकार होगा अधुध् ध्वम् > अधुग्ध्वम्।

गोधुक - गो दुह् सु > गो दुह् स् > गो दुह् > गो दुध्। सु का लोप होने से झषन्त दुध्

पदान्त में हैं अतः दकार को भष् भाव हुआ - गोधुग् > गोधुक्।

63. ''दधस्तथोश्च'' (8.2.38.)

झषन्त दध धातु के बश् के स्थान में भष् आदेश होता है तकार तथा थकार और सकार तथा ध्व परे रहते भी।

उदाहरण - धत्तः, धत्थः, धत्से, धत्स्व, धध्वम्।

धत्तः - धा तस् > धा शप् तस् > धा तस् > धा धा तस् > ध धा तस् > द धा तस् > द ध् तस् > दध् तस्। अब प्रकृत सूत्र से दध् के बश् दकार को भष् धत्वादेश हो धध् तस् होता है। उत्तरवर्ती धकार को चर् तकार हो रूप सिद्ध होगा।

धत्थः - धा थस् > धा शप् थस् > धा शस् > धा धा थस् > ध धा थस् > दधा थस्। > दध् थस्। अब थकार परे होने से दध् के बश् दकार को भष् भाव होगा धध् थस् > धत्थः।

धत्से - धा थास् > दध् से। सकार परे रहते दकार को प्रकृत सूत्र से भष् धकार धध् से > घत्से।

धत्स्व - धा थास् > दधा से > दध् से > दध् स्व। अब दध् के दकार को भष् धकार आदेश होगा - धधस्व हुआ। धत्स्व।

धध्वम् - धा ध्वम् > द ध् ध्वे। अब आलोच्य सूत्र द्वार दकार को भष् भाव हो ध ध् ध्वे बना। अब धात्ववयव धकार को जश् दकार तथा एकार को अमादेश हो धद्ध्वम् रूप बना।

विशेष - सूत्रस्थ 'दधः' शब्द कृतद्वित्व 'धा' (डुधाञ् धारणपोषणयोः) धातु का निर्देश करता है। 'धा' धातु जुहोत्यादिगण की धातु है अतः शप् को श्लु होता है और ''श्लौ (6.1.10.)'' से द्वित्व हो, अभ्यास को ह्रस्व तथा अभ्यास के धकार को जश् दकार तथा 'धा' के आकार का लोप (श्नाऽभ्यस्तयोरातः से) हो दध् बनता है। धा का कृतद्वित्त्व स्वरूप लट्, लोट्, लङ्, विधिलिंग में ही प्राप्य है। अतएव यह भप् भाव इन्ही लकारों के तकारादि, थकारादि, सकारादि अथवा ध्व प्रत्यय परे रहते होगा।

64. ''झलां जशोऽन्ते'' (8.2.39.)

पदान्त में वर्तमान झलों को जश् आदेश होता है।

उदाहरण - श्वलि ह्।

श्वलिड् - श्वलिह् सु > श्वलिह् स् > श्वलिह् > श्वलिट। ढकार झल् है तथा अपृक्त सकार

का लोप होने से यह पदान्त में स्थित है अतः इसे जशत्व होकर - 'श्वलिट्' रूप बना। ढकार ट वर्ग का व्यंजन है। अतः इसे जश्त्व होने पर टवर्गीय डकार आदेश होगा।

65. ''झषस्तथोर्धोऽधः'' (8.2.40.)

झष् से परे टकार और थकार को धकार हो किन्तु झषन्त 'धा' धातु से परे जो टकार थकार हो उसे धकारादेश न हो।

उदाहरण - अलब्ध, लब्धा, उवोढ आदि।

अलब्ध - अट् लभ् सिच् थ > अ लभ् स् त > अ लभ् त। अब लभ् झषन्त है तथा इससे परे तकार है अतएव उपर्युक्त सूत्र द्वारा इसे धकारादेश होता है - अ लभ् ध। भ् को जश् बकार हो अलब्ध सिद्ध हुआ।

उवोढ - वह् थल् > उ वढ थल्। ढकार झष् है अतएव इससे परे थल् के थकार को धत्वादेश होगा - उ वढ् ध। अब धकार को ष्टुत्व ढकार, धातु के ढकार का लोप तथा धातु के अकार को ओत्व हो 'उवोढ' बनेगा।

66. ''षढोः कः सि'' (8.2.41.)

सकार परे हो तो षकार तथा ढकार को ककारादेश होता है।

उदाहरण - पेक्ष्यति, लेक्ष्यति।

पेक्ष्यति - पिष्लु स्य तिप् > पेष् स्यपि। यहाँ षकार से सकार परे है अतः सूत्र की प्राप्ति हुई और षकार को ककार आदेश हो पेक् स्य ति बना। पश्चात सकार को षत्व हो तथा क् एवं ष का संयोग है पेक्ष्यति शब्द बना।

लेक्ष्यति - लिह् स्य तिप् > लेह् स्य ति। हकार को ढकार ('हो ढः' से) लेढ् स्य ति। अब उपर्युक्त सूत्र से ढकार को ककारादेश हो लेक् स्य ति। षत्व - संयोगादि कार्य हो 'लेक्ष्यति' बना।

67. ''रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः'' (8.2.42.)

रेफ और दकार से परे होने पर निष्ठा के तकार को नकारादेश हो तथा निष्ठा तकार से पूर्व धातु को जो दकार उसे भी नकार हो। यह सूत्र दो आदेश विहित करता है।

1. रेफ एवं दकार से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश।

2. निष्ठा के तकार से पूर्व धातु का जो ढकार उसे नकारादेश। ''क्तक्तवतु निष्ठा'' सू0-

द्वारा ज्ञात होता है कि क्त एवं क्तवत प्रत्यय की 'निष्ठा' संज्ञा है ककार इत् संज्ञक है अतः त एवं तवतु के तकार को नकारादेश होगा। तवत् के आदि तकार को ही नकार होगा। क्योंकि रेफ एवं दकार से परे यही तकार है। अन्त्य तकार के और दकार या रेफ के मध्य 'तव' का व्यवधान है।

उदाहरण - भिन्नः - भिन्नवान्, शीर्णः।

भिन्नः - भिद् क्त > भिद् त। अब आलोच्य सूत्र द्वारा तकार को नकार एवं धातु के दकार को नकारादेश होकर भिन् न > भिन्न बना प्रथमा एकवचन में सु हो भिन्नः सिद्ध होता है।

भिन्नवान् - भिद् क्तवतु > भिद् तवत्। दकार से अव्यवहित परवर्ती तकार को नकारादेश तथा दकार को भी नकारादेश होकर भिन्नवत् > भिन्नवत् बना। प्रथमा एकवचन में 'सु' विभक्ति होने पर भिन्नवान्।

शीर्णः - शॄ क्त > शॄ इर् त > शीर् त रकार् से परे होने से तकार को नकारादेश - शीर् न। णत्व, सु विभक्ति होकर शीर्णः बना।

68. ''संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः'' (8.2.43.)

संयोगादि, आकारान्त और यण् वाली धातु से पर निष्ठा तकार को नकार है।

उदाहरण - द्राणः, ग्लानः।

द्राणः - द्रा क्त। द्रा धातु संयोगादि, आकारान्त और रेफ के कारण यण्युक्त भी है अतः निष्ठा के 'त' को 'न' होकर द्राण बना। सु हो द्राणः बना।

ग्लानः - ग्लैक्त > ग्लै त > ग्ला त। अब ग्ला संयोगादि आकारान्त तथा लकार के कारण यण्युक्त भी है अब उपर्युक्त सूत्र द्वारा निष्ठा तकार को नकारादेश होकर ग्ला न > ग्लान शब्द बना। विभक्त्यादि कार्य होकर ग्लानः बना।

69. ''ल्वादिभ्यः'' (8.2.44.)

लूञ् आदि धातुओं से परे निष्ठा के तकार को नकार है। लूञ् धातु क्रयादिगण की धातु है। लूञ् से लेकर प्ली तक् इक्कीस धातुओं के परे निष्ठा के त को न आदेश होगा। ये निम्न हैं - लूञ्, स्तृञ्, कृञ्, वृञ्, धूञ्, शॄ, पॄ., वॄ, भॄ, दॄ, जॄ, नॄ, कॄ, ऋ, गॄ, ज्या, री, ली, व्ली, प्ली।

उदाहरण - लूञः, स्तीर्णः, कीर्णः, धूनः, शीर्णः, जीर्णः, गीर्णः, जीनः, लीनः आदि।

लूञ् - लूञ् क्त > लू त। तकार को नकार होकर - लून सु = लूतः

स्तृञ् - स्तृञ् क्त > स्तीर् त। नकारादेश होकर स्तीर् न स्तीर्णः।

70. "ओदितश्च" (8.2.45.)

जिनका ओकार इत्संज्ञक है ऐसी धातुओं से परे रहते निष्ठा तकार को नकारादेश होता है।

उदाहरण - उद्विग्नः, उद्विग्नवान्।

उद्विग्नः - उत् विज् (ओविजी) त (क्त) > उद्विग् त। अब विज् के ओदित् होने से निष्ठा तकार को नत्वादेश हो गया - उद् विग् न > उद्विग्नः।

उद्विग्नवान् - उत् विज् क्तवतु > उद् विग् तवत्। निष्ठा नत्व होकर उद् विग् नवत् > उद्विग्नवत्। प्रथमा एकवचन में उद्विग्नवान्।

71. "क्षियो दीर्घात्" (8.2.46.)

दीर्घ क्षि धातु से उत्तर निष्ठा के तकार को नकारादेश होता है।

उदाहरण - क्षीणः।

क्षीणः - क्षि क्त > क्षि त > क्षी त (सू0 'निष्ठायामण्यदर्थे' से) अब क्षि धातु दीर्घ इकारान्त हो गई। दीर्घ होने से निष्ठा तकार को नत्व - क्षीन। णत्व, स्वादिकार्य होकर क्षीणः।

72. "श्योऽस्पर्शे" (8.2.47.)

श्येङ् धातु से उत्तर निष्ठा के तकार को नकारादेश होता है। स्पर्श अर्थ में निष्ठा नत्व नहीं होता।

उदाहरण - शीनं भेदः, शीना वसा आदि।

यहाँ श्यै धातु द्रव - काठिन्य अर्थ प्रकट करती है अतः नत्व हुआ पर 'शीतं वर्तते', 'शीतो वायुः' आदि वाक्यों में धातु स्पर्श अर्थ में है अतएव नत्व नहीं हुआ।

शीनं - श्यै क्त > श् इ ऐ त > शि ऐ त > शि त > शी त आलोच्य सूत्र द्वारा नत्वादेश होकर शी न। नपु0 एकवचन में शीनं। शीना - शनि से स्त्रीलिंग में टाप् हो शीना।

73. "अञ्चोऽनपादाने" (8.2.48.)

अञ्चु धातु से उत्तर निष्ठा के तकार को नकार होता है, यदि अञ्चु के विषय में अपादान का प्रयोग न हो रहा हो तो।

जैसे - समवनः (समवनौ शकुनेः पादौ) न्यवनः (तस्मात्शवो न्यक्नाः) अपादान के प्रयोग में नत्व नही होता

जैसे - उदक्ते "उदबतं उदक्तमुदकं कूपात्।"

समक्नः - सम् अंचु क्त > सम् अञ्च् त > सम् अन् त > सम् अक् त। अब उपर्युक्त सूत्र द्वारा निष्ठानत्व हो - सम् अक् न > समक्न। स्वादिकार्य हो समक्नः।

न्यक्नः - नि अञ्चु क्त > नि अञ्च् त > नि अच् त > नि अक् त > निष्ठानत्व होकर नि अक् न। यण्, स्वादिकार्य हो न्यक्नः।

उदक्तम् - उत् अञ्चु क्त > उद् अक् त। अपादान का प्रयोग होने से निष्ठानत्व नहीं होगा। सु, सु को अम् उदक्तम् सिद्ध हुआ।

74. "दिवोऽविजिगीषायाम्" (8.2.49.)

दिप् धातु से उत्तर अविजिगीषा अर्थ में निष्ठा के तकार को नकारादेश होता है।

उदाहरण - आद्यूनः, परिद्यूनः।

विजीगीषा अर्थ अभिव्यक्त होने पर नत्व नहीं होगा। जैसे - द्यूतं वर्तते। द्यूत क्रीड़ा में विजय की इच्छा होने से नत्व प्रतिषिद्ध हो जाता है।

आद्यूनः - आ दिव् क्त > अ दि उ त > आ द् य् उ् त > आद्यू त। निष्ठा नत्व होकर आद्यून > आद्यूनः।

परिद्यूनः - परि दिव् क्त > परि दि उ त > परि द् य् उ त > परिद्य त। तकार को नत्व हो परिद्यू न सु > परिद्यूनः।

द्यूतं - दिव् क्त > त > दि उ त > द् य् उ त > द्यूत।

"अविजिगीषायाम्" का प्रतिषेध लगने से यहाँ निष्ठा नत्व नहीं हुआ। सु, सु को अम् हो-द्यूत।

75. "शुषः कः" (8.2.51.)

शुष् शोषणे धातु से उत्तर निष्ठा के तकार को ककारादेश होता है।

उदाहरण - शुष्कः, शुष्कवान्।

शुष्कः - शुष् क्त > शुक् त > शुष् क - निष्ठा तकार को ककार होकर। स्वादिकार्य होने पर शुष्कः।

शुष्कवान् - शुष् क्तवतु > शुष् तवत्। अब सूत्र विहित ककार होकर शुष्, कवत्, > शुष्क

वत्। प्रथमा एकवचन में शुष्कवान्।

76. ''पचो वः'' (8.2.52.)

डुपचष् (पाके) धातु से उत्तर निष्ठा के तकार को वकारादेश होता है।

जैसे - पक्वः, पक्ववान्।

पक्वः > पच् क्त > पच् त। पक् त। अब आलोच्य सूत्र द्वारा विहित वकार होकर - पक् व बना। स्वादिकार्य करने पर पक्वः। पक्ववान् - पच् क्तवत् > पक् तवत्। निष्ठा तकार को वकार हो पक् ववत् > पक्ववत् सु > पल्वान्।

77. ''क्षायो मः'' (8.2.53.)

क्षै धातु से उत्तर निष्ठा के तकार को मकारादेश होता है। यथा - क्षामः, क्षामवान्।

क्षामः - क्षै क्त > क्षै त। क्षा त। (आदेच उपदेशेऽशिति से आत्व हो) अब निष्ठा तकार को मकार होने पर क्षा म। प्रथमा एकवचन में क्षामः।

क्षामवानः - क्षै क्तवतु > क्षै तवत् > क्षा तवत्। निष्ठा तकार को मकार होकर क्षा मवत् > क्षामवत् सु > क्षामवान्।

78. ''प्रस्तयोऽन्यतरस्याम्'' (8.2.54.)

प्र पूर्वक स्त्यै धातु से उत्तर निष्ठा के तकार को विकल्प से मकारादेश होगा। जैसे - आदेश पक्ष में - प्रस्तीमः, प्रस्तीमवान्। आदेश के अभाव में - प्रस्तीतः प्रस्तीतवान्।

प्रस्तीमः - प्र स्त्यै क्तवतु > प्र स्त्यै तवत् > प्र स्त्या तवत > प्र स्त इ आ तवत् > प्र स्त् इ त > प्रस्त् ई त = प्रस्ती त। अब सूत्रविहित मकार होकर - प्रस्तीम। प्रथमा एकवचन में प्रस्तीमः।

प्रस्तीमवान् - प्र स्त्यै क्तवतु > प्र स्त्या तवत् > प्र स्त् इ आ तवत् > प्र स्त् इ तवत् > प्रस्ती तवत्। मकारादेश होकर प्रस्तीमवत्। प्रथमा एकवचन में प्रस्तीमवान्।

प्रस्तीतः - प्र स्त्यै क्त > प्र स्त्या त > प्र स्त् इ आ त > प्रस्ति त > प्रस्तीत। आदेश के अभाव पक्ष में तकार ही रहेगा। और स्वादिकार्य होकर प्रस्तीतः शब्द सिद्ध होगा। प्रस्तीतवान् - प्र स्त्य क्तवत् > प्रस्तीतवत्। आदेशाभाव पक्ष में प्रथमा एकवचन में 'प्रस्तीतवान्' शब्द बना।

79. ''नुदविदोन्दत्राघ्राहीभ्योऽन्यतरस्याम्'' (8.2.56.)

नुद्, विद्, उन्दी, त्रा, घ्रा, ही - इससे परे होते निष्ठा के तकार को नकार आदेश विकल्प

से होता है।

उदाहरण - आदेश पक्ष में - नुन्नः, विन्नः, समुन्नः, त्राणः, हीणः आदि। आदेशाभाव पक्ष में - नुत्तः, वित्तः, समुत्तः, त्रातः, घ्रातः, हीतः।

नुन्नः - नुद् क्त > नुद् त। आदेश पक्ष में तकार को नकार एवं दकार को नकार (सू. "रदाभ्यां निष्ठातोनः पूर्वस्य च दः।") होकर नुन् > नुन्न सु > नुन्नः वना।

त्राणः - त्राक्त > त्रा त। आलोच्य सूत्र द्वारा नत्वादेश होकर त्रान बना नकार को णत्वादेश होकर तथा स्वादिकार्य होकर त्राणः बना।

नुत्तः - नुद् क्त > नुद् त > नुत् त > नुत्त सु > नुत्तः। आदेशाभाव पक्ष में ऐसा रूप सिद्ध हुआ।

विशेष - नुद् आदि दकारान्त शब्दों को सू. - "रदाभ्यां निष्ठातोन, पूर्वस्य चवदः।" से ही निष्ठानत्व एवं निष्ठा से पूर्व दकार को नत्व प्राप्त था पुनः इस सूत्र में इन शब्दों का समावेश वैकल्पिक नत्वादेश विहित करने हेतु किया गया। अन्यथा वित्तः, नुत्तः, समुत्तः आदि प्रयोग सिद्ध न हो पाते।

80. "क्विन्प्रत्ययस्य कुः" (8.2.62)

क्विन् - प्रत्यय जिस धातु से हुआ हो उस पद के अन्त्य अल् को कवर्गादेश हो।

उदाहरण - युङ्, प्राङ्, प्रत्यङ्, उदङ् आदि।

युङ् - युज् क्विन् > युज् सु > युज् स् यु न् (उग्) ज् स् > यु न् ज् > यु न्। अब क्विन् प्रत्ययान्त पद के अन्त्य अल् न को प्रकृत सूत्र द्वारा कवर्गादेश होकर युङ् बना।

प्राङ् - प्र अञ्चु क्विन् > प्र अञ्च् > प्रांच् सु > प्राञ्च् स् > प्राञ्च् > प्रान्। क्विन् प्रत्ययान्त पद के अन्तावयव 'ञ' के स्थान पर समस्थानिक कवर्गीय व्यञ्जन् ङकार आदेश करने पर - प्राङ् शब्द सिद्ध हुआ।

81. 'नशेर्वा" (8.2.63.)

नश् पद को विकल्प से कवर्गादेश होता है।

उदाहरण - जीवनक। आदेश के अभाव पक्ष में - जीवनट्।

जीवनक् - जीव नश् क्विप् > जीव नश् सु > जीव नश् स् > जीवनश्। कवर्गादेश होकर - जीवनक्।

जीवनट् - जीवनश् क्विप् > जीवनश् > जीवनश् सु > जीवनश् स् > जीवनश्। कुत्वाभाव पक्ष में षत्व, वकार को जश् डकार, डकार को चर् टकार होकर जीवनट् शब्द सिद्ध हुआ।

82. ''मो नो धातोः'' (8.2.64.)

मकारान्त धातु को नकारादेश होता है।

उदाहरण - प्रशान्, प्रतान्, प्रदान् आदि।

प्रशान् - प्र शम् क्विप् > प्र शम् सु > प्र शाम् सु > प्र शाम् स् > प्र शाम्। प्रशाम्। क्विप् कृत प्रत्यय है इससे प्रशाम् की पद संज्ञा हुई। (सू0 कृत्तद्धितसमासाश्च से) मकार को नकार अन्तादेश होकर प्रशान् शब्द बना।

प्रतान् - प्र तम् क्विप सु > प्र तम् सु > प्र तम् स् > प्र ताम् > प्रतान्। मकार को सूत्र विहित नत्वादेश होकर।

83. ''म्वोश्च'' (8.2.65.)

मकार तथा वकार परे रहते भी मकारान्त धातु को नकारादेश होता है।

उदाहरण - अगन्व, अजन्म।

अगन्व - गम् लङ् > अत् गम् तस् > अ गम् शप् वस् > अ गम् वस् (बहुलं छन्दसि से शप् लुक्) अ गम् व (''स उत्तमस्य'') से (सकार लोप) अब मकारान्त धातु के परे वकार होने से धातु के अन्त्य अवयव को नत्वादेश प्राप्त हुआ - अ गन् व = अगन्व।

अगन्म - अट् गम् शप् गस् > अ गम् गस् > ग गम् म। धातु के मकार को नत्वादेश - अ गन् म > अगन्म।

85. ''वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः'' (8.2.72.)

सकारान्त वस्वन्त पद, स्रंसु, ध्वंसु एवं अनदुह् - इन्हे दकारादेश होता है।

उदाहरण - वस्वन्त - विद्वद्भ्याम्, विद्वद्भिः।

स्रंसु - उरवास्रद्भ्याम्, उरवास्रद्भिः।

ध्वंसु - पर्णध्वद्भ्याम्, पर्णध्वद्भिः।

अनुडुह् - अनडुद्भ्याम्, अनडुद्भिः।

विद्वद्भ्याम् - विद्वस् भ्याम्। विद्वस् सकारान्त वस्वन्त पद है अतः सूत्र द्वारा दकार

अन्तादेश होकर - विद्वद् भ्याम् = विद्वद्भ्याम्।

उरवास्रद्भ्याम् - उरवास्रस् भ्याम्। सूत्र द्वारा सकार को दकारादेश हो उरवास्रदभ्याम्।

पर्णध्वद्भ्याम् - पर्णध्वंसु क्विप् > पर्णध्वंसु > पर्ण ध्वस्भ्याम्। सकार को दकारादेश हो - पर्णहवद् भ्याम् = पर्ण ध्वद् भ्याम्।

अनडुद्भ्याम् - अनडुह् भ्याम। दकारादेश होकर - अनडुद्भ्याम्।

86. ''तिप्यनस्तेः'' (8.2.73.)

अस् धातु को छोड़कर जो सकारान्त पद उसको तिप् परे रहते दकारादेश होता है।

उदाहरण - अच्काद्, अन्वशाद्।

अचकाद् - चकास् लङ् > अट् चकास शप् तिप् > अ चकास् ति > अ चकास् त् > अ चकास्। सकारान्त चकास् को उपर्युक्त सूत्र द्वारा दकार अन्तादेश होकर - अचकाद्।

अन्वशाद् - अनु अट् शास् शप् तिप् > अनु अशास्। दकारादेश हो - अनु अशाद् > अन्वशाद्।

87. ''अदसोऽसेर्दादुदो मः'' (8.2.80.)

असकारान्त अदस् शब्द के दकारोत्तरवर्ती वर्ण को उकार तथा शब्द के दकार को मकार आदेश होता है।

उदाहरण - अमु, अमुम्, अमू, अमून, अमुना, अमूभ्याम्, अमुस्मै, अमुष्मात्, अमुष्य, अमुयोः, अमुष्मिन् आदि।

अमू - अदस् औ अथवा औट्। अद् औ (''त्यदादीनामः'' से अत्व) अदौ। प्रकृत सूत्र से असकारान्त अदस् शब्द के दकार को मकार एवं दकारोत्तरवर्ती औकार को ऊकार हो - अमूः शब्द बना।

88. ''एत ईद्बहुवचने'' (8.2.81.)

बहुवचन - विषय में सकारान्त भिन्न अदस् शब्द के दकार से परवर्ती एकार के स्थान मे ईकारादेश और पूर्ववर्ती दकार के स्थान में मकारादेश हो जाते हैं।

उदाहरण - अमी, अमीभिः, अमीभ्यः, अमीषाम्, अमीषु।

अमी - अदस् जस् > अद शी > अद ई > अदे। प्रकृत सूत्र द्वारा एकार को ईकार तथा दकार को मकार आदेश हो - अमी।

अमीषु - अदस् सुप् > अद सु > अदे सु > अदे सु। एकार को ईकार दकार को मकार आदेश होकर अमी सु > अमीषु बना।

89. ''तयोर्य्वावचिसंहितायाम्'' (8.2.108.)

(8.2.107.) क्रम के सूत्र ''एचोऽप्रगृहयस्यादूराद्धूते पूर्वस्यार्धस्यादुत्तरस्येदुतौ'' सूत्र से जो दूर से बुलाने के प्रसंग में न हो ऐसे एच् के उत्तरार्ध को इकार एवं उकार आदेश विहित हुये हैं, प्रकृत सूत्र से उन दोनो आदेशों के स्थान में क्रमशः य् और व् आदेश हो जाते हैं यदि संहिता का विषय हो और इन इकार उकार से परे अच् हो तो। जैसे - अग्ना उ याशा, पटा उवाशा, अग्ना उ यिन्द्रम, पटा उषुदकम्।

अग्ना उयाशा - अवने आशा > अग्नां उ इ आशा (एचोऽप्रगृहयास्या से एच् के एकार के पूर्वार्द्ध को आ एवं उत्तरार्ध को इकार हो गया)। अब प्रकृत सूत्र से पूर्व सूत्रकृत इकार के स्थान पर य् होकर = अग्ना उ य् आशा > अग्ना उ याशा बना।

षटा उ वाशा - पटौ आशा > पटा उ उ आशा। आलोच्य सूत्र द्वारा व् होकर पटा उ व् आशा = पटा उ वाशा। अग्ना उ यिन्द्रम अग्ने इन्द्रम् > अग्ना उ इ इन्द्रम्। इकार को य् होकर अग्नाउ य् इन्द्रम् > अग्ना उ यिन्द्रम।

पटा उ वुदकम् - पटौ उदकम् > पटा उ उ उदकम् बू आदेश होने पर - पट। उव् उदकम् > पटाः वुदकम्।

90. ''भोभगोअधोअपूर्वस्य योऽशि'' (8.3.17.)

भो, भगो, अधो तथा अवर्ण पूर्वक रु के रेफ के स्थान में अश् प्रत्याहार के परे रहते यकार आदेश होता है।

उदाहरण - भो अत्र, भगो अत्र, अधो अत्र, भो ददाति, भगो ददाति, अधो ददाति अवर्ण पूर्व में हो - क आस्ते, कय् आस्ते।

भो अत्र - भो स् अत्र। भो रु अत्र > भो र् अत्र रेफ को यकार आदेश होकर - भो य् अत्र। यकार लोप हो (ओतोगार्ग्यस्य, सू. से) भो अत्र।

भो ददाति - भोस् ददाति > भो रु ददाति > भो र् ददाति > भो य् ददाति - प्रकृत सूत्र द्वारा रु के रेफ को यकार होकर। भो ददाति। (''हलि सवेषाम्'' से यकार का लोप होकर)।

क आस्ते - कय् आस्ते > क रु आस्ते > क र् आस्ते। रेफ से पूर्व अवर्ण है अतएव रेफ को यकारादेश होकर - क य् आस्ते बना। शाकल्य के मत् में लोप होकर ''क आस्ते'' एवं लोप के अभाव में 'कयास्ते' सिद्ध हुआ।

91. ''मो राजि समः क्वौ'' (8.3.25.)

क्विप्प्रत्ययान्त राज् धातु के परे रहते 'सम्' के मकार के स्थान मकारादेश ही हो जाता है। उदाहरण - सम्राट, साम्राज्यम् आदि।

(''मोऽनुस्वारः'' 8.3.23.) से प्राप्त मकार को अनुस्वार आदेश के निवृत्यर्थ प्रकृत सूत्र द्वारा मकार को मकारादेश विहित हुआ।

सम्राट् - सम् राजृ क्विप् > सम् राजृ। मकार को अनुस्वार आदेश के प्रतिषिद्ध होकर मकार को प्रकृत सूत्र से मकार हुआ और सम्राजृ शब्द बना। प्रथमा एकवचन में सम्राट्।

साम्राज्यम् - सम् राजृ क्विप् > सम्राट् ष्यञ् सु > साम्राज्य् य अम् > साम्राज्यम्।

92. ''हे मपरे वा'' (8.3.26.)

जिससे मकार परे हो तो ऐसे हकार के परे रहते पदान्त मकार को विकल्प से मकार आदेश हो।

उदाहरण - किम् ह्मलयति, किं ह्मलयति।

किम् हमलयति - यहाँ किम् के मकार से परे हकार है जो मकार पूर्ववर्ती भी है अतः किम् के मकार को प्रकृत सूत्र द्वारा मकार होकर - किम् ह्मलयति बना। मकारादेश के अभाव में अनुस्वार होकर - किंम् ह्मलयति बनेगा।

93. ''नपरे नः'' (8.3.27.)

नकारात्मक हकार, परे रहते पदान्त मकार को विकल्प से नकारादेश होता है।

उदाहरण - किन् ह्नुते, किं ह्नुते।

किन् ह्नुते - किम् ह्नुते। यहाँ किम् के मकार से परे हकार है जिससे परे नकार है अतएव सूत्र में वर्णित सभी प्रसंग उपस्थित होने से मकार को वैकल्पिक नकार प्राप्त हुआ। नकार आदेश होकर - किन् ह्नुते > किं ह्नुते, नकारादेश के अभाव में अनुस्वार होकर किं ह्नुते।

94. "मय उञो वो वा" (8.3.33.)

मय् से उत्तर उञ् अवयव को अच् परे रहते विकल्प करके वकारादेश होता है।

उदाहरण - किम्बुक्तम्, किमु उक्तम्।

किम्बुक्तम् - किम् उ उक्तम्। यहाँ मकार जो मय् प्रत्याहार का वर्ण है - से परे उञ् अवयय है तथा इससे परे अच् उकार है तब प्रकृत सूत्र द्वारा वैकल्पिक वकार आदेश प्राप्त हुआ। आदेश पक्ष में - किम् व् उक्तम् > किम्बुक्तम् बना। आदेश के अभाव में एकाच्त्वेन प्रगृह्य संज्ञा होकर प्रकृतिभाव हुआ - किम् उ उक्तम् = किम्बुल्तम्।

95. "स्तोः श्चुना श्चुः" (8.4.40.)

शकार एवं च वर्ग के योग में सकार एवं त वर्ग के स्थान में शकार और च वर्ग आदेश होते है।

उदाहरण - रामश्शेते, रामश्चिनोति, सच्चित्, शार्ङ्गिञ्जयः आदि।

रामश्शेते = रामस् + शेते - स को श आदेश।

रामश्चिनोति = रामस् + चिनोति - स को श आदेश।

सच्चित् = सत् + चित् = सच्चित् - त को च आदेश।

शार्ङ्गिञ्जयः - शार्ङ् गिन् + जयः = न को ञ् आदेश।

96. "ष्टुनाष्टुः" (8.4.41.)

षकार एवं ट वर्ग के योग में सकार एवं त वर्ग के स्थान में षकार एवं ट वर्ग हो जाते है।

उदाहरण - रामषष्ठः, रामष्टीकते, तट्टीका, चक्रिण्ढौकसे आदि।

रामषष्ठः - रामस् षष्ठः - स को ष आदेश हो रामस् षष्ठः = रामषष्ठः।

रामष्टीकते - रामस् + टीकते।

पेष्टा - पेष् + ता - तकार को टकार आदेश।

तटटीका - तत् + टीका - तकार को टकार आदेश।

चक्रिण्ढौकसे - चक्रिन ढौकसे - नकार को णकार।

97. "यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा" (8.2.45.)

पदान्त यर् को अनुनासिक परे रहते विकल्प से अनुनासिक आदेश होता है।

उदाहरण - एतन्मुरारिः, एतद्मुरारिः, षण्मासाः षड्मासाः। धिङ्मूर्खम्, धिग्मूर्खम। सन्मार्गः सद्मार्गः।

मद्नीतिः, मन्नीतिः।

एतद्मुरारिः, एतन्मुरारिः - एतद् + मुरारिः। विग्रह में दकार यर् है जिससे परे अनुनासिक मकार है तब दकार को अनुनासिक होने पर एतन् मुरारिः = एतन्मुरारिः बना। अनुनासिक न होने पर एतद्मुरारिः ही रहेगा।

षण्मासाः षड्मासाः - षड् + मासाः। ङकार को अनुनासिक आदेश प्राप्त होने पर सवर्ग होने से वर्ग का पंचमाक्षर णकार हो - पण्मासाः वना। आदेश के अभाव में षड्मासाः ही रहेगा।

धिङ् मूर्खम्, धिग् मूर्खम् - धिग् + मूर्खम्। मकार को अनुनासिक आदेश हो धिङ् मूर्खम्। आदेश अभाव पक्ष में - धिग् मूर्खम्।

98. ''झलां जश् झशि'' (8.2.53.)

झलों के स्थान में झश् परे रहते जश् आदेश होता है।

झल् अर्थात् वर्ग के प्रथम, द्वितीय तृतीय एवं चतुर्थ वर्ण तथा श, ष, स, ह वर्ण। जश् अर्थात् वर्ग का तृतीय वर्ण। झश् में वर्ग के तृतीय एवं चतुर्थ वर्ण आते है। जिन प्रयोगों में सूत्र विहित कार्य होता है ऐसे कुछ शब्द प्रयोग इस प्रकार हैं - लब्धा, बोद्धा, दोग्धा आदि।

लब्धा - लभ् तृच् > लभ् तृ > लभ् धृ। प्रकृत सूत्र द्वारा झश् धकार परे होते झल मकार को जश् वकार आदेश होगा। ल ब् धृ > लब्धृ। प्रथमा एकवचन में रूप बनेगा - लब्धा।

99. ''अभ्यासे चर्च'' (8.4.54.)

अभ्यास में वर्तमान झलों को चर् आदेश होता है। सूत्रस्थ चकार के बल से जश् आदेश भी होता है झलों में वर्ग के प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ एवं श, ष, स, ह वर्ण है। चर् प्रत्याहार में वर्ग के प्रथम श, ष, स, ह वर्ण हैं तथा जश् में वर्ग के तृतीय वर्ण हैं। इनमें स्थानी एवं आदेश का निर्णय इस प्रकार किया गया - ''प्रकृति जशां प्रकृति जशः। प्रकृति - चरां प्रकृतिचरो।'' (काशिका) अर्थात् जश् स्थानी को जश्, चर् स्थानी को चर् आदेश होंगे। अतः प्रथम वर्ण को प्रथम वर्ण तृतीय वर्ण को तृतीय वर्ण आदेश तथा श, ष, स, ह को श, ष, स, ह आदेश अपने स्थान में अपने आप होंगे। शेष वर्णों में वर्ग के द्वितीय को वर्ग का प्रथम वर्ण तथा वर्ग के चतुर्थ को तृतीय वर्ण आदेश होगा।

चर्त्व एवं जश्त्व के उदाहरण - बभूव, चिरवनिपति, जिघत्सति, चिचीपति, पिपठिषति, बुबुधे, ददौ आदि।

बभूव - भू णल् > भ भूव इस दशा में अभ्यास के झल् इकार को जश् बकार हो ब भूप बना। यहाँ बर्ग के चतुर्थ वर्ण को वर्ग का तृतीय वर्ण हुआ है।

चिरवनिषति - खन् सन् तिप् > ख खनि स ति। अब झल् ख को चर् चकार आदेश हो - च खानि स सति। इत्व, पत्व आदि हो - चिरवनिषति। यहाँ वर्ग के द्वितीय वर्ण को वर्ग का प्रथम वर्ण आदेश होता है।

चिचीषति - चिञ् सन् तिप् > चि ची ष ति। यहाँ चर् प्रकृति को चर् आदेश नियम से अभ्यास को चर्त्व हो चकार आदेश होगा।

100. "खरि च" (8.4.55.)

खर् परे होने की दशा में भी झलों को चर् आदेश होंगे।

उदाहरण - भेत्ता, युयुत्सते आदि।

भेत्ता - भिद् तृच् > भेद्तृ। तृच का तकार श्वर् है अतएव झल् वकार को प्रकृत सूत्र से चर् आदेश होगा। आन्तर्तम्यात् दकार के स्थान पर उसी वर्ग का तकार आदेश होगा - भेत् तृ। भेत्तृ से प्रथमा एकवचन में - भेत्ता।

101. "वाऽवसाने" (8.4.56.)

अवसान में वर्तमान झलों को विकल्प करके चर् आदेश होता है।

उदाहरण - वाक, वाग्, त्वक्, त्वक्र, श्वलिट् श्वलिड् आदि।

वाक् - वाग् - वाच् सु > वाच् स् > वाच् > वाज् (झलां जशोऽन्ते) वा ग् ('चोः कुः') वाग् का मकार झल् है एवं अवसान में है अतएव आलोच्य सूत्र से वैकल्पिक चर्त्व प्राप्त हुआ चर्त्व के भाव पक्ष में गकार के स्थान पर आन्तर्तम्यात् ककार आदेश हुआ - वाक्। अभाव पक्ष में गकार ही रह गया वाग्।

श्वलिट्, श्वलिड् - श्वलिड् सु > श्वलिह् स् > श्वलिह् > श्वलिट् > श्वलिड्। अवसान में अवस्थित डकार को वैकल्पिक चर्त्व प्राप्त हुआ। चर्त्व पक्ष में डकार का सवर्ण टकार होकर 'श्वलिट्' बना। अभाव पक्ष में 'श्वलिड' बना।

102. "अणोऽप्रगृह्यस्यानुनासिकः" (8.4.57.)

अवसान में वर्तमान प्रगृह्यसंज्ञक से भिन्न अण् को विकल्प से अनुनासिक आदेश होता है।

उदाहरण - दधि, दधिः, मधुँ मधु आदि।

दधि, दधिः - दधि सु > दधि। 'सु' का लोप हो जाने से दधि का इकार अवसान में वर्तमान है यह प्रगृह्यसंज्ञक भी नहीं है। अतएव सूत्र द्वारा वैकल्पिक अनुस्वार आदेश प्राप्त हुआ आदेश पक्ष में 'दधि' शब्द बना। आदेशाभाव पक्ष में 'दधि' ही रहा। इसी प्रकार द्वितीया एकवचन में अम् का लोप होकर अनुनासिक आदेश युक्त रूप बनेगा।

103. "अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः" (8.4.58.)

अनुस्वार को यय् परे रहते परसवर्ण आदेश होता है।

उदाहरण - शान्तः, अङ्कितः, अञ्चितः, गुञ्जति, कुण्ठितः, कान्तः, गुम्फितः

शान्तः - शमु क्त > शम् त > शाम् त > शांत। क्त का तकार यय् है अतः उसका सवर्ण अनुनासिक नकार होकर - शान् त > शान्त। प्रथमा एकवचन में शान्तः।

अङ्कितः - अंकित। परसवर्ण अनुनासिक ङकार होकर - अङ् कित् > अङ्कित सु > अङ्कितः।

अञ्चितः - अं चित > अञ् चित सु > अञ्चितः।

गुञ्जति - गुं ज ति > गुन् ज ति > गुन्जति।

कुण्ठितः - कुं ठि त > कुण् ठित् > कुण्ठित सु = कुण्ठितः।

गुम्फितः - गुं फि त > गु म् फित > गुम्फित सु > गुम्फितः।

104. "वा पदान्तस्य" (8.4.59.)

किन्तु पदान्त अनुस्वार के स्थान में परसवर्णादेश विकल्प से ही होता है।

उदाहरण - त्वंकरोषि, त्वङ्करोषि। नदीन्तरति, नदीं तरति।

त्वङ् करोषि - त्वं करोषि - त्वं (त्वम्) युष्मद् का प्रथमा एकवचन का रूप है अतएव इसका अनुस्वार (जो पहले मकार था और "मोऽनुस्वारः" सूत्र से अनुस्वार हो गया) पदान्त में वर्तमान है। तब उपर्युक्त सूत्र द्वारा वैकल्पिक परसवर्णादेश पक्ष में ककार का सवर्ण अनुनासिक ङकार होकर "त्वङ्करोषि" बना। पर सवर्णादेश के अभाव में 'त्वं करोषि' ही रहा।

105. "तोर्लि" (8.4.60.)

तवर्ग के स्थान में लकार परे रहते पर सवर्ण आदेश होता है।

उदाहरण - तल्लयः, अग्नि चिल्लुनाति, सोमसुल्लुनाति, भवाँल्लुनाति।

तल्लयः - तद् + लयः। यहाँ तवर्ग - दकार, के परे लय का लकार है अतएव इस सूत्र द्वारा परसवर्ण (लकारादेश) हुआ - तल्लयः = तल्लयः।

अग्निचिल्लुनाति - अग्निचित् + लुनाति। तवर्ग तकार से परे लकार होने से परसवर्ण आदेश होकर - अग्निचित्र लुनाति = अग्निचिल्लुनाति बना।

भवाँल्लुनाति - भवान् + लुनाति। यहाँ तवर्ग नकार से परे लकार है तब अनुनासिक नकार के स्थान में प्रकृत सूत्र द्वारा सानुनासिक लकार प्राप्त हुआ - भवाँल् लुनाति = भवाँल्लुनाति।

106. "उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य" (8.2.61.)

उद् उपसर्ग से उत्तर स्था तथा स्तम्भ धातुओं के स्थान में पूर्व सवर्ण आदेश हो।

उदाहरण - उत्थानम्, उत्तम्भनम्।

उत्थानम् - उद् स्थानम्। स्थानम् के सकार को पूर्व वर्ण दकार का सवर्ण आदेश प्राप्त हुआ। इससे सकार के तुल्य स्थान एवं प्रयत्न वाला थकार आदेश होकर - उद् थ् थानम् बना। उद् के दकार को चर् तकार ("खरि च" से) तथा थकार का लोप ("झरो झरि सवर्णे" से वैकल्पिक लोप) हो उत् थानम् > उत्थानम् बना।

उत्तम्भनम् - उद् स्तम्भनम् - स्तम्भनम् से सकार को पूर्वसवर्ण थकार होकर - उद् थ् तम्भनम् बना। दकार को तकार एवं थकार का लोप हो उत् तम्भनम् = उत्तम्भनम् बना।

107. "झयो होऽन्यतरस्याम्" (8.2.62.)

झय् से उत्तर हकार को विकल्प से पूर्वसवर्ण आदेश होता है।

उदाहरण - वाग्घरिः, वाग्हरिः। अज्झलौ, अज्हलौ। सम्पद्धर्षः, सम्पदहर्षः।

वाग्घरि, वाग्हरिः - वाग् + हरिः। मकार झय् है तथा इससे परे हकार है तब हकार को सूत्रविहित पूर्वसवर्ण आदेश पक्ष में घकार होकर वाग् घरिः = वाग् घरिः बना। आदेश के अभाव में वाग्हरिः ही रहा।

अज्झलौ, अज्हलौ - अच् - हलौ > अज् हलौ अब् प्रकृत सूत्र द्वारा वैकल्पिक पूर्वसवर्णादिश के भाव पक्ष में जकार का सवर्ण झकार हो - अज् झलौ > अज्झलौ बना। आदेश के अभाव में अज्हलौ ही रहा। सम्पद्धर्षः, सम्पद्हर्षः - सम्पद् हर्ष। सूत्र विहित पूर्व सवर्णादिश करने पर सम्पद्धर्षः। आदेशाभाव

पक्ष में - सम्पद्हर्षः।

108. ''शश्छोऽटि'' (8.2.63.)

झय् से उत्तर शकार के स्थान में अट् परे रहते विकल्प से छकार आदेश होता है।

उदाहरण - तच्छिवः - तच् शिवः, वाक्छूरः, वाक्शूरः, विश्वसृट्छेते, विश्वसृट्शेते, जगच्छान्ति, जगच्शान्तिः आदि।

तच्छिवः, तच्शिवः - तद् शिवः > तज् शिवः > तच् शिवः। यहाँ 'च' वर्ण झय् प्रत्याहार का वर्ण है तथा इससे परे शकार है। शकार से परे अट् इकार है अतः उपर्युक्त सूत्र की प्रवृत्ति हुई और शकार को वैकल्पिक छकार प्राप्त हुआ। छकारादेश पक्ष में तच् छिवः = तच्छिवः, तथा अभाव पक्ष में तच्शिवः प्रयोग सिद्ध हुये।

वाक्छूरः, वाक्शूरः - वाक् शूरः। छत्व हो, वाक् छूरः = वाक्छूरः। छत्वाभाव में वाक्शूरः।

रुत्व - प्रकरण

1. ''ससजुषो रुः'' (8.2.66.)

पदान्त सकार तथा सजुष् को रु आदेश होता है।

उदाहरण - वायुरत्र, अग्निरत्र। सजूर्ऋषिभिः, सजुर्देवेभिः आदि।

वायुरत्र - वायु स् अत्र। सकार को रुत्व हो - वायु रु अत्र्। रु के उकार का इत्संज्ञक लोप तथा वर्णमेल हो वायु र् अत्र = वायुरत्र शब्द बना।

अग्निरत्र - अग्नि स् अत्र। सकार को रुत्व हो - अग्नि रु अत्र। अग्नि र् अत्र = अग्निरत्र।

सजूर्ऋषिभिः - सजुष् ऋिषिभिः। सजुष् पद को रुत्वादेश प्राप्त होने पर आदेश 'अलोऽन्त्यस्य' के नियम से सजुष् के अन्त्य अल् षकार को होकर - सजु रुऋिषिभिः। उकार का इत्संज्ञक लोप तथा सजुर् के उकार को दीर्घ हो सजुर् ऋषिभिः 'सजूर्ऋषिभिः' शब्द सिद्ध होता है।

सजुर्देवेभिः - सह जुषतः इति सजुष् (सह जुष् क्विप्) स जुष् > सजुष् देवेभिः - इस स्थिति में सजुष् के सका को रुत्व हो - सर्जुरु देवेभिः। सजु रु देवेभिः > सजु र् देवेभिः = सजुर्देविभिः।

2. ''अहन्'' (8.2.68.)

पदान्त विषय में अहन् शब्द के नकार को 'रु' आदेश होता है।

उदाहरण - अहोभ्याम्, अहोभिः।

अहोभ्याम् - अहन् भ्याम्। आलोच्य सूत्र से अहन् पद को रु आदेश प्राप्त हुआ। यह आदेश 'अलोऽन्त्यस्य' नियम से स्थानी के अन्तावयव को हो अह् रु भ्याम् - यह स्थिति हुई। रु को 'हशि च' से उकारादेश, पूर्व पर के स्थान पर गुण एकादेश (सू. ''आद्गुणः'' से) हो, अहोभ्याम् शब्द सिद्ध हुआ।

अहोभिः - अहन् भिस्। रुत्वादेश हो - अह् रु भिस्। अहोभिः।

3. ''अम्नरुधरवरित्युभयथा छन्दसि'' (8.2.70.)

अम्नस्, ऊधस्, अवस् इनकी वेद विषय में उभयथा स्थिति होती है अर्थात् सकार को रुत्व ('ससजुषो रु' से विहित) तथा रेफ ('रोऽसुपि' से विहित्) दोनो ही होता है।

उदाहरण - रेफ पक्ष में - अम्नरेव, ऊधरेव, अवरेप।

रुत्व पक्ष में - अम्न एव, ऊध एव, अव एव।

अम्नरेव – अम्नस् एव। स को रेफ हो अम्न र् एव = अम्नरेवः इसी प्रकार ऊध र् एव, अव र् एव हो ऊधरेव, अवरेप शब्द बने अम्न एव – अम्नस् एव। रुत्व हो अम्न रु एव। रु को ''भोभगोअधोऽपूर्वस्य' से यकार, यकार का लोप ('लोपः शाकल्यस्य') से हो 'अम्न एव' प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार ऊध रु एव, अव रु एव > ऊध य् एव, अव य् एव > ऊध एव तथा 'अव एव' आदि प्रयोग बनेंगे।

4. ''भुवश्च महाव्याहृते'' (8.2.71.)

भुवस् शब्द को महाव्याहृति अर्थ में सकार के स्थान में उभय आदेश – रु, रेफ वेद विषय में प्राप्त होते हैं।

उदाहरण – भुवरित्यन्तरिक्षम्, भुव इत्यन्तरिक्षम्।

भुवरिति – भुवस् इति। रेफ पक्ष में स् को रेफ हो – भुव र् इति = भुवरिति। भुव इति – भुवस् इति। रुत्व पक्ष में – भुव रु इति भुव रु इति > भुव य् इति > भुव इति।

महाव्याहृति भुवस् शब्द का अर्थ है – अन्तरिक्षवाचक भुवस् शब्द।(भुवः इत्येददव्ययमन्तरिक्षवाचि महाकाहृतिः) तीन महाव्याहृतियां हैं, पृथिवी, अन्तरिक्ष, एवं स्वर्ग की वाचक। इनमें भुवस् अन्तरिक्षवाची महाव्याहृति है।

सूत्र की 'न्यास' टीका के अनुसार – अन्तरिक्षं हि महत्, तस्य व्याहृति उक्तिर्यस्मातः तस्मात् महाव्याहृति भवति, इस प्रकार महत् की व्याहृति होने से अर्थात् अन्तरिक्ष की उक्ति होने से 'भुवस्' महाव्याहृति है।

भुवः अव्यय अन्तरिक्षवाची महाव्याहृति है अतः ''भुवो विश्वस्य भुवनेषुः यज्ञियः'' – यहाँ सूत्र प्रवृत्ति नहीं होगी क्योंकि वाक्य का भुवस् शब्द अन्तरिक्षवाची महाव्याहृति नहीं है अपितु भू शब्द का षष्ठ्यन्त अथवा पंचम्यन्त रूप है। (भूशब्दस्य षष्ठयन्तस्य पंचम्यन्तस्य वा प्रयोगः) अथवा भू धातु का तिङ्न्त रूप है। (तिङन्तमेतत्। भवतेः 'छन्दसि लुङ्लङ् लिटः बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि' इत्यज्भावः।

5. ''सिपिधातो रुर्वा'' (8.2.74.)

धातु के अवयवभूत पदान्त सकार को भी विकल्प से रु आदेश (और दकारादेश) होता हैं। उदाहरण – अचकास्त्वम्, अचकात्वम्, अचकास् अचकात् – अट् चकास्तसिप् > अ चकास् स् > अचकास्। चकास् सकारान्त धातु पद है अतः सकार को वैकल्पिक रुत्व प्राप्त होता है। रुत्व पक्ष में –

अ चका रु ऐसी स्थिति बनी, रुत्व को विसर्जनीय तथा विसर्जनीय को पुनः सकार हो अचकास् शब्द बना। रुत्व के अभाव में दकारादेश हो - अ चकाद् > अचकाद् अचकात् शब्द बना।

6. "दश्च" (8.2.75.)

धातु के अवयवभूत पदान्त दकार को भी विकल्प से 'रु' आदेश होता है। सूत्रस्थ चकार बल से पक्ष में दकार भी होता है।

उदाहरण - अभिनद्, अभिनस्, अच्छिनद्, अच्छिनस्।

अभिनद् - अभिनस् - अट् भिद् सिप् > अ भिद् सिप् > अ भि श्नम् द् सिप् > अ भिनद्। दकार को सूत्र द्वारा प्राप्त रु हो - अ भिन रु = अभिनस् = अभिनस्। रुत्वादेश के अभाव में दकार हो अभिनद् शब्द बनेगा।

अच्छिनस्, अच्छिनद् - अट् छिद् सिप् > अ छि श्नम् द् सिप् > अच्छिनद्। रुत्व हो - अच्छिन रु > अच्छिनस् रुत्व के अभाव में "अच्छिनद्" बनता है।

7. "मतुवसो रु सम्बुद्धौ छन्दसि" (8.3.1.)

मतुप् प्रत्ययान्त और वसु प्रत्ययान्त पदों को सम्बुद्धि संज्ञक विभक्ति के परे रहते, वेद विषय में रु आदेश होता है। मतुप् प्रत्ययान्त - इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमम्। हरिवो मेदिनं त्वा।

वस्वन्त - मीढ्व वस्तोकाय तनयाय इन्द्र साहृतः।

मरुत्व - मरुत् मतुप् > मरुत् वत् > मरुत् व न् त् > मरुत्वन् सु > मरुत्वन् स् > मरुत्वन्। मत्वन्त 'मरूत्वन् शब्द को आलोच्य सूत्र द्वारा 'रु' आदेश प्राप्त हुआ। 'अलोऽन्त्यस्य' नियम से यह आदेश अन्त्य नकार को प्राप्त होता है। आदेश हो - मरुत्व रु, रु को यकार, यकार का लोप होकर मरुत्व शब्द बना।

हरिवो - हरि मतुप् सु > हरि वत् स् > हरि व न् त् > हरि वन्। वत्वन्त होने से रु अन्तादेश होकर - हरि व रु। रु को उत्व, वकारपरक अकार एवं उकार के स्थान पर गुण एकादेश ओकार होकर 'हरिवो' शब्द बनता है।

मीढ्वस् - मिह् क्वसु सु > मीढ् वस्। वस्वन्त होने से सूत्र द्वारा रु अन्तादेश प्राप्त होता है। रु अन्तादेश होकर - मीढ्व का रु को विसर्जनीय, विसर्जनीय को सकारादेश होकर 'मीढ् वस्' शब्द बनेगा।

8. "समः सुटि" (8.3.5.)

सम् को रु होता है सुट् परे रहते संहिता विषय में।

सँस्कर्त्ता, संस्कर्ता, सँस्सकर्ता, संस्स्कर्ता। सँस्कर्तुम, संस्स्कर्तुम्। सँस्क्तर्त्ताव्यम्, संस्स्कर्त्तव्यम्।

सँस्कर्त्ता, संस्स्कर्ता - सम् सुट् कर्ता (कृ तृच्) > सम् स् कर्ता। यहाँ सम् से परे सुट् का सकार है और उसे सूत्र द्वारा रु आदेश प्राप्त होता है। अतः आदेश होकर - स रु स् कर्ता - ऐसी दशा होती है। इसके पश्चात रु से पूर्ववर्ती वर्ण को विकल्प से अनुनासिक प्राप्त होता है। तब अनुनासिक पक्ष में रु को विसर्ग, विसर्ग को सकारादेश हो सँसूस्कर्ता = सँस्सकर्ता तथा अनुनासिक के अभाव पक्ष में अनुस्वार आगम हो सं स् स्कर्ता = सँस्स्कर्ता शब्द सिद्ध होता है। "समो वा लोपमेके - भाष्यवचन द्वारा सम् के मकार का विकल्प से लोप प्राप्त होता है। तब मकार लोप पक्ष में सं स् कर्ता तथा सँ स् कर्ता = संसकर्ता और सँस्कर्ता आदि रूप बनते है।

9. "पुमः खय्यम्परे" (8.3.6.)

अम् प्रत्याहार परे है जिससे ऐसे खय् प्रत्याहार के परे रहते पुम् को रु होता है संहिता विषय में।

उदाहरण - पुँस्कोकिलः पुंस्कोकिलः। पुँस्पुत्रः पुस्पुत्रः। पुँश्चरित्रम्, पुंश्चरित्रम्।

पुँस्कोकिलः पुंस्कोकिलः - पुम् कोकिलः। यहाँ पुम् से परे खय् प्रत्याहार का वर्ण 'क्' है और उससे परे अम् प्रत्याहार का वर्ण ओकार है अतएव अमूपरक खय् परे होने से पुम् को सूत्र द्वारा 'रु' आदेश प्राप्त हुआ। सूत्र में पुम् शब्द षष्ठयन्त निर्दिष्ट हुआ है। अतः अलो ऽन्त्यस्य परिभाषा के बल से 'रु' आदेश अन्त्य अल् मकार को ही होगा अव आदेश हो। पु रु कोकिलः, ऐसी स्थिति हुई, के पश्चात् रु को विसर्ग, विसर्ग को सकार तथा पु को वैकल्पिक अनुनासिक एवं पक्ष में अनुस्वार आदेश हो, पुँ स् कोकिलः तथा पुं स कोकिलः = पुँस्कोकिलः, पुंस्कोकिलः = द्विविध रूप बने। इसी भाँति चरित्रम् एवं पुत्रः शब्दों के अमूपरक खय् प्रत्याहारादिवर्णवान् होने से पुम् के मकार को रुत्व होगा। रुत्व को विसर्ग, विसर्ग को सकार हो पु को अनुनासिक एवं अनुस्वार हो दो-दो रूप बनेंगे।

10. "नश्छव्यप्रशान्" (8.3.7.)

प्रशान् को छोड़कर जो नकारान्त पद उसको अम् परक छव् परे रहते रु होता है संहिता विषय में।

उदाहरण - भवाँश्छादयति भवांश्छादयति। भवाँश्चिनोति भवांश्चिनोति बुद्धिमाँश्छात्रः।

बुद्धिमाँश्छात्रः - भवाँरछादयति, भवांश्छादयति - भवान् छादयति। छादयति का आदि - वर्ण छकार छव् प्रत्याहार का वर्ण है जिससे परे अम् आकार है; अतः नकारान्त पद को रु अन्तादेश हो - भवा रु छादयति = भवाँश्छादयति, भवांश्छादयति - ये दो रूप बने।

प्रशान् को रुत्वादेश का प्रतिषेध होने से 'प्रशान्तनोति' इस प्रयोग में रुत्व नहीं होगा।

11. "उभयथर्क्षु" (8.3.8.)

अम्परक छव् परे हो तो नकारान्त पद को दोनों ही होता है अर्थात् या तो रु होता है अथवा नकार, यदि पद ऋचाओं का हो तो।

उदाहरण - तस्मिंस्त्वा दधाति अथवा तस्मिन्त्वा दधाति। तस्मिंस्त्वा अथवा तस्मित्वा - तस्मिन् + त्वा ऋचा के इस पद को अम् (वकार) परक छव् तकार परे रहते रु अन्तादेश हो - तस्मि रु त्वा > तस्मिं स् त्वा = तस्मिंस्त्वा प्रयोग सिद्ध होता है और तस्मिन्त्वा - तस्मिन् त्वा > तस्मिन् त्वा = तस्मिन्त्वा, इस प्रकार नकार को नकार पक्ष में प्रयोग सिद्ध होता है।

12. "दीर्घादटि समानपादे" (8.3.9.)

दीर्घ से उत्तर नकारान्त पद को अट् परे रहते पादबद्ध मन्त्रों में रु होता है, यदि निमित्त तथा निमित्ति दोनो एक ही पाद में हों तो।

उदाहरण - परिधीं इति। देवां अच्छादीव्यत्। महां इन्द्रो य ओजसा।

परिधीं - यहाँ परिधीन् + इति इस शब्द में दीर्घ इकार से परे नकार है, यह नकारान्त पद है और पद के परे अट् रकार है अतः नकार को रु होकर - परिधीं रु इति ऐसी दशा हुई। रु को यकार, यकार का लोप एवं रु से पूर्व को अनुस्वार हो 'परिधी' शब्द बना। महाँ इन्द्रो, देवाँ अच्छादीव्यत् - इन प्रयोगों में भी दीर्घ से पर एवं अट् से पूर्व नकार को रुत्व हुआ है।

13. "नॄन्पे" (8.3.10.)

नॄन् - इस शब्द के नकार को रु होता है 'प' परे रहते।

उदाहरण - नॄः पाहि। नॄँः पाहि। नॄँः प्रीणीहि। नॄंः प्रीणीहि। नॄः पाहि। नॄन् पाहि। पाहि शब्द पकारादि है अतः पकार परे रहते नॄन् के नकार को रुत्व हो - नॄ रु पाहि ऐसी दशा हुई रु को विसर्ग, नॄ को अनुनासिक हो न्हृंः पाहि' प्रयोग सिद्ध हुआ।

नृः पाहि - नृन् के नकार को पकार परे होने से सूत्र द्वारा रु आदेश हुआ ..... नु रु पाहि। रु को विसर्जनीय एवं नृ को अनुस्वार आगम ही प्रयोग सिद्ध होता है।

14. ''स्वतवान्पायौ'' (8.3.11.)

'स्वतवान्' - इस शब्द के नकार को रु आदेश होता है, पायु शब्द परे हो तो।

उदाहरण - स्वतवाँ, पायुरग्ने।

स्वतवाँ पायुः - स्वतवान् + पायुः। सूत्र विहित रु आदेश हो स्वतवा रु पायुः > स्वतवाँः पायुः शब्द बनता है।

15. ''कानाम्रेडिते'' (8.3.12.)

कान् शब्द के नकार को रु होता है आम्रेडित परे रहते।

उदाहरण - कांस्कानामन्त्रयते, कांस्कान्मोजयति।

कांस्कान् - कान् कान् (किम् शस् > क अस् > कास् > कान्, वीप्सा अर्थ में द्वित्व) यह 'तस्यपरमाम्रेडित' से द्वितीय कान् की आम्रेडित संज्ञा होती है। अब आम्रेडित परे होने से (पूर्ववर्ती) कान् के नकार को सूत्र द्वारा रुत्वादेश विहित होता है। रुत्व हो - का रु कान् > कां स् कान् = कांस्कान् शब्द सिद्धि होता है।

सन्दर्भ सूची

1. ''भुवः'' इत्येतदव्यमन्तरिक्षवाचि महाव्याहृतिः'' - सूत्र की काशिका वृत्तिः।
2. द्र. काशिका की पदमंजरी टीका। (तिस्तो महाव्याहृतयः)
3. सूत्र की न्यास टीका।
4. सूत्र की पदमंजरी टीका।

सत्व - प्रकरण

1. ''विसर्जनीयस्य सः'' (8.3.34.)

खर् परे रहते विसर्जनीय को सकार आदेश होता है।

उदाहरण - वृक्षश्छादयति - वृक्षः छादयति। यहां विसर्ग से परे श्वर् छकार है अतएव सूत्र द्वारा इसे सकारादेश प्राप्त होता है। सकारादेश हो - वृक्ष स छादयतिः, ऐसी स्थिति हुई। अब स को श्चुत्व शकार हो ''वृक्षश्छादयति'' शब्द बना।

2. ''सोऽपदादौ'' (8.3.38.)

अपदादि कवर्ग तथा पवर्ग परे रहते विसर्जनीय को सकारादेश होता है।

उदाहरण - पयस्पाशम्, यशस्कल्पम्, परस्कम्, यशस्काम्यति आदि।

पयस्पाशम् - पयः पाशप् सु > पयः पाश अम्। पयः के विसर्ग को सूत्र द्वारा सकारादेश प्राप्त होता है। क्योंकि इससे परे पकार है। विसर्ग को रुत्व हो - पय स् पाशम् = पयस्पाशम् शब्द सिद्ध होता है।

यशस्कल्पम् - यशः कल्पय् सु > यशः कल्पम्। विसर्ग को सकार हो - यशस्कल्पम्।

यशस्काम्यति - यशः कम्यच्। सकार हो यशस्काम्य्। तिप् प्रत्यय हो यशस्काम्यति।

3. ''नमस्पुरसोर्गत्योः'' (8.3.40.)

नमस् तथा पुरस् गतिसंज्ञक शब्दों के विसर्जनीय को सकारादेश होता है। कवर्ग, पवर्ग परे रहते।

उदाहरण - नमस्कर्ता, नमस्कर्तुम्, नमस्कर्तव्यम्।

नमस्कर्ता - नमः कर्ता (कृ तृच > कर्तु सु > कर्ता > नमस् के विसर्ग को सूत्रविहित सकार होगा क्योंकि इससे परे ककार है - नम स् कर्ता = नमस्कर्ता।

4. ''तिरसोऽन्यतरस्याम्'' (8.3.42.)

तिरस् के विसर्जनीय को विकल्प से सकारादेश होता है, कवर्ग, पवर्ग परे रहते।

उदाहरण - तिरः कर्ता, तिरस्कर्ता। तिरः कर्त्तव्यम् तिरस्कर्तव्यम्।

तिरः कर्ता, तिरस्कर्ता - तिरस् कर्ता > तिरः कर्ता। विसर्ग को सकार होकर - तिरस्कर्ता।

आदेश - विधान वैकल्पिक है अतः आदेश के अभाव में 'तिरः कर्ता' रूप ही रहेगा।

5. ''अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनत्ययस्य'' (8.3.46.)

अकार से उत्तर समास में जो अनुत्तर पदस्थ अनव्यय का विजर्सनीय उसको (नित्य ही) सकारादेश होता है - कृ, कमि, कंस, कुम्भ, पात्र, कुशा, कर्णी इन शब्दों के परे रहते।

उदाहरण - कृ - अयस्कारः।

कमि - अयस्कामः।

कंस - अयस्कंसः।

कुम्भ - पयस्कुम्भः।

पष - पयस्पात्रम्।

कुशा - अयस्कुशा।

कर्णी - पयस्कर्णी।

अयस्कारः - अयः कार (अयः कृ अण्)। विसर्ग को सकार आदेश होकर - अय् स् कार अयस्कार, अयस्कार सु > अयस्कारः।

पयस्कुम्भः - 'पयः कुम्भ सु'। पयः के विसर्ग को आलोच्य सूत्र द्वारा सकारादेश होगा। क्योंकि पयः के विसर्ग के पूर्व अवर्ण है तथा शब्द से परे 'कुम्भ' शब्द बना। आदेश हो पय स् कुम्भ सु = पयस्कुम्भः शब्द बनता है।

6. ''अधः शिरसी पदे'' (8.3.47.)

समास में अनुत्तर पदस्थ अधस् तथा शिरस् के विसर्जनीय को सकार आदेश होता है, पद शब्द परे रहते।

उदाहरण - अधस्पदम्, शिरस्पदम्।

अधस्पदम् - अधः और पद इन दोनों का समास होने पर विभक्ति लोप हो 'अधः पद' ऐसी दशा हुई। अब उपर्युक्त सूत्र द्वारा अधः के विसर्ग को सकारादेश प्राप्त हुआ। सकारादेश हो - अध स् पद > अधस्पद शब्द बना। स्वादिकार्य हो 'अधस्पदम्' रूप बना।

शिरस्पदम् - शिर पद। विसर्ग को सकार हो शिर स् पद = शिरस्पद सुः शिरस्पदम् शब्द बना।

7. "छन्दसि वाऽत्राम्रेडितयोः" (8.3.49.)

प्र तथा आम्रेऽित को छोड़कर कवर्ग तथा पवर्ग परे हो तो वेद विषय में विसर्जनीय को विकल्प से सकारादेश होता है।

उदाहरण - अयः पात्रम्, अयस्पात्रम्। विश्वतः पात्रम् - विश्वतस्पात्रम्। उरुणः कारः, उरुण स्कारः।

अय पात्रम्, अयस्पात्रम् - अयः पात्रम् यहाँ विसर्ग से परे पवर्ग का पकार है अतः वैदिक संस्कृत में शब्द के विसर्ग को विकल्प से सकारादेश प्राप्त होता है। सकारादेश पक्ष में - अय स् पात्रम् = अयस्पात्रम् तथा आदेश के अभाव पक्ष में विसर्ग को विसर्ग होकर अयः पात्रम् में दो रूप बनते हैं। उरुणः कारः उरुणस्कारः - उरु अस्मद कारः (कृ अण् = कार) उरु नस् कार > उरु णस् कार > उरुणः कार। यहाँ नः (नस्) के विसर्ग को, कवर्ग का वर्ण ककार परे होने में सूत्र द्वारा वैकल्पिक सकारादेश प्राप्त हुआ। आदेश पक्ष में - उरु णस् कार > उरुण सकार सु = उरुणस्कारः तथा अभाव में उरुणः कार सु = उरुणः कारः - शब्दद्वय सिद्ध हुये।

8. "कः करत्करतिकृधिकृतेष्वनदितेः" (8.3.50.)

कः, करत, करति, कृधि, कृत - इनके परे रहते अदिति को छोड़कर जो विसर्जनीय उसको सकारादेश होता है, वेद विषय में।

उदाहरण - कः - विश्वतस्कः।

करत - विश्वतस्करत।

करति - उरुणस्कृधि।

कृत - सदस्कृतम्।

विश्तस्कः - विश्वतः कः (कृञ् लुङ्) कः परे होने से विश्वतः के विसर्ग को सकार आदेश होकर - विश्वत स् कः = विश्तस्कः।

विश्वतस्करत् - विश्वतः करत् (कृत लङ्)। विसर्ग को सकारादेश हो विश्वत स् करत् = विश्वतस्करत्।

उरुणस्कृधि - उरु णः (अस्मद्) नस् > णस् > णः > कृधि। उरुणः के विसर्ग को कृधि परे रहने से विसर्ग होकर उरु णस् कृधि = उरुणस्कृधि।

9. ''पञ्चम्याः परावध्यर्थे'' (8.3.51.)

पंचमी के विसर्ग को वेद विषय में सकारादेश होता है यदि वह अधि उपसर्ग के अर्थ में वर्तमान परि उपसर्ग से परे हो तो।

उदाहरण - दिवस्परि प्रथमं जज्ञे। अग्निर्हिगवतस्परि।

दिवस्परि - दिव् (द्युङ् सि) परि। यहाँ परि 'अधि' के अर्थ में हुआ है। 'अधि' अर्थात् 'उपरि'। अतएव अधि (उपरि) - इस अर्थ में विद्यमान परि से पूर्व जो विसर्ग उसे सकार होकर - दिव स परि = दिवस्परि शब्द बना।

हिमवतस्परि - हिमवतः परि। यहाँ ''हिमवतः उपरि'' अर्थ में 'अधि' के अर्थ में परि उपसर्ग का प्रयोग हुआ है इससे सूत्र द्वारा परि पूर्ववर्ती विसर्ग को सकारादेश हो - हिमवत स् परि = हिमवतस्परि शब्द बनता है।

10. ''पातौ च बहुलम्'' (8.3.52.)

पा धातु के प्रयोग परे हों तो भी पंचमी के विसर्जनीय को बहुल करके सकारादेश होता है, वेद विषय में

उदाहरण - दिवस्पातु, राज्ञस्पातु।

दिवस्पातु - दिवः (घु ङ सि) पातु (पा लोट्) पा तिप् > पा शप् तिप > पाति>>। दिवः के विसर्ग को सकारादेश होकर - दिव स् पातु = दिवस्पातु।

राज्ञस्पातु-राज्ञः (राजन् ङ सि) पातु। विसर्ग को सकारादेश हो > राज्ञ स् धातु = राजस्पातु।

11. ''षण्ठ्याः पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु'' (8.3.53.)

षष्ठी के विसर्जनीय को सकारादेश होता है पति, पुत्र, पृष्ठ, पार, पद, पयस्, पोष इन शब्दों के परे रहते वेद विषय में।

उदाहरण - पति - वाचस्पति। वाचस्पति विश्वकर्माणमृतये।

पुत्र - दिवस्पुत्राय। दिस्पुत्राय सूर्याय।

पृष्ठ - दिवस्पृष्ठे। दिवस्पृष्ठे धावमानं सुपर्णम्।

पार - तगसस्पारम्। अगन्य तमसस्पारम्।

पद - इडस्पेद। इडस्पेद समिध्यसे।

पयस - चक्षुर्दिवस्पयः। सूर्य चक्षुर्दिवस्पयः।

पोष - रायस्पोषम्। रायस्पोषम् यजमानेषु धतम्।

वाचस्पतिम् - वाचः (वाक् ङ स्) पतिम्। विसर्ग को सकार हो - वाच् स् पतिम् = वाचस्पतिं।

दिवस्पयः-दिवः पयः। दिवः षष्ठ्यन्त पद है इसके विसर्ग को सकारादेश हो 'दिवस्पयः' बना।

12. "इडाया वा" (8.3.54.)

इडा शब्द के षष्ठी विभक्ति के विसर्जनीय को विकल्प से सकार आदेश होता है पति, पुत्र, पृष्ठ, पार, पद, पयस्, पोष शब्दों के परे रहते वेद के विषय में।

उदाहरण - इडायास्पतिः, इडायाः पतिः। इडायाः पुत्रः, इडायास्पुत्रः, इडायास्पृष्ठम् इडायाः पृष्ठम्। इडायास्पारम्, इडायाः वारम्। इडायास्पदम्, इडायाः पदम्। इडायास्पयः, इडायाः पयः। इडायास्पोषम्, इडायाः पोषम् इडायास्पतिः - इडायाः पति - 'इडायाः' इस षष्ठ्यन्त पद के विसर्जनीय को प्रकृत सूत्र से सकारादेश प्राप्त हुआ। आदेश होकर इडाया स् पतिः = इडायास्पतिः।

''षत्व एवं मूर्धन्यादेश प्रकरण''

1. ''व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयराजभ्राजच्छशां षः'' (8.2.36.)

ओव्रश्चू, भ्रस्ज, सृजू, मृजूषू, यज, राजृ, टुभ्राजृ - इन धातुओं को तथा छकारान्त एवं शकारान्त धातुओं को भी झलू परे रहते एवं पदान्त में षकारादेश होता है।

उदाहरण - व्रश्च - व्रष्टा, व्रष्टुमू, व्रष्टव्यमू।

भ्रस्ज - भ्रष्टा, भ्रस्टुमू, भ्रष्टव्यमू।

सृजू - सृष्टा, स्रष्टुमू, स्रष्टव्यमू।

मृजू - मार्ष्टा, मार्ष्टुमू, मार्ष्टव्यमू।

यजू - यष्टा, यष्टुमू, यष्टव्यमू।

राजू - सम्राट, स्वराट्, विराट्।

व्रष्टा - व्रश्चू तृचू > व्रस्चू तृ > व्रचू तृ। चू को षकार आदेश हो व्रषू तृ। प्रथमा एकवचन में वृष्टा शब्द बना। अथवाः - व्रश्च लुट् > व्रश्चू तिपू > व्रश्चू डा > व्रश्चू तासू डा > व्रश्नू ता > प्रच ता > चकार को उपर्युक्त सू0 से षकार हो - वृषू ता = व्रष्टा।

भ्रष्टा - भ्रस्जू तासू डा > भ्रज ता > धातु को षकार अन्तादेश हो भ्रषूता = भ्रष्टा।

यष्टुमू - यजू तुमुन - यजू तुमू > धातु को आलोच्य सूत्र षकार अन्तादेश होकर - यषू तुमू > यष्टुमू।

2. ''इणः षः'' (8.3.39.)

इणू से उत्तर विसर्जनीय को षकारादेश होता है, अपदादि कवर्ग, पवर्ग के परे रहते।

उदाहरण - सविष्पाशमू, यजुष्पाशमू, यजुष्कमू, सपिष्काम्यति, यजुष्काम्यति।

सपिष्पाशमू - सपिः पाश सु। इस उदाहरण में इण इकार से परे विसर्ग है और उससे परे पवर्ग का पकार है अतः उपर्युक्त सूत्र द्वारा विसर्ग को षत्व हो सर्पि षू पाशमू = सर्पिष्पाशमू।

सर्पिष्कमू - सर्पिः क सु। विसर्ग को षत्व हो - सर्पि षू क अमू = सर्पिष्कमू।

3. ''इदुदपधस्य चाप्रत्ययस्य'' (8.3.41.)

इकार और उकार उपधा में है जिसके ऐसे प्रत्यय भिन्न विसर्जनीय को भी षकार आदेश होता है कवर्ग, पवर्ग परे रहते।

उदाहरण - निष्कृतम्, निष्पीतम्, दुष्कृतम्, दुष्पीतम्, चतुष्कपालम्।

निष्कृतम् - निस् कृतम्। सकार को रुत्व - विसर्ग हो - निः कृतम्। निः का विसर्ग प्रत्यय सम्बन्धी विसर्ग नहीं है तथा विसर्ग से परे कवर्गादि कृतम् शब्द है अतः सूत्र द्वारा विसर्ग को षकारादेश हो - निष् कृतम् = निष्कृतम्।

दुष्पीतम् - दुः पीतम्। पवर्ग परे रहते दुः विसर्ग को षकार हो - दुष् पीतम्।

चतुष्कपालम् - चतुः कपालम्। सूत्रविहित षकारादेश होकर - चतुष् कपालम् = चतुष्कपालम्।

4. "द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोऽर्थे" (8.3.43.)

कृत्व सुच् के अर्थ में वर्तमान द्विस, त्रिस् तथा चतुर् इनके विसर्जनीय को षकारादेश विकल्प करके होता है, कवर्ग, पवर्ग परे रहते।

उदाहरण - द्विष्करोति, द्विः करोति। त्रिष्करोति, त्रिः करोति। चतुष्करोति, चतुः करोति। द्विष्पचति, द्विः पचति। त्रिष्पचति, त्रिः पचति। चतुष्पचति। चतुः पचति।

द्विष्करोति, द्विः करोति - द्विस् करोति > दिः करोति। विसर्ग को वैकल्पिक षत्व प्राप्त होने पर षत्वादेश पक्ष में - द्विष् करोति तथा षत्वाभाव पक्ष में द्विः करोति।

चतुष्पचति, चतुः पचति - चतुर् पचति > चतुः पचति। वैकल्पिक षत्व प्राप्त होने पर षत्व पक्ष में चतुष् पचति तथा षत्वाभावपक्ष में चतुः पचति।

5. "इसुसोः सामर्थ्ये" (8.3.44.)

इस् तथा उस् के विसर्जनीय को विकल्प से षकारादेश होता है सामर्थ्य होने पर - कवर्ग, पवर्ग परे रहते।

उदाहरण - सर्पिः करोति, सर्पिषकरोति, युजुः - करोति, यजुष्करोति।

सर्पिष्करोति - सर्पिः करोति - सर्पिः (सृप् इस्) करोति। सूत्र द्वारा विसर्ग को वैकल्पिक षत्व हो - सर्पिष् = सर्पिषकरोति षत्वाभाव पक्ष में सर्पिः करोति।

यजुष्ककरोति - यजुः करोति - यजुस् (यज् उस्) करोति > यजुः करोति। वैकल्पिक षत्व प्राप्त होने पर षत्व पक्ष में। यजुष्करोति तथा षत्वाभाव पक्ष में यजुः करोति शब्द बने।

6. "नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य" (8.3.45.)

अनुत्तर पदस्थ इस् उस् के विसर्जनीय को समास विषय में नित्य ही षत्व होता है, कवर्ग,

पवर्ग परे रहते।

उदाहरण - सर्पिष्कुण्डिका, धनुष्कपालम्, सर्पिष्पानम्, धनुष्फलम्।

सर्पिष्कुण्डिका - सर्पिः कुण्डिका। सर्पिः (सर्पिस् - सृप् इस्) शब्द इस् प्रत्ययान्त है तथा सर्पिः के परे ककारादि कुण्डिका शब्द है अतः विसर्ग को नित्य षत्व हो - 'सर्पिष्कुण्डिका' शब्द बनेगा सर्पिष्पानम् - सपिः पानम्। विसर्ग को सूत्रविहित षत्वादेश होकर सर्पिष्पानम्।

धनुष्फलम् - धनुः फलम्। धनुः शब्द उस् प्रत्ययान्त है इनसे परे पवर्ग का फकार है अतः आलोच्य सूत्र द्वारा विसर्ग को षत्व होगा - धनुष् फलम् = धनुष्फलम्।

7. "कस्कादिषु च" (8.3.48.)

कस्कादिगण पठित शब्दों के विसर्जनीय को भी सकार अथवा षकार आदेश यथायोग से होता है। कवर्ग, पवर्ग परे रहते।

उदाहरण - कस्कः, कौतस्कुतः, भ्रातुष्पुत्रः, शुनस्कर्ण, सद्यस्कालः, सधस्कीः, साद्यस्कः, कांस्कान् सर्पिष्कुण्डिका, धनुष्कपालम्, बहिष्पालम्, यजुष्पात्रम्, अयस्कान्तः, तमस्काण्डः, अयस्कांडः, गेदस्पिण्डः, भास्करः अहस्करः आदि।

कस्कः - कः कः। विसग्र को सकार हो कस् कः = कस्कः।

कौतस्कुत - किम् तसिल् > कु तस् > कुतः कुतः अण् > कौतः कुतः अ > कौतः कुत् अ = कौतः कुत। विसर्ग को सकार हो कौतस्कुतः। स्वादिकार्य हों कौतस्कुतः।

भ्रातुष्पुत्रः - भ्रातुः पुत्रः। विसर्ग को षकार आदेश होने पर - भ्रातुष् पुत्रः - भ्रातुष्पुत्रः। भास्करः - भाः करः। विसर्ग को सत्व हो = भास्करः।

8. "सहेः साडः सः" (8.3.56.)

सह् धातु का बना हुआ जो साङ् रूप उसके सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

उदाहरण - जलाषाट्, तुराषाट्, पृतनाषाट् आदि।

जलाषाट् - जल सह् ण्वि > जल सह > जल साह् > जल सढ् > जल साङ् । सह् धातु से बने हुए साड् रूप (उपधा दीर्घ एवं हकार को ढत्व उसे जश् डकार हो गया है) के सकार को मूर्धन्य आदेश हो - जल षाङ्। दीर्घ एवं डकार को ष्टुत्व - डकार हो 'जलाषाट्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

9. ''नुम्बिसर्जनीयशर्व्यपाये ऽपि'' (8.3.58)

नुम् विसर्जनीय तथा शर् का व्यवधान होने पर भी इण् तथा कवर्ग से उत्तर सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। नुम्बत्यवाथ में - सर्पींषि, यजूषि, हवींषि।

विसर्जनीय व्यवधान में - सर्पिः षु, यजुः षु, हविः षुः। शर व्यवाय में - सर्पिष्षु, यजुष्षु, हविष्षु।

यजूंसि - यजुस् जस् > यजुस् शि > यजु नुम् स् शि > यजून सि > यजूंसि। इण् उकार से परे नुम् से व्यवहित सकार को प्रकृत सूत्र से मूर्धन्यादेश हो - यजूंषि = यजूंषि।

सर्पीषि - सर्पिस् जस् > सर्पि न् स् शि > सर्पीन सि > सर्पी सि। षत्व हो - सर्पी षि = सर्पीषि।

हविः षु - हविस् सुप् > हविस् सु ''वा शरि'' से वैकल्पिक विसर्जनीय पक्ष में हविः सु। विसर्जनीय का व्यवाय होने से प्रकृत सूत्र द्वारा मूर्धन्यादेश होकर - हविः षु = हविःषु।

हविष्षु - हविस् सुप् > हविस् सु। हविस् का सकार शर् प्रत्याहार में आता है। अतः शर् का व्यवधान होने से यहाँ मूर्धन्यादेश होगा हविस् षु प्रातिपादिक के सकार को ष्टुत्व षकार हो 'हविष्षु' शब्द सिद्ध हुआ।

10. 'आदेश प्रत्यययोः' (8.3.59)

इण् तथा कवर्ग से उत्तर आदेश रूप जो सकार तथा प्रत्यय का जो सकार उसे मूर्धन्यादेश होता है।

उदाहरण - रामेषु, हरिषु, सिषेव, सुष्वाप।

रामेषु - रामे सु। यहां इण् एकार से परे प्रत्यय का अवयव सकार है आलोच्य सूत्र द्वारा इसे मूर्धन्यादेश होकर - रामेषु = रामेषु।

हरिषु - हरि सु। इण् इकार से परे प्रत्यय के अवयव सकार को मूर्धन्यादेश है हरिषु।

सिषेव, सुष्वाप - सेवृ एवं स्वप् - ये धातुऐं षोपदेश है और ''धत्वादेः षः सः'' सूत्र द्वारा इन्हे षत्वादेश उपदेशो वस्था में ही हुआ है। अतः सेव णल्, स्वप् णल् > सि सेवृ, सु स्वाप् - इस दशा में आदेश रूप सकार को मूर्धन्यादेश प्राप्त हुआ। तव धातु के आदेश रूप सकार को मूर्धन्यादेश होकर सिषेव, सुष्वाप इत्यादि प्रयोग निष्पन्न हुए।

11. 'शासिवसिघसीनां च' (8.3.60)

इण् तथा कवर्ग से उत्तर शासु, वस् तथा घस् के सकार को भी मूर्धन्यादेश होता है।

उदाहरण - अन्वशिषत्,. शिष्टः - शास्।

उषितः, उषित्वा उषितवान् - वस्।

जक्षतु, जक्षु - घस्।

अन्वशिगत् - अनु शास् लुङ् > अनु अट् शिस् अङ् त् > अन्वशिस् अत्। सकार से पूर्व इण् इकार है अतः सकार को मूर्धन्यादेश हो - अन्वशिष् अत् - अन्वशिषत्।

शिष्टः - शास् क्त > शिस् त। सकार को मूर्धन्यादेश षकार हो शिष् त। ष्टुत्व हो प्रथमा एकवचन में शिष्टः रूप सिद्ध हुआ।

उषित्वा - वस् क्त्वा > उस् इट् त्वा > उसित्वा। वस् के सकार को इण् परक होने से मूर्धन्य आदेश होकर - उषित्वा।

जक्षतुः - धस् अतुस् > ज क् स् अ तुस् ककार से उत्तर सकार को मूर्धन्य हो - ज क् ष् अतुस् = जक्षतुः।

12. ''स्तौतिण्योरेवषण्यभ्यासात्'' (8.3.61)

अभ्यास के इण् के उत्तर स्तु तथा ण्यन्त धातुओं के आदेश सकार को ही षत्व-भूत सन् परे रहते मूर्धन्य आदेश होता है।

उदाहरण - तुष्टूषति, सिषेचयिषति आदि।

तुष्टूषति - स्तु सन् तिप् > तु स्तू स ति > तु स्टू ष ति। स्तु का सकार अभ्यास के इण् - उकार से परे है अतः उसे मूर्धन्यादेश होकर - तु ष्टू ष ति = तुष्टूषति।

सिषेचयिषति - सि सेच् णिच् इट् सन् तिप् > सि सेच् ए इ स ति > सि सेच् अय् इ ष ति > सि सेच् अयिषति। सेच् धातु का सकार आदेशरूप है। क्योकि उपदेशावस्था में यह षकारादि थी और षकार को 'आदेश प्रत्यययोः' सू0 से सत्वादेश हो - सेच् ऐसा रूप बना है। इस अवस्था में षत्वभूत सन् परे रहते अभ्यास के इण् से अत्तरवर्ती सकार को षत्व होकर - सिषेचयिषति शब्द सिद्ध हुआ।

13. ''सःस्विदिस्वदिसहीनां च'' (8.3.62)

अभ्यास् के इण् से उत्तर त्रिष्विदा, ष्वद तथा षह - इन ण्यन्त धातुओं के सकार को

सकारादेश आदेश होता है षत्वभूत सन् के परे रहते भी।

उदाहरण - सिस्वेदयिषति, सिस्वादयिषति, सिसाहयिषति।

सिस्वेदयिषति - स्विादि णिच् इट् सन् तिप् > सि स्वेदे इ स ति > सि स्वेद य् इ स ति > सि स्वेद यि ष ति। यहाँ स्विदि धातु षोपदेश है और इसका सकार आदेश रूप है। धातु के सकार के पूर्व अभ्यास का इण् इकार है। धातु से परे षत्वभूत सन् है तथा धातु ण्यन्त है अतः पूर्ववर्ती सूत्र "स्तौतिण्योरेवषण्यभ्यासात्" से धातु के सकार को षत्व प्राप्त था जिसका आलोच्य सूत्र द्वारा बाध हो गया एवं सकार को सकारादेश विहित हो सिस्वेदयिषति शब्द सिद्ध हुआ। इसी प्रकार सिस्वादयिषति एवं सि साह यिषति मे भी षोपदेश, षकारभूत सन् परे रहते, ण्यन्त, अभ्यास के इण् से उत्तर स्वदि एवं सहि धातुओं के सकार को प्राप्त षत्व का बाच होकर सकारादेश हो 'सिस्वादयिषति' एवं 'सिसाहयिषति' इत्यादि रूप सिद्ध हुए।

14. "प्राक्सितादड्व्यवायेऽपि" (8.3.63)

सित शब्द से पहले अट् का व्यवधान होने पर तथा न होने पर भी सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

उदाहरण - न्यषेधत्, निषुणोति।

न्यषेधत् - नि सिध् लङ् > नि अट् सेध् अ त् > न्यसेधत्। यहाँ इण् उपसर्ग से परे सिध् धातु का सकार है जो अट् आगम् द्वारा व्यवहित है अतः प्रकृत सूत्र द्वारा अट् से व्यवहित होने पर भी मूर्धन्यादेश होगा - न्य षे धत्।

निषुणोति - नि सु श्नु तिप् > नि सु नो ति > नि सुनोति। उपसर्ग के इण् से परे धातु के सकार को अट् का व्यवधान न होने पर भी उपर्युक्त सूत्र द्वारा मूर्धन्यादेश होकर - नि षु नो ति = निषुणोति।

सूत्रस्थ 'प्राक्सितात्' से तात्पर्य है इस सूत्र से लेकर "परिनिविभ्यः सेवसितसयसिबुसहसुट्स्तुस्वञ्जाम्" (8.3.30) सूत्र के सेव शब्द तक के जो विभिन्न सूत्रों में उपदिष्ट शब्द उनके सकार को अट् आगम से व्यवहित होने पर तथा न होने पर भी मूर्धन्यादेश होगा।

15. "स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य" (8.3.64)

सित् से पहले जो स्था इत्यादि धातुएँ उनमें अभ्यास का व्यवधान होने पर भी उनको

मूर्धन्यादेश होता है तथा अभ्यास को भी मूर्धन्य होता है अर्थात् ''उपसर्गात् सुनोतिसुवति स्यतिस्तौतिस्तोभतिस्थासेनय सेध सिचसञ्जस्वञ्जाम् (8.3.65) सू. के स्था से लेकर ''परिनिविभ्यः सेवसितसयसिवुसहसुट्स्तु स्वञ्जाम् (8.3.70) सूत्र के सित पर्यन्त जो धातुएँ है उनको अभ्यास का व्यवधान होते हुए भी मूर्धन्यादेश होता है तथा अभ्यास के सकार को भी मूर्धन्य होता है।

उदाहरण - परितष्ठौ अभितष्ठौ, अभिषिषिक्षति।

परितष्ठौ - परि स्था णल् > परि स्था औ > परि तृ स्थौ > परि तष्थौ सूत्र के द्वारा धातु के सकार को अभ्यास त के द्वारा व्यवहित होते हुए भी मूर्धन्य होकर - परि तस्यौ। ष्टुत्व हो 'परितष्ठौ' प्रयोग सिद्ध हुआ।

अभितष्ठौ - अभि स्था णल् > अभि स्था औ > अभि तस्थौ। धातु के सकार को मूर्धन्य हो - अभि तष्थौ > अभितष्ठौ।

अभिषिषिक्षति - अभि सिच् सन् तिप् > अभि सि सिच् स ति > अभि सि सिक् ष ति > अभि सि सिक्षति। आलोच्य सूत्र द्वारा अभ्यास एवं धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश हो - अभि षि षिक्षति अभिषिषिक्षति।

16. ''उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्थासेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जाम् (8.3.65)

उपसर्गस्थ निमित्व से उत्तर सुनोति, सुवति, स्यति, स्तौति, स्तोभति, स्था, सेनय, सेध, सिच्सञ्ज, स्वञ्ज इनके सकार को मूर्धन्यादेश होता है।

उदाहरण - परिषुणोति, परिषुवति, परिष्यति, परिष्टौति, परिष्टोभति, परिष्ठास्यति।

परिषेणयति, परिषेधति, परिषिञ्चति, परिषजति, पिरष्वजते इत्यादि।

परिषुणोति - परि सु श्नु तिप् > परि सु नो ति। उपसर्ग के इण् इकार से परे षोपदेश सु को आलोच्य सूत्र द्वारा मूर्धन्य हो - परि सुनोति। णत्व हो परिषुणोति शब्द सिद्ध हुआ। परिष्ठास्यति - परि स्था स्य तिप्। इण् से परे स्था के सकार को मूर्धन्य हो - परि ष्था स्य ति। ष्टुत्व हो अभीष्ट शब्द सिद्ध होगा।

परिषिन्चति - परि सि नुम् च् अ तिप् > परि सिन्च् अ ति। मूर्धन्यादेश होकर परि षिन्चति = परिषिन्चति।

परिषेणयति - परि सेनय ति। मूर्धन्यादेश हो परि षेनय ति > परिषेणयति।

परिषजति - परि सञ्ज् शप् तिप् > परि सज ति। मूर्धन्यादेश होकर परि षज ति=परिषजति।

17. "सदिरप्रते" (8.3.66.)

प्रतिभिन्न उपसर्गस्थ निमित्त से उत्तर षद्लृ धातु के सकार को मूर्धन्यादेश होता है।

उदाहरण - निषीदति, विषीदति इत्यादि।

निषीदति - नि सद् तिप् > नि सीद ति नि उपसर्ग इकारान्त है अतः धातु के सकार को मूर्धन्यादेश हो - नि षीद ति = निषीदति

विषीदति - वि सीद ति। धातु के सकार को मूर्धन्यादेश होकर विषीदति।

18. "स्तम्भेः" (8.3.67.)

उपसर्गस्थ निमित्त से उत्तर स्तम्भु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। अट् के व्यवाय एवं अभ्या व्यवाय में भी।

उदाहरण - अभिष्टम्नाति, अभ्यष्टम्नात्, अभितष्टम्भ्।

अभिष्टम्नाति - अभि स्तम्भ् श्ना तिप् > अभि स्तभ ना ति। स्तम्भ को सूत्र विहित मूर्धन्यादेश हो - अभि ष्टम् ना ति = अभिष्टम्नाति।

अभ्यष्टम्नात् - अभि अट् स्तम्भ् श्ना त् > अभि अ स्तम् नात्। उपसर्ग के इण् से परे स्तम्भ् सकार को अट् का व्यवधान होते हुये भी मूर्धन्यादेश हो - अभि अ ष्तभ् ना त् = अभ्यष्टम्नात्।

अभितष्टम्भ् - अभि स्तम्भ् णल् > अभि त स्तम्भ् अ > अभितस्तम्भ। अभ्यास व्यवाय होते हुये भी सकार को मूर्धन्यादेश होकर अभितष्तम्भ् > अभितष्टम्भ।

19. "अवाश्चालम्बनाविदूर्ययोः" (8.3.68.)

अव उपसर्ग से उत्तर भी स्तम्भु के सकार को आलम्वन तथा आविदूर्य अर्थ में मूर्धन्यादेश होता है।

उदाहरण - आलम्बन अर्थ में - अवष्टभ्य आस्ते। अवष्टभ्य तिष्ठति। आविदूर्य अर्थ में - अवष्टब्धा सेना। अवष्टब्धा शरत् आदि।

अवष्टभ्य - अव स्तम्भ् ल्यप् > अव स्तभ् य। धातु के सकार को मूर्धन्य हो अव ष्तभ् य = अवष्टभ्य।

अवष्टब्धा - अब स्तम्भ् क्त टाप् > अब स्तब्धा। सकार को मूर्धन्य हो अवष्टब्धा। ष्टुत्व हो अवष्टब्धा शब्द सिद्ध हुआ। आलम्बन अर्थात् 'अवलम्ब' या 'सहारा लेना तथा आविदूर्य अर्थात् 'सन्निकट होना' इन्ही अर्थों में मूर्धन्यादेश होगा अन्यत्र नहीं।

20. "वेश्च स्वनो भोजने" (6.3.69.)

वि उपसर्ग से उत्तर तथा चकार से अव उपसर्ग से उत्तर भोजन अर्थ में स्वन धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

उदाहरण - विष्वणति, व्यष्वणत्, विषष्वाण, अवष्वणति, अवाश्वणत्, अवषष्वाण आदि।

विष्वणति - वि स्वन् शप् तिप् > वि स्वन ति। सकार को प्रकृत सूत्र द्वारा मूर्धन्य आदेश होकर - वि ष्वन ति > विष्वणति।

अवष्वणति - अब स्वनति। धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश हो - अवष्वनति। णत्वादेश होकर अवष्वणति प्रयोग सिद्ध हुआ।

21. "परिनिविभ्यः सेवसितसयसिवुसहसुट्स्तुस्वञ्जाम्" (8.3.70.)

परि, नि तथा वि - इन उपसर्गों से परे सेव् सित्, सय्, सिवु, सह्, सुट्, स्तु तथा स्वञ्ज् के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है (सित शब्द से पहले अट का व्यवधान हो अथवा अभ्यास का व्यवधान होते हुये भी मूर्धन्यादेश होता है।)

उदाहरण - सित - परिषितः विषितः, निषितः।

सय - परिषयः, विषयः, निषयः।

सिव् - परिषीव्यति, विषीव्यति, निषीव्यति।

सह - परिसहते, निषहते, विषहते।

सुट - परिष्करोति, पर्यष्करोत्।

स्तु - परिष्टौति, निष्टौति, विष्टौति।

ष्कञ्ज् - परिष्वजते, निष्वजते, विष्वजते।

परिषितः - परि षिञ् क्त > परि सि त। सि के सकार को सूत्रविहित मूर्धन्यादेश होकर - परिषित। स्वादिकार्य हो परिषितः।

विषयः - वि षिञ् अच् > वि से अ > वि सय्। सय के सकार को मूर्धन्यादेश हो - विषय।

स्वादिकार्य होकर विषयः।

निषीव्यति - नि सिव् श्यन् तिप् > नि सिव् य ति > नि सीव् यति। मूर्धन्य आदेश होकर - नि षीव् य ति = निषीव्यति।

परिष्करोति - परि सुट् कृ उ तिप् > परि स् करोति। सुट् के सकार को मूर्धन्य होकर परिष्करोति।

22. "सिवादीनां वाऽड्व्यवायेऽपि" (8.3.71.)

परि, नि, वि - इन उपसर्गों से उत्तर सिवादिकों के सकार को अट् के व्यवधान होने पर भी विकल्प से मूर्धन्य आदेश होता है।

उदाहरण - पर्यषीव्यत्, पर्यसीव्यत्।

न्यषीत्यत्, न्यसीव्यत्। व्यषीव्यत् व्यसीव्यत्। सह-पर्यषहत पर्यसहत न्यषहत। न्यसहत्। व्यशहत, व्यसहत।

सुट - पर्यष्करोत्, पर्यस्करोत्।

स्तु - पर्यष्तौत्, पर्यस्तौत्। न्यष्टौत्, न्यस्टौत। व्यष्टौत, व्यवस्तौत

ष्वञ्ज - पर्यष्वजत, पर्यस्वजत।

पर्यषीत्यत् - आदेश विधान वैकल्पिक है अतएव आदेश के अभाव पक्ष में पर्यसीव्यत् शब्द सिद्ध हुआ।

न्यषहत्, न्यसहत - नि अट् सह त। नि असहत। सह को मूर्धन्यादेश पक्ष में नि अषहत = न्यषहत् एवं अभाव पक्ष में न्यसहत में दो रूप बने।

पर्यष्करोत् - परि अट् सुट् कृ उ तिप > परि अ स् करोत् > पर्यस्करोत्। मूर्धन्यादेश हो - पर्यष्करोत्। मूर्धन्यादेश के अभाव पक्ष में 'पर्यस्करोत्' - ये दो शब्द सिद्ध हुये।

व्यष्टौत्, व्यस्तौत् - वि अट् स्तु तिप् > वि अ स्तौ त > व्यस्टौत् मूर्धन्य हो - व्यष्तौत = व्यष्टौत। आदेश के अभाव में व्यस्तौत ही रह गया।

पर्यव्वजत, पर्यस्वजत - परि अट् स्वञ्ज् शप् त > परि अ स्वजत > मूर्धन्यादेश हो परि अ ष्वजत > पर्यष्वजत तथा आदेश के अभाव में पर्यस्वजत् में दो रूप बने।

23. ''अनुविपर्यभिनिभ्यः स्यन्दतेरप्राणिषु'' (8.3.72.)

अनु, वि, परि, अभि नि-इन उपसर्गों से उत्तर स्यन्द् धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश विकल्प से होता है यदि प्राणी का कथन न हो रहा हो तो।

उदाहरण - अनुष्यन्दते, विष्यन्दते, पिरष्यन्दते, अभिष्यन्दते, निष्यन्दतें आदेश पक्ष में। अनुस्यन्दते, विस्पन्दते, परिस्यन्दते, अभिस्यन्दते, निस्यन्दते। आदेशाभाव पक्ष में।

अनुष्यन्दते - अनु स्यन्द् शप् त > अनु स्यन्दते। मूर्धन्यादेश पक्ष में - अनुष्यन्दते और आदेशाभाव पक्ष में अनुस्यन्दते ये दो रूप बनते है। इसी प्रकार अभि, नि, वि, परि, इन उपसर्गों के योग में आदेश होने पर षकार युक्त एवं आदेश के अभाव में सकार युक्त दो-दो रूप बनें।

'अप्राणिषु' इस प्रतिषेध कथन के कारण 'अनुष्यन्दते मत्स्य उदके' यहाँ षत्वादेश युक्त शब्द का प्रयोग नहीं हुआ।

24. ''वेः स्कन्देरनिष्ठायाम्'' (8.3.73.)

वि उपसर्ग से उत्तर स्कन्दिर धातु के सकार को विकल्प से मूर्धन्य आदेश होता है यदि निष्ठा परे न हो तो।

उदाहरण - विष्कन्ता विस्कन्ता। विष्कन्तुम् विस्कन्तुम्। विष्कन्तव्यम् विस्कन्तव्यम्।

विष्कन्ता - विस्कन्ता = वि स्कन्दिर तृच् > वि स्कन्द तृ > वि स्कन्द तृ > विस्कन्तृ। वि उपसर्ग पूर्वक सकन्द् के सकार को मूर्धन्य हो विष्कन्तु। प्रथमा एकवचन में विष्कन्ता। आदेशाभाव में विसकन्तु ही रहेगा। तथा प्रथमा एकवचन में विस्कन्ता रूप सिद्ध होगा।

तुमुन्, तव्यत् आदि प्रत्यय के योग में वैकल्पिक षत्व होकर क्रमशः विष्कन्तुम्, विस्कन्तुम्, विष्कन्तव्यम्, विस्कन्तव्यम् आदि शब्द सिद्ध होंगे। निष्ठा के योग में षत्वादेश प्रतिषिद्धि होने से विस्कन्नः रूप ही बनता है।

25. ''परेश्च'' (8.3.74.)

परि उपसर्ग से उत्तर भी स्कन्द के सकार को विकल्प से मूर्धन्यादेश होता है।

उदाहरण - परिष्कन्दति, परिस्कन्दति। परिष्कन्नः, परिस्कन्नः।

परिष्कन्दति - परिस्कन्दति - परि सकन्द् शप् तिप > परिस्कन्दति। सूत्रविहित मूर्धन्यादेश के भावपक्ष में - परिष्कन्दति तथा अभाव में पस्किन्दति - ये दो रूप सिद्ध हुये। परिस्कन्नः, परिष्कन्नः -

परि स्कन्द् क्त। वैकल्पिक षत्व हो, आदेश पक्ष में - परिष्कन्न तथा आदेश अभाव पक्ष में परिस्कन्न शब्द बने। स्वादिकार्य होकर परिष्कन्नः एवं परिस्कन्नः ये दो रूप सिद्ध हुये।

26. "स्फुरतिस्फुलत्योर्निर्निविभ्यः" (8.3.76.)

निस्, नि तथा वि उपसर्ग से उत्तर स्फुरति - स्फुलति के सकार को विकल्प से मूर्धन्य आदेश होता है। - स्फुरति - निष्फुरति, निस्स्फुरति। निष्फुरति, निस्फुरति। विष्फुरति, विस्फुरति। स्फुलति, निष्ष्फुलति, निस्स्फुलति। निष्फुलति, निस्फुलति। विष्फुलति, विस्फुलति।

निष्फुरति, निस्स्फुरति - निस् स्फुर् शप् तिप्। सूत्रविहित वैकल्पिक आदेश के भाव पक्ष में सकार को मूर्धन्य हो - निस् ष्फुर् अति = निष्फुरति तथा अभाव पक्ष में निस्स्फुरति - द्विविध रूप सिद्ध हुये।

निस्फुलति, निष्फुलति - नि स्फुल् शप् तिप्। मूर्धन्यादेश हो - नि ष्फुल ति = निष्फुलति तथा अनादेश पक्ष में नि स्फुल ति = निस्फुलति दो प्रकार के रूप बने।

27. "वेः स्कभ्नातेर्नित्यम्" (8.3.77.)

वि उपसर्ग से उत्तर स्कम्भु के सकार को नित्य ही मूर्धन्य आदेश होता है।

उदाहरण - विष्कभ्नाति। विष्कम्भिता। विष्कम्भितुम्। विष्कम्भितव्यम् आदि।

विष्कभ्नाति - वि स्कम्भ् श्ना तिप् ति स्कभ् ना ति। सूत्र विहित मूर्धन्यादेश होकर - वि ष्कभ् ना ति = विष्कभनाति। विष्कम्भिता - वि स्कम्भ तृच् > वि स्कम्भ् इट् तृच् > वि स्कम्भितृ। मूर्धन्यादेश हो - वि ष्कम्भित्। प्रथमा एकवचन में विष्कम्भिता। इसी भाँति तुमुन् एवं तव्यत् इत्यादि प्रत्यय परे रहते स्कम्भि के सकार को नित्य मूर्धन्य हो विष्कम्भितुम् विष्कम्भितव्यम् आदि रूप सिद्ध होंगे।

28. "इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात्" (8.3.78.)

इणन्त अंग से उत्तर षीध्वम्, लुङ् तथा लिट् का जो धकार उसको मूर्धन्य आदेश होता है।

उदाहरण - च्योषीढ्वम्। प्लोषीढ्वम्। - ध्वम् को मूर्धन्यादेश।

अच्योढ्वम्, अप्लोढ्वम्, लुङ में मूर्धन्य। चकृढ्वे, ववृढ्वे - लिट् में मूर्धन्य। च्योषीढ्वम् - च्युङ् सीयुट् ध्वम् > च् यु सी ध्वम् > च्यो षीध्वम्। षी ध्वम् के धकार को मूर्धन्य हो - च्यो षीढ् वम् = च्योषीढ्वम्।

अच्योढ्वम् - अट् च्युङ् लङ् > अ च्यु ध्वम् > अ च्यो ध्वम्। इणन्त अंग च्यु से परे ध्वम्

के धकार को मूर्धन्य आदेश हो। अच्यो ढ्वम् = अच्योढ्वम्।

चकृढ्वे - कृञ् लिट् > कृ कृ ध्वम् > च कृ ध्वे। इणन्त अंग कृ से उत्तर लिट् सम्बन्धी धकार को मूर्धन्यादेश हो - च कृ ढ्वे = षकृढ्वे शब्द सिद्ध हुआ।

29. ''विभाषेटः'' (8.3.79.)

इण् से उत्तर जो इट् उससे उत्तर जो षीध्वम् लुङ् तथा लिट् धकार उसे विकल्प से मूर्धन्य आदेश होता है।

उदाहरण - लविषीढ्वम्, अलविढ्वम्, लुलुविढ्वे। अभाव पक्ष में - लविषीध्वम्, अलविध्वम्, लुलुविध्वे।

लविषीध्वम् - लविषीढ्वम् - लुञ् लिङ् > लू इट् सीयुट् ध्वम् > लो इ सी ध्वम् > लवि षीध्वम्। इणन्त अंग लू से परे इट् तथा इस इट् से परे षीध्वम् के धकार को सूत्रविहित मूर्धन्यादेश होकर - लविषीढ्वम्। आदेश वैकल्पिक है अतएव अनादेश पक्ष में 'लविषीध्वम्' शब्द बनेगा।

अलविढ्वम्, अलविध्वम् - अट् लुञ् लुङ् > अ लू इट् ध्वम् > अलवि ध्वम्। सूत्रविहित मूर्धन्यादेश हो - अलवि ढ्वम् = अलविढ्वम् शब्द सिद्ध हुआ। तथा आदेश के अभाव में अलीव ध्वम् शब्द सिद्ध हुआ।

लुलुविढ्वे, लुलु विध्वे - लूञ् लिट्। लु लु इट् ध्वम् > लु लु विध्वे। मूर्धन्य हो - लुलुविढ्वे।

30. ''समासेऽङ्गुलेः संगः'' (8.3.80.)

समास में अङ्गुलि शब्द से उत्तर सङ्ग शब्द के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

उदाहरण - अङ्गुलिषङ् गः - 'अङ्गुले सङ्गः' इस अर्थ में अङ्गुलि एवं सङ्ग शब्द का समास होने पर आलोच्य सूत्र द्वारा सङ्ग के सकार को मूर्धन्यादेश होकर अङ्गुलि षङ्ग > अङ्गुलिषङ्ग शब्द सिद्ध हुआ। (स्वादिकार्य होकर - अङ्गुलिषङ्गः शब्द सिद्ध हुआ)।

31. ''भीरोः स्थानम्'' (8.3.81.)

भीरु शब्द से उत्तर स्थान शब्द के सकार को समास में मूर्धन्य आदेश होता है।

उदाहरण - भीरुष्ठानम्।

भीरु एवं स्थानम् का समास होने पर 'भीरुस्थानम्' ऐसा शब्द बना सूत्रविहित मूर्धन्यादेश होकर - भीरुष्थान शब्द सिद्ध होता है। ष्टुत्व स्वादिकार्य हो 'भीरुष्ठानम्' शब्द सिद्ध हुआ।

32. ''अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः'' (8.3.82.)

अग्नि शब्द से उत्तर स्तुत, स्तोम एवं सोम् - इन शब्दों के सकार को मूर्धन्यादेश होता है समास में।

उदाहरण - अग्निष्टुत, अग्निष्टोम, अग्नीषोमः।

अग्निष्टुत - अग्नि स्तुत् इन दोनो शब्दों का समास करने पर सकार को मूर्धन्यादेश होकर - अग्निष्तुत् शब्द बना। ष्टुत्व होकर 'अग्निष्टुत' शब्द बनता है।

अग्निष्टोम - अग्नि एवं स्तोम का समास हो स्तोम् के सकार को प्रकृत सूत्र द्वारा मूर्धन्य आदेश होकर - अग्निष्तोम् शब्द बना। ष्टुत्व हो अभीष्ट रूप सिद्ध होगा।

अग्नीषोमः - अग्नि, सोम इन शब्दों का समास होने पर सोम के सकार को मूर्धन्य आदेश होकर 'अग्नीषोम' शब्द बना स्वादिकार्य होकर 'अग्नीषोमः' बना।

33. ''ज्योतिरायुषः स्तोमः'' (8.3.83.)

ज्योतिस् तथा आयुस् शब्द से उत्तर स्तोम शब्द के सकार को मूर्धन्यादेश (ष्) होता है। समास में।

उदाहरण - ज्योतिष्टोमः, आयुष्टोमः।

ज्योतिष्टोमः - ज्योतिस् एवं स्तोम् शब्दों का समास होने पर उपर्युक्त सूत्र द्वारा स्तोम के सकार को मूर्धन्यादेश होकर ज्योतिष्तोम शब्द बना। ष्टुत्व हो प्रथमा एकवचन में ज्योतिष्टोमः बना।

34. ''मातृपितृभ्यां स्वसा'' (8.3.84.)

मातृ तथा पितृ शब्द से उत्तर स्वसृ शब्द के सकार को समास में मूर्धन्य (ष्) आदेश होता है।

उदाहरण - मातृष्वसा, पितृष्वसा।

मातृष्वसा - मातृ एवं स्वसृ का समास होकर स्वसृ के आध। सकार को मूर्धन्य आदेश हो मातृष्वसृ शब्द बनता है। इससे प्रथमा एकवचन में भातृष्वसा शब्द सिद्ध होता है।

35. ''मातुः पितुर्भ्यामन्यतरस्याम्'' (8.3.85.)

समास में मातुर् तथा पितुर् शब्द से उत्तर स्वसृ शब्द के सकार के स्थान में भी सकारादेश विकल्प से ही होता है।

उदाहरण – मातु ष्वसा, मातुः स्वसा। पितुः ष्वसा, पितुः स्वसा।

मातुः स्वसा, मातुः, ष्वसा – मातुः इस षष्ठ्यन्त पद के साथ स्वसृ का समास हो षष्ठी का अलुक् होने पर मातुः स्वसृ ऐसा शब्द बना। अब मातुः से परे स्वसृ के प्रथम सकार को सूत्रविहित मूर्धन्यादेश होकर – मातृः ष्वसृ शब्द बनता है। इस प्रातिपदिक का प्रथमा एकवचन में 'मातृष्वसा' ऐसा शब्द रूप सिद्ध हुआ। यतः यह आदेश वैकल्पिक है अतएव आदेशाभाव पक्ष में 'मातुः स्वसृ' इस प्रकार के प्रातिपदिक से प्रथमा एकवचन में 'मातुः स्वसा' शब्द बनता है।

36. 'अभिनिसः स्तनः शब्दसंज्ञायाम्' (8.3.86)

अभि तथा निस् से उत्तर स्तन धातु के सकार को शब्द की संज्ञा गम्यमान होती विकल्प से मूर्धन्यादेश होता है।

उदाहरण – अभिनिष्टानों वर्णः अभिनिस्तानो वर्णः। अभिनिष्टानो विसर्जनीयः अथवा अभिनिस्तानो विसर्जनीयाः।

अभिनिष्टानः – अभिनिस्तानः – अभि एवं निस् उपसर्ग पूर्वक स्तन (ष्टन शब्दे) का समास हो अभि एवं निस् से परे स्तन के सकार को वैकल्पिक मूर्धन्य आदेश प्राप्त हुआ। मूर्धन्यआदेश पक्ष में अभिनिष्तन तथा अभाव पक्ष में 'अभिनिस्तन' शब्द बना। घञ् प्रत्यय हो प्रथमा एकवचन में मूर्धन्यादेश पक्ष में अभिनिष्टानः तथा आदेशाभाव पक्ष में अभिनिस्तानः शब्द सिद्ध होते है।

शब्द संज्ञा का अर्थ है शब्द की संज्ञा। 'अभिनिष्टानविसर्जनीय' एक प्रकार का विसर्जनीय है।

37. "उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः" (8.3.87)

उपसर्ग के इण् और प्रादुस् अव्यय से परे अस् धातु के सकार को मूर्धन्य षकार होता है यकार और अच् परे रहते।

उदाहरण – निष्यात्, अभिष्यात्, प्रादुःष्यात्।

निष्यात् – नि स्यात्। यहाँ उपसर्ग नि के इकार से परे अस् धातु है और धातु के सकार से परे यकार है अतः धातु के सकार को षत्व हो – निष्यात् शब्द सिद्ध होता है। 'स्यात्' अस् धातु के विधिलिङ् प्रथम पुरूष एकवचन का रूप है।

प्रादुःष्यात् – प्रादुस् स्यात् > प्रादुः स्यात्। प्रादुस् अव्यय से परे अस् धातु के सकार को मूर्धन्यादेश हो – प्रादुःष्यात् ऐसा रूप बना।

अभिषन्ति - अभि सन्ति। 'सन्ति' शब्द अस् धातु के लट् लकार प्रथम पुरूष एकवचन का रूप है। अस् के सन्ति रूप में सकार से परे अच् है अतः सूत्र द्वारा सकार को मूर्धन्यादेश होगा - अभिषन्ति।

38. "सुविनिदुर्भ्यः सुपिसूतिसमाः" (8.3.88)

सु, वि, निर् तथा दुर् से उत्तर सुपि, सूति तथा सम के सकार को मूर्धन्यादेश होता है।

उदाहरण - सुषुप्तः, निःषुप्तः, दुःषुप्तः। सुषूतिः, विषूतिः। निःषूतिः दुःषूतिः। सुषमम्, विषमम्। निःषमम्, दुःषमम्।

सुषुप्तः - सु स्वप् क्त > सु सुप् त = सु सुप्त। मूर्धन्यादेश होकर सुषुप्त। स्वादिकार्य होकर सुषुप्तः।

विषूतिः - वि सु क्तिन् > वि सू ति। वि उपसर्ग से परे सूति के सकार को मूर्धन्य आदेश होकर - वि षूति। स्वादिकार्य होकर विषूतिः।

निः षमम् - निर् सम। सूत्रविहित मूर्धन्य आदेश हो - निः षम। नपुंसक लिङ्ग प्रथमा एकवचन में "निः षमम्" शब्द सिद्ध हुआ।

39. "निनदीभ्यां स्नातेः कौशले (8.3.89)

नि तथा नदी इनसे उत्तर ष्णा शौचे धातु के सकार को कुशलता गम्यमान हो तो मूर्धन्य आदेश होता है।

उदाहरण - निष्णातः कटकरणे। निष्णातो रज्जुवर्तने। नदीष्णः (नदी स्नाने कुशलः)

निष्णातः - नि स्ना क्त > नि स्ना त। स्ना के सकार को मूर्धन्य हो - नि ष्ना त। नकार को 'रषाभ्यां' सूत्र से णत्व एवं सु विभक्ति हो निष्णातः शब्द बना।

नदीष्णः - नदी स्ना क > नदी स्न। सूत्र विहित मूर्धन्यादेश हो नदीष्न। णत्व एवं सु प्रत्यय हो - नदीष्णः।

40. 'गवियुधिभ्यां स्थिरः' (8.3.95)

'गवि' तथा युधि से उत्तर स्थिर शब्द के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

उदाहरण - गविष्ठिरः, युधिष्ठिरः।

गविष्ठिरः - गवि तथा स्थिर शब्द का समास हो 'गविस्थिर' शब्द बना। गवि से परे स्थिर

के सकार को प्रकृत सूत्र से मूर्धन्य हो 'गविष्ठिर' बना। थकार को ष्टुत्व हो प्रथम पुरूष एकवचन में शब्द रूप सिद्ध हुआ।

युधिष्ठिरः - युधि स्थिर। सूत्र द्वारा प्राप्त मूर्धन्यादेश हो युधिष्ठिर। युधिष्ठिर सु = युधिष्ठिरः।

41. 'विकुशमिपरिभ्यः स्थलम्'' (8.3.96)

वि, कु, शमि, परि इनसे उत्तर स्थल शब्द के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।
उदाहरण - विष्ठलम्, कुष्ठलम्, शमिष्ठलम्, परिष्ठलम्। वि, कु, शमि, परि इनसे उत्तर स्थल शब्द को सूत्रविहित मूर्धन्य आदेश हो - विष्ठलू, कुष्थल, शमिष्थल, परिष्थलुः बनते हैं। थकार को ष्टुत्व ठकार हो नपुसंक लिंग प्रथमा एकवचन में विष्ठलम्, कुष्ठलम्, शमिष्ठलम्, परिष्ठलम् शब्द सिद्ध हुये।

42. ''अम्बाम्बगोभूमिसव्यापद्वित्रि-कुशेकुशङ्कङ्गमञ्जिपुञ्जिपरमेबर्हिर्दिव्यग्निभ्यः स्थः'' (8.3.97.)

अम्ब, आम्ब, गो, भूमि, सव्य, अप्, द्वि, त्रि, कु, शकु, शङ्कु, अङ्गु, मञ्जि, पुञ्जि, परमे, बर्हिस्, दिवि, अग्नि - इन शब्दों से उत्तर स्था शब्द के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।
उदाहरण - अम्बष्ठः, आम्बष्ठः, गोष्ठः, भूमिष्ठः, सत्येष्ठः, अपष्ठः, त्रिष्ठः, कुष्ठः, शकुष्ठः, शङ्कुष्ठः, अङ्गुष्ठः, माञ्जिष्ठः, पुञ्जिष्ठः, परमेष्ठः, बहिंष्ठः, दिविष्ठः, अग्निष्ठः।

अम्बष्ठः - अम्ब स्थ। स्थ के सकार को मूर्धन्य आदेश होकर अम्ब ष्थ। थ को ष्टुत्व ठकार हो प्रथमा एकवचन में अम्बष्ठः शब्द सिद्ध होगा।

बहिष्ठः - बर्हिस् स्थ > बर्हि स्थ। स्थ के सकार को मूर्धन्य हो - बर्हि ष्थ। बर्हि स्थ > बर्हि ष्ठ > बर्हिष्ठ सु = बर्हिष्ठः।

दिविष्ठः - दिवि स्थ > दिवि ष्थ - सूत्र विहित मूर्धन्यादेश होने पर दिविष्थ > दिविष्ठ सु = दिविष्ठः।

अग्निष्ठः - अग्नि स्थ। सकार को मूर्धन्य आदेश होकर अग्नि स्थ। थ को ष्टुत्व ठकार हो प्रथमा एकवचन में अग्निष्ठः शब्द बना।

43. ''सुषामादिषु च'' (8.3.98)

सुषमादि शब्दों के सकार को भी मूर्धन्य आदेश होता है।

उदाहरण - सुषामा, निः षामा, दुः षामा। सुषेधः, निषेधः, दुः षेधः। सुषन्धि, निःषन्धिः, दुः षन्धि। सुष्ठु, दुष्ठु आदि।

सुषामा, निःषामा, दुःषामा - सु, निस्, दुस् इत्यादि उपसर्ग के साथ सामन् शब्द का समास हो सुसामन्, निः सामन्, दुः सामन् आदि शब्द बने। सामन् के सकार को सूत्रविहित मूर्धन्य हो - सुषामन्, निः षामन्, दुःषामन् बने। इनसे सु विभक्ति हो अभीष्ट शब्द रूप सिद्ध हुए। इसी प्रकार सु, निस् या निर्, दुस् से परे सेध एवं सन्धि शब्दो के सकार को मूर्धन्यादेश (ष) आदेश हुआ है।

इस सूत्र पर वार्तिक है - "गौरिषक्थः संज्ञायाम्" अर्थात् गौरिस्क्थ्यादि शब्दों के सकार को संज्ञा विषय में मूर्धन्यादेश होता है। इस गण के शब्द है - गौरिषक्थः, प्रतिष्णिका, जलाषहम् नौषेचनम्, दुंदुभिषेवणम् आदि।

इनमें सकार को मूर्धन्य हुआ है। ये शब्द संज्ञा के रूप में प्रयुक्त हुए है।

43. "एति संज्ञायामगात्" (8.3.99)

गकार भिन्न इण् तथा कवर्ग से उत्तर सकार को एकार परे परे रहते संज्ञा विषय में मूर्धन्य आदेश होता है।

उदाहरण - हरिषेणः, वारिषेणः, जानुषेणी आदि।

हरिषेणः - हरि के इकार से परे सेन के सकार को मूर्धन्यादेश होगा। क्योंकि सकार के परे एकार भी है। मूर्धन्य ही हरि षेन - ऐसा स्वरूप बना। नकार को णत्व हो सु विभक्ति हो हरिषेणः शब्द सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार वारि, जानु के इण् - इकार तथा उकार से परे सेन के एकार परक सकार को मूर्धन्य हो वारिगणः एवं जानुषेणी आदि संज्ञा शब्द बनेंगे।

44. "नक्षत्राद्वा" (8.3.100)

नक्षत्र वाची शब्द जो गकारान्त न हो के इण् से परे जो एकार परक सकार उसे मूर्धन्य आदेश विकल्प से होता है।

उदाहरण - रोहिणीषेणः, भरणीषेणः। पक्ष में रोहिणीसेनः, भरणीसेनः।

रोहिणीषेणः - रोहिणीसेनः - 'रोहिणी सेना अस्य' इस विग्रह में रोहिणी एवं सेना का समास हो रोहिणीसेना > रोहिणीसेन शब्द बना। रोहिणी नक्षत्रवाची शब्द है और सेन शब्द के सकार के पूर्व

इण् इकार तथा परे एकार है अतः इसे सूत्र - विहित मूर्धन्य हो 'रोहिणीषेन' शब्द बना। ष्टुत्वेन णत्व एवं सु विभक्ति हो रोहिणीषेणः शब्द बना। मूर्धन्य आदेश के अभाव में रोहिणीसेनः शब्द सिद्ध होगा।

भरणीषेणः, भरणीसेनः - भरणी (नक्षत्रवाची शब्द) से परे सेन के सकार को वैकल्पिक मूर्धन्यादेश प्राप्त होगा क्योंकि सकार से पूर्व इण् ईकार है तथा परे एकार है।

मूर्धन्य हो - भरणीषेन > भरणीषेणः तथा मूर्धन्याभाव में भरणीसेनः - रूपद्वयसिद्ध हुए।

45. 'ह्रस्वात्तादौ तद्धिते (8.3.101)

ह्रस्व इण् से उत्तर सकार को तकारादि तद्धित परे रहते मूर्धन्य आदेश होता है।
उदाहरण - सर्पिष्टरम्, यजुष्टरम्, सर्पिष्टमम्, यजुष्टमय्, चतुष्टये, सर्पिष्ट्वम्, यजुष्टा, सर्पिष्टः, आविष्ट्यः आदि।

सर्पिष्टरम् - सर्पिस् तरप्। सर्पिस् का सकार ह्रस्व इण् इकार से परे हैं तथा सकार के परे तकारादि तद्धित प्रत्यय है इसलिए सूत्र द्वारा सकार को मूर्धन्यादेश प्राप्त हुआ। मूर्धन्य होकर - सर्पिष् तरप् > सर्पिष्टरम्।

46. ''निसस्त पतावनासेवने'' (8.3.102)

निस् के सकार को तपति परे रहते अनासेवन अर्थ में मूर्धन्य आदेश होता है।
उदाहरण - निष्टपति, निष्टपनं आदि। निष्टपति - निस् तप् शप् तिप् > निस् तपति। तपति परे रहते निस् के सकार को मूर्धन्य हो निष् तपति > निष्टपति।

अनासेवन का अर्थ है - अन आ सेवन अर्थात् पुनः पुनः करना। अनासेवन अर्थात् 'पुनः पुनः न करना' अर्थात् 'एक बार करना' 'बार बार न करना'। निष्टपति का अर्थ है 'एक वार तप्त करना'। 'निष्टपति सुवर्णम्' का अर्थ है - सकृदग्निं स्पर्शयति = एक बार सुवर्ण को तप्त करता है। इस तरह जब सुवर्ण की शुद्धता परखने हेतु उसे एक बार अग्नि में उत्तप्त किया जाय तो 'निष्टपति' शब्द उत्तप्त करता है' के अर्थ में प्रयुक्त होगा। जब आभूषणादि निर्मित करने हेतु बार-बार स्वर्णकार द्वारा स्वर्ण तप्त किया जाएगा। तो बार-बार तप्त करता है 'के अर्थ में 'निस्तपति' शब्द प्रयुक्त होगा। इस प्रकार इस सूत्र द्वारा विहित आदेश युक्त शब्द का अर्थ आदेश रहित शब्द के अर्थ से सर्वथा भिन्न है। आदेश विधि द्वारा अर्थ परिवर्तन दिखाने का यह उत्तम उदाहरण है।

47. ''युष्मत्तत्तत्क्षुष्वन्तःपादम्'' (8.3103)

इण् तथा कवर्ग से उत्तर सकार को तकारादि युष्मद्, तत् तथा ततक्षुस् परे रहते मूर्धन्यादेश होता है यदि वह सकार पाद के मध्य में वर्तमान हो तो।

उदाहरण - अग्निष्टवं नामासीत्। अग्निष्ट्वा वर्धयामसि। अग्निष्टे विश्वमानय। अप्स्वग्ने सधिष्टव। तत् अग्निष्टद् विश्वमापृणाति। द्यावा पृथिवी निष्टतक्षुः।

अग्निष्ट्व - अग्निः त्वं > अग्निस् त्वं। त्वं शब्द युष्मदादेश एवं तकारादि है अतः इसके परे होते सकार को मूर्धन्य होगा - अग्निष् त्वं। ष्टुत्व हो - अग्निष्ट्वं।

अग्निष्ट्वा - अग्निस् त्वा। सकार को आलोच्य सूत्र द्वारा मूर्धन्य देश होगा क्योंकि त्वा तकारादि युष्मदादेश है। अग्निष् त्वा - इस प्रकार का स्वरूप हुआ मूर्धन्यादेश होकर। ष्टुत्व हो - अग्निष्ट्वा।

इसी प्रकार अग्निस् ते अग्निस् तव में सकार को मूर्धन्य हो अग्निष्टे अग्निष्टव् आदि शब्द बने।

अग्निष्टत् - अग्निस् तत्। तत् परे रहते सकार को मूर्धन्य हो अग्निष् तत् > अग्निष्टत्।

निस् टतक्षुः - निस् ततक्षुस्। निस् के सकार को मूर्धन्य हो - निष् ततक्षुस् > निष्टतक्षुः।

48. ''यजुष्येकेषाम्'' (8.3.104)

युजर्वेद में तकारादि युष्मद् तत् तथा ततक्षुस् परे रहते इण् तथा कवर्ग से उत्तर सकार को किन्ही आचार्यों के मत में मूर्धन्य आदेश होता है।

उदाहरण - अर्चिभिष्ट्वम्, अर्चिभिस्त्वम्। अग्निष्टेऽ ग्रम्, अग्निस्तेऽग्रम्। अग्निष्टत्, अग्निस्तत्। अर्चिभिष्टतक्षुः, अर्चिभिस्ततक्षुः। अर्चिभिष्टवम्, अर्चिभिस्त्वम्। सकार को मूर्धन्य हो अर्चिभिष्त्वम् > अर्चिभिष्ष्वम् तथा मूर्धन्य के अभाव में अर्चिभिस्त्वम् शब्द सिद्ध हुआ। इसी प्रकार अग्निष्टेऽग्रम एवं अग्निस्टेऽग्रम् में अग्निस् ते इस अवस्था में सकार को मूर्धन्य हो अग्निष् ते > अग्निष्टे तथा मूर्धन्याभाव में अग्निस्ते शब्द बनें।

सूत्रस्थ 'एकेषाम्' पद से विकल्प फलित होता है। इस पद द्वारा महर्षि पाणिनी ने किन्ही आचार्य के मत को सूत्र द्वारा व्यक्त किया। पाणिनी को मूर्धन्यादेश मान्य है अथवा नहीं इस विषय में यही कहा जा सकता है कि यदि पाणिनी को मूर्धन्यादेश युक्त प्रयोग ही अभीष्ट होता तो 'एकेषाम्' पद की आवश्यकता नहीं थी। दूसरी ओर यदि उन्हें मूर्धन्यादेश युक्त रूप अभीष्ट न होता तो सूत्र ही नहीं

कहा गया होता। अतएव पाणिनी का मूर्धन्यादेश एवं मूर्धन्यादेश रहित दोनो प्रकार के शब्द मान्य हैं ऐसा स्पष्ट होता है।

49. "स्तुतस्तोमयोश्छन्दसि" (8.3.105)

इण् तथा कवर्ग से उत्तर स्तुत तथा स्तोष के सकार को वेद विषय में कुछ आचार्च के मत में मूर्धन्य आदेश होता है। (अर्थात् विकल्प से।)

उदाहरण - त्रिभिष्टुतस्य, त्रिभिस्तुतस्य। गोष्टोमं, गोस्तोमं वा षोडशिनम्।

त्रिभिष्टुतस्य - त्रिभिस्तुतस्य। त्रिभिस्तुत - यहाँ त्रिभिः स्तुतः का समास हो त्रिभिष्टुत शब्द बनता है तब सूत्रविहित मूर्धन्य आदेश हो त्रिभिष्तुत त्रिभिष्टुत तथा मूर्धन्यादेश के अभाव में त्रिभिस्तुत शब्द बनते है। इनसे षष्ठी एकवचन में त्रिभिष्टुतस्य एवं त्रिभिस्तुतस्य शब्द निष्पन्न होते है।

गोष्टोमं, गोस्तोमं - गो एवं स्तोम का समास हो गोस्तोम शब्द बना। स्तोम के सकार को मूर्धन्य हो गो ष्तोम् > गोष्टोम तथा मूर्धन्यादेशाभाव में गोस्तोम शब्द बनते है। इनसे प्रथमा एकवचन में गोस्तोमं एवं गोस्टोमं रूप द्वय सिद्ध होते है।

50. "पूर्वपदात्" (8.3.106)

पूर्वपद में स्थित निमित्त से उत्तर सकार को वेद विषय में कुछ आचार्यों के मत में मूर्धन्य आदेश होता है।

उदाहरण - द्विषन्धिः, द्विसन्धिः। त्रिषन्धिः, त्रिसन्धि। मधुष्ठानम्, मधुस्थानम्। द्विषाहस्रय्, द्वविसाहस्रय्।

द्विसन्धिः, द्विषन्धिः - द्वि सन्धि - इन शब्दों का समास हो सन्धि के सकार को मूर्धन्य षकार हो। प्रथमा एकवचन में द्विषन्धिः तथा आदेशाभाव पक्ष में 'द्विसन्धिः शब्द सिद्ध होते है'।

मधुस्थानम्, मधुस्टानम् = मधु, स्थान इन शब्दों का समास हो मधुस्थान शब्द बना। सकार को मूर्धन्य हो मधुष्थान > मधुष्ठान शब्द बना। तब प्रथमा एक वचन नपुंसकलिंग - में मधुष्ठानम् एवं मूर्धन्यादेशाभाव में मुधस्थानम् दो रूप सिद्ध होते हैं।

51. "सुञः" (8.3.107)

पूर्वपद में स्थित निमित्त से उत्तर सूत्र निपात के सकार को वेद विषय में मूर्धन्यादेश होता है।

उदाहरण - अभीषुणः, सखीनाम्। ऊर्ध्व ऊषुणः।

अभीषुणः - अभि सुञ् अस्मद् आम् > अभी सु नस् आम् > अभी सु नस्। सुञ् निपात इण् से परे है अतः सूत्र द्वारा सुञ् के सकार को मूर्धन्यादेश हो अभीषुनस् शब्द बना। नकार को णकार एवं रूत्व विसर्ग हो अभीषुणः शब्द सिद्ध होता है।

52. ''सनोतेरनः'' (8.3.108)

अनकारानूत सन् धातु के सकार को वेद विषय में मूर्धन्य आदेश होता है।

उदाहरण - गोषाः, नृषा।

गोषाः - गो सन् विट् > गो सा। सूत्र विहित मूर्धन्य आदेश हो गो षा। प्रथमा बहुवचन में - गोषाः।

53. ''सहेः पृतनर्ताभ्यां च'' (8.3.109)

पृतना तथा ऋत शब्द से उत्तर भी सह् धातु के सकार को वेद विषय में मूर्धन्य आदेश होता है।

उदाहरण - पृतनाषाहम्, ऋतीषाहम् आदि।

पृतनाषाहम् - पृतना तथा सह का समास हो पृतनासह शब्द बना। इससे ण्वि प्रत्यय हो, णित्वाद् वृद्धि हो पृतनासाह शब्द बना।

सह के सकार को (पृतना शब्द से परे रहते) आलोच्य सूत्र द्वारा मूर्धन्य हो - पृतना षाह शब्द बना। प्रथमा एकवचन में 'पृतनाषाहम्' शब्द सिद्ध होता है।

ऋती षाहम् - ण्वि प्रत्ययान्त ऋत तथा सह का समास हो बनें ऋतीसाह में सूत्र द्वारा सकार को मूर्धन्य हो - ऋतीषाह शब्द बना। प्रथमा एकवचन नपुंसकलिंग में अभीष्ट प्रयोग बनता है।

सन्दर्भ सूची

1. आसेवनम् - 'पुनः पुनः करणम्। द्र. सूत्र की काशिका भारत्या।

णत्व-प्रकरण

1. "रषाभ्यां नो णः समानपदे" (8.4.1)

रेफ तथा षकार से उत्तर नकार को णकार होता है एक ही पद में।

उदाहरण - आस्तीर्णम्, विस्तीर्णम्, कृष्णाति, पुष्णाति आदि।

आस्तीर्णम् - आङ् स्तृञ्क्त > आ स्तीर् न > आस्तीर्न। यहाँ आङ् उपसर्ग पूर्वक स्तृञ् धातु से निष्ठा क्त प्रत्यय हुआ है। निष्ठा नत्व होकर बने हुए 'आस्तीर्नः पद में रेफ से परे नकार अवस्थित है और ये दोनों एक ही पद में है अतः नकार को णत्वादेश होगा। णत्व होकर आस्तीर्ण शब्द बना।

सूत्रस्थ् 'समानपदे' का अर्थ है - निमित्त एवं निमित्ती दोनो एक ही पद में स्थित हो भिन्न-भिन्न पदो में नहीं। उपर्युक्त उदाहरणों में निमित्त रेफ एवं षकार तथा निमित्ती नकार एक ही पद में अवस्थित है इससे यहाँ णत्व हुआ। 'अग्निर्नयति', 'वायुर्नयति' इन उदाहरणों में निमित्त एवं निमित्ती भिन्न-भिन्न पदों में है एक ही पद में नही अतएव सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होगी।

पुष्णाति - पुष् श्ना तिप् > पुष् ना ति। एक ही पद में होते हुए षकार से पर नकार को सूत्र विहित णत्व हो - पुष् णा ति > पुष्णाति।

2. "अटकुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि" (8.4.2)

रेफ तथा षकार से उत्तर अट् (अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र), क वर्ग - प वर्ग के किसी वर्ण, आङ् तथा नुम् का व्यवधान् होने पर भी नकार को णकार हो जाता है।

उदाहरण -अट्-करणम्, हरिणा, गुरूणा आदि।

कवर्ग - अर्केण, गूखेण, गर्गेण, अर्घेण आदि।

पवर्ग - दर्पेण, रेफेण, गर्भेण, चर्मणा, वर्मणा।

आङ् - पर्याणद्धम्।

नुम् - वृंहणम्।

करणाम् - कृ ल्युट् > कर् अन > करन। रकार एवं न के बीच अट् अकार का व्यवधान है तथा निमित्त एवं निमित्ती एक ही में पद है अतः नकार को णत्व होगा। णत्व हो - करण, शब्द बना। सु, सु के अम् हो करणम् बनेगा। एवमेव हरिणा में निमित्त एवं निमित्ती के मध्य इकार तथा गुरूणा में उकार का व्यवधान है अतः इनमें भी णत्वादेश हुआ है।

अर्केण, मूर्खेण, गर्गेण, अर्घेण - इनमें अट् एकार एवं कवर्ग (क्रमशः) (क, ख, ग, घ) व्यवधान हुआ है। अतएव सूत्रविहित णत्वादेश हुआ है।

पर्याणद्धम् - परि आङ् नद्धम्। अट् इकार एवं आङ् का व्यवधान होने पर सूत्र द्वारा णत्व हो जाता है - पर्याण द्धम्।

बृहणम् - बृह ल्युट्। नुम् आगम हो वृ न् ह अन > वृह अन। यहाँ निमित्त एवं निमित्ती के मध्य नुम् एवं अट् हकार का व्यवधान है अतएव आलोच्य सूत्र द्वारा णत्वादेश हुआ है।

प्रकृत सूत्र भी निमित्त एवं निमित्ती के एकपद में होने पर णत्वादेश विहित करता है। पूर्व सूत्र द्वारा रेफ एवं षकार से अव्यवहित परवर्ती नकार को णकार विहित किया गया था तो इस सूत्र द्वारा अट् क वर्ग, प वर्ग आङ् नुम् में किसी एक अथवा इनमें से कुछ के द्वारा व्यवहित होने पर भी णत्वादेश विहित हुआ।

3. ''पूर्वपदात्संज्ञायामगः'' (8.4.3)

गकार का व्यवधान न हो तो पूर्वपद में स्थित निमित्त से उत्तर नकार को णकार होगा संज्ञा विषय में।

उदाहरण - शर्पूणखा, द्रुणसः, खरणसः आदि।

सूर्पणखा - शूर्पाणीव, नखानि यस्याः - शूर्प नख टाप्। यह शब्द संज्ञा के रूप में प्रयुक्त होता है अतः टाप् एवं प्रकृत सूत्र द्वारा णत्व प्राप्त होता है। णत्व हो 'शूर्पणखा' शब्द बनता है।

द्रुणसः - खरणसः - आदि में भी संज्ञा विषय में क्रमशः (निमित्त एवं निमित्ती के मध्य) उ (अट्) तथा अ (अट्) का व्यवधान होते हुए भी प्रकृत सूत्र से णत्व हुआ। संज्ञा विषय में नहीं विहित होने से 'शूर्पनखी कन्या' इत्यादि प्रयोगों में णत्व नहीं होता। ''शूर्पाकाराणि नखानि यस्याः'' इस अर्थ में शूर्पनख सी ङीष् हुआ है। संज्ञा में प्रयुक्त न होने के कारण णत्व भी नहीं होता अतः 'शूर्पनखी' शब्द ही बनता है। 'शूर्पणखी' रावण की छोटी बहन का नाम है और इस अर्थ में यह शब्द संज्ञा रूप में प्रयुक्त हुआ है। फलतः ''नखमुखात् संज्ञायाम्'' से ङीष् का निषेध है टाप् तथा आलोच्य सूत्र से णत्वादेश प्राप्त होता है और शूर्पणखा शब्द सिद्ध हुआ।

4. ''वनं पुरगामिश्रकासिध्रकासारिकाकोटराग्रेभ्यः'' (8.4.4)

पुरगा, मिश्रका, सिध्रका, शारिका, कोटरा, अग्रे - इनसे उत्तर वन के नकार को णकार देश

संज्ञा विषय में होता है।

उदाहरण - पुरगावणम्, मिश्रृकावणम्, सिध्रकावणम्, शारिकावणम्, कोटरावणम्, अग्रेवणम्।

पुरगावणम् - पुरग एवं वन शब्दों का षष्ठी तत्पुरूष समास तथा पूर्व पद को दीर्घ हो' 'पुरगावन' शब्द बना। पश्चात् प्रकृत सूत्र से नकार को णत्व हो गया पुरगावण सु > पुरगावणम्।

इस उदाहरण में गकार का व्यवधान हो रहा है अतः 'पूर्वपदात् संज्ञा यामगः' से णत्व नहीं हो पाता।

मिश्रृकावणम्, सिध्रकावणम्, शारिकावणम्, कोटरावणम्, अग्रेवणम् इत्यादि शब्दों में 'पूर्वपदात्संज्ञायामगः' सूत्र द्वारा ही णत्वादेश संभव था, इस स्थिति में सूत्रारंभ का कारण यह है कि जब भी कहीं अपितु सूत्रोक्त शब्दों से उत्तरवर्ती वन' पद के वकार को णत्व हो। इससे कुबेरवनम्, शतधारवनम्, असिपत्रवनम इत्यादि में नकार को णत्वाभाव संभव हो जाता है।

5. ''प्रनिरन्तः शरेक्षुप्लक्षाम्रकार्ण्यखदिरपीयूभाभ्योऽसंज्ञायामयि'' (8.4.5)

प्र, निर् अन्तर्, शर्, इक्षु, प्लक्ष, आम्र, कार्ष्य, खदिर, पीयूक्षा - इनसे उत्तर वन शब्द के नकार की असंज्ञा में भी तथा संज्ञा विषय में भी णत्वादेश होगा।

प्र - प्रवणम्

निर् - निर्वणम्

अन्तर - अन्तर्वणम्

शर - शरवणम्

इक्षु - इक्षुवणम्

प्लक्ष - प्लक्षवणम्

आम्र - आम्रवणम्

कार्ष्य - कार्ष्यवणम्

खदिर - खदिरवणम्

पीयूक्षा - पीयूक्षावणम्

प्रगतं वनं, निर्गत वनं, वनस्य मध्य इन अर्थो में क्रमानुसार प्र, निर एवं अन्तर् शब्दों के साथ वन का समास हुआ है संज्ञा विषय में इन शब्दों के नकार को आलोच्य सूत्र द्वारा णत्वादेश प्राप्त हुआ।

शर एवं इक्षु ये दो औषधियां है तथा प्लक्ष, आम्र, कार्ष्य, खदिर, पीयूक्षा ये वनस्पतियाँ है। इन शब्दों से उत्तर वन शब्द से निष्पन्न शब्द का चाहे संज्ञा के रूप में प्रयोग हो अथवा असंज्ञा में आलोच्य सूत्र द्वारा वन के नकार को णत्वादेश होगा।

औषधि तथा वनस्पतिवाची होने से परवर्ती सूत्र द्वारा भी इन्हे णत्व प्राप्त था किन्तु उस सूत्र द्वारा विहित आदेश वैकल्पिक आदेश था। प्रकृत सूत्र से नित्य - आदेश प्राप्त होता है।

6. ''विभाषौषधिनस्पतिभ्यः'' (8.4.6)

औषधि या वनस्पति वाचक शब्दों से परे (यदि णत्व का निमित्त पूर्वपद में विद्यमान हो तो) वन उत्तर पद के नकार को विकल्प से णकार होगा।

उदाहरण - दूर्वावणम् - शिरीषवणम्। आदेश न होने पर - दूर्वावनम, शिरीषवनम्।

दूर्वावर्णम् - दूर्वावनम् - दूर्वा पूर्वपद रहते वन उत्तर पद के नकार को वैकल्पिक णत्व प्राप्त होता है क्योंकि पूर्वपद में णत्व को निमित्त रेफ विद्यमान है। णत्व हो - दूर्वावणम् तथा णत्वाभाव में दूर्वावनम् सिद्ध हुए।

शिरीषवणम् - शिरीषवनम् - इन प्रयोगों में वनस्पतिवाची शिरीष पद जो णत्वनिमित्त से युक्त है, से उत्तर वन के नकार को वैकल्पिक णत्व हुआ है। णत्व होकर पूर्ववर्ती प्रयोग एवं णत्वभाव में उत्तरवर्ती प्रयोग निष्पन्न होगा।

'औषधि' एवं 'वनस्पति' के लिए काशिकाकार ने एक काशिका उद्धृत की है जो निम्नवत् है -

फली वनस्पतिर्ज्ञेयो वृक्षाः पुष्पफलोपगाः दूसरी लाइन औषध्यः फलपकान्ता लता गुल्माश्च वीरूधः।' इस कारिका के अनुसार फल मात्र धारण करने वाली वनस्पति, फल एवं फूल धारण करने वाला वृक्ष तथा फल के पक जाने पर विनष्ट हो जाने वाली औषधि कहलाती है। इस सूत्र में वनस्पति एवं वृक्ष को अभिन्न रूप में गृहण किया गया है ऐसा काशिकाकार का अभिगत है - ''सत्यपि भेदे वृक्षवनस्पत्योरिहाभेदेन ग्रहणं द्रष्टव्यम्।'' काशिकाकार का यह कथन भाष्यकार के इस कथन पर आधारित है लुपियुक्तवद् व्यक्ति वचनें (1.2.51) सूत्र के भाष्य में आचार्य पतञ्जलि कहते है - ''व्यक्तिवचन इति किम् शिरीषाणामदूरभवो ग्रामः शिरीषाः, तस्य वनम् शिरीषवनमित्ति - वनस्पतित्वं नातिदिश्यते। यद्यतिदिश्येत 'विभाषौषधिवनस्पतिभ्यः' इति णत्वं प्रसज्येत।'' इस उद्धरण में ''वनस्पति'' शब्द का प्रयोग काशिकाकार के कथन का आधार

बना। शिरीष पुष्प एवं फल दोनों को धारण करता है अतएव कारिका में उल्लिखित लक्षणों के आधार पर यह वृक्ष है न कि वनस्पति। वृक्ष होने से आलोच्य सूत्र का विषय नहीं अतः वैकल्पिक णत्व की अप्राप्ति होती है पर भाष्यकार द्वारा शिरीष के वनस्पतित्व की चर्चा से स्पष्ट होता है कि आलोच्य सूत्र में वृक्ष एवं वनस्पति को अभिन्न रूप में ग्रहण किया गया है। इस सूत्र पर दो वार्तिक है -

1. 'द्व्यक्षर > यक्षरेभ्य इति वक्तव्यम् - अर्थात् द्वयक्षर और > यक्षर पूर्वपद के प्रसंग में ही यह आदेश प्रवृत्त हो। इससे देवदारूवनम्, भद्रदारूवनम् इत्यादि में णत्व नहीं होता।
2. इरिकादिभ्यः प्रतिषेधो वक्तत्यः - अर्थात् इरिका इत्यादि को प्रतिषेध विहित हो। इससे > यक्षर इरिका मिरिका इत्यादि के पूर्वपद रहते णत्वादेश नही होगा।

7. "अह्नोऽदन्तात्" (8.4.7)

अदन्त (अकारान्त) जो पूर्वपद उसमें स्थित निमित्त से उत्तर अह्न के नकार को णकार होता है।

उदाहरण - पूर्वाह्णः, अपराह्णः।

पूर्वाह्णः - अह्नः पूर्वो भागः इस अर्थ में पूर्व एवं अह्न का समास हो पूर्वाहन शब्द बना। पूर्व अकारान्त शब्द है तथा णत्व के निमित्त से युक्त है इसलिए प्रकृत सूत्र द्वारा अह्न के नकार को णत्व हुआ - पूर्वाह्ण। स्वादिकार्य हो - पूर्वाह्णः।

अपराह्णः - अपरअह्न > अपर अह्न। अपर अकारान्त शब्द है और णत्वनिमित्तक सकार से युक्त है अतः उत्तरपदस्थ अह्न के नकार को णत्व हुआ - अपर अह्ण > अपराह्ण।

8. "वाहनमाहितात्" (8.4.8)

आहित वाची जो पूर्वपद तत्स्थ निमित्त से अत्तर वाहन शब्द के नकार को णकार आदेश होता है।

उदाहरण - इक्षुवाहणम्, शरवाहणम्, दर्भवाहणम्।

इक्षुवाहणम् - 'इक्षुणां वाहनम्' इस अर्थ में इक्षु एवं वाहन का समास हुआ और इक्षुवाहन शब्द बना। इक्षु आहितवाची अतएव वाहन के नकार को णत्व होगा - इक्षुवाहण। स्वादिकार्य हो इक्षुवाहणम् शब्द सिद्ध हुआ।

शरवाहणम्, दर्भवाहणम् - शर, दर्भ आदि आहित वाची शब्द है अतः इनसे उत्तर वाहन के

नकार को णत्व होगा। आहित का अर्थ है आरोपित अर्थात् लादकर ढोई जाने वाली वस्तु।

"वाहने यद आरोपितग्रहयते तदाहितमुच्यते"

"आहित मारोपितमुच्यते"

आहितवाची शब्दों से परे रहते ही वाहन के नकार को णत्व होता है। इससे दाक्षिस्वांमिकं वाहनम् (दाक्षि जिस वाहन के स्वामी हों) दाक्षिवाहनम् यहाँ णत्वादेश नहीं होगा।

9. "पानं देशे" (8.4.9)

पूर्वपद में स्थित निमित्त से उत्तर पान शब्द में नकार को देश का अभिधान हो रहा है तो णकार आदेश होता है।

उदाहरण - भीरपाणाः उशीनराः। सुरापाणाः प्राच्याः। सोवीरपाणां बाहलीकाः। कषायपाणा गन्धाराः।

क्षीणपाणाः - क्षीरं पानं येषां ते। यहाँ 'क्षीर' पूर्वपद से पान शब्द का समास हुआ है। उशीनर् देश विशेष का अभिधान होने से पान के नकार को णत्व होगा - क्षीरपाण जस् > क्षीरपाणाः। इसी प्रकार सुरा, सोवीर और कषाय आदि से उत्तर पान शब्द के नकार को णत्व हुआ है।

क्षीरपाणः, सुरापाणाः इत्यादि शब्दों में क्षीरपान सम्बन्ध मात्र या सुरापान सम्बन्ध मात्र प्रतीयमान नहीं क्योंकि उशीनर और प्राच्य देश से अन्यत्र भी ये सम्बन्ध सम्भव है। क्षीरपाणः उशीनराः, सुरापाणाः प्राच्याः इत्यादि प्रयोगों में क्षीरपान एवं सुरापान की अतिशयता मुख्य रूप से प्रतीयमान है।

क्षीरमाणः सुरापाणाः आदि शब्द मनुष्यों के लिये प्रयुक्त हुये है तथा इनसे समानाधिकरण सम्बन्ध से उशीनरा, प्राच्याः आदि शब्द भी मनुष्यों के लिये प्रयुक्त हुये है अतः इनसे देश का अभिधान होने में भी देश का अभिधान होता है। उशीनरादि शब्द देशवाचक है और तात्स्यात् तथा प्रतीयमान त्वात् मनुष्यों के आख्यायक हो जाते है। ये शब्द संज्ञा होने से प्रथमतः देश के अभिधान में प्रयुक्त होते हैं पश्चात् उस देश से सम्बन्धित होने से मनुष्यों के अभिधान में भी प्रयुक्त होने लगते है। इसलिये इन शब्दों से देश गम्यमान नहीं ऐसी शङ्का नहीं करनी चाहिये।

10. "वा भावकरणयोः" (8.4.10.)

पूर्वपद में स्थित निमित्त से उत्तर भाव तथा करण में वर्तमान जो पान शब्द उसके नकार को विकल्प से णकार आदेश होता है।

उदाहरण - क्षीरपाणं वर्तते अथवा क्षीरपानं वर्तते।

क्षीरपाणः कंसः वा वर्तते – यहाँ क्षीर पूर्वपद पूर्वक पा धातु से भाव में ल्युट् हो क्षीरपान शब्द बना तब आलोच्य सूत्र से वैकल्पिक णत्व प्राप्त हुआ। णत्व पक्ष में क्षीरपाणः क्षीरपाण सु = क्षीरपाणम् तथा णत्वाभाव पक्ष में क्षीरपानम् शब्द सिद्ध हुये।

क्षीरपाणः क्षीरपानः वा कंसः – यहाँ क्षीर पूर्वक पा धातु से करण अर्थ में ल्युट् हो क्षीरपान शब्द बना। सूत्र द्वारा वैकल्पिक णत्व हो णत्व पक्ष में क्षीरपाण तथा णत्वाभाव में क्षीरपान शब्द बना स्वादिकार्य हो क्षीरपाणः तथा क्षीरपानः रूपद्वय सिद्ध हुये।

11. ''प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु च'' (8.4.11.)

पूर्वपद में स्थित निमित्त से उत्तर प्रातिपादिक के अन्त में जो नकार तथा नुम् एवं विभक्ति में जो नकार उसको भी विकल्प से णकारादेश होता है।

उदाहरण – प्रातिपादिक – भाषवापिणौ, भाषवापिनौ वा। नुम् – ब्रीहिवापाणि, व्रीहिवापानि वा। विभक्ति – माषवापण माषवापन वा।

भाषवापिणौ, माषवापिनौ – भाषान् व पते इस प्रकार के विग्रह में भाष एवं वापिन् का समास हुआ। वापिन् में कृदन्त णिनि प्रत्यय होने से इसकी प्रातिपदिक संज्ञा हो जाती है अतः पूर्वपदस्थ निमित्त के कारण वापिन् के नकार को सूत्रोक्त प्रातिपदिकान्तलक्षण णत्वादेश विकल्प से हो जाता है। आदेश हो माषवापिण, माषवापिण औ = माषवापिणौ तथा आदेश के अभाव में माषवापिन औ = माषवापिनौ शब्द बनते हैं।

माषवापाणि, मषवापाणि – मवषान् वपन्ति इस अर्थ में माष पूर्वक वप् धातु से कर्म में अण् प्रत्यय हुआ और माषवाप शब्द निष्पन्न हुआ। बहुवचन में जस् तथा जस् का शि हो माषवाप इ बना। नुम् आगम हो माष वाप न् इ हुआ। दीर्घ हो (सर्वनाम स्थाने च सू.) से माष वापा नि शब्द बना। सूत्रविहीत णत्व आदेश हो माषवापाणि एवं आदेश के अभाव में माषवापानि शब्द बनें। यह नुम् के नकारणत्व का उदाहरण है। माषवापेण माषवापेन – माषवाप टा > माषवाप इन > माषवापेन। यहाँ माषवापेन शब्द का नकार विभक्ति का नकार है अतः सूत्र द्वारा वैकल्पिक णत्वादेश विहित हुआ। णत्व पक्ष में 'माषवापेण' एवं णत्वाभाव पक्ष में 'माषवापेन' शब्द बनें।

12. ''एकाजुत्तरपदे णः'' (8.4.12.)

जिस समास का उत्तरपद एकाच् हो उसके पूर्वपदस्थ निमित्त से उत्तर प्रातिपदिकान्त, नुम्

विभक्ति के नकार को णकारादेश (नित्य) हो।

उदाहरण - प्रातिपदिकान्त णत्व - वृत्रहणौ, वृत्रहणः। नुष् - णत्व - क्षीरपाणि, सुरापाणि।

विभक्ति - क्षीरपेण, सुरापेण।

वृत्रहणौ - वृत्रहन् औ। वृत्रहन् प्रातिपदिक है अतएव एकाच् उत्तरपद औ परे रहते नकारान्त प्रातिपादिक के नकार को णत्व हुआ वृत्रहण् औ - वृत्रहणौ।

वृत्रहणः - वृत्रहन् जस् > वृत्रहन् अस्। णत्वादेश होकर वृत्रहण् अस वृत्रहणः।

क्षीरपाणि - क्षीर पा क > क्षीरप जस् > क्षीरप शि > क्षीरप ह > क्षीरप न् इ > क्षीरपानि। नुम् के नकार को णत्व हो क्षीरपाणि।

क्षीरपेण - क्षीर पा क > क्षीरप टा > क्षीरप इन > क्षीरपेन। विभक्ति के नकार को णत्वादेश हो - क्षीरपेण।

13. ''कुमति च'' (8.4.13.)

पूर्वपद में स्थित निमित्त से उत्तर कवर्गवान् शब्द उत्तरपद रहते भी प्रातिपदिकान्त, नुम् तथा विभक्ति के नकार को णकार आदेश होता है।

उदाहरण - प्रातिपदिकान्त - वस्त्रयुगिणौ, वस्त्रयुगिणः।

नुम् - वस्त्रयुगाणि।

विभक्ति - रवरयुगेण।

वस्त्रयुगिणौ - वस्त्रयुग इनि > वस्त्रयुगिन् औ > वस्त्रयुगिन् के नकार को प्रातिपदिकान्त णत्व हो वस्त्रयुगिण् औ = वस्त्रयुगिणौ।

वस्त्रयुगाणि - वस्त्रयुग शि > वस्त्रयुगन् इ > वस्त्रयुगानि। नुम् णत्व हो वस्त्रयुगाणिं। खरयुगेण - खरयुग इन > खरयुगेन > खरयुगेण।

14. ''उपसर्गादसमासेऽपिणोपदेशस्य'' (8.4.14.)

उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर णकार उपदेश में हैं जिसके ऐसे धातु के नकार को असमास में तथा अपि गृहण से समास में भी णकार आदेश होता है।

उदाहरण - प्रणमति, परिणमति, प्रणायकः आदि।

प्रणमति - प्रनम् तिप्। यहाँ प्र एवं नम् का समास हुआ है तथा उससे प्रथमा एकवचन में

तिप् प्रत्यय हुआ है। नम् धातु णोपदेश है अर्थात् उपदेशावस्था में इसका स्वरूप णम् है और सूत्र "णो नः" से णकार को नत्व हुआ है इसलिये णत्वनिमित्तक उपसर्ग से उत्तर णोपदेश नम् को णत्वादेश होगा - प्र णम् तिप् = प्रणमति।

प्रणायकः - प्र णीञ् > प्र नी ण्वुल् > प्र नै अक > प्र न् आय् अक = प्रनायकः। णत्व हो प्रणायक।

15. "हिनु मीना" (8.4.15.)

उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर हिनु तथा मीना के नकार को णकार आदेश होता है। उदाहरण - प्रहिणोति, प्रहिणुतः। प्रमीणाति, प्रमीणीतः आदि।

प्रहिणोति - प्र हि श्नु तिप् > प्र हि नु ति > प्रहिनु ति। यहाँ प्र उपसर्ग पूर्वक "हि गतौ" से स्वादिगण की धातु होने से श्ना विकरण हुआ और 'हिनु' ऐसा धातु स्वरूप प्राप्त हुआ अब रेफ युक्त उपसर्ग से परे हिनु के नकार को प्रकृत सूत्र द्वारा णत्व प्राप्त हुआ - प्र हिणु ति = प्रहिणोति।

प्रमीणाति - प्र मीञ् श्ना तिप। यहाँ मीञ् को क्र्यादित्वात् श्ना विकरण होकर मीना ऐसा स्वरूप प्राप्त हुआ आलोच्य सूत्र द्वारा मीना के नकार को णत्व हो - प्र मीणा ति = प्रमीणाति शब्द सिद्ध हुआ।

16. "आनि लोट्" (8.4.16.)

उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर लोडादेश जो आनि उसके नकार को णकार आदेश होता है। उदाहरण - प्रवपाणि, प्रयाणि, परियाणि आदि।

प्रवपाणि - प्र वप् लोट् > प्र वप् मिप् > प्र वप् नि > प्र वप् आट् नि = प्रवपानि। प्र उपसर्ग है और णत्वनिमित्त युक्त है इससे उत्तर लोडादेश आनि है तथा निमित्त एवं निमित्ती के बीच अट् अकार, वकार, आकार पवर्ग के पकार का व्यवाय है। इस दशा में उपर्युक्त सूत्र द्वारा णत्वादेश प्राप्त होता है। णत्व हो - प्रवपाणि।

17. "नेर्गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्राप्तिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोति देग्धिषु च" (8.4.17.)

उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर नि के नकार को णक़ार आदेश होता है गद, नद, पत, पद, घुसंज्ञक मा, स्यति, हन्ति, याति, वाति, द्राति, प्साति, वपति, वहति, शाम्यति, चिनोति एवं देग्धि

धातुओं के परे रहते भी।

गद - प्रणिगदति

नद - प्रणिनदति

पत - प्रणिपतति

पद - प्रणिपद्यते

घुसंज्ञक - प्रणिददाति, प्राणिदधाति

गाङ् - प्रणिनिमीते

मेङ् - प्रणिमयते

स्यति - प्रणिष्यति

हन्ति - प्रणिहन्ति

याति - प्रणियाति

वाति - प्रणिवाति

द्राति - प्रणिद्राति

प्साति - प्रणिप्साति

वपति - प्रणिवपति

वहति - प्रणिवहति

शाम्यति - प्रणिशाम्यति

चिनोति - प्रणिचिनोति

देग्धि - प्रणिदेग्धि

प्र उपसर्ग पूर्वक नि, इससे परे गद अथवा नद या पत धातु पुनः तिप् प्रत्यय हो तो उपर्युक्त सूत्र से 'नि' के णकार को णत्व हो प्रणिगदति, प्रणिनदति, प्रणियतति आदि रूप बनेंगे। पद से आत्मने का त प्रत्यय हो नि णत्व होने पर प्र णि पद्यते - प्रणिपद्यते शब्द सिद्ध होगा।

प्रणिददाति, प्रणिदधाति - प्र नि दा तिप् तथा प्र नि धा तिप्। नि के नकार को णत्व हो प्रणिददाति, प्रणिदधाति शब्द बने। "दाधाध्वदाप्" से दा एवं धा की घुसंता हुई। अतः ये दोनो घुसंज्ञक के उदाहरण है। माङ् से माङ् माने तथा मेङ् प्रणिदाने इन दोनों का ग्रहण हुआ है। प्र नि मा त, प्रनि

में त इस दशा में रेफयुक्त प्र से परे रहते नि को णत्व होगा क्योंकि इससे परे 'सूत्रोपदिष्ट माङ् (माङ् तथा मेङ्) धातु है। णत्व हो माङ् के प्रसंग में प्र णि मिमीते = प्रणिमिमीते। तथा मेङ् के प्रसंग में प्र णि मयते = प्रणिमयते आदि रूप बनेंगे।

णत्वनिमित्तक रेफयुक्त प्र उपसर्ग पूर्वक नि, इससे परे स्यति, हन्ति, याति, वाति, द्राति, प्साति, वपति, शाम्यति, चिनोति, देग्धि इत्यादि हों तो सूत्र द्वारा नि के नकार को णत्व होगा और प्रणिष्यति, प्रणिहन्ति, प्रणियाति, प्रणिवाति, प्रणिद्राति आदि शब्द सिद्ध होंगे।

प्र के समान ही णत्वनिमित्तक रेफ अथवा षत्व से युक्त उपसर्ग पूर्वक नि को सूत्रोक्त शब्दों के परे रहते णत्वादेश होगा यथा - परिणिनदति, परिणिद्राति आदि।

18. "शेषे विभाषा कखादावषान्त उपदेशे" (8.4.18.)

जो उपदेशावस्था में ककारादि या खकारादि या षकारान्त नहीं है ऐसी शेष धातुओं के परे रहते नि के नकार को विकल्प से णकारादेश होता है यदि नि से पूर्व णत्व निमित्तक उपसर्ग हो तो। उदाहरण - प्रनिपचति, प्रणिपचति। प्रणिभिनत्ति, प्रनिभिनत्ति।

प्रणिपचति - प्रनिपचति - प्र नि पच् तिप्। यहाँ णत्वनिमित्तक उपसर्ग से परे नि है तथा नि के परे पच् धातु है। पच् धातु ककरादि अथवा खकारादि नहीं है और षकारान्त भी नहीं है। इस दशा में नि को वैकल्पिक णत्व प्राप्त होता है। णत्व हो - प्र णि पच् शप् तिप् = प्रणिपचति। णत्वाभाव में प्र नि पच् शप् तिप् = प्रनिपचति। अककारादि अखकारादि अषकारान्त प्रतिषेध कथन के कारण प्रनिकरोति, (कृप) प्रनिखादति, (खाद) प्रतिपिनष्टि (पिष्) इत्यादि में णत्व नहीं होता उपदेशावस्था में ही प्रतिषेध कथन से विशू धातु से निष्पन्न प्रणिवेष्टा प्रनिवेष्टा ये दोनों रूप सिद्ध हो जाते है क्योंकि उपदेशावस्था में यह धातु षकारान्त नहीं। "व्रश्चभ्रस्ज" आदि सूत्र द्वारा बाद में णत्वादेश होता है। इसी प्रकार प्रनिचकार, प्रचिनखाद, प्रनिपेक्ष्यति आदि में उपदेशावस्था में ककारादि, खकारादि, षकारान्त धातु होने से प्रतिषेध होगा।

19. "अनितेः" (8.4.19.)

उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तरपद के अन्त में स्थित अन धातु के नकार को णकार आदेश होता है।

20. "उभौ साभ्यासस्य" (8.4.21.)

उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर अभ्यास रहित अन धातु के दोनों नकारों को णकार आदेश होता है।

उदाहरण - प्राणिणिषति, प्राणिणत्, पराणिणत्।

प्राणिणिषति - प्र अन् सन् > प अन् इट् स > प्र अनि स > प्र अनि नि स > प्रानिनिस। प्र उपसर्ग में रेफ है अतः साभ्यास अनधातु के दोनों णकारों - धातु एवं अभ्यास के नकार को णत्व होगा - प्राणिणिस्। तिबादि हो प्राणिणिषति।

प्राणिणत् - प्र उपसर्ग पूर्वक अन् धातु से लुङ्। णिच् तिप् च्लि, चूलि को चङ् आदि होकर - प्र अन् इ अ त् ऐसा रूप बना। अनि के नि को द्वित्व हो प्र अनि नि अ त्। णि लोप हो प्र अनि न् अ त् > प्रानि नत् अब आलोच्य सूत्र द्वारा धातु एवं अभ्यास के नकार को णत्व हो प्राणिणत् शब्द सिद्ध हुआ।

21. "हन्तेरत्पूर्वस्य" (8.4.22.)

उपसर्गस्य निमित्त से उत्तर अकार पूर्व में है जिस हन् धातु के नकार के ऐसे हन् के नकार को णत्वादेश होता है।

उदाहरण - प्रहण्यात्, प्रहणनम्, परिहणनम् आदि।

प्रहण्यात् - प्र हन् लिङ् > प्र हन् यासुट् तिप् > प्र हन् या त्। प्र उपसर्ग णत्वनिमित्त युक्त है और हन् के नकार के पूर्व अकार है अतः सूत्र द्वारा हन् के नकार को णत्व प्राप्त है। णत्व हो - प्र हण् यात् = प्रहण्यात्।

परिहणनम् - परि हन् ल्युट > परि हन् अन > परिहनन। परि उपसर्ग णत्वादेश प्राप्ति सम्बन्धी निमित्त से युक्त है तथा हन् के नकार के पूर्व अकार है अतः धातु के नकार को णत्व होगा - परि हणन सु = परिहणनम्।

अकारपूर्वक नकार को णत्व होने से प्रहनन्ति इत्यादि स्थल पर णत्व नहीं हुआ क्योंकि यहाँ हन् की उपधा का लोप हो गया है। इसी प्रकार प्राघनि इत्यादि में भी नहीं हुआ क्योंकि यहाँ न के पूर्व आकार है। अकार नहीं।

22. "वमोर्वा" (8.4.23.)

उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर अकार पूर्व वाले हन् धातु के नकार को विकल्प से व तथा म परे रहते णकार आदेश होता है।

उदाहरण - प्रहण्वः, प्रहन्वः - प्र हन् वस् > प्रहन्वस् यहाँ प्राप्त हुआ। णत्व हो प्रहण्वः तथा णत्व के अभाव में प्रहन्वः शब्द सिद्ध हुये।

प्रहण्मः प्रहन्मः - प्र हन् मस्। णत्व हो प्रहण्मः तथा णत्वाभाव में प्रहन्मः शब्द सिद्ध हुये।

23. "अन्तरदेशे" (8.4.24.)

अन्तः शब्द से उत्तर आकार पूर्व में है जिस हन् के नकार के उस नकार को णत्वादेश होता है यदि देश का अभिधान न हो तो।

उदाहरण - अन्तर्हणनं वर्तते।

अन्तर्हणनं - अन्तर् हन् ल्युट् > अन्तर्हन् अन > अन्तर्हनन सु > अन्तर्हननम्। णत्व हो अन्तर्हणनम्।

देश का अभिधान होने पर णत्व नहीं होगा। जैसे - अन्तर्हननोदेशः।

24. "अयनं च" (8.4.25.)

अन्तः शब्द से उत्तर अयन शब्द के नकार को भी णकार आदेश होता है, देश का अभिधान न हो तो।

उदाहरण - अन्तरयणं वर्तते।

अन्तरयणं - अन्तर् अयन सु > अन्तरयनम्। अयन के नकार को णत्व हो अन्तरयणम्।

25. "छन्दस्यदवग्रहात्" (8.4.26.)

वेद विषय में ऋकारान्त अवगृह्यमाण पूर्वपद से उत्तर नकार को णकारादेश होता है।

उदाहरण - नृमणाः, पितृयाणम्।

नृमणा, पितृयाणम् - यहाँ नृ एवं पितृ ऋकारान्त पूर्वपद है और पद काल में अपगृह्यमाण है अतः इनसे परे रहते क्रमशः मना एवं यानम् के नकार को सूत्र द्वारा णत्व हुआ।

अवग्रहात् का अर्थ है अवगृह्यमाणात। अवगृह्यते = विच्छिद्य पठ्यते। इस प्रकार पदकाल में (पद पाठ काल में) जिसे विच्छेद कर पढ़ा जाये ऐसा विच्छिद्यमान ऋकारान्त पूर्वपद पूर्व में हो तो उत्तर

पदस्थ नकार को णत्व होगा। इससे अनवगृह्यमाण ऋकारान्त पूर्वपद के प्रसंग में उपर्युक्त आदेश नहीं होता।

26. ''नश्चधातुस्थोरुषुभ्यः'' (8.4.27.)

धातु में स्थित निमित्त से उत्तर तथा षु एवं ऊरु शब्द से उत्तर नस् के नकार को वेद विषय में णकार आदेश होता है।

उदाहरण - धातुस्थ निमित्त से उत्तर - अग्ने रक्षा णः शिक्षा णो अस्मिन्। ऊरुण स्क्रधि। - ऊरु शब्द से उत्तर।

अभीषु णुः सखीनाम् - षु शब्द से उत्तर।

रक्षा णः - यहाँ लोट् मध्यम पुरुष एकवचन में 'द्वयचोऽतस्तिङ्' सू0 से दीर्घ हो रक्ष् धातु से निष्पन्न रक्षा शब्द है जो णत्व निमित्त से युक्त है। इससे परे अस्मद् को आदिष्ट नस् शब्द है सूत्र द्वारा नस् के नकार को णत्व हो - रक्षा नस् > रक्षाणस् = रक्षाणः

ऊरुणस्क्रधि - ऊरु नस् कृधि। ऊरु पूर्वपद से उत्तर नस् के नकार को णत्व हो - ऊरु णस् कृधि = ऊरु णस्कृधि। ऊषुः णः ऊतये - ऊषु नस्। णत्व हो ऊषु णस् > ऊषु णः।

27. ''कृत्यचः'' (8.4.29.)

अच् से परे कृत में जो नकार उसको णकार आदेश हो यदि वह उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर हो तो।

उदाहरण - प्रयाणम्, प्रमाणम्, प्रयायमाण्, प्रयाणीयम्, अप्रयाणिः, प्रयायिणौ, प्रहीणः, प्रहीणवान्।

प्रयाणम् - प्र या ल्युट् > प्र या अन = प्रयान। ल्युट् (अन) कृत् प्रत्यय है तथा यह अच् (आकार) से उत्तर है। या अन इससे पूर्व णत्व निमित्त से युक्त प्र उपसर्ग है अतः सूत्र द्वारा अन के नकार को णत्व हो - प्रयान > प्रयाण बना। स्वादिकार्य होकर प्रयाणम्।

प्रयायमाणम् - प्र या शानच् > प्र या यक् मुक् आन > प्र या य म् आन > प्रयायमान। शानच् कृत् प्रत्यय है अतः कृत् के नकार को णत्व हो - प्रयायमाण बना। स्वादिकार्य हो - प्रयायमाणम्।

प्रयाणीयम् - प्र या अनीयर् > प्रयानीय > णत्व हो प्रयाणीय। स्वादिकार्य हो - प्रयणीयम्

प्रहीणवान् - प्र हा क्तवत् > प्र ही नवत्। णत्व हो - प्रहीणवत्। स्वादिकार्य हो - प्रहीणवान्।

28. ''णेर्विभाषा'' (8.4.30.)

उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर ण्यन्त धातु से विहित जो कृत् प्रत्यय उसमें स्थित जो अच् से उत्तर नकार उसको विकल्प से णकार आदेश होता है।

उदाहरण - प्रयापणम्, प्रयापनम्, प्रयायणीयम् प्रयापनीयम्।

प्रयापणम्, प्रयापनम् - प्र या पुक् णिच् ल्युट्। प्र या प् णिच् अन > प्र या प् अन = ण्यन्त या को यहाँ कृत् ल्युट् हुआ है (पुनः णि का लोप हो गया है) सूत्र में कथित सारी स्थिति उपस्थित होने से यहाँ नकार को णत्व होगा। णत्व वैकल्पिक है अतः णत्व पक्ष में प्र याप् अण = प्रयापण, तथा णत्व के अभाव में प्रयापन प्रातिपादिक बनें। इन्हें स्वादिकार्य हो उपर्युक्त उदाहरण रूपद्वय सिद्ध होंगे। प्रयापनीयम् - प्र या पुक् णिच् अ नी य र् > प्र या प् अनीय = प्रयापनीय। णत्व हो - प्रयापणीय तथा णत्वाभाव में प्रयापनीय प्रातिपादिक बनेंगे। स्वादिकार्य हो प्रयापणीयम् एवं प्रयापनीयम् सिद्ध हुये।

29. ''हलश्चेजुपधात्'' (8.4.31.)

इच् उपधावाली जो हलादि धातु उसे विहित जो कृत प्रत्यय तत्स्थ जो अच् से उत्तर नकार उसको भी उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर विकल्प से णकारादेश होता है।

उदाहरण - प्रकोपणम्, प्रकोपनम्।

प्रकोपणम्, प्रकोपनम् - प्र कुप् ल्युट् > प्र कोप् अन कुप् इच् उपधावाली हलादि धातु है तथा इससे पूर्व प्र उपसर्ग है अतः इससे विहित कृत् अन। (ल्युट्) के नकार को विकल्प से णत्व होगा। णत्व पक्ष में प्रकोपण तथा अभाव पक्ष में प्रकोपन शब्द बने। विभक्ति कार्य होकर - प्रकोपणम् तथा प्रकोपनम् ये दो रूप बने।

30. ''इजादेः सनुमः'' (8.4.32.)

उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर इच् आदि वाला जो नुम् सहित हलन्त धातु उससे विहित जो कृत् प्रत्यय तत्स्थ नकार को अच् से उत्तर णकार आदेश होता है।

उदाहरण - प्रेङ्खणम्, परेङ्रवणम्। प्रेङ्गणम्, परेङगणम् आदि।

प्रेङ्खणम् - प्र इखि ल्युट् > प्र इ नुम् ख् अन > प्र न् खन > प्रेङ् खन। इखि इच् आदि वाली हलन्त धातु है और इसके पूर्व णत्वनिमित्तक प्र उपसर्ग है अतः इससे विहित कृत प्रत्यय के नकार को णत्व प्राप्त हुआ।

णत्व हो - प्रेङ् खण शब्द बना। इसकी प्रातिपादिक संज्ञा हो सु - प्रत्यय, सु को अमृ हो 'प्रेङ्खणम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

31. "वा निंसनिक्षनिन्दाम्" (8.4.33.)

उपसर्गस्थ निमित्त से उत्तर निंस, निक्ष तथा निन्द धातु के नकार को विकल्प से णकारादेश होता है, कृत परे रहते।

उदाहरण - प्रणिंसनम्, प्रणिक्षणम्, प्रणिन्दनम्। णत्वाभाव पक्ष में - प्रनिंसनम्, प्रनिक्षनम्, प्रनिन्दनम्।

प्रणिंसनम् - प्रनिंसनम् - प्र निंस् ल्युट् > प्रनिसन। सूत्रविहित णत्व हो प्रणिंसन। स्वादिकार्य हो प्रणिंसनम्। आदेश वैकल्पिक है अतः आदेश के अभाव पक्ष में प्रनिंसनम् शब्द बनेगा। निंस्, निक्ष, निन्द ये धातुयें उपदेशावस्था में णकारादि है। "णो नः" सूत्र से णकार को नत्व हुआ। अतः "उपसर्गाद्समासेऽपि णोपदेशस्य" से धातु के नकार को णत्व हो जाता किन्तु इस सूत्र द्वारा विहित णत्व नित्य है जबकि इन धातुओं के णत्वादेश युक्त एवं णत्वादेश विहीन नकार युक्त रूप भी प्राप्त होते है अतएव सूत्र द्वारा वैकल्पिक आदेश विहित हुआ।

सन्दर्भ सूची

1. सूत्र की काशिका व्याख्या।
2. सूत्र की पदमाञ्जरी टीका कशिका वृत्ति।
3. 'मनुष्याभिधानेऽपि देशाभिधानं गम्यते।' द्र. सूत्र की काशिका वृत्ति।
4. उशीनरादयोऽपि शब्दाः संज्ञात्वेन प्राग्देशेष्वेव प्रवृत्ताः पश्चात् तत्सम्बन्धे मनुष्येषु। तेन मनुष्याभिधाने देशाभिधानं गम्यत।" सू. की न्यास टीका, काशिका वृत्ति।

चतुर्थ अध्याय

चतुर्थ अध्याय

प्रकृत्यादेश

1. ''उञः ऊँ''

अवैदिक इति परे हो तो एकाच् निपात उञ् की विकल्प से प्रगृह्य संज्ञा होती है तथा इसे दीर्घ सानुनासिक ऊँ आदेश विकल्प संघेता है।

उदाहरण - ऊँ इति, उ इति, विति।

उ इति - इस दशा में सूत्र द्वारा एकाच् निपात उञ् की विकल्प से प्रगृह्य संज्ञा हुई। संज्ञा होने पर सूत्र द्वारा वैकल्पिक ऊ आदेश प्राप्त हुआ। आदेश पक्ष में - ऊ इति, शब्द सिद्ध हुआ। आदेश के अभाव में 'उ' के प्रगृह्य होने से प्रकृति भाव होकर 'उ इति - ऐसा प्रयोग निष्पन्न हुआ। उञ् को प्रगृह्य संज्ञा न होने पर यण् वकारादेश हो - व् इति = विति ऐसा रूप सिद्ध हुआ।

विशेष - इस एक सूत्र का योग विभाग कर दो सूत्रों के रूप में काशिका सिद्धान्त कौमुदी आदि ग्रन्थों में सूत्र पाठ किया गया है। एकसूत्रत्व की स्थिति में ''उञ्'' को ऊँ आदेश ही शाकल्य के मत में ''ऐसा सूत्रार्थ होता अतः शाकल्य के मत में 'ऊँ इति' तथा अन्यों के मत में 'उ इति' ये दो रूप सिद्ध होते हैं। 'विति' रूप नहीं सिद्ध होता क्योंकि सूत्र - ''निपात एकाजनाङ्'' से एकाच् निपात उञ् की नित्य प्रगृह्य संज्ञा होती और प्रगृह्यसंज्ञक उ से परे इति का प्रकृतिभाव होता है। सूत्र का योग - विभाग करने से प्रथम योग ''उञः'' का अर्थ हुआ - ''शाकल्य के मत से उ निपात की (विकल्प से) प्रगृह्यसंज्ञा हो।'' दूसरे योग ॐ का अर्थ हुआ 'उञ्' को विकल्प से ॐ आदेश हो। इस प्रकार प्रथम योग में जब प्रगृह्यसंज्ञा नहीं होती तब यण् हो 'विति' रूप सिद्ध हो जायेगा।

इस सूत्र में इसके पूर्ववर्ती सूत्र से 'शाकल्यस्य' पद की अनुवृत्ति हुई है। जिसे विकल्प प्राप्त होता है यह विकल्प प्रगृह्यसंज्ञा करने में तथा आदेश करने में - दोनों ही कार्यों में होगा।

2. इदमोऽन्वादेशेऽशनुदात्तस्तृतीयादौ (2.4.32.)

अन्वादेश में विद्यमान जो इदम् शब्द उसे अनुदात्त अश् आदेश होता है। तृतीयादि विभक्ति परे हो तो।

उदाहरण - आदेश वाक्य - आभ्यां छात्राभ्याम् रात्रिरधीता। अन्वादेश अथो आभ्यामहरप्यधीतम्।

इदम् भ्याम्। सूत्र विहित अशादेश होकर - अ भ्याम्। 'सुपि च' से दीर्घ हो 'आभ्याम्' ऐसा रूप सिद्ध होगा।

इदम् शब्द का तृतीया बहुवचन का सामान्य प्रयोग का रूप भी एतत्तुल्य है वहाँ 'भ्' को 'त्यदादीनामः' से अकार उसे पररूप एकादेश 'इद भाग का लोप हो और 'सुपि च' से दीर्घ हो आभ्याम् रूप सिद्ध होता है। यहाँ ऐसा विचार मन में आता है कि जब 'आभ्याम्' आदि रूप सिद्ध हो ही जाते हैं तो उनके लिये इदमोऽन्वा इत्यादि सूत्ररचना व्यर्थ है। इस शङ्का का समाधान दिया गया - 'साकच्क् इदम्' के लिये यह आदेश विहित होना आवश्यक है। अकच् प्रत्यय अत्यय या सर्वनाम् शब्द की टि से पूर्व होता है। (सू. अत्यय सर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः से) अतः इद् अकच् अम् - इस प्रकार का शब्द अकच् प्रत्यय होकर बनेगा। इस साकच्क इदम् से तृतीया बहुवचन में 'इमकाभ्याम्' शब्द बनता है। अब यदि अन्वादेश विषय में साकच्क इदम् को अशादेश विहित न किया गया तो वहाँ भी 'इमकाभ्याम्' इत्यादि रूप वाले शब्द बनने लगेंगे जब कि अन्वादेश में 'आभ्याम्' इत्यादि शब्द रूपों की अपेक्षा है। इससे 'इमकाभ्याम् छात्राभ्याम् - छन्दोऽध्यापय। अथो आभ्याम् व्याकरणमप्यध्यापया' में 'अथो' आभ्याम्' के स्थान पर 'अथो इमकाभ्याम्' शब्द प्रयुक्त होने लगता इसलिये इस सूत्र द्वारा किया गया आदेश विधान सर्वथा उचित एवं उपयोगी है।

अन्वादेश का अर्थ है - कथितानुकथन। एक ही अभिधेय का पूर्व वाक्य (आदेश वाक्य) में प्रतिपादन तथा पुनः उसी के विषय में परवर्ती वाक्य (अन्वादेश) में प्रतिपादन होना ही अन्वादेश विषय है यथा अस्य छात्रस्य शोभनं शीलम्ः, इस आदेश वाक्य में अभिधेय छात्रों के विषय में कुछ कहा गया। पुनः 'अथो अस्य प्रभूतं स्वम्' - इस वाक्य में उसी अभिधेय - उन्हीं छात्रों के विषय में कुछ और जानकारी दी गयी। इस प्रकार द्वितीय वाक्य अन्वादेश वाक्य हुआ। 'अथो' यह शब्द अन्वादेश विषय का ज्ञान कराता है। इससे 'देवदत्त' भोजन इमं च यज्ञदत्तम्'। इन वाक्यों में सूत्रविहित कार्य अप्राप्त है। क्योंकि दोनों वाक्यों के भिन्न-भिन्न अभिधेय है। यहाँ अन्वादेश का प्रसंग ही नहीं है।

इस व्यवस्था में किंचित दोष भी है। अकच् प्रत्यय अज्ञातादि अर्थ की विवक्षा में विहित किया गया है। जैसे - कस्यायं अश्वः इति अश्वकः। यहाँ कठिनाई यह आती है कि अन्वादेश विषय में अकच् की उत्पत्ति ही नहीं होती क्योंकि आदेश वाक्य का अभिधेय और अन्वादेश वाक्य का अभिधेय एक ही होता है अन्वादेश में आदेश वाक्य के अभिधेय के विषय में ही कुछ कथन किया जाता है जिससे अज्ञानता

नहीं रह जाती। इस प्रकार अन्वादेश विषय में अज्ञातम निर्वाह न होने से अकच् - उत्पत्ति संभव नहीं और जब अकच् की उत्पत्ति ही सम्भव नहीं तो साकच्क कार्य हेतु अशादेश विधा उचित नहीं प्रतीत होता। इस विषय में भाष्यकार पतंजलि ने भी कहा है - अथवा - ''विचित्रास्तद्धितवृत्तयः। नान्वादेशेऽक्रजुत्पत्स्यते।'' (द्रष्टव्य सूत्रभाष्य)।

3. एतदस्त्रतसोस्त्रतसौ चानुदात्तौ (2.4.33.)

अन्वादेश-विषयक को एतद् शब्द उसे अनुदात्त अश् आदेश होता है यदि त्र अथवा तस् प्रत्यय परे हो और वे त्र तथा तस् भी अनुदात्त हों।

सूत्र द्वारा एतद् को अनुदात्त अश् तथा त्र, तस् को अनुदात्त स्वर ये दो आदेश विहित किये गये।

उदाहरण - एतस्मिन् ग्रामे सुखं वसामः। अथो अत्र युक्ता अधामहे। त्र परे रहते। एतस्माच्छात्र्राछन्दोऽधीष्व। अथो अ तो व्याकरण मप्यधीष्व। तस् परे रहते।

अत्र - एतद् त्रल् > एतद् त्र। सूत्रं विहित आदेश - अनुदात्त अश् प्रकृति को तथा अनुदात्त स्वर प्रत्यय को, होकर - अ्. त्र् = अत्र्। अतो = अतः - एतद् तसिल् > एतद् तस्। सूत्र विहित आदेशों के होने पर - अ् त् स् = अ् तः > अतो।

4. द्वितीयाटौस्स्वेनः (2.4.34.)

द्वितीया, टा, ओस्, इन विभक्तियों के परे होने पर अन्वादेश विषयक इदम् और एतद् को अनुदात्त 'एन' आदेश होता है।

उदाहरण - इदम्।

द्वितीया एकवचन - इयं छात्रं छन्दो अध्यापय, अथो एनं. व्याकरणमप्य ध्यापय।

टा - अनेन छात्रेण रात्रिरधीता, अथो एननाहरप्यधीतम्।

ओस् - एतयोछात्त्रयोः शोभनं शीलम् अथो एनयोः प्रभूतं स्वम्।

एतद् - द्वितीया - एतं छात्रम् छन्दोऽयापय् अथो ए् नं् व्याकरणमप्य ध्यापय।

टा - एतेन छात्रेण रात्रिरधीता, अथो एनेनाहरप्यधीतम्।

ओस् - एतयोः छत्त्रयोः शोभनं शीलम् अथो एनयोः प्रभूतं स्वम्।

एनं - इदम् अथवा एतद् अम्। अनुदात्त एव आदेश हो - एन् अम्। पूर्वरूप हो एनम्।

एनौ - इदम् या एतद् औ। प्रकृति को अनुदात्त एन आदेश हो - एन् औ = एनौ।

एनान् - इदम् अथवा एतद् शस्। प्रकृति को एन आदेश हो - एन अस् > एनास् = एनान्।

एनेन - इदम् या एतद् टा। सूत्र विहित आदेश होकर - एन टा। टा को इन हो एनेन।

एनयोः - इदम् अथवा एतद् ओस्। प्रकृति को एन आदेश हो एन् ओस् > 'एन' के अकार को 'ओसि च' से इकार तथा इकार के परे ओकार होने से इकार को अयादेश हो एन् अय् ओस् = एनयोः शब्द सिद्ध हुआ।

5. अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति (2.4.36.)

अद को जग्धि आदेश होता है यदि ल्यप् अथवा तकारादि कित् आर्धधातुक प्रत्यय परे हो तो।

उदाहरण - प्रजगध्य, जग्धः, जग्धवान् आदि।

प्रजगध्य - प्र अद् क्त्वा > प्र अद् ल्यप्। ल्यप् परे रहते अद् को जग्ध् आदेश हो - प्र जग्ध् ल्यप् = प्रजगध्य। जग्धः - अद् क्त। तकारादि कित् आर्धधातुक प्रत्यय परे रहते अद् को जग्ध् आदेश हो - जग्ध् त। प्रत्यय के त को धकार् धातु के ध् को जश् दकार और उसका लोप हो जग्धः, जग्ध से सु हो जग्धः शब्द सिद्ध हुआ। जग्धवान् अद् क्तवत्। अद् को जग्ध आदेश हो जग्धतवत् > जगधवत् सु = जग्धवान्।

6. लुङ्सनोर्घस्लृ (2.4.37)

लुङ् और सन् आर्धधातुक परे हो तो अद् को घस्लृ (घस्) आदेश होता है।

उदाहरण - अघसत्, जिघत्सति। अघसत् = अद् तिप् (लुङ्) अट् अद् अङ् ति। घस् आदेश हो - अ घस् अङ् त् = अघसत्।

जिघत्सति - अद् सन् तिप् > अद् को घस्लृ आदेश हो घस् सन् तिप्। द्वित्व, अभ्यासकार्य, घस् के सकार को तकारादेश हो जिघत्सति रूप सिद्ध होगा।

7. घञ पोश्च (2.4.38.)

घञ् तथा सन् अप् प्रत्ययों के परे रहते भी अद् को घस्लृ आदेश होता है। सूत्रस्थ चकार अनुक्तसमुच्चयार्थ है अतः अच् परे रहे भी अद् को घस् होगा।

उदाहरण - घासः, प्रघसः।

घासः - अद् घन्। अद् को घस्लृ हो - घस् अ। उपधादीर्घ, प्रथमा एकवचन में सु हो 'घासः' शब्द निष्पन्न हुआ।

प्रघसः - प्र अद् अप् अथवा अच् > प्र अद अ। अद को घस् आदेश हो - प्र घस् अ = प्रघस। स्वादिकार्य हो 'प्रघसः' सिद्ध हुआ।

8. बहुलं छन्दसि (2.4.39.)

छन्द (वेद) विषय में घञ् या अप् परे रहते अद् को घस्लृ आदेश बाहुलकात् होता है। उदाहरण - अश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने। घस्तान्नूनम्। अभाव पक्ष का उदाहरण - आत्तामघ मध्यतो भेद उद्भृतम्।

घासम् - अद धन्। अद को घन् आदेश होकर घस् अ। घास् अ = घास। विभक्ति कार्य होकर घासम् बना।

घस्ताम् - अद अप्। घस् आदेश हो - घस् अ = घस से लुङ् का तस् (उ से ताम्) हो प्रयोग सिद्ध होगा। आत्ताम् - अद् ताम्। यहाँ अद् को घस्लृ नहीं हुआ।

9. लिट्यन्यतरस्याम् (2.4.40.)

लिट् के प्रत्यय परे हो तो अद् को घस् आदेश विकल्प से होता है।

उदाहरण - जघास, जक्षतुः, जक्षुः - आदेश होकर।

आद, आदतुः आदुः - आदेश के अभाव में।

जघास - अद् णल्। अद् को घस्लृ आदेश हो - घस् अ। द्वित्व अभ्यासकार्य उपधादीर्घ हो - जघास।

आद - अद् णल्। यहाँ अद् को घस्लृ आदेश नहीं हुआ। द्वित्व अभ्यासकार्य, अभ्यासदीर्घ आदि होकर 'आद' शब्द सिद्ध होगा।

10. वेञो वयिः (2.4.41.)

आर्धधातुक लिट् प्रत्यय परे हो तो 'वेञ्' को 'वयि' आदेश विकल्प से होता है। 'वयि' में इकार उच्चारणार्थ है मूल आदेश में 'वय्' है।

उदाहरण - आदेश पक्ष में - उवाय, ऊयतुः, ऊयुः। ऊवतुः, ऊवुः। आदेश के अभाव में - ववौ, ववतुः, वतुः।

उवाय - वेञ् णल्। आदेश होकर - वय् अ। द्वित्व अभ्यासकार्य हो उ वय् अ, उपधादीर्घ होकर 'उवाय' शब्द सिद्ध हुआ। ववौ - वेञ् णल् > वा औ > वा वा औ > ववौ। आदेशाभाव में यह रूप बनेगा।

11. हनो वध लिङि (2.4.42.)

लिङ् आर्धधातुक प्रत्यय परे हो तो हन को वध आदेश हो जाता है।

उदाहरण - वध्यात, वध्यास्ताम्, वध्यासुः।

वध्यात् - वध्यात् हन तिप्। हन् को वध आदेश हो - वध तिप्। यासुट् विकरण तिप् के इकार का तथा यासुट् के सकार का लोप इत्यादि कार्य होकर 'वध्यात्' रूप सिद्ध होता है।

12. लुङि च (2.4.43.)

लुङ् आर्धधातुक के परे रहते भी हन को वध आदेश हो जाता है।

उदाहरण - अवधीत्, अवधिष्टाम्, अवधिषुः।

अवधीत् - अट् हन् तिप्। हन को वध आदेश होकर - अ वध तिप्। इट्, सिच्, ईट् आगम होकर, सिच् के स् का लोप, दोनो इकार (इ एवं ई) को सवर्णदीर्घ हो अवधीत् रूप बना।

अवधिष्टाम् - अट् हन् तस् > अट् हन् ताम्। हन् को वध आदेश हो - अ वध ताम्। च्लि, च्लि को सिच् आदेश सिच् के को इट् आगम, सकार को षत्व, त को ष्टुत्व हो शब्द सिद्ध हुआ।

13. आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् (2.4.44.)

लुङ् लकार में आत्मने पद संज्ञक प्रत्ययों के परे रहते हन् को विकल्प से वध आदेश होता है।

उदाहरण - आवधिष्ट, आवधिषाताम्, आवधिषत। आदेश होकर आहत् आहसाताम्, आहसत - आदेश के अभाव में।

आवधिष्ट - आङ् हन् लुङ् > आङ् हन् त > आ हन् त। सूत्र द्वारा विहित आदेश होकर - आ वध त। धातु को अट् आगम धातु को च्लि > सिच् विकरण, सिच् को इट् आगम आङ् एवं अट् को सवर्णदीर्घ, षत्व त को ष्टुत्व हो आवधिष्ट शब्द सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार 'आताम्' एवं झ प्रत्यय परे रहते हन् को वध आदेश होकर आवधिषाताम् एवं आवधिषत शब्द सिद्ध हुये।

आहत - आङ् हन् त। वधादेश का विधान वैकल्पिक है अतः जब आदेश नहीं हुआ तो मूल

धातु की रह गई और उसे सिच् विकरण, स का लोप, धातु के अनुनासिक (नकार का) का लोप हो 'आ ह त = आहत शब्द बना। इसी प्रकार 'आताम्' एवं 'झ' प्रत्ययों के परे > रहते आ ह स् आताम् = आहसाताम् एवं आ ह स् अत = आहसत रूप सिद्ध हुये। इनमें भी प्रकृति को वध आदेश नही हुआ।

14. इणो गा लुङि (2.4.45.)

लुङ परे हो तो 'इण्' प्रकृति को 'गा' आदेश हो जाता है।

उदाहरण - अगात्, अगाताम्, अगुः।

अगात् - इण् तिप् (लुङ्) इण् प्रकृति से परे लुङ् का तिप् प्रत्यय है अतएव प्रकृति को 'गा' आदेश हुआ - गा तिप्। धातु को अट् आगम तथा धातु से परे च्लि > सिच् विकरण्, सिच् का लोप तथा तिप् के इकार का लोप हो अभीष्ट रूप सिद्ध होगा।

अगाताम् - इण् तस् > इण् ताम्। प्रकृति को 'गा' आदेश होकर - गा ताम्। अट् आगम चिल विकरण, च्लि को सिच्, सिच् का लोप हो उपर्युक्त प्रयोग सिद्ध हुआ।

अगुः - इण् झि > इण् जुस्। प्रकृति को सूत्रविहित आदेश हो - गा जुस्। अट् आगम, च्लि > सिच् विकरण, सिच्लोप प्रत्यय के सकार को रुत्व-विसर्ग हो अभीष्ट रूप सिद्ध होगा।

15. णौ गमिरबोधने (2.4.46.)

णिच् परे हो तो अबोधनार्थक (अज्ञानार्थक) इण् धातु को गमि (गम्) आदेश हो जाता है। उदाहरण - गमयति, गमयतः, गमयन्ति। इन उदाहरणों में विद्यमान इण् धातु गत्यर्थक (इण् गतौ) धातु है अतएव प्रकृति को गमि आदेश हुआ। 'प्रत्याययति' प्रत्यायतः इत्यादि प्रयोगों में विद्यमान इण् धातु ज्ञानार्थक या बोधनार्थक है अतः इन स्थलों में प्रकृति को आदेश नहीं हुआ। गमयति - इण् णिच् तिप् (लट् सम्बन्धी)। इण् को सूत्रोपदिष्ट आदेश हो - गम् - इ ति = गमि ति। शप् विकरण, इकार को गुण और अय् हो गमयति शब्द सिद्ध हुआ।

16. सनि च (2.4.47.)

सन् प्रत्यय परे होने पर भी इण् को गमि आदेश होता है यदि धातु अबोधनार्थक हो तो। उदाहरण - जिगमिषति, जिगमिषतः आदि।

जिगमिषति - इण् (गतौ) सन्। प्रकृति को गम् आदेश हो - गम् सन्। इट् आगम, धातु को द्वित्व अभ्यास कार्य तथा सन् के सकार को षत्व हो 'जिगमिषति' प्रयोग सिद्ध हुआ।

विशेष - अज्ञानार्थक इण् को ही आदेश विहित होने से अवबोधनार्थक, इण् के प्रसंग में आदेश कार्य नही होगा अतएव 'प्रतीषिषति' इत्यादि शब्द प्रयोगों में विद्यमान इण् प्रकृति को आदेश नहीं हुआ। णिच् परे रहते गमि आदेश, सन् परे रहते गमि आदेश तथा लुङ परे रहते गा आदेश में इण् प्रकृति के समान ही इक् (स्मरणे) प्रकृति को भी हों ऐसा वर्तिकाकार का अभिमत है। (वा. - ''इण्वदिक इति वक्तत्यम्'')। अतः अधि इक् तिप् (लुङ् सम्बन्धी) > अधि गा ति = अध्यगात्। अधि इक् णिच् तिप् > अधि गम् णिच् तिप् = अधिगमयति अधि इक् सन् तिप् (लट् सम्बन्धी) > अधि गम् सन् तिप् = अधिजिगमिषति - इत्यादि शब्द-प्रयोगों में भी प्रसंगानुसार गा अथवा गमि आदेश (इक् प्रकृति के स्थान पर) परिलक्षित होते है।

17. इङश्च (2.4.48.)

सन् प्रत्यय परे हो तो इङ् प्रकृति को भी गम आदेश हो जाता है।

यथा - अधि जिगांसते, अधिजिगांसाते, अधिजिंगासन्ते इत्यादि धातु रूपों में।

अधिजिगांसते - अधि इङ् सन् त। प्रकृति को 'गमि' आदेश प्राप्त हुआ। आदेश होने पर - अधि गम् सन् त ऐसी स्थिति हुई। अब द्वित्व, अभ्यास कार्य, टि को एत्वादि हो अभीष्ट शब्द बना।

18. गाङ्लिटि (2.4.49.)

लिट् लकार परे रहते इङ् को गाङ् आदेश होता है

उदाहरण - अधिजगे, अधिजगाते, अधिजगिरे आदि।

अधिजगे - अधि इङ् लिट्। इङ् को गाङ् आदेश हो - अधि गाङ् लिट्। इसके बाद लिट् एकवचन प्र. पु. में त, त को एश्, गा को द्वित्व हो - अ धि ज ग् ए = अधिजगे शब्द सिद्ध होगा।

विशेष - गाङ् आदेश लावस्था में ही हो जाता है अन्यथा त को अजादि एश आदेश, आताम तथा झ को अजादि इरेच् आदेश हो जाने पर 'द्विवचन से ऽचि' से इङ् को गाङ् आदेश बाधित हो जाता और पहले द्वित्व पुनः गाङ् आदेश होता इससे अभ्यास में ज के स्थान पर इकार का श्रवण प्राप्त होता। वस्तुतः ऐसा प्रसंग उठने की यहाँ सम्भावना ही नहीं है क्योंकि गाङ् आदेश लिट्मात्र सापेक्ष है और एश् आदेश लादेश (त् प्रत्यय) सापेक्ष है अतः अन्तरगत्वात् लिट् परे रहते पहले धातु प्रकृति को गाङ् आदेश हो जायेगा अर्थात् लावस्था में ही गाङ् आदेश हो जायेगा पश्चात् वचन एवं पुरूष के अनुसार त, आताम् आदि लादेश किये जायेंगे।

अधिजगिरे - अधि इङ् लिट् > अधि इङ् ल्। गाङ् आदेश होकर - अधि गाङ् ल्। अधि गा त > अधि गा इरेच् > अधि ज ग् इरे = अधिजगिरे।

19. ''विभाषा लुङ्लृङो'' (2.4.50.)

लुङ् एवं लृङ् लकारों में इङ् धातु को विकल्प से गाङ् आदेश होता है।

उदाहरण - आदेश पक्ष में - लुङ् - अध्यगीष्ट, अध्यगीषत्, अध्यगीष्यत, अध्यगीष्येताम्।

आदेश अभाव पक्ष में - लुङ् - अध्यैष्ट, अध्यैषत्। लृङ् - अध्यैष्यत्, अध्यैषाताम्।

अध्यगीष्ट - अध्यैष्ट - अधि इङ् त (लुङ् सम्बन्धी)। इङ् को गाङ् आदेश होकर - अधि गा त। गा को अट् आगम च्लि, च्लि को सिच्, विकरण 'गाङ् कुटादिभ्यः' सूत्र से ङित्व तथा 'घुमास्थाजहातिसां हलि' से ईत्व, षत्व, ष्टुत्व हो - अधि अगीष्ट - अध्यगीष्ट् शब्द बना।

अध्यैष्ट - गाङ् आदेश के अभाव में अधि इ त इस दशा में आट् आगम् आ इ को वृद्धि एकादेश, च्लि > सिच् विकरण, षत्व, ष्टुत्व हो ऐसा रूप बना।

अध्यगीष्यत् - अधि इङ् त (लुङ् सम्बन्धी) इङ् प्रकृति को गाङ् हो = अध्यगीष्यत्।

गाङ् आदेश के अभाव में - अधि इङ् त > अधि आ इ स्य त = अधि ऐ स्य त > अध य् ये स्य त = अध्यैष्यत्।

20. ''णौ च संश्चङोः'' (2.4.51.)

सन् परे है जिससे तथा चङ् परे है जिससे ऐसे णिच् के परे रहते भी इङ् धातु को विकल्प से गाङ् आदेश होता है।

उदाहरण - आदेश पक्ष में - अधिजिगापयिषति (सन् के परे रहने पर) अध्यजीगपत् (चङ् परे रहते)।

आदेश के अभाव पक्ष में - अध्यापिपपियति तथा अध्यापिपत्।

अधिजिगापयिषति - अध्यापिपयिषति - अधि इङ् णिच् सन् तिप्। इङ् के परे संन्परक णिच् प्रत्यय है अतएव सूत्र द्वारा धातु को वैकल्पिक गाङ् आदेश प्राप्त हुआ। आदेश होकर अधि गा णिच् सन् तिप् = अधिजिगापयिषति शब्द सिद्ध होगा।

अध्यापपिपयिषति - अधि इङ् णिच् सन् तिप्। आदेश में भाव पक्ष में ''क्रीङ् जीनां णौ'' से इङ् को आत्व, पुक् आगम आदि हो - अधि अपि् णिच् इट् सन् तिप् - इस स्थिति में द्वितीय एकाच् 'पि' को द्वित्व, उत्तरवर्ती पि के इकार को गुण, अयादेश अधि के इकार एवं अपि के आकार का यण् हो, सन्

के सकार को षत्व हो अध् या अपि प अय इ ष ति अध्यापिपयिषति शब्द सिद्ध हुआ।

'गा' को पुक् आगम, द्वित्व अभ्यासादि कार्य करने पर अधि अजीगपत् = अध्यजीगपत् शब्द सिद्ध होगा।

आदेश के अभाव पा में आत्वादेश, पुक् आगम आदि हो अधि आपिपत् = अध्यापिपत् शब्द सिद्ध हुआ।

21. ''अस्तेर्भूः'' (2.4.52.)

आर्धधातुक का विषय यदि उपस्थित हो तो अस् धातु को भू आदेश होता है।

उदाहरण - अभूत्, भविता, भवितुम्, भवितत्यम्।

अभूत् - अस् लुङ् > अट् अस् तिप्। अट् अस् च्लि तिप् > अ अस् सिच् तिप्। सिच् प्रत्यय आर्धधातुक संज्ञक है अतएव यहाँ आर्धधातुक का विषय उपस्थित है जिससे अस् धातु को भू आदेश प्राप्त हुआ। आदेश होकर - अ भू सिच् तप् > अ भू त = अभूत् सिद्ध हुआ।

भविता - अस् इऱ् तास् ऽा। तास् प्रत्यय आर्धधातुक प्रत्यय है अतः अस् को भूभाव हुआ - भू इ तास् ऽा = भू इत् आ = भविता।

भवितुम - अस् इऱ् तुमन्। तुमन् प्रत्यय भी आर्धधातुक प्रत्यय है अतएव यहाँ भी अस् को भूभाव हुआ भू इ तुम् = भवितुम्।

भवितव्यम् - अस् इट् तव्य। तृव्य के आर्धधातुक होने से अस् को भू आदेश हुआ - भू इ तव्य = भवितव्यम्।

भूयात् - अस् यासुट् तिप्। यहाँ आशीर्लिङ् सम्बन्धी याषुट् आर्धधातुक का विषय समुपस्थित है अतएव अस् धातु को सूत्रविहित भू आदेश प्राप्त हुआ भू यास् त् > भूयात्।

22. ''ब्रुवो वचिः'' (2.4.53.)

आर्धधातुक विषय में ब्रूञ् धातु को वचि आदेश होता है।

उदाहरण - वक्ता, वक्तुम्, वक्तत्यम्। वचि का इकार उच्चारणार्थ ग्रहण किया गया है। अतः आदेश वच् स्वरूप का होगा।

वक्ता - ब्रूञ् तास् ऽा। लुट् में आर्धधातुक तास् का विषय उपस्थित होने से ब्रू को वच् आदेश हुआ - वच् त् आ > वक्ता।

वक्तुम् - बूञ् तुमुन्। आर्धधातुक तुमुन् का प्रसंग होने से ब्रू को वच् आदेश हो - वच् तुम् = वक्तुम्।

उवाच - ब्रू णल्। लिट् सम्बन्धी तिङ् आर्धधातुक होता है अतएव तिङादेश णलादि भी आर्धधातुक हुये। आर्धधातुक का विषय समुपस्थित होने से बूञ् धातु को वच् आदेश होगा - वच् णल् द्वित्व, अभ्यास - कार्यादि हो - उवाच शब्द निष्पन्न होगा।

23. ''चक्षिङः ख्याञ्'' (2.4.54.)

आर्धधातुक के विषय में चक्षिङ् धातु को ख्याञ् आदेश होता है।

उदाहरण - आख्याता, आख्यातुम्, आख्यातव्यम्।

आख्याता - आङ् चक्षिङ् तृच्। तृच् के आर्धधातुक होने से चक्षिङ् को ख्याञ् आदेश हुआ .... आ ख्याञ् तृ > आख्यातृ। प्रथमा एक वचन में ''आख्याता'' बना।

आख्यास्यति - आ चक्षिङ् स्य तिप् इस प्रयोग में लुट् सम्बन्धी आर्धधातुक स्य विकरण के उपस्थित होने से चक्षिङ् को ख्याञ् आदेश होने से चक्षिङ् को ख्याञ् आदेश हुआ - आ ख्या स्यति। = आख्यास्यति।

विशेष - इस सूत्र पर एक इष्टि एवं तीन वार्तिक है। इष्टि है - ''क्शादिरप्ययमादेश इष्यते'' अर्थात् ''क्शा'' स्वरूप के लिये भी आदेश कथन होना चाहिये जिससे आक्शाता, आक्शातुम् आदि शब्द स्वरूप निष्पन्न होते हैं।

वार्तिकों में दो वार्तिक निषेधपरक हैं - ''वर्जने प्रतिषेधो वक्तव्यः'' तथा ''असनयोश्च प्रतिषेधो वक्तव्यः'' तथा जहाँ वर्जन अर्थ हो वहाँ आदेश का निषेध हो जैसे - ''दुर्जना संचक्ष्या'' यहाँ संचक्ष्य शब्द में वर्जन अर्थ गम्यमान होने से ख्याञ् आदेश नहीं हुआ।

दूसरा वार्तिक अस् एवं अन प्रत्यय परे होने की स्थिति में आदेश को प्रतिषिद्ध करता है। जैसे - नृचक्षा राक्षसाः - नृ चक्षिङ् असुन् यहाँ ख्याञ् आदेश नहीं होगा। अतः नृचक्षाः स्वरूप सिद्ध हो सकेगा, तथा ''विचक्षणः पण्डितः'' यहाँ वि चक्षिङ् अन - इस प्रसंग में आदेश न करने से ही अभीष्ट शब्द ''विचक्षणः'' सिद्ध हो सकता है।

तृतीय वार्तिक है - ''बहुलं संज्ञाछन्दसोरिति वक्तव्यम्।'' अर्थात् संज्ञा एवं वेद विषय में चक्षिङ् को ख्याञ् आदेश बाहुलकात् विहित करना चाहिये।

24. ''वा लिटि'' (2.4.5..)

यह सूत्र लिट् आर्धधातुक परे रहते चक्षिङ् धातु को वैकल्पिक ख्याञ् आदेश विहित करता है।

उदाहरण - आचख्यौ, आचख्यतुः आदि।

आदेश के अभाव में - आचचक्षे, आचचक्षाते आदि।

आचख्यौ। - आ चक्षिङ् णल्। चक्षिङ् को ख्याञ् आदेश होकर - आ ख्याञ् णल् - ऐसा स्वरूप बना। ''आत सौ णलः'' से औख हो ''आचख्यौ'' शब्द सिद्ध हुआ।

आचचक्षे - आ चक्षिङ् त। ख्याञ् आदेश के अभाव पक्ष में द्वित्व, अभ्यासकार्य, त को एशादेश इत्यादि हो, इस प्रकार का शब्द सिद्ध हुआ।

25. ''अजेर्व्यघञपोः'' (2.4.56)

घञ् एवं अप् प्रत्ययों को छोड़कर आर्धधातुक प्रत्यय के परे रहते अज् धातु को 'वी' आदेश होगा।

उदाहरण - प्रवयणीयः, प्रवायकः -

प्रवयणीयः - प्र अज् अनीयर्। अनीयर् घञ् एवं अप् से भिन्न आर्धधातुक संज्ञक प्रत्यय है अतः अज् को प्रकृत सूत्र द्वारा विहित ''वी'' आदेश प्राप्त होता है। 'वी' अनेकाल् आदेश है अतः सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर स्थानापन्न होगा। आदेश हो - प्र वी अनीय - ऐसा स्वरूप सिद्ध हुआ वी के ईकार को गुण, अयादेश, प्रत्यय के नकार को णत्व हो 'प्रवयणीय' शब्द बना। स्वादिकार्य हो प्रवयणीयः।

प्रवायकः - प्र अच् ण्वुल्। अज् को वी आदेश होकर - प्र वी वु > प्र वै अक > प्रवाय् अक > प्रवायक सु > प्रवायकः।

इस सूत्र का भाष्य करते हुए महाभाष्यकार ने एक रोचक प्रसंग का वर्णन किया है। इस प्रसंग द्वारा प्राप्तिज्ञ (सूत्र प्रवृत्ति का ज्ञाता) वैयाकरण की निन्दा एवं इष्टिज्ञ (शिष्ट जनों में प्रचलित अभीष्ट शब्द प्रयोग का ज्ञाता) की प्रशंसा करते हुए महाभाष्यकार ने यह मत प्रदर्शित किया है कि वैयाकरण को लक्ष्यानुयायी होना चाहिए। केवल लक्षण का अनुसरण करने वाला वैयाकरण प्रातिज्ञ एवं लक्ष्य की सिद्धि के लिए लक्षण का उचित अनुसरण तथा कहीं - कहीं अनुसरण करने वाला इष्टि ज्ञ कहलाता है।

प्रसंग इस प्रकार है -

एवं हि कश्चिद् वैयाकरण आह – 'कोऽस्य रथस्य प्रणे तेति। सूत आह – 'आयुष्मन्न है अस्य स्थस्य प्राजितेति। वैयाकरण आह – 'अपशब्द' इति। सूत आह – प्राप्तिज्ञा देवानांप्रियो न त्विप्टिज्ञः, इष्यत एतद्रूपमिति। वैयाकरण आह – 'अहो न खल्वनेन दुरूतेन बाध्यामहे इति। सूत आह – 'न खलु वेञः सूतः, सुवतेरेव सूतः। यदि सुवतेः कुत्सा प्रयोक्तव्या दुः सूतेनेति वक्तव्यम्।

वैयाकरण ने रथ के सचालक के लिए 'प्रवेता' शब्द का प्रयोग किया। प्र उपसर्गपूर्वक अज् धातु से तृच् पुनः अज् को 'वी' आदेश करके प्रथमा एकवचन में प्रवेता शब्द बनता है। वैयाकरण सूत्रप्रवृत्ति का ज्ञाता था। अतः उसने अज् को 'वी' आदेश युक्त शब्द का प्रयोग किया। रथ का सारथी लोक में व्यवहृत शब्द का ज्ञाता था अतएव उसने मूल धातुयुक्त 'प्राजिता' शब्द का ही प्रयोग किया। वैयाकरण ने 'प्राजिता' को अशुद्ध प्रयोग कहा जिस पर सारथी ने प्राप्तिज्ञ को मूर्ख बताया और स्पष्ट किया कि इष्टिज्ञ को 'प्राजिता' शब्द प्रयोग ही अभीष्ट है प्रवेता नहीं। अपने मत का इस प्रकार खण्डन होते देख वैयाकरण कुछ रूष्ट हो बोला – अहा मैं इस दुष्ट सारथी द्वारा बाधित किया जा रहा हूँ।

यहाँ वैयाकरण ने दुष्ट सारथी के अर्थ में 'दुरूत' शब्द का प्रयोग किया। उसने दुर् उपसर्ग पूर्वक वेञ् से क्त प्रत्यय वकार को सम्प्रसारण पूर्वरूप करके दुरूत शब्द सिद्ध किया। सारथी ने न केवल वैयाकरण के 'दुरूत' शब्द – प्रयोग को अनुचित बताया अपितु साधु शब्द प्रयोग को भी निर्दिष्ट किया – वेञ् से सूत नहीं बनेगा षूञ् प्रेरणे से सूत बनेगा और कुत्सा अर्थ में 'दुः सूतेन' ऐसा शब्द बनेगा न कि दुरूत।

इस सम्पूर्ण कथोपकथन से निष्कर्ष निकलता है कि व्याकरण शिष्टजनों के बीच प्रचलित शब्द प्रयोगो का अन्वाख्या ना करने वाला शास्त्र है जब कभी ऐसा अवसर उत्पन्न हो कि सूत्र प्रवृत्ति द्वारा अभीष्ट प्रयोग न सिद्ध हो रहा हो अथवा शब्द का स्वरूप सूत्र प्रवृत्ति के कारण परिवर्तित हो रहा हो तो सूत्रवृत्ति को बलात् लादना उचित नहीं। व्याकरण का उद्देश्य है – "स्थितस्य गतिचिन्ता" अर्थात् लोक प्रचलित शब्दों के स्वरूप की रक्षा न कि नवीन एवं अप्रचलित शब्दों की रचना। इसलिए 'रघुनाथ' जैसे शब्द प्रयोग में "पूर्वपदात् संज्ञायामणः" से प्राप्त णत्व की अवहेलना की जाती है।

26. "वा यौ" (2.4.56)

सूत्र का सूत्रार्थ दो भिन्न अर्थो में किया गया है। काशिका के अनुसार सूत्र का अर्थ है – यु (ल्युट्) परे होते अज् को विकल्प से 'वी' आदेश हो। इन्होने सूत्रस्थ 'वा' शब्द को विकल्प सिद्यर्थक

माना है। 'यौ' शब्द से ल्युट् प्रत्यय का ग्रहण किया है। 'यु' से ल्युट् प्रत्यय के ग्रहण की व्याख्या करते हुये न्यासकार कहते है – 'यु' इति क्यटोग्रहणमिति। अन्यस्या सम्भवात्। इस प्रकार का सूत्रार्थ करने वाले वैयाकरण 'प्रवयण' एवं 'प्राजन' इन दो शब्द प्रयोगों की सिद्धि को ध्यान में रखते हुए ऐसा सूत्रार्थ करते है। प्र उपसर्गपूर्वक अज् धातु से ल्युट् प्रत्यय करने पर धातु को वैकल्पिक 'वी' आदेश होगा। आदेश पक्ष में – प्र वी अन > प्र वी अन > प्र व् अ य् अन > प्रवयन = प्रवयणः। तथा आदेश के अभाव में प्र अज् अन = प्राजन बनेगा। महाभाष्यकार पतंजलि द्वारा किया गया दूसरे प्रकार का सूत्रार्थ इस प्रकार है 7 "यु (युच्) परे हो तो अज् धातु को वा आदेश हो।" भाष्यकार का कथन है – "न इयं विभाषा, आदेशो अयं विधीयते। वा इत्ययमादेशो भवति अजेर्यो परतः। वायुरिति" इन्होने 'वा' को विभाषा का बोधक न मानकर आदेश माना है और यु से ल्युट् प्रत्यय को ग्रहण न कर युच् का ग्रहण किया है। यह युच् औणादिक प्रत्यय है। इस प्रकार के सूत्रार्थ के फलस्वरूप 'वायु' शब्द की सिद्धि होती है। अज् से युच् होने पर अज् को वा आदेश करके 'वायु' शब्द बनता है।

काशिकाकार का सूत्रार्थ कथन प्रवयण एवं प्राजन जैसे आदेश युक्त एवं आदेश रहित मूलधातुयुक्त भिन्न-भिन्न शब्द प्रयोगों की सिद्धि हेतु विकल्प फलित करने के उद्देश्य से प्रेरित है। तो भाष्यकार के सूत्रार्थ का उद्देश्य 'वायु' शब्द की सिद्धि है। भाष्यकार ने 'प्रवयण' एवं 'प्राजन' शब्दों की सिद्धि अर्जेर्वी सूत्र द्वारा ही की है। अर्जेर्वी, सूत्र पर वार्तिक था "धञणेः" प्रतिषेधे क्यप् "उपसंख्यानम् कर्त्तव्यम्" अर्थात् धञ् एवं अप के प्रतिषेध के क्रम में क्यप् का भी प्रतिषेध कथन होना चाहिए तथा सूत्र पर एक इष्टि है 'विलादावार्धधातुके विकल्प इष्यते" अर्थात् वलादि आर्धधातुक प्रत्यय परे हो तो आदेश विकल्प से हो। इससे प्रवेता, प्राजिता आदि शब्द सिद्ध होते हैं। इस वार्तिक एवं इष्टि पर अपना मत प्रकट करते हुए भाष्यकार ने व्यवस्था दी है कि क्यप् का प्रतिषेध वलादि आर्ध धातुक में विकल्प कथन तथा सूत्र में "अघञपोः" कथन की भी आवश्यकता नहीं। "अजेर्व्यधञपोः" के स्थान पर 'अजेर्वी' मात्र सूत्र पाठ किया जाए। पूर्ववर्ती सूत्र 'वा लिटि' से इस सूत्र में 'वा' की अनुवृत्ति होगी। यह 'वा' व्यवस्थित विकल्प का बोधक होगा। अतः आवश्यकतानुसार कहीं आदेश होगा कहीं नहीं होगा और कहीं विकल्प से होगा। इससे प्रवेता, प्रवेतुम्, प्रवीतः तथा संवीतिः में वी आदेश होगा, समाजः, उदाजः, समजनम्, उदजनम्, समज्या आदि में 'वी' आदेश नहीं होगा। इसके अतिरिक्त प्रवेता, प्राजिता, प्रवयणम्, प्राजनम् जैसे ओदश युक्त एवं आदेश रहित रूपद्वय भी सिद्ध हो सकेंगे। इस प्रकार प्रवयण, प्रवेता इत्यादि वी

आदेश युक्त एवं प्राजन प्राजिता इत्यादि आदेशविहीन शब्दों की सिद्धि प्रदर्शित करके भाष्यकार 'वायौ' सूत्र द्वारा 'वायु' शब्द की सिद्धि के लिए 'वा' आदेश विधान का समर्थन करते है।

वस्तुतः उणादि प्रकरण के प्रथम सू. ''कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूम्य उण्'' द्वारा 'वा' धातु से उण् प्रत्यय विहित होने से तथा वा को आकारान्त होने से युक् आगम हो वा य् उ = वायु शब्द निष्पन्न हो जाता है। पुनः वायु शब्द की सिद्धि हेतु 'वा यौ' सूत्र में अज् को वा आदेश कथन अनावश्यक है। यदि ऐसा कहा जाए कि उणादिसूत्र शाकटायनप्रणीत है। पाणिनि प्रणीत नहीं है अतएव औणादिक प्रकरण में वर्णित विधि अपाणिनीय है अतः वायु शब्द की सिद्धि के लिये पाणिनीय शास्त्र होना आवश्यक है तो इस पर यह आक्षेप किया जा सकता है कि भाष्यकार की रीति से व्युत्पन्न किये गये शब्द में भी औणादिक युच् प्रत्यय का ग्रहण किया गया है इसलिए भाष्यकार द्वारा समर्थित व्युत्पत्ति भी पूर्णरूपेण पाणिनीय नहीं है, इस व्युत्पत्ति में मात्र आदेश ही पाणिनीय शास्त्र द्वारा विहित हुआ है प्रत्यय विधान फिर भी अपाणिनीय शास्त्र द्वारा किया गया है। यदि अज् से औणादिक युच् प्रत्यय पाणिनीय परम्परा में स्वीकार्य है तो कृपा सूत्र द्वारा वा से औणादिक प्रत्यय विधान क्यों स्वीकार्य नहीं। इसके अतिरिक्त पाणिनीय धातु पाठ से अदादिगण में 'वा गतिगन्धनयोः' धातु का उपदेश उपलब्ध है अतः 'वा' से उण् प्रत्यय एवं युक् आगम करके वायु शब्द सिद्ध करने में किसी तरह की आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

ऐसा प्रतीत होता है कि इन्ही कारणो से काशिकाकार ने सूत्र को यु (ल्युट्) के प्रसंग में वैकल्पिक 'वी' आदेश विधानार्थक माना है। यद्यपि इन्होंने इस विषय में कुछ विशेष नहीं कहा है। इनका कथन है - कि ''युः इति ल्युटोग्रहणम्'' इस वाक्यांश पर टिप्पणी करते हुए न्यास कार ने कहा है - ''यु इति ल्युटोग्रहणम्''। अन्यस्यासम्भवात्।'' पदमंजरीकार ने तो इस सूत्र को ही अनावश्यक बताया। इनके अनुसार - ''नार्थोऽनयेष्ट्या नापि घञपोः प्रतिषेधेन। नादि क्यपः उपसंख्यानम्, नापि 'वा यौ' इति सूत्रेण एतावदस्तु 'वा लिटि', अजेवीत्येव अर्थात् घञ् - अप् के प्रतिषेध की, क्यप् के प्रतिषेध कथन की, वलादि - आर्धधातुकों के योग में विकल्प कथन की और 'वा यौ' सूत्र द्वारा ल्युट् के योग में विकल्प विधान की कोई आवश्यकता नहीं। 'अर्जेवी' मात्र इतना सूत्र किया जाए एवं उसमें 'वा लिटि' सूत्र से व्यवस्थित विभाषा हेतु 'वा' की अनुवृत्ति की जाये तो उपर्युक्त सभी कार्य सिद्ध हो जाएंगे।

यद्यपि पदमंजरीकार का कथन उचित है फिर भी सूत्र वैयर्थ की स्थिति उत्पन्न होती है। कठिन परिश्रम से रचे गए सूत्रों का प्रत्याख्यान करना उचित नही ऐसा भाष्यकार का मत है। इसके

अतिरिक्त तृच्, तुमुन इत्यादि प्रत्ययों के योग में भी 'वी' आदेश युक्त एवं 'वी' आदेश रहित शब्द प्रयोग प्राप्त होते है। अतः मात्र ल्यूट् के लिए ही सूत्र द्वारा विकल्प विधान क्यों मानें। अर्जेवी, सूत्र में पूर्ववर्ती सूत्र से 'वा' की अनुवृत्ति कर तृच्, तुमुन्, ल्युट् में वैकल्पिक आदेश क्यों न मान लें और 'वा यौ' से युच् के साथ अज् को 'वी' आदेश सिद्ध कर लें। इसीलिए भाष्यकार ने आदेश विधान माना।

इस तरह भाष्यकार एवं काशिकाकार द्वारा किए गये सूत्रार्थों की अपनी अलग उपयोगिताएँ हैं। पाणिनीय परंपरा के अन्य वैयाकरणों में अधिकांश ने काशिक नुसारी सूत्रार्थ का समर्थन किया है। सिद्धान्त कौमुदी आदि प्रक्रिया ग्रन्थों में, इनकी टीकाओं में इसी प्रकार का सूत्रार्थ है। माधवीय धातुवृत्ति में भी अदादिगणीय 'वा' (गतिगन्धनयोः उदा. - घात्वक) से औणादिक उण् प्रत्यय द्वारा वायु शब्द की सिद्धि दिखाई गई है। न कि ''वा यौ'' सूत्र के वा आदेश द्वारा। नवीन व्याख्याकारों में पंडित ब्रह्मदत्त जिज्ञासु एवं उनकी शिष्या प्रज्ञादेवी ने भाष्यकार जैसा सूत्रार्थ किया है। (द्र. - अष्टाध्यायी भाष्य, द्रथवावृत्ति भाग) रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रकाशन। (4) कुल मिलाकर बहुमत काशिकानुसारी सूत्रार्थ के पक्ष में है।

27. ''आगस्त्यकौण्डिन्ययोरगस्तिकुण्डिनच्'' (2.4.70)

आगस्त्य एवं कौण्डिन्य इन शब्दों में हुए अण् एवं यञ् गोत्राभिधायक प्रत्ययों का बहुवचन में लुक् होता है और बने हुए प्रकृत्यंश को अगस्ति एवं कुण्डिनच् आदेश होते हैं।

उदाहरण - अगस्तयः, कुण्डिनाः)

अगस्तयः - अगस्त्य अण् = आगस्त्य। बहुवचन में आगस्त्य जस् = इस दशा में सूत्र द्वारा प्रत्यय का लोप एवं अवशिष्ट प्रकृति को अगस्ति आदेश विहित किया गया। उभय कार्य संपन्न हो - अगस्ति जस्, ऐसी दशा हुई अयादेश, रूत्व - विसर्ग हो प्रथमा बहुवचन में 'अगस्तयः' शब्द सिद्ध हुआ।

कुण्डिनाः - कुण्डिनी यञ् > कौण्डिन्य। कौण्डिन्य जस् - इस दशा में सूत्र द्वारा यञ् का लोप एवं अवशिष्ट प्रकृति को कुण्डिनन् आदेश होकर - कुण्डिनच् जस् = कुण्डिनाः।

28. ''श्रुवः श्रृचः'' (3.1.74)

श्रु (श्रवणे) धातु से श्नु प्रत्यय होता है कर्तावाची सार्वधातुक परे रहते तथा श्रु को श्रृ आदेश भी होता है।

उदाहरण - श्रृणोति, श्रृणुतः, श्रृण्वन्ति।

श्रृणोति - श्रु तिप्। सूत्र विहित प्रत्यय एवं आदेश होकर - श्रृ श्नु ति। ऐसा शब्द का स्वरूप हुआ। नु के उ को गुण ओ कार तथा नकार को णकारादेश हो श्रृणोति शब्द सिद्ध होता है।

श्रृणुतः - श्रु तस्। सूत्रविहित प्रत्यय एवं आदेश होकर - श्रृ श्नु तस् = श्रृणुतः शब्द बनता है।

29. "हनश्च वधः" (3.3.76)

अनुपसर्ग हन् धातु से अप् प्रत्यय भाव में होता है तथा प्रत्यय के साथ ही साथ हन् को वध आदेश भी हो जाता है।

उदाहरण - वधः।

वधः - हन् धातु को भाव अर्थ में सूत्रविहित अप् प्रत्यय तथा वध आदेश हो - वध अप्, ऐसी दशा हुई। वध के अन्त्य अकार का लोप हो प्रथमा एकवचन में सुविभक्ति होने पर 'वधः' शब्द निष्पन्न होता है।

30. "मूर्तौ घनः" (3.3.77.)

कठिनता (स्थूलता) अर्थ का प्रकाशन करना हो तो हन् धातु को अप् प्रत्यय तथा प्रत्यय के सन्नियोग में धातु को घन आदेश होता है।

उदाहरण - अभ्रघनः, दधिघनः।

अभ्रघनः - "अभ्रस्य काठिन्यम्" इस अर्थ में अभ्र एवं हन् का समास होने पर शब्द को प्रकृत सूत्र से अप् प्रत्यय एवं हन् के स्थान पर धन आदेश प्राप्त होता है। उभयकार्य होकर अभ्रघन अप् ऐसी अवस्था होती है। घन के अन्त्य अकार का लोप एवं शब्द की प्रातिपादिक संज्ञा हो, सु विभक्ति होने पर अभ्रघनः प्रयोग बनता है।

दधिघनः - दधि पूर्वपद पूर्वक हन् धातु को दधि कठिनता (स्थूलता) की अभिव्यञ्जना करने में प्रकृत सूत्र के अप् प्रत्यय तथा हन् को घन आदेश होकर - दधि धन अप् ऐसी स्थिति बनती है। घन के अकार का लोप, सु विभक्ति प्रत्यय होकर 'दधिघनः' शब्द बनता है।

31. "अन्तर्घनो देशे" (3.3.78.)

देश अभिधेय हो तो अन्तः पूर्वक हन् धातु को अप् प्रत्यय होता है तथा हन् को घन आदेश होता है।

उदाहरण - अन्तर्घनः।

अन्तः हन्, इस अवस्था में देश विशेष की संज्ञा के अर्थ में प्रयोग हेतु शब्द से अप् प्रत्यय तथा प्रकृति के हन् भाग को धन आदेश होकर अन्तः घन अप् ऐसी दशा बनी। अन्य अपेक्षित कार्य हो अन्तर घन् अः = 'अन्तर्घनः' शब्द बनता है।

'अन्तर्घनः' यह एक देश विशेष की संज्ञा है।

कहीं-कहीं णत्वादेश हो 'अन्तर्घणः' इस प्रकार का रूप भी प्राप्त हुआ है। यह रूप भी ग्राह्य है ऐसा काशिकाकार का मत है। काशिकाकार के मत पर टिप्पणी करते हुये पदमंजरी एवं न्यास टीकाओं में कहा गया - उभयथाप्याचार्येण शिष्याणां प्रतिपादितत्वात्। अर्थात् आचार्य द्वारा शिष्यों के दोनों प्रकार के रूपों का प्रतिवादन किये जाने से दोनों ही रूप ग्राह्य है।

32. "करणेऽयोविद्रुषु" (3.3.82.)

अयस् वि, द्रु - इन उनपदों से परे हन् धातु को करण कारकं में अप् प्रत्यय होता है तथा धातु को घन आदेश होता है।

उदाहरण - अयोघनः, विघनः, द्रुघनः।

अयोघनः - 'अयो हन्यतेऽनेन इति' इस अर्थ में अयस् एवं हन् का समास होने पर अयस् के उपपद होने से तथा करण कारक होने से सूत्र द्वारा करण के अर्थ में अप् प्रत्यय प्राप्त होता है हुआ तथा धातु को घन आदेश भी प्राप्त हुआ। दोनों कार्य होकर अयस् घन अप् > अयोघन, अयोघन सु = अयोघनः शब्द सिद्ध हुये।

विघनः - वि उपपद रहते हन् धातु से करण अर्थ में अप् प्रत्यय एवं धातु को घन आदेश हो - वि घन अप् > विघन शब्द बना स्वादिकार्य हो 'विघनः' शब्द बना।

द्रुघनः - 'द्रुवः हन्यते अनेन' इस अर्थ में प्रथमान्त द्रु के उपपद होते हन् से अप् प्रत्यय तथा हन् को घन आदेश हो - द्रु घन अप् > द्रुघन शब्द बना। स्वादिकार्य हो द्रुघनः शब्द सिद्ध होता है। कहीं-कहीं द्रुघणः शब्द का उदाहरण भी प्राप्त होता है। वहाँ अरीहणादिगण में पठित होने से णत्व हो जाता है। अथवा "पूर्वपदात्संज्ञायामगः" से भी णत्व हो जाता है।

33. "स्तम्बे क च" (3.3.83.)

स्तम्ब शब्द उपपद हो तो करण अर्थ में हन् धातु से क प्रत्यय होता है और चकारात् अप्

प्रत्यय भी होता है तथा अप् के सन्नियोग में हन् को घन आदेश भी होता है।

उदाहरण - स्तम्बघ्नः, स्तम्बघनः।

स्तम्बघ्नः - स्तम्ब हन् का उपपद समास होने पर सूत्र द्वारा के प्रत्यय प्राप्त हुआ। अब उपधालोप तथा हकार को कुत्व हो स्तम्ब घ् न् अ = स्तम्बहन शब्द बनता है। स्वादिकार्य हो स्तम्बघ्नः शब्द बनता है।

स्तम्बघनः - स्तम्ब उपपद रहते हन् धातु से सूत्रविहित अप् प्रत्यय तथा अप् के योग में धातु को घन आदेश होता है। प्रत्यय एवं आदेश होकर स्तम्ब घन अप् ऐसा शब्द का स्वरूप बना अन्त्य अकार का लोप एवं स्वादिकार्य होकर स्तम्बघनः शब्द सिद्ध होता है।

प्रकृत सूत्र द्वारा 'क' प्रत्यय का विधान एवं जब 'क' न हो तो पक्ष में अप् प्रत्यय एवं अप् के योग में घन आदेश विधान किया गया है।

34. "परौ घः" (3.3.84.)

परिपूर्वक हन् धातु से करण कारक में अप् प्रत्यय होता है तथा हन् को घ आदेश होता है।

उदाहरण - परिघः।

परिघः - 'परिहन्यते अनेन' इति इस अर्थ में परिपूर्वक हन् से अप् हन् को घ आदेश हो - परि घ अप् > परिघ। परिघ सु = परिघः।

35. "तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ" (4.3.2.)

उस स्वञ् तथा अण् के परे रहते युष्मद् तथा अस्मद् अङ्गों को यथाक्रम युष्माक, अस्माक - आदेश हो जाते हैं।

उदाहरण - यौष्माकीणः, आस्माकीणः, यौष्माकः, आस्माकः।

यौष्माकीणः - युष्मद् खञ्। खञ् परे रहते युष्मद् को युष्माक आदेश हो युष्माक खञ् > यौष्माकीण, यौष्माकीण सु = यौष्माकीणः।

अस्माकीणः - अस्मद्। खञ् परे रहते अस्मद् को अस्माक आदेश होने पर अस्माक खञ् > आस्माकीण, आस्माकीण सु = आस्माकीणः।

यौष्माकः - युष्मद् अण्। अण् परे युष्मद् को युष्माक आदेश होने पर - युष्माक अण्। युष्माक अण् > यौष्माक। यौष्माक सु = यौष्माकः।

आस्माकः - अस्मद् अण्। अण् परे रहने पर अस्मद् को अस्माक आदेश होने पर - अस्माक अण् > आस्माक। आस्माक सु = आस्माकः।

36. ''तवकममकावेकवचने'' (4.3.3.)

एक के वाचक युष्मद् एवं अस्मद् को यथा कृम तवक ममक आदेश हो जाते हैं खञ् एवं अण् परे हो तो।

उदाहरण - तावकीनाः, मामकीनाः, तावकाः, मामकाः।

तावकीनाः - युष्मद् खञ्। युष्मद् को तवक आदेश होने पर तवक खञ्। तवक खञ् > तावकीन तावकीन जस् > तावकीनाः।

मामकीनाः - अस्मद् खञ्। अस्मद् को ममक आदेश होने पर = ममक खञ्। ममक खञ् > मामकीन। मामकीन जस् = मामकीनाः।

तावकाः - युष्मद् अण्। युष्मद् को अण् परे रहते तवक आदेश हो - तवक अण् > तवक। तावक जस् = तावकाः।

मामकाः - अस्मद् अण्। अस्मद् को ममक आदेश होने पर = ममक अण् > मामक। मामक जस् > मामकाः।

एकवचन का आशय है - अस्मद् या युष्मद् से एक का बोध हो। 'एकोऽर्थ उच्यते येन तदेकवचनम्'। युष्माकं छात्राः = यौष्माकीणः। अस्माकं छात्रः = आस्माकीणः। तव छात्रा = तावकाः। मम छात्रा = मामकाः।

पदमंजरी के अनुसार 'एकवचने' अस्मद एवं युष्मद का विशेषण है। अतः अस्मद्, युष्मद् एकवचन में खञ् एवं अण् परे रहते क्रमशः तवक, ममक आदेश होंगे।

37. ''पथः पन्थ च'' (4.3.29.)

सप्तमी समर्थ प्रातिपादिक पथिन् से 'तत्र जातः' अर्थ में बुन् प्रत्यय एवं प्रातिपदिक को पन्थ आदेश होता है।

उदाहरण - पन्थकः 'पथि जातः' इस अर्थ में सप्तम्यन्त समर्थ प्रातिपदिक पथिन् से सूत्र-विहित बुन् प्रत्यय एवं पथिन् को पन्थ आदेश होकर पन्थ बुन् = पन्थक शब्द बना। सु विभक्ति होकर पन्थकः शब्द बनता है।

38. ''पन्थो ण नित्यम्'' (5.1.76.)

द्वितीया समर्थ प्रातिपदिक पथ के स्थान में पन्थ आदेश तथा ण प्रत्यय नित्य हो जाता है ''नित्यं गच्छति'' इस अर्थ में।

उदाहरण - पान्थः।

पान्थः - पन्थानं नित्यम् गच्छति इस अर्थ में प्रकृत सूत्र द्वारा 'पथ' प्रातिपदिक से ण प्रत्यय तथा प्रतिपदिक को पन्थ आदेश प्राप्त होते है। उभय कार्य होकर पथ ण > पान्थ, शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर पान्थः शब्द निष्पन्न हुआ।

39. ''इनच्पिटच्चिकचि च'' (5.2.33.)

नासिका का झुकाव अभिधेय हो तो 'नि' प्रातिपादिक से इनच् पिटच् प्रत्यय होते हैं, संज्ञा विषय में तथा नि को प्रत्यय के यथासंख्य चिक, चि आदेश भी होते हैं।

उदाहरण - चिकिनः, चिपिटः।

चिकिनः - नासिका का झुकाव अर्थ में 'नि' प्रातिपदिक से प्रकृत सूत्र द्वारा इनच् प्रत्यय तथा प्रातिपदिक को चिक आदेश प्राप्त हुआ। सूत्रविहित कार्य होकर - चिक इनच् > चिकिन शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर चिकिनः शब्द सिद्ध होता है।

चिपिटः - नि प्रातिपदिक से पिटच् प्रत्यय तथा प्रातिपदिक को चि आदेश होकर - चि पिटच् > चिपिट, सु = चिपिटः शब्द बना। इस सूत्र पर तीन वार्तिक है -

1. ककारः प्रत्ययो वक्तव्यरिचक्च प्रकृत्याऽऽदेशः अर्थात् नासिका का अवनमन अभिधेय हो तो क प्रत्यय एवं प्रकृति को चिक आदेश कहना चाहिये, इसका समाधान सूत्रस्थ चकार को अनुक्तसमुच्चयार्थक मानकर किया जा सकता है। सूत्रस्थ चकार से नासिका का नमन अभिधेय हो तो नि प्रातिपदिक को चिक आदेश तथा प्रातिपदिक से क प्रत्यय होते हैं - चिक क > चिक्क सु = चिक्कः।
2. क्लिन्नस्य चिल् पिल्लश्चास्य चक्षुषी - क्लिन्न प्रातिपदिक को 'चिल्', 'पिल्' ये आदेश तथा 'ल' प्रत्यय होते हैं 'अस्य चक्षुषी' अर्थ में। क्लिन्ने अस्य चक्षुषी इति चिल्लः अथवा पिल्लः। चिल् ल > चिल्ल सु = चिल्लः। पिल् ल > पिल्ल। पिल्ल सु = पिल्लः।
3. चुलादेशो वक्तत्यः - ''क्लिन्ने चक्षुषी'' इस अर्थ में 'नि' प्रातिपदिक को चुल् आदेश होता है। चुल् ल > चुल्ल सु = चुल्लः।

40. "इदम् इश्" (5.3.3.)

प्राग्दिशीय 7 प्रत्ययों के परे रहते इदम् के स्थान में 'इश्' आदेश होता है।

उदाहरण - इह, इतः।

इह - इदम् ह। 'ह' प्राग्दिशीय प्रत्यय है अतएव इदम् को इश् आदेश होगा आदेश हो - इश् ह > इह शब्द बनता है।

इतः - इदम् तसिल्। इदम् को इश् हो इ तस् > इतः।

41. "एतेतौ रथोः" (5.3.4.)

रेफादि एवं थकारादि प्राग्दिशीय प्रत्यय परे हो तो इदम् को एत एवं इत् आदेश होते हैं।

उदाहरण - एतर्हि, इत्थम्।

एतर्हि - इदम् र्हिल्। र्हिल् रेफादि प्राग्दिशीय प्रत्यय है अतः सूत्र द्वारा प्रकृति - इदम् को एत आदेश प्राप्त होता है। आदेश होकर - एत र्हिल् > एतर्हि।

इत्थम् - इदम् थमु। थकारादि प्राग्दिशीय प्रत्यय परे होते इदम् को इत् आदेश होकर इत् थम् > इत्थम् शब्द बना।

42. "एतदोऽन्" (5.3.5.)

प्राग्दिशीय प्रत्यय परे हो तो एतद् के स्थान में अन् आदेश होता है।

उदाहरण - अतः, अत्र आदि।

अतः - एतद् तसिल् > एतद् तस्। तसिल प्राग्दिशीय प्रत्यय है। अतः एतद् को उपर्युक्त् सूत्र द्वारा अन् आदेश प्राप्त होता है। आदेश होकर - अन् तस् - ऐसी स्थिति हुई। अब अन् की स्थानिवद्भाव से प्रातिपदिक संज्ञा हुई और 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य" सूत्र से अन् के अन्त्य नकार का लोप, तस् के सकार को रुत्व विसर्ग हो अतः प्रयोग सम्पन्न हुआ।

अत्र - एतद् त्रल्। आलोच्य सूत्र द्वारा एतद् को अन् आदेश हो अन् त्र बना। न् का प्रातिपदिकान्त लोप हो अत्र शब्द सिद्ध हुआ। इस सूत्र का पाठ भी भिन्न-भिन्न रूप में मिलता है। महाभाष्य में यह सूत्र इसी रूप में पठित है। सिद्धान्त कौमुदी आदि ग्रन्थों में भी इसी प्रकार का सूत्रपाठ हुआ है काशिका में यह सूत्र 'एतदोऽश्' इस रूप में मिलता है। 'एतदोऽश्' सूत्रपाठ सवदशत्व की सिद्धि को अनुरोध वशात् किया गया है। अश् आदेश शित् है अतएव सम्पूर्ण एतद् के स्थान पर होगा। शकार

का लोप हो अकार मात्र अवशिष्ट रहेगा और अत्र, अतः इत्यादि प्रयोग सम्पन्न हो सकेंगे। भाष्यकार के सूत्रपाठ में भी अनेकाल्त्वेन सर्वादिशत्व सिद्ध हो जाता है किन्तु नकार के लोप का प्रश्न उठता है जिसके लिये भाष्यकार ने अन् की स्थानिवद्भाव से प्रातिपदिक संज्ञा करके ''न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य'' से नकार के लोप की व्यवस्था दी है। इस तरह आदेश चाहे अन् माना जाये अथवा अश् प्रकृति में अकार मात्र ही अवशिष्ट रहता है।

द्वितीय अध्याय में चौथे पाद का तैतीसवाँ सूत्र है ''एतदस्त्रतसौ चानुदात्तौ''। यह सूत्र त्रल् एवं तसिल् परे रहते एतद् को अनुदात्त अशादेश विहित करता है। ये दोनों ही प्राग्दिशीय प्रत्यय हैं। इस प्रकार 'एतदस्त्रतसौ चानुदात्तौ' सूत्र एवं एतदोऽश् सूत्र - इन दोनों में एक ही स्थायी को एक जैसे ही आदेश विहित हुये हैं। अतः इनमें से किसी एक सूत्र द्वारा ही कार्य सिद्धि संभव होने से दो में किसी एक सूत्र का प्रत्याख्यान हो ऐसा विचार उठता है। इसका समाधान करते हुये काशिकाकार ने कहा कि पांचमिक अध्याय का अशादेश उदात्त है और द्वितीय अध्याय का अनुदात्त। सर्वानुदात्त पद हेतु 'एतदस्त्रत' सूत्र आवश्यक है और उदात्त स्वर हेतु पांचमिक अशादेश भी उचित है।

जहाँ तक एतदोऽश् पाठ होना चाहिये था 'एतदोऽन्' इस प्रकार की द्विविधा की बात है तो इस विषय में 'एतदोऽन्' पाठ ही ठीक लगता है। एतदोऽश् सूत्रपाठ वृत्तिकार का है भाष्यकार ने एतदोऽन् सूत्रपाठ ही माना है। कौमुदी आदि ग्रन्थों में भी अन् पाठ ही मिलता है भाष्यकार काशिकाकार की अपेक्षा प्रामाणिक माने जाते हैं और परवर्ती वैयाकरण भी अन् पाठ के समर्थक है तथा अन् आदेश पाठ में शब्दसिद्धि में कोई कठिनाई भी नहीं होती अतएव एतदोऽन् सूत्रपाठ ही उचित एवं न्यायय है।

43. ''पूर्वाधरावराणामसि पुरधवश्चैषाम्'' (5.3.39.)

सप्तमी, पंचमी प्रथमान्त जो पूर्व अधर, अवर शब्द उनसे अस्ताति प्रत्यय के अर्थ में असि प्रत्यय होता है और प्रत्यय के साथ-साथ पूर्व, अधर, अवर को यथाक्रम पर, अधृ, अव् आदेश हो जाते हैं।

उदाहरण - पुरो वसति, पुर आगतः, पुरो रमणीयम्। अधोः वसति, अध आगतः अधो रमणीयम्। अवो वसति, अव आगतः अवो रमणीयम्।

पुरोवसति - पूर्व शब्द से प्रकृत सूत्र द्वारा अस्ताति के अर्थ में असि प्रत्यय तथा पूर्व को आदेश प्राप्त हुआ और पुर् अस् ऐसी स्थिति हुई। सकार को रुत्व, रु को उकार, अकार, उकार के स्थान

पर गुण ओकार हो 'पुरो' प्रयोग सिद्ध होता है।

अध आगतः - अधर शब्द को सूत्र द्वारा अस्ताति अर्थ में असि प्रत्यय तथा अध् आदेश हो - अध् असि > अधस् ऐसी स्थिति हुई। अन्य अपेक्षित कार्य हो अभीष्ट रूप बनता है।

अवो रमणीयम् - अवर शब्द से सूत्रविहित असि प्रत्यय तथा अवर को अव आदेश होकर - अव् अय् अवस्, ऐसी दशा हुई। स को रु, रु को हश् रकार परे होते उकार, उकार एवं अकार के स्थान पर गुण ओकार हो 'अवो' प्रयोग सिद्ध होता है।

44. ''अस्ताति च'' (5.3.40.)

सप्तमीपंचमीप्रथमान्त जो पूर्व, अधर, अवर शब्द उनको अस्ताति प्रत्यय परे रहते भी पुर्, अध्, अव् आदेश हो जाते हैं।

उदाहरण - पुरस्ताद्वसति, अधस्तादागतः, अधस्ताद्रमणीयम्।

पुरस्तात - पूर्व अस्ताति - इस दशा में सूत्र द्वारा पूर्व को पुर् आदेश हो पुर् अस्तात् - पुरस्तात् शब्द बनता है।

अधस्तात् - अधर अस्तात्। अधर को सूत्रविहित अध् आदेश हो - अध् अस्तात्=अधस्तात्।

45. ''विभाषाऽवरस्य'' (5.3.41.)

अवर को अस्ताति परे होते विकल्प से 'अव' आदेश होता है।

उदाहरण - अवस्ताद्वसति, अवरस्ताद्वसति।

अवस्तात् - अवर अस्ताति > अवर अस्तात्। अवर को अस्ताति परे रहते वैकल्पिक अवादेश प्राप्त है। अवादेश होकर अव् अस्तात् = अवस्तात् शब्द बना। आदेश के अभाव पक्ष में अवर अस्तात् > अवरस्तात् शब्द बनता है।

46. ''प्रशस्यस्य श्रः'' (5.3.60.)

प्रशस्य शब्द के स्थान में अजादि। अर्थात् इष्ठन्, ईयसुन परे रहते श्र आदेश होता है।

उदाहरण - श्रेष्ठः, श्रेयान्।

श्रेष्ठः - सर्व इमें प्रशस्याः, अयमेषामतिशयेन प्रशस्यः इस प्रकार के अर्थ में प्रशस्य शब्द से इष्ठन् प्रत्यय हुआ - प्रशस्य इष्ठन्। प्रशस्य को अजादि इष्ठन् परे रहते प्रकृत सूत्र द्वारा श्र आदेश प्राप्त होता है। आदेश होकर - श्र इष्ठन् > श्रेष्ठ शब्द बना। सु विभक्ति हो श्रेष्ठः शब्द बना। जिसका अर्थ

है अतिशयेन प्रशस्यः।

श्रेयान् - 'अयमनयोरतिशयेन प्रशस्यः' - इस अर्थ में प्रशस्य से ईय सुन प्रत्यय हुआ। अब आलोच्य सूत्र द्वारा प्रशस्य को श्र आदेश प्राप्त होता है। आदेश होकर - श्र ईयसुन्, ऐसा शब्द का स्वरूप हुआ। श्रेयस् इस प्रकार के शब्द स्वरूप से सु विभक्ति होकर प्रथमा एकवचन में श्रेयान् शब्द बना।

47. "ज्य च" (5.3.61.)

प्रशस्य शब्द के स्थान में ज्य आदेश भी होता है अजादि प्रत्ययों के परे रहते।

उदाहरण - ज्येष्ठः, ज्यायान्।

ज्येष्ठः - प्रशस्य इष्ठन्। प्रशस्य के स्थान में ज्य आदेश होकर - ज्य इष्ठन् > ज्येष्ठः शब्द बनता है।

ज्यायान् - प्रशस्य ईयसुन्। प्रशस्य को सूत्रविहित ज्य आदेश हो - ज्य ईयस्। इस प्रकार की स्थिति हुई। ईयस् के ईकार को आत्व हो प्रथमा एकवचन में ज्यायान् शब्द बना।

48. "वृद्धस्य च" (5.3.62.)

वृद्ध शब्द के स्थान में भी अजादि प्रत्यय परे रहते ज्य आदेश होता है।

उदाहरण - ज्येष्ठः, ज्यायान्।

ज्येष्ठः - वृद्ध इष्ठन्। वृद्ध को ज्य आदेश हो - वृद्ध इष्ठन् > ज्येष्ठः शब्द बनता है।

ज्यायान् - वृद्ध ईयसुन। वृद्ध को सूत्र विहित ज्य आदेश हो - ज्य ईयसुन्। ईयस् के ईकार को आत्व हो प्रथमा एकवचन में 'ज्यायान' शब्द सिद्ध होता है। "ज्य च" इस सूत्र द्वारा निष्पन्न जयेष्ठः का अर्थ <u>'अयमेषाम् अतिशयेन प्रशस्यः'</u> है तथा ज्यायान् का अर्थ <u>'अयमनयोरतिशयेन प्रशस्य'</u> है जबकि 'वृद्धस्य च' सूत्र से निष्पन्न ज्येष्ठः का अर्थ <u>'अयमेषामतिशयेन वृद्धः'</u> है तथा ज्यायान् का <u>'अयमनयोतिशयेन वृद्धः'</u> है।

49. "अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ" (5.3.63.)

अन्तिक, बाढ शब्दों को यथासंख्य नेद, साध आदेश होते है अजादि प्रत्ययों के परे रहते।

उदाहरण - नेदिष्ठम्, नेदीयः, साधिष्ठम्, साधीयः।

नेदिष्ठम् - अन्तिक शब्द से इष्ठन् प्रत्यय हुआ। अब अन्तिक को प्रकृत सूत्र से नेद आदेश हो नेद् इष्ठन् > नेदिष्ठ शब्द बनता है। नेदिष्ठ सु = नेदिष्ठम्।

नेदीयः - अन्तिक ईयसुन्। अन्तिक को सूत्र विहित नेद आदेश हो नेद ईयसुन् - नेदीयः शब्द बनता है।

साधिष्ठः - बाढ इष्ठन्। बाढ को सूत्र द्वारा प्राप्त साध आदेश हो साध इष्ठन् = साधिष्ठः।

साधीयः - बाढ ईयसुन् - बाढ को साध आदेश हो - साध ईयसुन् = साधीयः।

नेदिष्ठ : का अर्थ है सर्वाधिक समीप और साधिष्ठः का सर्वाधिक अच्छा।

50. ''युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम्'' (5.3.64.)

युव, अल्प - इनसे परे अजादि प्रत्यय हों तो इन्हे विकल्प से कन् आदेश होता है।

उदाहरण - कनीयान्, कनिष्ठः। पक्ष में - यवीयान्, अल्पीयान्, यविष्ठः, अल्पिष्ठः।

कनिष्ठः - सर्व इमे युवानः, अयमेषामतिशयेन युवा इति कनिष्ठः युव् शब्द से अजादि इष्ठन् प्रत्यय परे रहते युव को कन् आदेश होकर - कन् इष्ठन् > कनिष्ठ शब्द बनता है। स्वादिकार्य हो कनिष्ठः शब्द सिद्ध होता है।

सर्व इमे अल्पाः अयमेषामतिशयेनाल्पः कनिष्ठः। अल्प से अजादि इष्ठन् प्रत्यय परे रहते सूत्र द्वारा अल्प को कन् आदेश प्राप्त हुआ कन् आदेश होकर - कन् इष्ठन् = कनिष्ठ, कनिष्ठ सु = कनिष्ठः प्रयोग सिद्ध होता है।

कनीयान् - उभौ इमौ अल्पौ अयमेषामतिशयेनाल्पः कनीयान्। द्वाविमौ युवानौ अयमेषामतिशयेन युवा - कनीयान्। युव अथवा अल्प से अजादि ईयसुन् परे रहते प्रकृति को कन् आदेश हो - कन् ईयस् = कनीयस् शब्द बना। कनीयस् से प्रथमा एकवचन में कनीयान् शब्द बना। अल्पीयान्।

अलिपष्ठः - अल्प से ईयसुन् या इष्ठन् परे रहते कप् आदेश के अभाव पक्ष में अल्प ईयसुन > अल्पीयस्, अल्पीयस् सु = अल्पीयस् अथवा युव ईयसुन् सु यवीयान् युव इष्ठन सु > यविष्ठः रूप बनते हैं।

51. ''अह्नोऽह्न एतेभ्यः'' (5.4.88.)

संख्या, अव्यय, सर्वादि इसे उत्तर जो अहन् शब्द उसे समासान्त अह्न् आदेश होता है। तत्पुरूष समास में।

उदाहरण - द्वयह्नः, त्र्यह्नः, अत्यह्नः, निरह्नः, सर्वाह्णः, पूर्वाहणः आदि द्वयह्नः - द्वि और अहन् शब्दों का समास होने पर अहन् शब्द को प्रकृत सूत्र से अह्न आदेश प्राप्त हुआ क्योंकि इससे पूर्व

संख्यावाचक द्वि शब्द है। आदेश हो द्वि अह्न = द् व्यहन् = शब्द बना। स्वादिकार्य हो द्व्यह्नः शब्द बना।

अत्यह्नः - अति अव्यय का अहन् के साथ समास होने पर अह्न को समासान्त अहन् आदेश प्राप्त होता है। अति अह्न > अत्यहन् अत्यहन सु > अत्यहनः शब्द बनता है।

सर्वाह्णः - सर्व अह्न। सर्व पूर्वपद हो ते अह्न को समासान्त अहन आदेश होकर - सर्व अह्न > सवह्नि शब्द बना नकार को रेफनिमित्तक णत्व एवं स्वादि कार्य हो सवीह्णः शब्द निष्पन्न हुआ।

52. ''अञ्नासिकायाः संज्ञायां नसंचास्थूलात्'' (5.4.118.)

नासिका शब्दान्त बहुब्रीहि से समासान्त अच् प्रत्यय होता है संज्ञा के विषय में तथा नासिका शब्द को नस् आदेश भी होता है यदि नासिका शब्द स्थूल से उत्तर न हो तो।

उदाहरण - द्रुणसः, वाध्रीणसः।

द्रुणसः - द्रूरिव नासिकास्य इस अर्थ में प्तु एवं नासिका का समास हुआ। समस्त शब्द से समाान्त अच् प्रत्यय एवं शब्द के उत्तर पद नासिका के स्थान पर नस् आदेश होकर - द्रुनस् अच् > द्रुनस शब्द बना। द्रुनस > दुणस > सु द्रुणसुः।

वाध्रीणसः - पध्रे भवा वाध्री। बाध्री नासिका। अस्य, इस अर्थ में बाध्री एवं नासिका का समास हुआ। अब आलोच्य सूत्र द्वारा समासान्त अच् प्रत्यय तथा नासिका शब्द को नस् आदेश हो व्राधीनस् अच > वाध्रीनस शब्द बना। णत्वादेश एवं स्वादिकार्य हो वाध्रीणसः शब्द सिद्ध होता है।

'स्थूल' से परे नासिका को नस् आदेश का प्रतिषेध हो जाने से 'स्थूलनासिकः' शब्द प्रयोग में नस् आदेश अभाव हुआ। इस सूत्र पर एक वार्तिक है - ''खुरखराभ्यां नस् वक्तव्यः'' अर्थात् खुर एवं खर से परे जो नासिका शब्द उसे नस् आदेश विधान होना चाहिये। इससे खुरणाः, खरणाः प्रयोग सिद्ध हो सकेंगे। 'प्रक्षेऽच्प्रत्ययोऽपीष्यते' इस दृष्टि द्वारा खुर एवं खर से पक्ष में अच् प्रत्यय का विधान भी होना चाहिये ऐसा अर्थ है इससे खुरणसः खरणसः इत्यादि शब्द सिद्ध होंगे।

53. ''उपसर्गाश्र'' (5.4.119.)

उपसर्ग से परे जो नासिका शब्द तदन्त से बहुब्रीहि समास में अच् प्रत्यय होता है तथा नासिका शब्द को नस् आदेश हो जाता है।

उदाहरण - उन्नसः, प्रणसः आदि।

उन्नसः - 'उन्नता नासिकाऽस्य' इस अर्थ में उत् उपसर्ग एवं नासिका का समास हुआ और सूत्र द्वारा शब्द से समासान्त अच् प्रत्यय एवं नासिका शब्द को नस् आदेश प्राप्त हुआ। अभ्यास कार्य होकर - उत् नस् अच् > ऐसी दशा हुई। उत् न स् अ > अ् नस् अ = उन्नस, उन्नस सु = उन्नसः।

प्रणसाः - 'प्रगता नासिकास्य' इस अर्थ में प्र एवं नासिका का समास होने पर आलोच्य सूत्र द्वारा समासान्त अच् प्रत्यय तथा नासिका को नसादेश हो - प्र नस् अच् > प्र नस शब्द बना। णत्व एवं स्वादिकार्य हो अभीष्ट शब्द सिद्ध होता है।

इस सूत्र पर एक वार्तिक है - "वेर्ग्रो वक्तत्यः" वि उपसर्ग पूर्वकं नासिका शब्द को ग्र आदेश हो - विगता नासिका अस्यं विग्रः। इस वार्तिक द्वारा निष्पन्न शब्द एवं कतिपय अन्य शब्द प्रयोगों में परस्पर भेद है। भट्टि काव्य में प्रयोग मिलता है - 'यद्यह' नाथ नायास्यं विनसा हतबान्धवा।'

यहाँ वि उपसर्ग पूर्वक नासिका शब्द को नसादेश युक्त प्रयोग दिखाई पड़ता है। इसका भट्टो जी दीक्षित ने इस प्रकार समाधान किया है। "विगतया नासिकयोपलक्षितेति व्याख्येयम्"। इस वाक्य की व्याख्या करते हुये तत्वबोधिनीकार ज्ञानेन्द्र सरस्वती का कहना है - तथा च विनसेति न प्रथमान्तं, किं तु "पद्दान्नोमास्ह्" (6.1.63.) इति नसादेशे तृतीयान्तमिति भावः।(सि. कौ. बहुव्रीहि समास प्रकरण) बाल मनोरमा टीका के कर्ता वासुदेव दीक्षित ने इसे कुछ और स्पष्ट किया है - "विगता नासिका यस्येति विग्रहे अचि नसादेशे टापि च विनसेति भट्टि प्रयोगों ने युज्यते।" कौमुदीकार समाधान को विवृत करते हुये इन्होंने आगे कहा - "विगता नासिका विनासिका प्रादिसमासः अबहुब्रीहित्वात न ग्रादेशः।"

किन्तु टायां 'पद्दन' इति नसादेशे विनसेति तृतीयान्ते रुपम्। उपलक्षितेत्यध्याहार्यमितिभावः।" इस प्रंकार इन तीनों वैयाकरणों के मतानुसार 'विगता नासिका' इस अर्थ में वि एवं नासिका का प्रादि तत्पुरूष समास हो विनासिका शब्द बना। इससे तृतीया प्रथम पुरूष में 'टा' प्रत्यय होने पर "पद्दनोः" सूत्र द्वारा नासिका को नस् आदेश हो वि नस् टा = विनसा शब्द व्युत्पन्न हुआ। विगता नासिका यस्या इस अर्थ में विपूर्वक नासिका को अच् प्रत्यय एवं नस् आदेश हो बहुब्रीहि में 'विनसा' शब्द नहीं सिद्ध होगा क्योंकि 'नसादेश' वार्तिक द्वारा विहित 'ग्र' आदेश से बाधित हो रहा है।

इस विषय में मैत्रेय का विचार इस प्रकार है - कचिन्नासिकापर्यायेनसाशब्दमिच्छन्ति, तथा च

वराहनक्षत्रपुरूषप्रकाशे नसाशब्दः प्रयुक्तः।' भट्टि काव्येऽपि। 'विनसा हतबान्धवा' इति दृश्यते। न चासौ "उपसर्गाच्च' इति नसादेशे सिध्यति, 'वेग्रो वक्तत्यः" इति ग्रादेशेन बाधितत्वात्" इति।

इस तरह इन्होंने कुछ वैयाकरणों का मत प्रस्तुत किया है जो नासिका का पर्यायवाची नसा शब्द चाहते है। इस विधि से विपूर्वक नसा शब्द से विनसा शब्द की बड़ी सरलता से व्युतपत्ति हो जायेगी।

54. "प्रसम्भ्यांजानुनोर्ज्ञुः" (5.4.129.)

बहुब्रीहि समास में प्र सम् से उत्तर जो जानु शब्द उसे समासान्त ज्ञु आदेश होता है।

उदाहरण - प्रज्ञुः, संज्ञुः।

प्रज्ञुः - प्र एवं जानु ('प्रकष्टे जानुनी अस्य' अर्थ में) का समास होने पर सूत्र द्वारा जानु को ज्ञु आदेश प्राप्त हुआ। आदेश हो 'प्रज्ञु' शब्द बना। स्वादिकार्य होकर 'प्रज्ञुः' शब्द बनता है।

संज्ञुः - सम् उपसर्ग पूर्वक जानु शब्द का बहुब्रीहि समास होने पर जानु शब्द को ज्ञु आदेश हो - सम् ज्ञु ऐसी दशा हुई। मकार को अनुस्वार हो प्रथमा एकवचन में संज्ञुः शब्द निष्पन्न हुआ।

55. "ऊर्ध्वाद्विभाषा" (5.4.130.)

ऊर्ध्व शब्द से उत्तर जो जानु शब्द इसे विकल्प से ज्ञु आदेश में होता है "बहुब्रीहि समास में"।

उदाहरण - ऊर्ध्वे जानुनी अस्य इति ऊर्ध्वज्ञुः ऊर्ध्वज्ञानुः वा।

ऊर्ध्वज्ञः - ऊर्ध्व एवं जानु शब्दों का समास होकर प्रकृत सूत्र से जानु को समाकान्त ज्ञु आदेश प्राप्त हुआ। आदेश होकर ऊर्ध्वज्ञु शब्द बना। ऊर्ध्वज्ञु सु = ऊर्ध्वज्ञुः।

ऊर्ध्वजानुः - ऊर्ध्व एवं जानु का समास हो ऊर्ध्व जानु शब्द बना। आदेश अभाव में शब्द में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। प्रथमा एकवचन में शब्द से सु विभक्ति हो ऊर्ध्वजानु सु > ऊर्ध्वजानुः शब्द बना।

56. "वयसि दन्तस्य द्वतृ" (5.4.141.)

संख्या पूर्व वाले एवं सु पूर्व वाले दन्त शब्द को समासान्त दतृ आदेश होता है अवस्था गम्यमान होने पर बहुब्रीहि समास में।

उदाहरण - द्विदन्, सुदन्।

द्विदन - 'द्वौ दन्तौ अस्य' इस अर्थ में द्वि एवं दन्त का समास हुआ अब दन्त को दतृ आदेश

हो - द्वि दतृ > द्विदत् शब्द बना। स्वादिकार्य हो द्विदन् शब्द सिद्ध हुआ।

सुदन् - शोभना दन्ता अस्य समस्ता जाताः सुदन् कुमारः। यहाँ सु पूर्वक दन्त शब्द का समास हुआ और उसे समासान्त दतृ आदेश हुआ क्योंकि शब्द से अवस्था भी गम्यमान है। आदेश हो - सुदत् शब्द बना। प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति हो, नुमागम हो 'सुदन' शब्द सिद्ध हुआ।

57. ''छन्दसि च'' (5.4.142.)

वेद विषय में भी दन्त शब्द को समासान्त दतृ आदेश बहुब्रीहि समास में हो जाता है। उदाहरण - पत्रदतमालभेत। उभयदत्त आलभते। पत्रदतम् - यहाँ पत्र एवं दन्त शब्दों का समास हुआ है और दन्त शब्द को समासान्त दत् आदेश हुआ है। पत्रदत् से प्रथमा एकवचन में पत्रदत्तम् शब्द बनता है।

उभयदत्त - उभय एवं द न्त का समास हो उभय द न्त शब्द बना। अब सूत्र द्वारा द न्त को दतृ आदेश हो उभयदत् शब्द बनता है। इससे प्रथमा एकवचन में 'उभयदत्तः' शब्द सिद्ध होता है।

58. ''स्त्रियां संज्ञायाम्'' (5.4.143.)

बहुब्रीहि समास में अन्य पदार्थ यदि स्त्रीवाच्य हो तो द न्त के स्थान में दतृ आदेश हो जाता है संज्ञा विषय में।

उदाहरण - अयोदती।

अयोदती - 'अय इव दन्ता अस्या' इस अर्थ में अयस् एवं दन्त शब्दों का समास हुआ तत्पश्चात् आलोच्य सूत्र द्वारा दन्त को समासान्त दतृ आदेश प्राप्त हुआ। आदेश हो - अयस्, दत् ऐसी स्थिति हुई। सकार को रुत्व, रु को उकार, अकार उकार के स्थान पर गुण एकार हो अयोदत् शब्द बना जिससे ङीप् प्रत्यय हो प्रथमा एकवचन में अभीष्ट शब्द सिद्ध हुआ। संज्ञा विषय में विहित होने से असंज्ञा विषय में दतृ आदेश नहीं होता यथा - स्निग्धदत्ती यहाँ स्त्री के दाँतो की स्निग्धता गम्यमान है यह शब्द किसी स्त्री के नाम के रूप में प्रयुक्त नहीं होता।

59. ''विभाषा श्यावारोकाभ्याम्'' (5.4.144.)

श्याव्, अरोक - इनसे उत्तर दन्त शब्द को विकल्प से समासान्त दतृ आदेश होता है बहुब्रीहि समास में।

उदाहरण - श्यावदन्तः, अरोदन्तः। श्यावदन्, अरोकदन्।

श्यावदन्, श्यावदन्तः - श्याव एवं दन्त का समास होने पर दन्त को वैकल्पिक दतृ आदेश प्राप्त होता है। आदेश पक्ष में - श्यावदत्, श्याक्त् सु > श्यावदन् तथा अभाव पक्ष में श्यावदत्त सु - श्यावदत्तः रूप बनता है।

अरोकदन्, अरोकदन्तः - अरोक एवं दन्त का समास होने पर दन्त की समासान्त दतृ आदेश पक्ष में अरोकदत्, अरोकदत् सु = अरोकदन् तथा आदेश भाव पक्ष में अरोदन्त सु = अरोकदन्तः शब्द बनते हैं।

60. ''अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यश्च'' (5.4.145.)

अग्र शब्द अन्त में है जिष् के तथा शुद्ध, शुभ्र, वृष, वराह-इनसे उत्तर जो दन्त शब्द उसको विकल्प से दतृ आदेश समासान्त होता है बहुब्रीहि समास में।

उदाहरण - कुड्मलाग्रदन्, कुड्मलाग्रदन्तः। शुद्धदन्, शुद्धदन्तः। शुभ्रदन्, शुभ्रदन्तः। वृषदन् वृषदतः। वराहदन्, वराहदन्तः।

कुड्मलाग्रदन् - कुड्मलाग्रदन्तः - कुड्मलाग्र अग्र शब्दान्त है इससे परे दन्त दशच्छ है, दन्त को दतृ आदेश हो शब्द बना। आदेश के अभाव में कुड्मलाय दन्त सु = कुड्मलाग्रदन्तः शब्द बनता है। शुद्धदन्, शुद्धदन्तः - शुद्ध के साथ दन्त का समास हो शुद्धान्त शब्द बना। अब दन्त को सूत्र द्वारा समासान्त दतृ आदेश प्राप्त होता है। दतृ आदेश हो - शुद्ध दत्, शुद्धदत् सु = शुद्धदन् तथा आदेश के अभाव में शुद्धदन्त सु = शुद्धदन्तः शब्द बनता है। <u>वराहदन्, वराहदन्तः</u>।

वराह और दन्त का समास हो वराहदन्त शब्द बना। सूत्रविहित दतृ आदेश पक्ष में वराह दत् > वराहदत् सु वराहदन् तथा आदेशाभाव पक्ष में वराहदन्त सु = वराहदन्तः प्रयोग बनते हैं। वृषदन्, वृषदन्तः - वृष एवं दन्त का समास हो वृषदन्त शब्द बना। शब्द के अदन्त की समसान्त दतृ आदेश हो वृषदत् शब्द बना। प्रथमा एकवचन में 'वृषदन्' तथा आदेश के अभाव में स्वादिकार्य हो 'वृषदन्तः' शब्द बनता है।

61. ''चायः की'' (6.1.21.)

चायृ धातु को यङ् परे रहते 'की' आदेश हो जाता है।

उदाहरण - चेकीयते, चेकीयेते।

चेकीयते - चायृ यङ्। यङ् परे रहते धातु को आदेश हो - की यङ् > कीय, ऐसी स्थिति

हुई। द्वित्व, अभ्यास कार्य हो चेकीय शब्द करेगा। इसकी प्रातिपदिक संज्ञा हो आत्मनेपद के लट् लकार के प्रथम पुरूष एकवचन में चेकीयते शब्द सिद्ध होगा।

चेकीयते - चायृ यङ्। सूत्रविहित की आदेश हो - कीय। की य > चेकीय, चेकीय आताम् > चेकीयेते।

यह सूत्र इसी अध्याय के इसी पाद में पुनः पठित है। ''चायः की'' 6.1.35 दो बार सूत्रपाठ अकारण ही नहीं किया जा सकता अतः दोनों सूत्रों की अपनी-अपनी विशेषतायें है। यह सूत्र यङ् एवं लुक् प्रकरण से सम्बद्ध आदेश विधान करता है।

दूसरा सूत्र - ''चायः की'' 6.1.35. वेद विषय में ''चायृ'' धातु को 'की' आदेश विहित करता है। दोनों सूत्रों के आदेश कथन का अन्तर यह है कि 6.1.34. सूत्र बाहुलकात् 'की' आदेश विहित करता है जबकि प्रकृत सूत्र नही ''चायः की:'' 6.1.35. में पूर्व सूत्र ''बहुलं छन्दसि'' से बहुलम् की अनुवृत्ति होती है। अतः कहीं आदेश होता है कहीं नहीं।

62. ''स्फायः स्फी निष्ठायाम्'' (6.1.22.)

स्फायी धातु को निष्ठा परे स्फी आदेश होता है।

उदाहरण - स्फीतः, स्फीतवान्।

स्फीतः - स्फायी क्त। क्त निष्ठासंज्ञक प्रत्यय है अतः इसके परे रहते स्फायी अंग को स्फी आदेश होकर - स्फी क्त > स्फीत, स्फीत सु > स्फी तः शब्द बनता है।

स्फीतवान् - स्फायी क्तवत्। निष्ठा संज्ञक क्तवत् प्रत्यय परे रहते स्फायी को स्फी आदेश हो - स्फी तवत् > स्फीत् वत् बनता है। प्रथमा एक वचन में प्रातिपादिक से 'स्फीतवान्' शब्द प्रयोग सिद्ध होता है।

63. ''प्यायः पी'' (6.1.28.)

ओप्यायी धातु को निष्ठा परे रहते विकल्प से 'पी' आदेश होता है।

उदाहरण - पीनमुखम्, आप्यानश्चन्द्रमाः।

पीन - ओप्यायी क्त। धातु को सूत्रविहित 'पी' आदेश हो - चीत। पीत > पी न। पीन सु > पीनं।

आप्यानः - आङ् प्यायी क्त। प्यायी को पी आदेश के अभाव मै आ प्याय् त ऐसी दशा हुई।

भू का लोप, निष्ठानत्व हो प्रथमा एकवचन में आप्यान् शब्द बना। सूत्र का विकल्प व्यवस्थित विकल्प है अतः अनुपसर्ग प्यायी धातु को नित्य होगा किन्तु सोपवर्ग को नहीं होगा। लेकिन आङ् उपसर्ग से परे जो प्यायी इसे अन्धु, ऊधस् परे रहते पी आदेश होता है जैसे - अपीनोऽन्धुः। आपीनमूधः।

64. ''लिङ्यङोश्च'' (6.1.29.)

लिट् तथा यङ् परे रहते भी ओप्यायी धातु को पी आदेश होता है।

उदाहरण - आपिप्ये, आपिप्यिरे - लिट् के परे रहते आपेपीयते, आपेपीयन्ते यङ् परे रहते। अपित्ये - आङ् प्यायी त। प्यायी को लिट् परे रहते 'पी' आदेश हो - आ पी त। धातु द्वित्व, अभ्यास कार्य तथा त को एश् हो आपिप्ये शब्द बना।

आपिप्यिरे - आङ् प्यायी झ। प्यायी को पी हो - आ पी झ। आ पी झ > आ पि पी इरेच् > आ पि प् य् इरे = आपिप्यिरे। आपेपीयर्ते आङ् प्यायी यङ्। प्यायी को सूत्रविहित पी हौ = ओ पी य। द्वित्व अभ्यास कार्य हो 'अपिपीय' शब्द बनेगा। इसकी प्रातिपदिक संज्ञा होकर लट् प्रथम पुरुष एकवचन में त प्रत्यय हो 'आपेतीयते' रूप बनेगा।

65. ''चायः की'' (6.1.35.)

(यह सूत्र दो बार प्रयुक्त, किन्तु अलग-अलग प्रयोजन)

चायृ धातु को वेद में बहुल करके 'की' आदेश होता है।

उदाहरण - विधुना निचिक्युः। अग्नेर्ज्योतिर्निचायम्।

निचिक्युः - नि क्यु लिट् > नि चायृ उस्। 'चाय्' को 'की' आदेश होकर - नि की उस् ऐसी स्थिति हुई। द्वित्वादि हो 'निचिक्युः' रूप बनता है।

निचायय् - नि चायृ ल्यप् > नि चाय् य आदेश न होने पर शब्द का स्वरूप यथावत् रहा और वर्णमेल हो 'निचायय्' शब्द बना।

66. ''ये च तद्धिते'' (6.1.61.)

यकारादि तद्धित प्रत्यय परे रहते भी शिरस को शीर्षन् आदेश हो जाता है।

उदाहरण - शिरसि भवः शिर्षण्यः।

शिर्षण्यः - शिरस् यत्। शिरस् को शीर्षन् आदेश हो - शीर्षन् यत् > शीर्षन्य बना। शीर्षन्य > शीर्षण्य, शीर्षण्य सु = शीर्षण्यः। इस सूत्र का पूर्ववर्ती सू. 'शीर्षश्छन्दसि' वेद विषय में शिरस् का

समानार्थी प्रकृत्यन्तर शब्द शीर्षन् निपातन् सम्बन्धी सूत्र था। यह सूत्र यकारादि तद्धित परे रहते आदेश विध यक माना गया क्योंकि यकारादि तद्धित परे रहे शिरस् प्रकृति किसी प्रयोग में दृष्टिगत नहीं होती अतः शिरस् के स्थान पर शीर्षन् आदेश माना गया।

67. ''पदन्नोमास्हृन्निशसन्यूषन्दोषन्यकञ्छकन्नुदन्नासञ्छस्प्रभृतिषु'' (6.1.62.)

पाद, दन्त, नासिका, मास, हृदय, निशा, असृज्, यूष, दोष, यकृत, शकृत, उदक, आस्य (कहीं पर आसन् भी) इनके स्थान में यथासंख्य करके पद, दत्, नस्, मास्, हृत्, निश्, असन्, यूषन्, दोषन्, यकन्, शकन्, उदन, आसन् ये आदेश हो जाते है।''

उदाहरण - शस् - प्रभृति प्रत्यय परे हौ तो।

पद - निपश्चतुरो जहि पदा वर्तय गो दुहम्।

दत् - या दतो धावते तस्यै श्यावदन्।

नस् - सूकरस्त्वारवनन्नसा।

मास् - मासि त्वा पश्यामि चक्षुषा।

हृत - हृदा पूर्ते मानसा जातवेदा।

निश् - अमावास्यायां निशि यजेत।

असन् - असिकतोऽस्नावरोहति।

यूषन् - या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि।

दोषन् - यन्ते दोष्णौ दौर्भाग्यम्।

यकन् - यक्नौऽवद्यति।

शकन् - शक्णोऽवद्यति।

उदन् - उद्नो विपस्य नो देहि।

निपदः - नि उपसर्ग पूर्वक पाद शब्द से शस् विभक्ति में - निपाद शस्। इस दशा में प्रकृत सूत्र से शस् परे रहते पाद को पद् आदेश प्राप्त हुआ। आदेश होकर - निपद् शस् > निपदः शब्द सिद्ध हुआ।

दतः - दन्त शस्। दन्त को सूत्रविहित दत् आदेश हो - दत् शस् = दतः।

नसा - नासिका टा। नस् टा > नसा।

मासि - मास ङि 'मास' को मास् आदेश हो - मास् ङि > मासि।

हृदा - हृदय टा - हृदय को हृत आदेश हो - हत् टा हृद् आ = हृदा।

निशि - निशा ङि। निश को निश् आदेश हो - निश् ङि > निशि।

यूष्णः - यूष् ङ्सि। यूष को यूशन् आदेश हो - यूषन् ङसि। यूषन् ङसि > यूष् न् अस् > यूष् नस् = यूष्णः।

दोष्णः - दोष ङसि। दोष को सूत्र विहित दोषन् आदेश हो - दोषन् ङसि। दोषन् अस् > दोष्णः।

यक्नः - यकृत ङसि। यकृत को यकन् आदेश हो - यकन् अस्। उपधा लोप एवं सकार को रुत्व विसर्ग हो - यक्नः।

शक्नः - शकृत् ङसि। सकृत् की शकन् आदेश हो - शकन् अस् > शक्नः।

उदनः - उदक रास्। उदक को उदन् आदेश हो - उदन् शस्। उदन् अस् > उदन् अस् = उदनः।

सूत्र में आदेशों का कथन कर दिया गया है इनके स्थानी का कथन नहीं किया गया। स्थानी के बिना आदेश कथन का कोई औचित्य नहीं अतः शस्प्रभृति प्रत्ययों के परे रहते पद्, दत् आदि आदेशों के अनुरूप स्थानी का आक्षेपण हो जाता है। सूत्र के अन्त में कथित 'आसन्' आदेश के लिये काशिकाकार ने 'आसन्' स्थानी का ग्रहण किया है जब कि पदमञ्जरीकार, न्यासकार एवं सिद्धान्त कौमुदीकार आसन् आदेश के लिये आस्य स्थानी का चयन करते हैं। काशिकाकार ने उदा. प्रस्तुत किया है - आसीने किं लभे मधूनि। पदमञ्जरीकार ने 'आस्य' स्थानी के ग्रहण के पक्ष में उदाहरण दिया है - आस्नो वृकस्य वर्त्तिकामभीवी - के। ग्रीवायां बद्धो अपि कक्ष आसनि। आस्नो यत्सीसमुच्वतं वृकस्य। सिद्धान्त कौमुदी की बाल मनोरमा टीकाकार ने आसन् आदेश के लिये 'आस्य' स्थानी के ग्रहण पक्ष में निम्न उदाहरणों को प्रस्तुत किया है। - हंव्यां जुहुवान आसनि। आसन्यं प्रावमूचुः।"

सिद्धान्त कौमुदी की तत्वबोधिनी टीका के कर्ता ज्ञानेन्द्र सरस्वती ने "आस्य" ग्रहण के पक्ष में इन उदाहरणों को प्रस्तुत किया है - आस्नो वृकस्य वर्तिकाम्। हव्या जुहुवान आसनि। आसन्ये प्राणमूचुः। अतः आसन आदेश के लिये अधिकांश वैयाकरण 'आस्य' स्थानी के ग्रहण के पक्षधर है। इनके द्वारा प्रस्तुत किये गये उदाहरणों में आस्नः आदि 'मुख' अर्थ का अभिधान करते हैं। आस्य

(काशिकाकार के मत में आसन्) ङि। प्रकृति को आसनं आदेश हो - आसन् ङि = आसनि। भाष्यकार ने सूत्र से 'छन्दसि' की अनुवृत्ति की है इस प्रकार ये आदेश वेद विषय में होते है। अन्य वैयाकरण को सामान्य आदेश विधानार्थक मानते हैं क्योंकि लौकिक संस्कृत में भी इन आदेशों से युक्त स्वरूप वाले शस्प्रभृति प्रत्यय परक उदाहरण प्राप्त होते है। यथा -

''व्यायामक्षुण्णमात्रस्य पद्भ्यामुद्धर्तितस्य च'' यहाँ पाद को पद् आदेश युक्त शब्द पदभ्याम् का प्रयोग हुआ है।

कुछ वैयाकरण 'अन्यतरस्याम्' की अनुवृत्ति करने के पक्षधर हैं। इससे पदादि एवं पादादि दोनों ही प्रकृतियों के शब्द व्युत्पन्न हो सकेंगे। इस सूत्र पर तीन वार्तिक है -

वा. 1. यह वार्तिक अनुक्त चिन्तापरक है। वा. - ''पदादिषु मांस्पृत्स्नूनामुप संख्यानम्'' अर्थात् मांस् - पृत स्नु - इनका भी पदादिकों में कथन किया जाये। इससे मांस, पृतना, सानु स्थानी के स्थान पर मांस् पृत् एवं स्नु आदेश हो मांस्, पृत्सु, अधिस्नुषु आदि सिद्ध हो सकेंगे।

वा. 2. नस् नासिकायां यत्तस्क्षेद्रेषु - यत्, तस्, क्षुद्र - ये परे हो तो नासिका को नस् आदेश हो उदाहरण - नस्यानि, नस्तः, नः, क्षुद्र।

वा. 3. यति वर्णनगर योर्नेति वक्तव्यम् - वर्ण एवं नगर से यत् परे हो तो नासिका को नस् आदेश का प्रतिषेध कहा जाये।

उदाहरण - नासिक्यो वर्णः। नासिक्यं नगरम्।

68. ''दिवो द्यावा'' (6.3.29.)

देवताद्वन्द में उत्तर पद परे रहते पूर्वपद दिव् को द्यावा आदेश होता है।

उदाहरण - द्यावाक्षामा, द्यावाभूमी।

द्यावाक्षामा - 'द्यौश्च क्षामाश्च' इस अर्थ में द्वन्द्व समास होने पर दिव् को द्यावा आदेश होकर - द्यावाक्षामा शब्द बनता है।

द्यावाभूमी - द्यौश्च भूमिश्च - दिव् सु भूमिसु > दिव् भूमि। दिव् को द्यावा आदेश हो - द्यावाभूमि। द्यावाभूमि औ > द्यावाभूमि।

69. ''दिवसश्र पृथिव्याम्'' (6.3.30.)

पृथिवी शब्द उत्तरपद रहते देवता द्वन्द में दिप् शब्द को दिवस् आदेश हो जाता है। पक्ष में

(चकार बल से) द्यावा आदेश भी होता है।

उदाहरण - दिवस्पृथिव्यौ, द्यावापृथिव्यौ।

दिवस्पृथिव्यौ - दिव् सु पृथिवी सु > दिव् पृथिवी। दिव् को सूत्रविहित दिवस् आदेश हो - दिवस् पृथिवी = दिवस्पृथिवी। दिवस्पृथिवी औ > दिवस्पृथिव्यौ।

द्यावापृथिव्यौ - दिव् पृथिवी। दिव् की पक्ष में प्राप्त द्यावा आदेश हो - द्यावापृथिवी। द्यावापृथिवी औ = द्यावापृथिव्यौ।

70. "उषासोषसः" (6.3.31.)

देवताद्वन्द में उत्तरपद परे रहते उषस् शब्द को उषासा आदेश होता है।

उदाहरण - उषासानक्ता।

उषासानक्ता - 'उषाश्च नक्तं च' इस विग्रह में उपस् एवं नक्त शब्दों का समास होने पर 'उषस्' को आलोच्य सूत्र द्वारा 'उषासा' आदेश होकर - उषासानक्त शब्द बना। प्रथम एकवचन नपुसंक लिंग में उषासानक्तम् शब्द बनता है।

71. "त्रेस्त्रयः" (6.3.48.)

त्रि शब्द को त्रयस् आदेश होता है, संख्या उत्तर पद रहते बहुब्रीहि समास तथा अशीति को छोड़कर।

उदाहरण - त्रयोदशः।

त्रयोदशः - त्रि एवं दश को 'त्रयश्च दशश्च' इस विग्रह में द्वन्द समास (चार्थे द्वन्दः) हुआ। समास का उत्तरपद संख्यावाची है अतः त्रि को त्रयस् आदेश हो - त्रयस् दश हुआ। सकार को रुत्व, रु का उकार, अकार उकार के स्थान पर गुण ओकार हो प्रथमा एकवचन पुल्लिंग में त्रयोदशः शब्द सिद्ध होता है। द्वि एव दश का बहुब्रीहि समास होने पर त्रि को त्रयस् आदेश नहीं होगा - जैसे - त्रिदशाः इसी प्रकार 'अशीति उत्तरपद हो तो त्रि को त्रयस् आदेश नहीं होगा त्रयशीतिः।

72. "विभाषा चत्वारिंशत्प्रभृतौ सर्वेषाम्" (6.3.49.)

द्वि, अष्टन् तथा त्रि के उपर्युक्त सूत्रों में जो कहा गया है वह चत्वारिंशत् आदि संख्या उत्तरपद रहते बहुब्रीहि, अशीति को छोड़कर विकल्प से हो।

विशेष - द्वि तथा अष्टन् को आकारादेश (6.3.46.) सूत्र द्वारा विहित किया गया है। अतः

बहुब्रीहि समास एवं अशीति उत्तरपद न हो तो द्वि तथा अष्टन् को आकार अन्तादेश तथा त्रि को त्रयस् आदेश विकल्प से होगा यदि चत्वारिंशत् - प्रभृति संख्या उत्तर पद में हो तो।

उदाहरण - द्विचत्वारिंशत्, द्वाचत्वारिंशत्। त्रिपञ्चाशत्, त्रयः पञ्चाशत्। अष्टपञ्चाशत्, अष्टापञ्चाशत्।

द्विचत्वारिंशत्, द्वाचत्वारिंशत् - द्वि एवं चत्वारिंशत् के द्वन्द समास में द्वि को आकार अन्तादेश विकल्प से प्राप्त हुआ। आदेश पक्ष में द्वाचत्वारिंशत् एवं आदेश के अभाव पक्ष में द्विचत्वारिंशत्, शब्द सिद्ध होते हैं।

त्रिपञ्चाशत्, त्रयः पञ्चाशत् - त्रि एवं पंञ्चाशत् का समास होकर त्रि को वैकल्पिक त्रयस् आदेश प्राप्त हुआ आदेश पक्ष में त्रयस् पञ्चाशत् > त्रयः पञ्चाशत् तथा आदेश के अभाव में त्रिपञ्चाशत् शब्द सिद्ध हुआ।

अष्टपञ्चाशत्, अष्टापञ्चाशत् - अष्टन् एवं पञ्चाशत् का समास हो अष्टन् को वैकल्पिक आकार अन्तादेश हो - अष्टापञ्चाशत् तथा आदेश के अभाव में - 'अष्टपञ्चाशत्' शब्द बनता।

73. "हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु" (6.3.50.)

हृदय शब्द को हृत आदेश होता है लेख, यत्, अण्, लास परे रहते।

उदाहरण - हृल्लेख, हृद्यम, हार्दम्, हुल्लासः।

हृल्लेख - 'हृदयं लिखति' इस अर्थ में हृदय एवं लेख शब्दों का समास हुआ। अब लेख शब्द परे रहते हृदय को सूत्र विहित हृत आदेश हो - हृत् लेख बना। हृत लेख > हृल्लेख हृल्लेख सु = हृल्लेखः - हृदय यत्। हृदय को यत् परे रहते हृत आदेश हो - हृत यत्।

हृदयम् - हृत् यत् > हृदय् सु > हृद्य अम् > हृदयम्।

हार्दम् - हृदय को हृत अण्। अण् परे रहते हृदय को हृत आदेश होकर हृत् अम् > हार्द, हार्द सु > हार्द अम् > हार्दम्।

हृल्लासः - हृदय एवं लास का समास होने पर लास शब्द परे रहते हृदय को हृत आदेश हो - हृत् लास शब्द बना। हृत् लास > हृल् लास, हृल्लास सु = हृल्लास।

74. "वा शोकष्यञ्रोगेषु" (6.3.51.)

शोक, ष्यञ्, रोग इनके परे रहते हृदय शब्द को हृत् आदेश विकल्प करके होता है।

उदाहरण - हृच्छोकः, हृदयशोकः। ष्यञ् - सोहार्द्यम्, सौहृदयम्। रोग - हृद्रोगः, हृदयरोगः।

हृच्छोकः - हृदयशोकः - हृदय एवं शोक का समास होने पर शोक परे रहते हृदय को हृत आदेश हो - हृत शोक बना। हृतशोक > हृच्छोक, हृच्छोक सु = हृच्छोकः। हृत् आदेश के अभाव पक्ष में हृदय शोक सु = हृदयशोकः।

सौहार्द्यम्, सौहृदयम् - सु एवं हृदय का समास हो ष्यञ् प्रत्यय हुआ ष्यञ् परे रहते हृदय को हृत् आदेश प्राप्त हुआ। आदेश होकर सु हृत् य बना। सु हृत् ष्यञ् > सौहार्द्य सौहार्द्य सु > सौहार्द्य अम् = सौहार्द्यम्।

आदेश के अभाव में सुहृदय ष्यञ् > सौहृदय, सौहृदय सु > सौहृदयम्।

75. "पादस्य पदाज्याति गोपहतेषु" (6.3.52.)

पाद शब्द को पद आदेश होता है, आजि, आति, ग, उपहत, उत्तरपद रहते।

उदाहरण - पदातिः, पदाजिः, पदगः, पदोपहतः।

पदातिः - पादाभ्यामतति। पाद एवं आति। अत इञ् (औणादिक) का समास होने पर आति परे रहते पाद को सूत्र द्वारा पद् शब्द आदेश हो - पद आति > पदाति बना, पदाति सु = पदातिः।

पदगः - 'पादाभ्यां गच्छति' इस अर्थ में पाद एवं ग (गम् ड) का समास होने पर सूत्र द्वारा पाद को पद आदेश प्राप्त हुआ। पद ग - आदेश हो, इस प्रकार दशा हुई। पदग सु = पदगः शब्द बना।

पदोपहतः - 'पादेनोपहतः' अर्थ में पाद एवं उपहत शब्दों का समास हुआ और पाद शब्द को उपहत शब्द परे रहते आदेश प्राप्त हुआ। पद आदेश होकर - पद उप हत > पदोप हत, पदोपहत सु = पदोपहतः।

76. "पद्यत्यतदर्थे" (6.3.53.)

अतदर्थ यत् प्रत्यय के परे रहने पर पाद शब्द को पद् आदेश हो जाता है।

उदाहरण - पद्याः, कण्टकाः।

पद्याः - पादौ विध्यन्ति" इस अर्थ में पाद शब्द को पद् आदेश हो जाता है यह प्रत्यय अतदर्थ हुआ है अतः पाद को प्रकृत सूत्र से पद आदेश हो - पद् यत् > पद्‌य। पद्‌य जस् > पद्‌याः। तदर्थ विषयक यत् परे रहते आदेश नहीं होता जैसे - पादार्थभुदकं पाद्‌यम्।

77. "हिमकाषिहतिषु च" (6.3.54.)

इन शब्दों के उत्तरपद रहने पर भी पाद शब्द को पद् आदेश हो जाता है।

उदाहरण - पद्धिमम्, पत्काषिणः, पद्धविः।

पद्धिमम् - पाद एवं हिम् का समास होकर हिम उत्तरपद रहते पाद शब्द को पद् आदेश हो - पद्हिम बना। पद् हिम > पद्धिम। पद्धिम सु > पद्धिमम्।

पत्काषिणः - पाद एवं कार्षिन् (कष् णिनि) का समास हो सूत्र द्वारा उत्तरपद काषिन् होने पर पूर्वपद पाद को पद आदेश हो - पद काषिन् > पत्काषिन्। पत्काषिन् जस् पत्काषिणः।

पद्धतिः - पाद एवं हति (हन् क्तिन्) का समास होने पर सूत्र द्वारा पाद को पद् आदेश प्राप्त हुआ क्योंकि समास में पाद में उत्तर हति शब्द आया है। आदेश हो - पद्हति बना। पद्हति > पद्धति। पद्धति सु = पद्धतिः।

78. ''ऋचः शे'' (6.3.55.)

ऋचा सम्बन्धी पाद शब्द को पद् आदेश हो जाता है 'श' परे रहने पर।

उदाहरण - पच्छो गायत्री शसति।

पच्छः - पाद शस्। पाद शब्द को पद् आदेश हो पद् शस् > पच्छ, पच्छ सु = पुच्छः।

79. ''वा घोषमिश्रशब्देषु'' (6.3.56.)

घोष, मिश्र तथा शब्द - इनके उत्तरपद होने पर पूर्वपद में अवस्थित जो पाद शब्द उसे विकल्प से पद् आदेश हो जाता है।

उदाहरण - पद्घोषः, पादघोषः। पन्मिश्रः, पादमिश्रः। पच्छब्दः, पादशब्दः।

पद्घोषः, पादघोषः - पाद एवं घोष का समास हुआ। अब घोष उत्तरपद रहते पाद शब्द को प्रकृत सूत्र द्वारा पद् आदेश हो - पद् घोष बना। पद्घोष सु > पद्घोषः। सूत्र द्वारा विहित आदेश विकल्प से प्राप्त है। इससे आदेश के अभाव पक्ष में 'पादघोष' शब्द भी बनता है। इसी प्रकार मिश्र एवं शब्द उत्तरपद होने पर पदादेश पक्ष में पन्मिश्रः, पच्छब्दः तथा अभाव पक्ष में पादमिश्रः, पादशब्दः आदि शब्द सिद्ध होते हैं।

80. ''उदकस्योदः संज्ञायाम्'' (6.3.57.)

उत्तरपद परे हो तो संज्ञा विषय में उदक शब्द को उद आदेश हो जाता है।

उदाहरण - औदमेधिः, औदवाहिः आदि।

औदमेधिः - उदक पूर्वपद एवं इससे परे उत्तरपद होने पर उदक को सूत्र द्वारा उद आदेश

प्राप्त है। आदेश हो - उद्मेध। उदमेध इन् औदमेधि। औदमेधि सु = औदमेधिः।

इसी भांति उदक से परे वाह शब्द रहते उदक को उद आदेश हो - उदवाह शब्द बनता है। उदवाह इन् > औदवाहि। औदवाहि सु = औदवाहिः।

81. ''पेषंवासवाहनधिषु च'' (6.3.58.)

पेषम्, वास, वाहन तथा धि शब्द के उत्तरपद रहते भी उदक को उद आदेश होता है।

उदाहरण - उदपेषं, पिनष्टि, उदवासः, उदवाहनः, उदधिः।

उदंपेषं - उदक एवं पेषं (पिष् णमुल्) का समास हो उदरुपेष बना अब प्रकृत सूत्र द्वारा उदक को उद आदेश हो - उद पेषं शब्द बनता है।

उदवासः - उदक, वास का समास हो उदक वास बना। उदक को उद आदेश हो - उद्वास, उदवास सु > उदवासः।

उद्वाहनः - 'उदकस्य वाहन' अर्थ में उदक एवं वाहन का समास हो उदकवाहन शब्द बनता है। उदक को उद आदेश हो - उदवाहन शब्द बनता है। उवाहन सु = उदवाहनः।

उदधिः - उदकं धीयतेऽस्मिन्निति। उदक, धी का समास हो उदक को उद आदेश होकर - उद धी > उद धी सु > उदधिः।

82. ''एकहलादौपूरयितव्येऽन्यतरस्याम्'' (6.3.59.)

जिसको पूर्ण किया जाना चाहिये, तद्वाची एक हल् है आदि में जिसके ऐसे शब्द के उत्तरपद रहने पर विकल्प से उदक को उद आदेश होता है।

उदाहरण - उदकुम्भः, उदककुम्भः। उदपात्रम्, उदकपात्रम्।

उदकुम्भः, उदककुम्भः - उदक से उत्तर एक हलादि एवं पूरयितत्व वाची कुम्भ के रहते प्रकृत सूत्र द्वारा उदक को उद आदेश हो उदकुम्भ, उदकम्भ सु = उदकुम्भः तथा उद-आदेश के अभाव में उदककुम्भ सु उदककुम्भः शब्द सिद्ध हुआ।

उद्पात्रम्, उदकमपात्रम् - उदक एवं पात्र का समास होने पर एकहलादि एवं पूरयितत्यवाची पात्र शब्द के उत्तरपद होने पर सूत्र विहित आदेश विकल्प से प्राप्त हुआ। आदेश पक्ष में - उद पात्र, उदपात्र सु > उदपात्रम् तथा आदेश के अभाव में उदकपात्र सु > उदकपात्रम् शब्द सिद्ध हुये।

सूत्रस्थ 'पूरीयततव्य' का अर्थ है - जल आदि प्रव्यों से जिसे (पात्र, कुम्भ आदि) भरा जाये।

83. ''मन्थौदनसक्तबिन्दुवज्रभारहारवीवधगाहेषु च'' (6.3.60.)

मन्थ, ओदन, सक्तु, बिन्दु, वज्र, भार, हार, वीवध, गाह – इन शब्दों के उत्तरपद रहते भी उदक को उद आदेश विकल्प करके होता है।

उदाहरण – उदमन्थः, उदकमन्थः। उदौदनः, उदकौदनः, उदबिन्दु, उदकबिन्दुः, उदवीवधः, उदकवीवधः। उदगाहः उदकगाहः। उद्भारः उदकभारः।

उदमन्थः, उदकमन्थः – 'उदकेन मन्थः। उदक एवं मन्थ का समास होने पर उदक को सूत्र द्वारा वैकल्पिक उद आदेश प्राप्त हुआ। उद आदेश हो – उदमन्थ, उदकमन्थ, उदमन्थ सु > उदमन्थः। उद आदेश के अभाव पक्ष में – उदक मन्थ सु > उदकमन्थः।

84. ''इदङ्किमोरीश्की'' (6.3.90.)

इदम् तथा किम् को यथाक्रम ईश् तथा की आदेश हो जाते हैं यदि इनके परे दृक्, दृश् अथवा वतुप् प्रत्यय हो तो।

उदाहरण – दृक् परे रहते – ईदृक, कीदृक। दृश् परे रहते – ईदृश्, कीदृश। वतुप् परे रहते – इयान्, कियान्।

ईवृक – इदम् शच्द को दृग् परे रहते ईश् आदेश हो – ईश् (दृग ज) ईदृक्।

ईदृशः – इदम् दृश। दृश् परे रहते इदम् प्रकृति को सूत्रविहित ईश् आदेश हाकर – ई > दृश् ई दृश् सु ईदृशः।

इयान – इदम् वतुप। इदम् धतूव् > इदम् इय् अत् > इदम् इयत्। इदम् प्रकृति को सूत्रविहित ईश् आदेश हो – ई इयत्। ई का ''यस्येति च'' सू. से लोप हो इयत् शब्द शेष रहेगा जिससे सु विभक्ति प्रत्यय हो इयान् शब्द सिद्ध होता है।

कियान् – किम् वतुप > किम् इयत्। किम् को सूत्र विहित की आदेश हो की इयत्। की इयत् > क इयत् > कियत्। कियत् सु > कियान।

85. ''समः समिः'' (6.3.93.)

सम् को समि आदेश होता है, व प्रत्ययान्त अञ्चु धातु के उत्तरपद रहते।

उदाहरण – सम्यक सम्यञ्चौ, सम्यञ्चः।

सम्यक् – सम् अच् (अञ्चु क्विन्) अच > इस दशा में सूत्र द्वारा सम् को 'समि' आदेश प्राप्त

हुआ। आदेश हो - समि अच्। समिअच् > सम्यच्। सम्यच् सु > सम्यच्। सम्यच् औ = समयञ्चौ।

86. ''तिरसस्तिर्यलोपे'' (6.3.94.)

तिरस् को तिरि आदेश व प्रत्ययान्त अञ्चु के उत्तरपद रहते होता है यदि अञ्चु के अ क लोप न हुआ हो तो।

उदाहरण - तिर्यङ्, तिर्यञ्चौ आदि।

तिर्यङ् - तिरस् अच्। तिरस् को तिरि आदेश हो - तिरि अच् हुआ > तिरि अच् > तिर्यच्। तिर्यच् सु > तिर्यङ्। अकार का लोप हो जाने पर तिरि आदेश आदेश नही होता यथा - तिरस् अच् टा > तिरस् च् आ (अचः सू. से अकार का लोप होकर) तिरश्चा।

87. ''सहस्य सध्रिः'' (6.3.95.)

सह शब्द को व प्रत्ययान्त अञ्चु धातु के उत्तरपद रहते सध्रि आदेश हो जाता है।

उदाहरण - सध्रयङ्, सध्रयञ्चौ आदि।

सध्रयङ् - सह अच् (अच् क्विन्) सह को सूत्र विहित सध्रि आदेश होकर सध्रि अच्। सध्रि अच् सु > सध्र य् न् अङ् > सध्रसङ् सध्रयञ्चौ > सह अच्। सूत्रविहित सध्रि आदेश हो - सध्रि अच् औ > सध्रयञ्चौ।

88. ''सधमादस्थ योश्छन्दसि'' (6.3.96.)

माद तथा स्थ उत्तरपद रहते वेद विषय में सह शब्द को सध आदेश हो जाता है।

उदाहरण - सधमादो द्युम्न्य एकास्ताः। सधस्थाः।

सधमादः - सह मादेन वर्तते इस अर्थ में सह। एवं माद का समास हुआ। अब प्रकृत सूत्र से माद शब्द परे रहते सह को सध आदेश होकर सधमाद। सधमाद सु > सधमादः।

सधस्थाः - 'सह तिष्ठन्ति' इस अर्थ में सह एवं स्था का समास हुआ और सह को आलोच्य सूत्र द्वारा सध आदेश प्राप्त हुआ आदेश होकर - सधस्था। सध स्था जस् > सधस्थाः।

89. ''कोः कत्तत्पुरूषेऽचि'' (6.3.101.)

कु को तत्पुरूष समास में अजादि शब्द उत्तरपद हो तो कत् आदेश हो जाता है।

उदाहरण - कदजः, कदश्वः, कदुष्ट्रः, कदन्नम् आदि।

कदजः - कुत्सितोऽज - इस अर्थ में कु से अज का समास हुआ कुगतिप्रादयः सूत्र से प्राप्त

तत्पुरूष समास होने से तथा उत्तरपद अजादि होने से कु को कत् आदेश प्राप्त हुआ 'कुत्' को कत् आदेश हो कत् अज > कदज। कदज सु > कदजः इसी प्रकार कुत्सितो श्वः, कुत्सितो उष्ट्रः, कुत्सितमन्नम् इत्यादि अर्थों में क्रमशः कु एवं अश्व, कु एवं उष्ट्र तथा कु एवं अन्न का तत्पुरूष समास होने पर कु को कत् आदेश हो प्रथमा एकवचन में क्रमानुसार कदश्वः, कद्रुष्टः, कदन्नम् आदि शब्द बने। बहुब्रीहि में कत् आदेश का प्रतिषेध होने से 'कुत्सितो उष्ट्रो यश्य = कुष्ट्रः'' इत्यादि प्रयोगों में कु को कत् नहीं होता।

90. ''रथवदयोश्र'' (6.3.102.)

रथ तथा वद शब्द उत्तरपद में हो तो भी कु को कत् आदेश हो जाता है।

उदाहरण - कद्रथः, कद्रवदः।

कद्रथः - कुत्सितः रथः। कु एवं रथ का समास होने पर रथ परे रहते कु को कत् आदेश हो कत् रथ > कद्रथ, कद्रथ सु > कद्रथः शब्द बनता है।

कद्रवदः - कुत्सितः वदः। वद शब्द उत्तरपद होते कु को कत् आदेश होगा कु वद् > कत् वद। कद्वद सु > कद्वदः।

91. ''तृणे च जातौ'' (6.3.103.)

तृण शब्द उत्तरपद में हो तो भी कु को कत् आदेश हो जाता है यदि जाति अभिधेय हो तो।

उदाहरण - कत्तृणाः।

कत्तृणाः - ''कत्तृणाः'' यह जाति का अभिधायक शब्द है। जाति अभिधायक होने कु तृण - इस दशा में कु को कत् आदेश हुआ - कु तृण > कत् तृण > कत्रृण जस् > कत्तृणाः। जाति का अभिधान न किया जा रहा हो तो आदेश नहीं होगा। जैसे - 'कुत्सितानि तृणानि कुतृणानि।

92. ''का पथ्यक्षयोः'' (6.3.104.)

पथिन् तथा अक्ष शब्द उत्तरपद हो तो कु शब्द को 'का' आदेश हो जाता है।

उदाहरण - कापथः, काक्षः।

कापथः - कुत्सितः पंथः। कु पथ। पथ परे रहते कु को का आदेश हो - का पथ, कापथ सु > कापथः।

काक्षः - कु एवं अक्ष का समास होने पर अक्ष उत्तरपद होने से 'कु' को 'का' आदेश प्राप्त हुआ - का अक्ष > काक्ष। काक्ष सु > काक्षः।

93. ''ईषदर्थे'' (6.3.105.)

ईषत् के अर्थ में वर्तमान कु शब्द को 'का' आदेश हो जाता है।

उदाहरण - कामधुरम्, कालवणम्, काम्लमूत्र, कोष्णम्।

कामधुरम् - ईषन्मधुर। ईषत् अर्थ में विद्यमान कु का मधुर के साथ समास होने पर 'कु' को प्रकृत सूत्र से 'का' आदेश होकर कामधुर बना। कामधुर सु > कामधुर अम् > कामधुरम् शब्द बनता है। काम्लम् - ईषदम्लम्। ईषत् अर्थ में विद्यमान 'कु को 'का' आदेश होकर - का अम्लः > काम्ल, काम्ल सु > काम्ल अम् > काम्लम् शब्द निष्पन्न हुआ।

94. ''विभाषा पुरूषे'' (6.3.106.)

पुरूष शब्द उत्तरपद हो तो 'कु' शब्द को विकल्प से 'का' आदेश होता है।

उदाहरण - कापुरूषः, कुपुरूषः।

कापुरूषः - कुत्सितः पुरूषः। कु एवं पुरूष समास हो उत्तरपद रहते विकल्प से ''का'' आदेश प्राप्त हुआ। आदेश हो - का पुरूष, का पुरूष सु > का पुरूषः। आदेश के अभाव पक्ष में कु एवं पुरूष का समास हो कुपुरूष बनता है। जिसकी प्रातिपदिक संज्ञा हो प्रथमा एकवचन में कुपुरूष शब्द बनता है।

95. ''कवं चोष्णे'' (6.3.107.)

उष्ण शब्द उत्तरपद रहते कु को कव आदेश भी होता है। चकारात्, वैकल्पिक का आदेश भी होता है।

उदाहरण - कबोष्णम्, कोष्णम्, कटुष्णम्, कबोष्णम् - कु और उष्ण का समास होने पर 'कु'; को उष्ण परे रहते सूत्र द्वारा 'कब' आदेश हो - कव उष्ण > कबोष्ण बनता है। कबोष्ण सु > कबोष्ण अम् > कबोष्णम्।

कोष्णम् - सूत्रस्थ चकार से पक्ष में वैकल्पिक 'का' आदेश भी प्राप्त होता है। 'का' आदेश हो - का उष्ण > कोष्ण, कोष्ण सु > कोष्ण अम् > कोष्णम्। का आदेश वैकल्पिक है अतः जब 'का' आदेश नहीं होगा तो उष्ण के अजादि होने से कत् आदेश प्राप्त होता है कत् आदेश हो - कत् उष्ण > कदुष्ण सु > कदुष्णम् बनता है। इस प्रकार सूत्र द्वारा 'ईषत् उषणम्' अर्थ में 'कु' को कब हो कवोष्णम् पक्ष में का एवं कत् हो कोष्णम् एवं कदुष्णम् ये तीन शब्द प्रयोग सिद्ध होते हैं।

96. ''पथि च च्छान्दसि'' (6.3.108.)

पथिन् शब्द उत्तरपद रहते पर भी वेद विषय में कु को 'कब' आदेश विकल्प करके हो जाता है। चकार बल से पक्ष में का आदेश भी प्राप्त है।

उदाहरण - कवपथः, कापथः, कुपथः।

'कुत्सितः पन्थाः, इस अर्थ में कु एवं पथित का समास होने पर कु को विकल्प से कब, का और कु आदि आदेश प्राप्त हुये। कब आदेश हो - कब पथिन् कबपथिन् जस् कवपथः शब्द निष्पन्न होता है। आदेश हो का पथिन् जस् > कापथः तथा कुपक्ष में कुपथिन् जस > कुपथः शब्द बनते हैं।

97. ''संख्या विसाय पूर्वस्या ह्रस्याहनन्यतरस्यां ङौ'' (6.3.110.)

संख्या, वि तथा साय पूर्व में हो जिस अह्न के उस ङि परे रह ने पर अहन् आदेश विकल्प से हो जाता है।

उदाहरण - द्वयह्निः, द्वयहनि, द्वयह्ने त्रयह्नि, त्रयहनि त्रयह्ने। सायाह्नि सायाहनि, सायाह्ने।

द्वयह्नि, द्वयहनि, द्वयह्ने - द्वि एवं अहन् का समास हो, समास हुये शब्द से ठन्, ठन् का लोप हो, शब्द से समासान्त टच् प्रत्यय हुआ। अब अहन् को सू. ''अहनोऽह्न एतेभ्यः'' से अह्न आदेश हो - द्वि अह्न अच् ऐसी दशा हुई। इससे सप्तमी एकवचन में ङि प्रत्यय आने पर प्रकृत सूत्र द्वारा अह्न को अह्न आदेश प्राप्त हुआ। आदेश होकर - द्वि अहन् टच् ङि स > द्वि अहन् टच्, ङि, ऐसी दशा हुई। अब अहन् के अन् के अकार का वैकल्पिक लोप प्राप्त है। लोप पक्ष में द्वि अहन् अ इ इयर्ह्रान तथा लोप के अभाव 'द्वयहनि' में रूपद्वय सिद्ध हुये। सूत्र विहित अहन् आदेश वैकल्पिक विहित है अतः आदेश के अभाव में द्वि अह्न अच् ङि > 'द्वयह्ने' शब्द बनता है।

इसी प्रकार वि एवं साय से परे अह्न को अह्न हो त्र्यह्नि, त्रयहनि। तथा सायाह्नि, सायाहनि - दो दो रूप बने और आदेश के अभाव में त्र्यह्ने तथा सायाह्ने शब्द सिद्ध होते हैं।

98. ''शा हौ'' (6.4.35.)

शास् अङ्ग् के स्थान में हि प्रत्यय परे रहते 'शा' आदेश हो जाता है।

उदाहरण - अनुशाधि, प्रशाधि।

अनुशाधि - अनुशास् सिप् > अनु शास् हि हि परे रहते 'शास्' अङ्ग के स्थान में 'शा' आदेश होकर - अनु शा हि। अन् शा धि (हि को धि होकर)।

प्रशाधि - प्र शास् सिप् > प्र शास् हि। हि परे रहते शास् को 'शा' आदेश होकर - प्र शा हि। प्र शा हि > प्रशाधि।

99. "हन्तेर्जः" (6.4.36.)

हि प्रत्यय के परे हन् को 'ज्' आदेश होता है।

उदाहरण - जहि।

जहि - हन् तिप् > हन् हि। हि परे रहते हन् को 'ज' आदेश होकर - जहि।

100. "इणो यण्" (6.4.81.)

इण् अंग को यणादेश होता है, अच् परे रहते।

उदाहरण - यन्ति, यन्तु, आयन्।

यन्ति - इण्, शप् अन्ति (झि) अन्ति > इ अन्ति। अच् परे रहते इण् अंग को यण् आदेश हो - य् अन्ति > यन्ति।

यन्तु - इण् लोट् > इण् शप् झि > इण् झि > इण् अन्ति। अच् परे रहते। इण् को यण् आदेश हो - य अन्ति > यन्ति। यन्ति > यन्तु (एरुः सू. से)

आयन् - इण् लङ् > इण् झि > इण् शप् झि > इण् झि > इण् झ > इण् अन्त् > इण् अन्। अच् अकार परे रहते इण् को सूत्र विहित यण् हो य् अन्। आयीय होने से यण् को असिद्धवत् मज अजादिलक्षण आट् आगम हो - आ य् अन् = आयन् शब्द बना।

101. "पादः पत्" (6.4.130.)

भसंज्ञक पाद् शब्द को पत् आदेश हो जाता है।

उदाहरण - द्विपदः, सुपदः।

द्विपदः - द्विपाद्शस्। शस् का शकार इत्संज्ञक है अतः अजादि प्रत्यय परे होते द्विपाद् शब्द की भसंज्ञा होती है और प्रकृत सूत्र द्वारा पाद के स्थान पर पद् आदेश होता है। आदेश होकर - द्विपद् अस् > द्विपदः।

सुपदः - सुपाद् अस्। पाद को सूत्रविहित पद आदेश होकर - सुपद् अस् > सुपदः।

102. ''प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणांप्रस्थस्फवर्बहिगर्वर्षित्रब्द्राधिवृन्दा''
(6.4.157.)

प्रिय, स्थिर, स्फिर, उरु, बहुल, गुरु, वुद्ध, तृप्र, दीर्घ, वृन्दारक - इन अंगों को प्र, स्थ, स्फ, वर्, बहि, गर्, वर्षि, त्रप्, द्राधि, वृन्द - ये आदेश यथासंख्य करके हो जाते हैं इष्ठन्, इमनिच् तथा ईयसुन् प्रत्यय परे रहने पर।

उदाहरण - प्रिय - प्रेष्ठः, प्रेमा, प्रेयान्।

स्थिर - स्थेष्ठः, स्थेयान्।

स्फिर - स्फेष्ठः, स्फेयान्।

उरु - वरिष्ठः, वरिमा, वरीयान्।

बहुल - बहिष्ठः, बहिमा, बहीयान्।

गुरू - गरिष्ठः, गरिमा, गरीयान्।

वृद्ध - वर्षिष्ठः, वर्षीयान्।

दीर्घ - द्राधिष्ठः, द्राधीयान्, द्राधिमा।

तृप - त्रपिष्ठः, त्रपीयान्।

वृन्दारक - वृन्दिष्ठः, वृन्दीयान्।

प्रेष्ठः - प्रियइष्ठन्। सूत्र द्वारा प्रिय को 'प्र' आदेश होकर प्र इष्ठन् > प्रेष्ठां प्रेष्ठ सु=प्रेष्ठाः।

स्थेयान् - स्थिर ईयसुन्। स्थिर को स्थ आदेश होकर - स्थः, ईयस् > स्थेयस्। स्थेयस् सु > स्थेयान्।

वरिमा - उरु इमनिच्। उरु को सूत्रविहित वर् आदेश हो - वर् इमनिच् > वरिमन्। वरिमन् सु > वरिमा।

इसी प्रकार अन्य उदाहरणों में भी सूत्रोपदिष्ट आदेश हुये है।

103. ''वहोर्लोपो भू च बहोः'' (6.4.158.)

बहु शब्द से उत्तर इष्ठन्, इमनिच् तथा ईयसुन् का लोप होता है, और उस बहु के स्थान में भू आदेश भी होता है।

उदाहरण - भूमा, भूयान्।

भूयान् - बहु ईयसुन्। आलोच्य सूत्र द्वारा ईयसुन् को लोप एवं सूत्र में बहु को भू आदेश प्राप्त हुआ। बहोः सूत्र में पंचम्यन्त उपदिष्ट हुआ है। अतः "आदेः परस्य" नियम से लोप बहु के परे जो ईष्ठन् ईयसुन् इमनिच् आदि प्रत्यय उनके आदि वर्ण का होगा। लोप एवं आदेश होकर - भूयस् प्रथमा एकवचन में भूयान् शब्द सिद्ध हुआ।

भूमा - बहु इमनिच्। सूत्रविहित लोप एवं आदेश कार्य होकर - भू मन्। भूमन् सु > भूमा।

104. "इष्ठस्य यिट् च" (6.4.159.)

बहु शब्द से उत्तर इष्ठन् को यिट् आगम होता है तथा बहु शब्द को भू आदेश भी होता है।

उदाहरण - भूयिष्ठः।

भूयिष्ठः - बहु इष्ठन्। सूत्रविहित आगम एवं आदेश होकर - भू य् इष्ठ। भूयिष्ठ सु > भूयिष्ठः।

105. "त्रेस्त्रयः" (7.1.53.)

त्रि अंग को त्रय आदेश हो जाता है यदि आम् परे हो तो।

उदाहरण - त्रयाणाम्।

त्रयाणाम् - त्रि आम्। आम् परे रहते त्रि को त्रय आदेश हो - त्रय् आम्। त्रय आम् > त्रय न् आम् > त्रया नाम् > त्रयाणाम्।

106. "ह्र ह्ररेश्छन्दसि" (7.2.31.)

ह्र् वृ कौटिल्ये धातु को निष्ठा परे रहने पर वेद विषय में हु आदेश होता है।

उदाहरण - अहुतम्।

अहुतम् - न हुतम् = अहुतम्। ह्वृ क्त इस दशा में ह्वृ को हु आदेश हो - हु त। नञ् हुत > अहुत। अहुत सु > अहुतम्।

107. "युवावौ द्विवचने" (7.2.92.)

द्विवचन में युष्मद् एवं अस्मद् अंग के मपर्यन्त को क्रमशः युव, आव आदेश हो जाते हैं।

उदाहरण - युवाम्, आवाम्। युवाभ्याम्, आवाभ्याम् युवयोः आवयोः।

युवाम् - युष्मद औ > युष्मद् अम्। युष्म् पर्यन्त को भूव आदेश हो - युव अद् अम्। युवद्

अम् > युव आ अम् > युवा अम् > युवाम्।

आवाम् - अस्मद औ > अस्मद् आम्। सूत्रविहित आदेश हो - आव अद् अम्। आव अद् अम् > आवद् अम् > आव आ अम् > आवा अम् > आवाम्।

युवाभ्याम् - आवाभ्याम् - युष्मद् भ्याम्, अस्मद् भ्याम्। सूत्र विहित आदेश हो - युव अद् भ्याम्, आव अद् भ्याम्। युवद् भ्याम् अस्मद् भ्याम > युव आ भ्याम् एवं आव आ भ्याम् > युवाभ्याम्, आवाभ्याम्।

युषयोः, आवयोः - युष्मद् ओस्, अस्मद् ओस। सूत्रविहित आदेश होने पर - युव अद् ओस, आव अद् ओस् > युवद् ओस्, आवद् ओस् > युवयोः आवयोः।

108. ‘‘यूयवयौ जसि’’ (7.2.93.)

जस् विभक्ति परे हो तो युष्मद्, अस्मद् अंग के मपर्यन्त के क्रमशः यूय, वय आदेश होते हैं। उदाहरण - यूयम्, वयम्।

यूयम् - युष्मद् जस् > युष्मद् अम्। युष्म को यूय आदेश हो - यूय अद् अम् > यूयम् (पर रूप हो यूयद् अम्, टि का लोप हो यूयू अम्) > यूयम्।

वयम् - अस्मद जस् > अस्मद् अम्। अस्म् को वय आदेश - वय् अद् अम् = वयम्।

109. ‘‘त्वाहौ सौ’’ (7.2.94.)

सु विभक्ति परे रहने पर युष्मद्, अस्मद् अंग के मपर्यन्त को क्रमशः त्व तथा अह आदेश होते है।

उदाहरण - त्वम्, अहम्।

त्वम् - युष्मद् सु > युष्मद् अम्। सूत्र द्वारा विहित आदेश हो - त्व अद् अम् त्वद् अम् त्व् अम् > त्वम्।

अहम् - अस्मद् सु > अस्मद् अम्। सूत्र द्वारा प्राप्त आदेश होकर अह् अद् अम् > अहद् अम् > अह् अम् > अहम्।

110. ‘‘तुभ्यमह्यौ ङपि’’ (7.2.95.)

युष्मद्, अस्मद् अंग के मपर्यन्त को क्रमशः तुभ्य, मह्य आदेश हो जाते है। यदि इनसे परे ङे विभक्ति हो।

उदाहरण - तुभ्यम्, मह्यम्।

तुभ्यम् - युष्मद् ङे > युष्मद् अम्। युष्मद् के मपर्यन्त को सूत्रविहित तुभ्य आदेश हो - तुभ्य अद् अम् > तुभ्यद् अम् > तुभ्य् अम् > तुभ्य् अम् > तुभ्यम्।

मध्यम् - अस्मद ङे > अस्मद् अम्। अस्म को सूत्रविहित मध्य आदेश हो - मध्य अद् अम् > मध्यम्।

111. ''तवममौ ङसि'' (7.2.96.)

युष्मद् अस्मद अंग के मपर्यन्त को क्रमशः तव तथा मम आदेश होते हैं। यदि इनसे परे ङस् विभक्ति हो तो।

उदाहरण - तव, मम।

तव - युष्मद् ङस् > युष्मद् अस्। युष्मद् के मपर्यन्त को 'तव' आदेश हो - तव अद् अद् अ > तवद् अ > तव् अ > तव।

मम - अस्मद् ङस्। अस्म को मम आदेश हो - मस् अद् ङस्। मम अद् अस्। ममद् अ > मम अ = मम।

112. ''त्वमावेकवचने'' (7.2.97.)

एकवचन का कथन करने वाले युष्मद् तथा अस्मद् अंग के मपर्यन्त को क्रमशः त्व, म आदेश होते है।

उदाहरण - त्वाम्, माम्।

त्वाम् - युष्मद् अम्। सूत्रविहित आदेश होकर - त्व अद् अम् > त्वद् अम् > लअ अम् > त्व् आ अम् > त्वा अम् > त्वाम्।

माम् - अस्मद् अम्। 'अस्म' को 'म' आदेश हो - म अद् अम् > मद् अम् > माम्।

113. ''प्रत्ययोत्तरपदयोश्च'' (7.2.98.)

प्रत्यय तथा उत्तर पद रहते भी एकत्व अर्थ में वर्तमान युष्मद् अस्मद् अंग के मपर्यन्त को क्रमशः त्व, म आदेश होते हैं।

उदाहरण - त्वदीयः, मदीयः।

त्वदीयः - युष्मद् छ > युष्मद् ईय् आ। युष्मद् के मपर्यन्त को त्व आदेश होगा क्योंकि इससे

परे प्रत्यय है। आदेश हो - त्व अद् ईय् अ > त्वदीय। त्वदीय सु > त्वदीयः।

मदीयः - अस्मद् छ। अस्मद् के मपर्यन्त को म आदेश होकर - म अद् छ > मद् इय् अ > मदीय, मदीय सु = मदीयः।

114. "त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचसृ" (7.2.99.)

त्रि तथा चतुर अंग को स्त्रीलिंग में क्रमशः तिसृ, चतसृ आदेश विभक्ति परे रहने पर होते हैं।

उदाहरण - तिस्रः, चतस्रः, तिसृभिः, चतसृभिः।

तिस्त्रः - त्रि जस्। जस् विभक्ति प्रत्यय है अतः त्रि को तिसृ आदेश हो - तिसृ जस्। ति सृ जस् तिस्रः।

चतस्रः - चतुर् जस्। विभक्ति प्रत्यय है अतः चतुर को सूत्रविहित चतसृ आदेश हो - चतसृ जस् > चतसृ अस् > चतस्रः। 'स्त्रियाम्' इस नियम् के कारण पुल्लिंग में त्रि एवं चतुर को तिसृ, चास्र आदेश नहीं होगे। और त्रि जस् > त्रयः, चतुर जस् > चतुरः आदि शब्द सिद्ध होंगे।

115. "जराया जरसन्यतरस्याम्" (7.2.101.)

अजादि विभक्ति प्रत्यय परे हो तो जरा को विकल्प से जस् आदेश हो जाता है।

उदाहरण - जरसा दन्ताः शीर्यन्ते। जरया दन्ताः शीर्यन्ते। जरसे, जरायै इत्यादि।

जरसा - जरा टा > जरा आ। अजादि विभक्ति प्रत्यय परे रहते जरा को सूत्रविहित जस् आदेश होकर - जरस् आ > जरसा।

जरया - जरा टा। सूत्रविहित आदेश वैकल्पिक है अतः जब आदेश नहीं होगा तो जरा टा > जरे आ > जरय् आ > जरया शब्द रूप बनेगा।

116. "किमः कः" (7.2.103.)

किम् अंग को विभक्ति परे रहते पर क आदेश होता है।

उदाहरण - कः, कौ, के।

कः - किम् सु। सु विभक्ति प्रत्यय है अतः इसके परे रहते किम् को सूत्र द्वारा क आदेश प्राप्त हुआ - क सु > कः।

कौ - किम् औ। किम् को क आदेश हो - क औ > कौ।

117. "कु तिहोः" (7.2.104.)

तकारादि, हकारादि विभक्तियों के परे रहने पर किम् को कु आदेश होता है।

उदाहरण - कुतः, कुत्र, कुह।

कुतः - किमूङसि तसिलृ > किम् तस्। तकारादि तसिलृ परे रहते किम् को कु आदेश होकर कु तस् > कुतः।

कुत्र - किम् ङसि त्रल् > किम् त्रल्। त्रज् तकारादि प्रत्यय है इसलिये इसके परे रहने से किम् को कु आदेश होकर - कु त्र = कुत्र।

118. "क्वाति" (7.2.105.)

अत् विभक्ति के परे रहने पर किम् अंग को क्व आदेश होता है।

उदाहरण - क्व।

क्व - किम् ङि अत् > किम् अत्। अत् - विभक्ति संज्ञक प्रत्यय परे होने से किम् को क्व आदेश हो, क्व अत् > क्व अ >क्व। त्रल, तसिल अत् इत्यादि प्राग्दिशीय प्रत्यय है। "प्राग्दिशोः विभक्तिः" सू. से इनकी विभक्ति संज्ञा होती है। जिसके फलस्वरूप किम् को यहाँ क्व आदेश प्राप्त होता है।

119. "इदोऽय् पुंसि" (7.2.111.)

इदम् शब्द के इद् रूप को पुल्लिंग में अय् आदेश हो जाता है। विभक्ति परे हो तो।

उदाहरण - अयम्।

अयम् - इदम् सु > इद अ सु > इद सु > इद अम्। विभक्ति परे रहते इद् को अय् आदेश हो - अय् अ अम् > अय अम् > अयम्।

120. "अनाप्यकः" (7.2.112)

ककार से रहित इदम् शब्द के इद् भाग को अन् आदेश होता है। आप् विभक्ति परे रहने पर। आप् अर्थात् आङ् से सुप् तक।

उदाहरण - अनेन, अनयोः।

अनेन - इदम् टा > इद अ टा > इद टा इद को सूत्रविहित अन् आदेश हो अन् अ टा > अन टा > अन इन > अनेन।

अनयोः - इदम् ओस् > इद ओस > इद को अन् आदेश हो - अन् अ ओस् > अन ओस् > अने ओस् अनय् ओस् > अनयोः 'अकः' प्रतिषेध कथन से सकच्क इदम् को यह आदेश नहीं होगा यथा - इमकेन, इमकयोः।

121. "केकयमित्रयुप्रलयानां यादेरियः" (7.3.2)

केकय, मित्रयु, प्रलय - इन अंगो के यकारादि भाग को इय आदेश होता है। ञित्, णित् तथा कित् तद्धित परे रहने पर।

उदाहरण - कैकेयः, मैत्रेयकः, प्रालेयः।

कैकेयः - केकय अञ्। अञ् ञित् तद्धित प्रत्यय है अतः य को इय आदेश हो - केक इय अन् > कैकेय। कैकेय सु > कैकेयः।

मैत्रेयकः - मित्रयु ठञ्। ञित् तच्छित परे रहते अंग के यकारादि यु भाग को इय आदेश हो - मित्र इय ठञ् > मैत्रेयक शब्द बनता है। मैत्रेयक सु = मैत्रेयकः।

प्रालेयः - प्रलय अण्। य को सूत्र विहित इय आदेश हो - प्रल इ य अ > प्रालेय शब्द बना। प्रालेय सु > प्रालेयः।

122. "पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्तिसर्तिशदसदां पिवजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः" (7.3.78)

पा, घ्रा, ध्मा, स्था, म्ना, दाण्, दृशिर, ऋ, सृ, शदलृ तथा षदलृ इन्हे शित् प्रत्यय परे रहते पिव, जिघ्र, धम, तिष्ठ, मन, यच्छ, पश्य, ऋश्छ, धौ, शीय, सीद - ये आदेश हो जाते है।

पिषति - पा शप् तिप्। पा को सूत्र - विहित पिब आदेश हो - पिब अ ति > पिबति।

जिघ्रति - घ्रा शप् तिप्। घ्रा को जिधु आदेश हो - जिघ्र अ ति > जिघ्रति।

धमति - ध्मा शप् तिप्। ध्मा को धम आदेश हो - धम अ ति > धमति।

तिष्ठन्ति - स्था शप् तिप्। स्था को तिष्ठ आदेश हो - तिष्ठ अ ति > तिष्ठति।

मनति - म्ना शप् तिप्। म्ना को मन आदेश हो - मन अ ति > मनति।

यच्छति - दाण् शप् तिप्। यच्छ अ ति दा को यच्छ आदेश हो > यच्छति।

पश्यति - दृशिर् शप् तिप्। दृशिर को पश्य आदेश हो - पश्य अति > पश्यति।

ऋच्छति - ऋ शप् तिप्। ऋ को सूत्र द्वारा ऋच्छ आदेश हो - ऋच्छ अ ति > ऋच्छति।

धावति - सृ शप् तिप्। सृ को धौ आदेश हो - धौ अ ति > धावति।

शीयते - शदलृ शप् त। शदलृ को शीय आदेश हो - शीय अ त > शीयते।

सीदति - षदलृ शप् तिप्। षदलृ को सीद आदेश हो - सीद अ ति > सीदति।

123. "ज्ञाजनोर्जा" (7.3.79)

ज्ञा तथा जनी धातु को शित् प्रत्यय परे रहते जा आदेश होता है।

उदाहरण - जानाति, जायते।

जानाति - ज्ञा श्ना तिप् > ज्ञा ना ति। शित् श्ना परे रहते ज्ञा को प्रकृत सूत्र से जा आदेश होकर - जा ना ति = जानाति।

जायते - जन् श्यन् त > जन् य त। शित् श्यन् परे रहते जन को जा आदेश होकर - जा य त > जायेते।

124. "दयतेर्दिगि लिटि" (7.4.9)

देङ् (रक्षणे) धातु को लिट् परे रहते दिगि आदेश होता है।

उदाहरण - अवदिग्ये, अवदिग्याते, अवदिग्यिरे।

अवदिग्ये - अवदेङ् लिट् > अव देङ् त > अव देङ् एश्। लिट परे रहते देङ् को दिगि आदेश हो - अव दिगि ए > अवदि्ग य ए = अवदिग्ये।

125. "दधातेर्हिः" (7.4.42)

दुधाञ् अंग को हि आदेश तकारादि कित् प्रत्यय परे रहते होता है।

उदाहरण - हितः, हितवान्, हित्वा।

हितः - धा क्त > धात। क्त तकारादि कित् प्रत्यय है अतः इसके परे होते 'धा' अंग को हि आदेश हो - हि त। हित सु > हितः।

हितवान् - धा क्तवत् > धा तवत्। क्तवत् कित् एवं तकारादि प्रत्यय है अतः धा को हि आदेश हो - हि तवत्। हि तवत् सु = हितवान्।

हित्वा - धा क्त्वा > धा को सूत्रविहित हि आदेश हो - हि क्त्वा > हित्वा। हित्वा सु > हित्वा।

126. ''जहातेश्च क्त्वि'' (7.4.43)

ओहाक् (त्यागे) अंग को भी क्त्वा प्रत्यय परे रहते 'हि' आदेश होता है।

उदाहरण - हित्वा।

ओहाक् क्त्वा > हा त्वा। हा अंग को सूत्र द्वारा विहित हि आदेश होकर - हि त्वा। हित्वा सु > हित्वा।

127. ''विभाषा छन्दसि'' (7.4.44)

ओहाक् अंग को विकल्प से वेद विषय में क्त्वा प्रत्यय परे रहने पर 'हि' आदेश हो जाता है।

उदाहरण - हित्वा, हात्वा। हित्वा शरीर यातव्य। हित्वा, हात्वा - हा क्त्वा > हा त्वा। सूत्र विहित हि आ देश पक्ष में - 'हि त्वा' तथा आदेश के अभाव में 'हात्वा' शब्द बनते हैं।

128. ''दो दद्घोः'' (7.4.46)

धु संज्ञक दा धातु के स्थान में दद् आदेश होता है, तकारादि कित् प्रत्यय परे रहने पर।

उदाहरण - दत्तः, दत्तवान्, दत्तिः।

दत्तः - दा क्त। तकारादि कित् प्रत्यय क्त परे रहते दा धातु को दद् आदेश हो - दद् त > दत्त। दत्त सु > दत्तः।

दत्तिः - दा क्तिन् > दा ति। धुसंज्ञक दा को सूत्र विहित दद् आदेश हो - दद् ति। दद् ति > दत् ति > दत्ति। दत्ति सु > दत्तिः।

129. ''अच् उपसर्गात्तः'' (7.4.47)

अजन्त उपसर्ग से उत्तर धुसंज्ञक दा अंग को तकारादि कित् प्रत्यय परे रहने पर तकारादेश होता है। तकार में अकार उच्चारणार्थ है।

उदाहरण - प्रत्तम्, अवत्तम्, नीत्तम्, परीत्तम्।

प्रत्तम् - प्र दा क्त। अजन्त उपसर्ग प्र से परे घुसंज्ञक दा को सूत्र - विहित त आदेश होगा क्योंकि दा से परे तकारादि कित् क्त प्रत्यय है। आदेश हो - प्र द् त् त > प्रत्त। प्रत्त सु > प्रत्त अम् > प्रत्तम्।

विशेष - यह आदेश यद्यपि एकवर्णात्मक है तथापि सम्पूर्ण अंग के स्थान पर होने से इसे

'प्रकृत्यादेशप्रकरण' में रखा गया। एकाल् आदेश होने से इसका स्थानी भी एकवर्णात्मक ही होना चाहिए।

'उपसर्गात्' यह पद पञ्चम्यन्त निर्दिष्ट हुआ है अतः 'आदेः' 'परस्य' नियम से उपसर्ग के पर जो है उसके आदि अल् को अर्थात् द् को यह आदेश होना चाहिए। इस तरह दा को आदेश हो - नि त् आ क्त ऐसी स्थिति होती और नीत्तम् आदि रूप बनना संभव न होता। इस हेतु समाधान सुझाया गया।

'अचः' इत्येतद् द्विरावर्तयिव्यम्; तत्रैकं पंचम्यन्तम् उपसर्गविशेषणार्थम् अपरमपि षष्ठ्यन्तं स्थानिनिर्देशार्थमित्याकारस्य स्थाने तकारो भवति। दूसरा समाधान प्रस्तुत करते हुए काशिकाकार का कहना है - द्वितकारो वा संयोगोऽयमादिश्यते।

इस प्रकार व्याख्याकारों ने दो समाधान सुझाया। प्रथम - 'अचः' इस पद की दो बार सूत्र में आवृत्ति हो। तब प्रथम आवृत्ति के पद को पंच्म्यन्त माना जाए और इसे उपसर्गात् पद का विशेषण माना जाए। इसका अर्थ होगा 'अजन्त उपसर्ग से परे' (जो घुसंज्ञक दा) तथा द्वितीय अचः को षष्ठ्यन्त माना जाए तथा इसे स्थानी का निर्देशक माना जाए। जिसका अर्थ निकलेगा - घुसंज्ञक दा के अच् को तकार अन्तादेश हो। समुदायार्थ होगा - अजन्त उपसर्ग से परे जो घुसंज्ञक दा उसके अच् को तकार अन्तादेश हो। इस प्रकार अभीष्ठ रूपसिद्धि संभव होगी।

काशिकाकार का दूसरा समाधान है आदेश को संयुक्त द्वितकारात्मक माना जाए तब अनेकाल्त्वेन संपूर्ण स्थानी के स्थान पर हो जाने पर - नित्त क्त > नित्त त इस दशा में संयोगान्त लोप हो नि त् त, नित्त सु > नीत्तम् रूप बन सकेगा।

इस सूत्र का परवर्ती सूत्र है 'अपो भि'। उस सूत्र में इस सूत्र से आदेश की अनुवृत्ति होती है वहाँ अप् के पकारमात्र को त् आदेश अपेक्षित है। सूत्र के उपर्युक्त दोनो समाधानों से 'अद्भिः' आदि रूपसिद्धि न हो सकेगी। इसका समाधान करते हुए काशिकार ने कहा - 'अपो भि' इत्यत्र पंचम्यन्तं अचः इत्यनुवर्तते तेन पकार मात्रस्य भविष्यति। अर्थात् 'अपो भि' सूत्र में पंचम्यन्त 'अचः' की अनुवृत्ति होगी और 'तस्मादित्युत्तरस्य' के नियम से पकारमात्र को ही आदेश होगा सम्पूर्ण अप् को नहीं। द्वितकारात्मक आदेश विधान की अनुवृत्ति में कठिनाई नहीं। अनेकाल् होते हुए भी यह आदेश पूर्व सूत्र के पंचम्यन्त 'अचः' की अनुवृत्ति होने से 'तस्मादित्युत्तरस्य' नियम से पकारमात्र को ही होगा। दोनों तकारों में अन्त्य तकार का संयोगान्त लोप हो जायेगा तथा अत् मिस् > अद्भिः आदि रूप सिद्धि हो सकेगी।

130. ''युष्मदस्मदोःषष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वानावौ'' (8.1.20)

पद से उत्तर षष्ठी, चतुर्थी तथा द्वितीया विभक्ति मे स्थित (अर्थात् षष्ठ्यन्त, चतुर्थ्यन्त, द्वितीयान्त जो अपदादि में वर्तमान) युष्मद् अस्मद् शब्द उनके सम्पूर्ण के स्थान में क्रमशः वाम्, नौ आदेश होते है एवं उन आदेशो को अनुदात्त भी होता है।

उदाहरण - ग्रामो वां स्वम्। जनपदो नौ स्वम्। ग्रामो वां दीयते, जनपदो नौ दीयते। ग्रामों वा पश्यति। जनपदो नौ पश्यति।

ग्रामो वां स्वम् - यहाँ 'ग्रामः' पद से उत्तर षष्ठी - द्विवचनान्त युष्मद् को वाम् आदेश हुआ है। जनपदो नौ स्वम् - यहाँ जनपदः पद से उत्तर षष्ठी - द्विवचनान्त अस्मद् को नौ आदेश हुआ। ग्रामो वां दीयते - यहाँ चतुर्थी द्विवचन में युष्मद् को वाम् आदेश हुआ।

ग्रामो नौ दीयते - यहाँ चतुर्थी - द्विवचनान्त अस्मद् को नौ आदेश हुआ। इसी प्रकार पद से उत्तर षष्ठी द्विवचनान्त युष्मद को वाम् तथा अस्मद् को नौ आदेश हो 'ग्रामो वां पश्यति' जनपदो नौ पश्यति' आदि में वां नौ आदि का प्रयोग सिद्ध होते है।

'षष्ठीचतुर्थीद्वितीयान्त' को आदेश विहित होने से इनके व्यतिरिक्तं विभक्ति में ये आदेश नही होगें। जैसे पंचमी में स्थित युष्मद् को आदेश नहीं होता - ग्रामे युवाभ्यांकृतम्।

131. ''बहुवचनस्य वस्नसौ'' (8.1.21)

पद से उत्तर अपदादि में वर्तमान जो बहुवचन में षष्ठ्यन्त, चतुर्थयन्त एवं द्वितीयान्त युष्मद् अस्मद् पद उनको क्रमशः वस् नस् आदेश होते है और वे आदेश अनुदान्त होते है।

उदाहरण - ग्रामो वः स्वम्, जनपदो नः स्वम्। ग्रामों वो दीयते, जनपदो नो दीयते। ग्रामो वः पश्यति, जनपदो नः पश्यति।

ग्रामो वः स्वम् - 'ग्रामः' पद से उत्तर षष्ठी बहुवचनान्त युष्मद् को वस् आदेश होकर वः प्रयोग बनता है।

जनपदो नः स्वम् - षष्ठी बहुवचनान्त अस्मद् को नस् आदेश हो 'नः' प्रयोग सिद्ध हुआ है। इसी प्रकार चतुर्थ्यन्त एवं द्वितीयान्त अस्मद् युष्मद् शब्द को नस्, वस् आदेश हुए है।

132. ''तेमयावेकवचनस्य'' (8.1.22)

पद से उत्तर एकवचन में वर्तमान षष्ठ्यन्त एवं चतुर्थ्यन्त युष्मद् अस्मद् पद को क्रमशः ते,

में आदेश होते है और ये आदेश अनुदात्त होते है।

उदाहरण - ग्रामस्ते स्वम्। ग्रामों में स्वम्। ग्रामस्ते दीयते। ग्रामों में दीयते। यहाँ द्वितीयान्त, चतुर्थयन्त अस्मद् एवं युष्मद को एकवचन में मे, ते आदेश हुए है।

133. "त्वामौ द्वितीयायाः" (8.1.23)

पद से उत्तर अपदादि में वर्तमान जो द्वितीया - एकवचनान्त युष्मद्, अस्मद् पद उसे यथाक्रम त्वा, मा आदेश् हो जाते है।

उदाहरण - ग्रामस्त्वा पश्यति। ग्रामो मा पश्यति। यहाँ द्वितीया एकवचनान्त युष्मद् अस्मद् को कमेण त्वा, मा आदेश हुए है।

वस्, नस् - इत्यादि आदेशों के स्थानी अस्मद्, युष्मद हो या षष्ठी बहुवचनान्त युष्मद्, अस्मद् के रूप युष्माकम्, अस्माकम् - द्वितीया बहुवचन के अस्मान्, युष्मान् चतुर्थी बहुवचन के अस्मभ्यम्, युष्मभ्यम् तथा वाम्, ना, ते, मे, त्वा, मा के स्थानी अस्मद् युष्मद् शब्द हो या अस्मद् युष्मद् के द्वारा निष्पन्न विभक्ति प्रत्ययान्त पद। इस विषय में स्पष्ट होता है कि यहाँ स्थानी अस्मद् युष्मद् प्रकृति नही अपितु अस्मद् युष्मद् प्रकृति से निष्पन्न द्वितीया चतुर्थी षष्ठी इत्यादि विभक्तियों में निष्पन्न होने वाले पद हैं। इस प्रकार वस्, नस्, ते मे, वाम्, नौ आदि आदेशों के विधायक ये सूत्र अन्य की अपेक्षा कुछ भिन्न प्रकार के हैं क्योंकि इनके द्वारा सम्पूर्ण प्रकृति प्रत्यय को अर्थात् पद को आदेश विहित किया गया है। न कि प्रकृति मात्र, प्रत्ययमात्र या प्रकृत्यंश अथवा प्रत्ययांश को। इस विषय में बाल मनो रमाकार ने कहा है "दत्तात्ते मेऽपि शर्म स इति, अत्र तुभ्यम्, मह्यम् इति चतुर्थी - एकवचनान्तयोः ते, गे इत्यादेशौ। स्वामी ते गेऽपि स हरिरिति। अत्र तव मम इति षष्ठ्येकवचनान्तयोः ते मे आदेशौ। इत्यादि।

सन्दर्भ -सूची

1. द्र. - सूत्र का भाष्य।
2. द्र. - 'अजेर्व्यघञ्पोः' की हरदत्त विरचित पदमञ्जरी टीका।
3. द्र. - दि माधवीय धातुवृत्ति पृ. 362 स. स्वामी देवारिकादास शास्त्री प्राच्य भारती प्रकाशन, कामाच्छा, वाराणसी 1964।
4. "अन्तर्धनः, संज्ञीभूतो वाहीकेषु देशविशेष उच्यते।" - सूत्र की काशिका व्याख्या।
5. द्र. - सूत्र की पदमञ्जरी एवं न्यास टीकाएँ।

6. सूत्र की काशिकावृत्ति की पदमञ्जरी टीका।

7. प्राग्दिशीय प्रत्यय हैं - तसु, तसिल्, त्रल्, ह, अत, दा, हिल्, दानी, धमु, था आदि।

8. दिक्शब्देभ्यः सप्तमीयञ्चमी प्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः (5.3.26) सू. अस्ताति प्रत्यय का विधायक है।

9. सूत्र पर की गई इष्टि 1 द्र. - काशिकावृत्ति में (5.4.118) की काशिका व्याख्या/भाष्य में यह इष्टि नहीं प्राप्त होगी।

10. सूत्र का काशिका व्याख्या।

11. सिद्धान्त कौमुदी - बहुब्रीहि समास प्रकरण में वार्तिक ''वेर्ग्रो वक्तत्यम्'' की व्याख्या।

12. सूत्र की तत्व बोधिनी टीका - सिद्धान्त कौमुदी बहुब्रीहि समास प्रकरण।

13. काशिका वृत्तिः चतुर्थी भागः। स.हा. श्री नारायण मिश्रः। प्रकाशक रत्ना पब्लिकेशन्स, वाराणसी 1985। पृष्ठ 412 पदमञ्जरी व्याख्या की टिप्पणी।

14. बहुब्रीहि में न ही पूर्वपद का अर्थ प्रधान होता है न ही उत्तर पद का अपितु इनसे भिन्न किसी अन्य पद का अर्थ प्रधान होता है। इसी अन्य पदार्थ के विषय में सूत्र द्वारा आदेश विहित हुआ है।

15. सूत्र - ''क्तक्तवत् निष्ठा'' क्त एवं क्तवत् ये प्रत्यय निष्ठासंज्ञक है।

16. द्र. - सूत्र की काशिका व्याख्या।

17. न्यास टीका - ''उदकादिना द्रत्येणान्तर्व्याप्तव्यः पूरायितव्यं इत्युच्थते।''

18. इयत् - इदम् वत् > इदम् ध त् > इदम् इय् अत् > इदम् इयत > ई इयत् > इयत्। ई इयत् इस दशा में 'यस्येति च' से पूर्ववर्ती ईकार का लोप प्राप्त होता है। प्रकृति के एकाल् होने से सम्पूर्ण प्रकृति का लोप हो जाता है और मात्र प्रत्यय ही अवशिष्ट रहता है। इस प्रकार 'इयत्ः' एक ऐसा शब्द है जिसमें सम्पूर्ण प्रकृति का लोप हो जाता है।

19. सूत्र की काशिकावृत्ति।

20. सूत्र की काशिका वृत्ति।

21. काशिका वृत्ति।

22. द्र. सिद्धान्त कौमुदी, बाल मनोरमा टीका सू. त्वामौ द्वितीयायाः।

✦✦✦

''सभाव प्रकरण''

1. ''सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि'' (5.3.6)

'सर्व' के स्थान पर विकल्प से 'स' आदेश होता है यदि दकारादि प्राग्दिशीय प्रत्यय परे हो तो।

उदाहरण - सदा, सर्वदा।

सदा - सर्वस्मिन् काले अर्थ में सर्व सर्वनाम से दा प्रत्यय हुआ - सर्व दा। सर्व को सूत्र द्वारा प्राप्त 'स' आदेश हो - स दा = सदा शब्द बना।

सर्वदा - आदेश के अभाव में सर्व दा = सर्वदा शब्द बना।

2. ''सहस्य सः संज्ञायाम्'' (6.3.78)

सह शब्द को स आदेश होगा यदि सिद्ध हुआ शब्द संज्ञा के रूप में प्रयुक्त हो।

उदाहरण - साश्वत्थम्, सपलाशम्, सशिंशपम् आदि।

साश्वत्थम् - सह अश्वत्थ। 'तेन सहेति तुल्ययोगे' सू. से अश्वत्थेन सह इस अर्थ में सह एवं अश्वत्थ शब्दों का बहुब्रीहि समास हुआ। आलोच्य सूत्र द्वारा 'सह' को 'स' आदेश प्राप्त होगा। आदेश होकर - स + अश्वत्थ = साश्वत्थ = साश्वत्थम्।

3. ''ग्रन्थान्ताधिके च'' (6.3.79)

उत्तरपद परे रहते सह शब्द को स आदेश होगा यदि सह का अर्थ 'अमुक ग्रन्थ पर्यन्त' या 'अधिक' हो।

उदाहरण - सकलं ज्योतिषमधीते (कला-ग्रन्थपर्यन्त ज्यातिष शास्त्रमधीते)। सद्रोणा खारी (द्रोण परिमाणमधिकं खारी)

सकलं - सह कला। सह का स आदेश हो - स कला। पुंवद्भाव; ह्रस्व सु, सु को अम् हो 'सकलं' सिद्ध होगा।

सद्रोणा - सह द्रोण। स आदेश हो स द्रोण > सद्रोण। स्त्रीलिंग में सद्रोणा हुआ।

4. ''द्वितीये चानुपाख्ये'' (6.3.80)

अ प्रधान अनुमेय को कहना हो तो सह को स आदेश हो जाता है।

उदाहरण - सपिशाचा वात्या। सराक्षसीका शाला। साग्निः कपोतः।

सपिशाचा - सह पिशाच टाप्। यहाँ द्वितीय अनुपाख्य अर्थात् अप्रधान अनुमेय के साथ सट शब्द प्रयुक्त हुआ है। आदेश होने पर - सपिशाच शब्द बना। स्त्रीत्व विवक्षा में 'सपिशाचा' बना साग्निः सह अग्नि। स आदेश होकर - स अग्नि - साग्नि > साग्निः (सुहोकर)

विशेष - सूत्र में आये 'अनुपाख्य' का अर्थ है - अनुमित। जो प्रत्यक्ष उपलब्ध हो वह 'उपाख्य' है उससे अन्य अर्थात् जो प्रत्यक्ष न हो, अनुमित हो 'अनुपाख्य' है। जब एक वस्तु के साथ किसी ऐसे दूसरे पदार्थ को दिखाना हो जिसका उस पदार्थ से अनुमान लगाया जाए तो वहाँ प्रयुक्त 'सह' शब्द को स आदेश होता है। 'साग्निः कपोतः' - इस उदाहरण में कपोत के द्वारा अग्नि का अनुमान लगाया जाता है क्योंकि ऐसी मान्यता है कि जहाँ कबूतर रहता है वहाँ अग्नि अवश्य पायी जाती है। इस प्रकार अग्नि एवं कपोत का साहचर्य प्रसिद्ध है। अतः अनुमित वस्तु 'अग्नि' (जो अप्रधान भी है) के साथ प्रयुक्त सह को स आदेश हुआ। इसी प्रकार वात्या में पिशाच होना तथा शाला में राक्षसी का होना भी प्रसिद्ध है। पिशाच एवं राक्षसी प्रत्यक्ष उपलब्ध नहीं होते अपितु अनुमित होते हैं अतः इनके साथ प्रयुक्त सह को 'स' आदेश होता है।

5. "अव्ययीभावे चाकाले" (6.3.81)

कालवाची शब्दों में भिन्न शब्द के उत्तरपद रहते अव्ययीभाव समास में सह शब्द को 'स' आदेश होता है।

उदाहरण - सचक्रं धेहि। सधुरं प्राज।

सचक्रं - सह चक्र। "चक्रेण युगपत्" इस अर्थ में सह एवं चक्र शब्द का समास हुआ। सह को आलोच्य सूत्र द्वारा स आदेश प्राप्त हुआ। आदेश होकर - स चक्र। सचक्र। स्वादिकार्य हो 'सचक्रं'।

सधुरं - सह धुर। सह का स आदेश होकर - 'सधुर'। सु, सु को अम् हो सधुरं।

6. "वोपसर्जनस्य" (6.3.82)

जिस समास के सारे अवयव उपसर्जन है तदवयव सह शब्द को विकल्प से स आदेश होता है।

उदाहरण - सपुत्रः, सहपुत्रः, सच्छात्रः, सहच्छात्रः।

सपुत्रः - सहपुत्रः - सह पुत्र सु > सह पुत्र। समास के सारे अवयव उपसर्जन होने से समास

के अवयव सह को स आदेश प्राप्त हुआ। आदेश वैकल्पिक है अतः कही आदेश होगा कही नहीं।

आदेश होकर - स पुत्र > सपुत्र सु = सपुत्रः।

आदेश के अभाव में - सह पुत्र सु = सहपुत्रः।

विशेष - 'सर्वावयव उपसर्जन समास' बहुव्रीहि समास है अतः बहुव्रीहि समास में उत्तरपद परे रहते सह शब्द को स आदेश होगा'' ऐसा सूत्रार्थ फलित होता है।

7. ''समानस्य छन्दस्यमूर्धप्रभृत्युदर्केषु'' (6.3.84)

वेद विषय में समान शब्द को स आदेश हो जाता है यदि मूर्द्धन्, प्रभृति, उदर्क - ये उत्तरपद न हों तो।

उदाहरण - अनुभ्राता सगर्भ्यः। अनुसखा सयूथ्यः।

सगर्भ्यः - समान गर्भः > समान गर्भ। समान को स आदेश होकर - स गर्भ = सगर्भ से यत् प्रत्यय होकर = सगर्भ्यः।

सयूथ्यः - समानोयूथः = समानयूथ। सह को सभाव होने पर = सयूथ्य। यत् प्रत्यय हो = सयूथ्यः।

8. ''ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचनबन्धुषु'' (6.3.86)

ज्योतिष, जनपद, रात्रि, नाभि, नाम, गोत्र, रूप, स्थान, वर्ण, वयस्, वचन, बन्धु - इन शब्दो के उत्तरपद रहते समान को स आदेश हो जाता है।

उदाहरण - सज्योतिः, सजनपदः, सरात्रिः, सनाभिः, सनाम, सगोत्रः, सरूपः, सस्थानः, सवर्णः, सवयाः, सवचनः, सबन्धुः आदि।

सज्योतिः - 'समान' 'ज्योतिरस्य' इस विग्रह अर्थ की अभिव्यक्ति हेतु समान एवं ज्योति शब्द का समास हुआ और विभक्ति का लोप होकर - समान ज्योति, ऐसी स्थिति हुई। अब सूत्र विहित आदेश होकर - स ज्योति बना। विभक्ति कार्य होकर 'सज्योतिः' शब्द सिद्ध हुआ। इसी प्रकार समान जनपद > सजनपद, समान रात्रि > सरात्रि आदि शब्दों में भी समान को स आदेश हुआ है।

9. ''चरणे ब्रह्मचारिणि'' (6.3.86)

चरण गम्यमान हो तो ब्रह्मचारी उत्तरपद रहते समान शब्द को स आदेश हो जाता है।

उदाहरण - सब्रह्मचारी।

सब्रह्मचारी - समानौ ब्रह्मचारी। 'चरण' का मुख्य अर्थ है - कठ - कलापादि शाखा। ''समाने ब्रह्मणि व्रतचारी'' इस अर्थ में समान ब्रह्म एवं व्रत का समास तथा व्रत शब्द का लोप हो समान ब्रह्म ऐसी स्थिति हुई। अब सूत्र द्वारा विहित कार्य - समान को सभाव् होकर स ब्रह्मचारी = सब्रह्मचारी शब्द बना।

10. ''तीर्थे ये'' (6.3.87)

तीर्थ शब्द उत्तरपद में हो तो यत् प्रत्यय परे रहते समान शब्द को स आदेश होता है।

उदाहरण - सतीर्थ्यः।

सतीर्थ्यः - समान तीर्थ्यः - समान तीर्थ यत्। यहाँ उत्तरपद 'तीर्थ' शब्द है इससे परे यत् प्रत्यय है और पूर्वपद समान शब्द है। सूत्र में वर्णित सभी लक्षण घटित होने से समान को सभाव होगा - स तीर्थ य सतीर्थ्य। स्वादिकार्य हो सतीर्थ्यः बना।

11. ''विभाषोदरे'' (6.3.88)

यदि उदर शब्द उत्तरपद हो और उसके परे यत् प्रत्यय हो तो समान शब्द को स आदेश होता है।

उदाहरण - सोदर्यः, समानोदर्यः वा।

समाने उदरे भवः। इस विग्रह में समान शब्द और उदर शब्द का समास तथा समस्त शब्द से यत् प्रत्यय हुआ समान उदर यत्। सूत्रविहित स आदेश होकर - स उदर य > सोदर्य बना। स्वादिकार्य होकर 'सोदर्य' बना। यतः स - आदेश वैकल्पिक है अतएव है अतएव आदेश के अभाव पक्ष में समान उदर यत् सु = समानोदर्यः बना।

12. ''दृग् दृशवतुषु'' (6.3.89)

दृक्, दृश् और वतु - ये परे हो तो समान को स आदेश होता है।

उदाहरण - सदृक्, सदृशः।

सदृक् - 'समानमात्मान पश्यति' अर्थ में समान पूर्वपद से परे दुक् शब्द आया - समान दृक्। अब सूत्र द्वारा समान शब्द को स आदेश विहित हुआ। आदेश होकर - सदृक् शब्द बना।

सदृशः - समान दृशः। इस प्रयोग में भी समान को स आदेश हुआ है।

विशेष - समान के साथ वतुप् का प्रयोग नही मिलता। सूत्र में 'वतु' का ग्रहण परवर्ती सूत्र

'इदम्किगोरीश्की:' में वतुप् की अनुवृत्ति हो इस हेतु किया गया है।

सन्दर्भ - सूची

1. सूत्र की 'काशिका' व्याख्या की 'न्यास' टीका।

पंचम अध्याय

"पंचम अध्याय"

"प्रत्ययादेश"

1. "नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः" (2.4.83)

अदन्त (अकारान्त) अव्ययीभाव समास से उत्तर सुप् का लोप नही होता अपितु उस सुप को अम् आदेश हो जाता है। किन्तु पंचमी विभक्ति को छोड़कर यह आदेश होता है।

उदाहरण - उपकुम्भं तिष्ठति। उपकुम्भं पश्य। उपकुम्भं तिष्ठति - यहाँ समीप अर्थ में विद्यमान 'उप' अव्यय का कुम्भ से साथ समास हुआ और अव्ययीभाव समास में उपकुम्भ शब्द बना। इसकी "कृत्तद्धित समासाश्च" से प्रातिपदिक संज्ञा हुई और प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आई। अव्ययीभाव समास में विभक्ति का लोप प्राप्त हुआ अब इस सूत्र से लोप को बाधकर 'सु' के स्थान पर अम् आदेश हुआ - उपकुम्भ अम् > उपकुम्भम्।

उपकुम्भं पश्य - अव्ययी भाव समास में बने उपकुम्भ प्रातिपदिक से द्वितीया विभक्ति एकवचन में अम् प्रत्यय हुआ। इस प्रत्यय का सू. "अव्ययदाप्सुपः"से लोप प्राप्त था जिसको बाधकर प्रकृत सूत्र द्वारा प्रत्यय को अम् आदेश हो 'उपकुम्भं' शब्द बना। अन्यथा 'उपकुम्भ' ऐसा दोषयुक्त शब्द बनने लगता। पंचमी में आदेश का प्रतिषेध होने से उपकृष्णङसि - इस अवस्था में सूत्र द्वारा प्रत्यय का अलुक मात्र होकर 'उपकुम्भमात्' प्रयोग बनता है।

2. "तृतीयासप्तम्योर्वहुलम्" (2.4.84)

अदन्त अव्ययीभाव से उत्तर तृतीया, सप्तमी विभक्ति के स्थान में वाहुलकात् अम् आदेश होता है।

उदाहरण - उपकृष्णम्, उपकृष्णेन, उपकुम्भे, उपकुम्भम्।

उपकृष्णम्, उपकृष्णेन -समीप अर्थ में विद्यमान अव्यय उप का कृष्ण के साथ समास हो उपकृष्ण शब्द बना। अव्ययसंज्ञक होने से इसके परे विभक्ति प्रत्यय का लोप होता है जिसका पूर्ववर्ती सूत्र द्वारा बाध हो पंचमी को छोड़ शेष विभक्ति प्रत्यय को अमादेश प्राप्त हुआ। नित्य रूप से प्राप्त अमादेश आलोच्य सूत्र द्वारा तृतीया एवं सप्तमी विभक्ति परे रहते विकल्प से विहित हुआ अतः - उपकृष्ण टा -, इस तृतीयान्त शब्द प्रयोग में टा को अमादेश एवं अमोदश के अभाव में टा ही रहकर क्रमशः उपकृष्ण

अम् > उपकृष्णम् तथा उपकृष्ण टा > उपकृष्णेन - ये दो रूप बने।

उपकुम्भे, उपकुम्भम् - उपकुम्भ ङि। आलोच्य सूत्र द्वारा अमादेश पक्ष में उपकुम्भ अम् > उपकुम्भम् तथा अमादेश के अभाव पक्ष में उपकुम्भ ङि > उपकुम्भे ये दो शब्द प्रयोग सिद्ध होते है।

3. ''लुटः प्रथमस्य डारौरसः'' (2.4.85.)

प्रथम पुरूष के जो लुडादेश उनको यथासंख्य डा, रौ, रस आदेश हो जाते है। प्रथम पुरूष के लुडादेश है - तिप् रस् झि - प्रथमपद में तथा त, आताम् झ = आत्मने पद में। तिप् एवं त को डा, तस् एवं आताम् को रौ, झि तथा झ को रस् आदेश होता है।

उदाहरण - कर्ता, कर्तारौ, कर्तारः। अध्येता, अध्येतारौ, अध्येतारः।

कर्ता - कृ लुट > कृ तास् तिप्। लुडादेश तिप् को डा आदेश हो - कृ तास् डा। कृ तास् डा > कर्ता।

कर्तारौ - कृ तास् तस्। तस् को रौ आदेश हो - कृ तास् रौ। कृ तास् रौ > कर्तारौ।

कर्तारः - कृ तास् झि। झि को रस् आदेश हो कृ तास् रस्। कृतास् रस् > कर्तारः।

अध्येता - अधि इड् तास् त। त को सूत्र द्वारा प्राप्त डा आदेश हो - अधि इ तास् डा। अधि इ तास् डा > अधि ए त् आ > अध् ए् ए ता = अध्येता।

अध्येतारौ - अधि इङ् तास् आताम्। आताम् को रौ आदेश हो - अधि इ तास् रौ > अध् य् ए ता रौ = अध्येतारौ।

अध्येतारः - अधि इङ् तास् झ। झ को रस् आदेश हो - अधि इङ् तास् रस्। अधि इङ् तास् रस् > अध् य् ए ता रय् = अध्येतारः।

4. ''च्लेः सिच्'' (3.1.44)

चिल इस विकरण के स्थान पर सिच् आदेश होता है लुङ् परे रहते।

उदाहरण - अकार्षीत्, अहार्षित।

अकार्षीत् - अट् कृ च्लि तिप्। च्लि विकरण को सूत्र द्वारा सिच् आदेश प्राप्त हुआ। आदेश - हो - अ कृ सिच् ति। अकृ सिच् ति > अ कार् स् ई ट् > अ कार् ष ई त् = अकार्षीत्।

अहार्षित् - अट् हृ च्लि तिप्। सूत्र द्वारा प्राप्त सिच् आदेश हो - अ हृ सिच् ति। अ हृ सिच् ति > अ हार् ष ई त = अहार्षित्

शप्, श्यन्, च्लि, स्य, तास्, श्ना, श्नम् इत्यादि प्रत्यय कर्ता अर्थ में सार्वधातुक प्रत्यय परे रहते धातु से विहित किये जाते हैं ये प्रत्यय विकरण कहे जाते है।[1] इनकी विशेषता यह है कि ये धातु एवं प्रत्यय के बीच होने वाले प्रत्यय है। धातु से विहित प्रत्यय होने से इनके पूर्व जो धातु होती है उसकी अंग संज्ञा होती है तथा विकरण से परवर्ती जो प्रत्यय उसके संदर्भ में विकरण सहित धातु की अंग संज्ञा होती है।[2]

5. "शल इगुपधादनिटः क्सः" (3.1.45)

शलन्त - इगुपध धातु जो अनिट् हो उससे परे जो च्लि उसके स्थान में क्स आदेश होता है।

उदाहरण - अधुक्षत्, अलिक्षत्।

अधुक्षत् - अट् दुह् च्लि तिप् > अ दुह् च्लि त्। च्लि को सूत्रविहित क्स आदेश हो - अ दुह् क्स त्। अ दुह क्स त् > अ धुक् ष त् = अधुक्षत्।

अलिक्षत् - अट् लिह् च्लि तिप्। च्लि को सूत्र द्वारा विहित क्स आदेश हो - अट् लिह् क्स तिप्। अट् लिह् क्स तिप् > अ लि क्षत = अलिक्षत्।

6. "श्लिष आलिंङ्गने" (3.1.46)

श्लिष् धातु यदि आलिंगन अर्थ में हो तो उससे पर लुङ् में होने वाले विकरण च्लि को क्स आदेश होता है।

उदाहरण - अश्लिक्षत्।

अश्लिक्षत् - अट् श्लिष् च्लि तिप् > अ श्लिष् च्लि त्। च्लि को क्स हो - अ श्लिष क्स् त्। अ श्लिक् ष त् = अश्लिक्षत्। आलिंगन अर्थ में विद्यमान श्लिष् लुङ् में च्लि विकरण को ही सिच् आदेश विहित होने से "श्रिषु श्लिषु पुषु प्लुषु दाहे" के श्लिष् = परक च्लि को सिजादेश नहीं होगा और - आश्लिषत् (च्लि को अङ् हो) इत्यादि रूप बनेंगे।

7. "णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्" (3.1.48)

ण्यन्त धातुओं श्रि, द्रु, स्रु - इनसे परे च्लि को चङ् - आदेश होता है, कर्तो में लुङ् परे रहते।

उदाहरण - अचीकरत्, अजीहरत्। अशिश्रियत्। अदुद्रुवतत्। असुस्रुवत्।

अचीकरत - अट् कृ णिच् लुङ् > अ कृ इ च्लि तिप्। च्लि को ण्यन्त कृ के परे होने से

सूत्रविहित चङ् आदेश हो - अ कृ चङ् त > अ ची कर् अत्।

अजीहरत् - अट् हृ णिच् लुङ् > अट् हृ णिच् तिप् > अट् हृ च्लि त्।

ण्यन्त ह के परे च्लि को चङ् आदेश हो - अ हृ अङ् त् > अ जी हर् अ त् = अजीहरत्।

8. ''विभाषा धेट्श्वयोः'' (3.1.49)

धेट् तथा टुओश्वि धातुओं से उत्तर च्लि के स्थान में चङ् आदेश होता है विकल्प से, कर्तावाची लुङ् परे रहते।

उदाहरण - अदधत्, अशिश्वियत्। चङ् अभाव पक्ष में - अधात् अधासीत्। अश्वत् अश्वयीत्।

अदधत् - अट् धेट् च्लि तिप् > अ धा च्लि त्। च्लि को सूत्रविहित चङ् - हो - अ धा चङ् त् > अ धा अ त् > अ द धा अ त् > अ द ध् अत् > अदधत्।

अशिश्वियत् - अट् श्वि च्लि तिप। च्लि को चङ् हो - अ श्वि चङ् तिप। अ श्वि चङ् तिप् > अ शि श्व इय अ त > अशिश्वियत्।

अधात्, अधासीत् - धेट् से परे च्लि को विहित चङ् वैकल्पिक है। अतएव चङ्ङदेश के अभाव में सिच् ही रहा। सिच् को वैकल्पिक अङ् आदेश प्राप्त है। तब अङ् आदेश पक्ष में अ धा अङ् त् > अधात् तथा अङ् के अभाव में सिच् रहकर - अ धा सिच् त्। अ धा सिच् त् > अ धा सक् इट् सिच् ईट् त् > अ धा स् इ ई त् > अ धास् ई त् > अधासीत्।

9. ''गुपेश्छन्दसि'' (3.1.50)

गुप् धातु से उत्तर च्लि के स्थान में विकल्प से चङ् आदेश होता है, वेद विषय में।

उदाहरण - इमान्नो मित्रावरूणौ गृहानजूगुपतम्। पक्ष में अगोपिष्टम् अगोपायिष्टम् अगौप्तम् आदि भी (चङादेश के अभाव में) बनते हैं

अजूगुपतम् - अट् गुप् च्लि तस्। अ गुप् च्लि तम्। च्लि को चङ् आदेश हो - अ गुप् चङ् तम्। अ गुप् चङ् तम् > अ जू गुप् अ तम् = अजूगुपतम्।

चङ् के अभाव में सिच् विकरण होने पर सिच् का लोप हो - अ गोप् तम् = अगौप्तम् बना। सिच् को इट् आगम् पक्ष में; सिच का लोप नही हुआ और लघुपध गुण हो - अ गोप् इट् सिच् तम् > अगोपिष्टम शब्द बनता है।

10. ''अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ्'' (3.1.52)

असु क्षेपणे, वच परिभाषणे, ख्याञ् (प्रकथने) इन धातुओं से परे च्लि के स्थान में अङ् आदेश होता है कर्तावाची लुङ् परे रहते।

उदाहरण - पर्यास्थत, पर्यास्थेताम्, पर्यास्थन्त। अवोचत्, अवोचताम्, अवोचन्। आख्यत्, आख्यताम्, आख्यन्।

पर्यास्थत - परि आट् अस् लुङ् > परि अस् त परि अस् च्लि त। च्लि को सूत्र विहित अङ् हो - परि आट् अस् अङ् त। परि आट् अस्, अङ्, त > परि आट् अस थुक् अङ् त > पर्यास्थत।

अवोचत् - अट् वच् च्लि तिप्। च्लि को सूत्रविहित अङ् आदेश हो - अ वच् अङ् त्। अ वच् अत् > अ व उ म् च् अत् > अवोचत्।

11. ''लिपिसिचिह्वश्च'' (3.1.53)

लिप्, सिच्, ह्वेञ् - इन धातुओं से विहित च्लि के स्थान में भी अङ्ग आदेश हो जाता है।

उदाहरण - अलिपत, असिचत्, अह्वत्।

अलिपत - अट् लिप् च्लि तिप् > अ लिप् च्लि त्। च्लि को अङ् आदेश हो - अ लिप् अङ् त् > अलिपत्।

अह्वत् - अट् ह्वेञ् च्लि तिप् > अ ह्वा च्लि त्। सूत्र द्वारा विहित अङ् आदेश हो - अ ह्वा अङ्त > अ ह्व अत = अह्वत्।

12. ''आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम्'' (3.1.54.)

लिप् इत्यादि धातुओं से कर्तावाची लुङ् आत्मनेपद परे रहते विकल्प से च्लि के स्थान में अङ् आदेश होता है।

उदाहरण - अलिपत्, अलिप्त, असिचत, असिक्त, अह्वत, अह्वास्त।

अलिपत - अट् लिप् च्लि त। च्लि को आत्मने पद का त प्रत्यय परे रहते सूत्र द्वारा वैकल्पिक अङ आदेश प्राप्त हुआ। अङ् आदेश अभाव पक्ष में - अ लिप् अङ् त > अ लिपत = अलिपत्।

अलिप्त - अट् लिप् च्लि त। च्लि को अङ् आदेश के अभाव पक्ष में अ लिप् च्लित। अ च्लि त > अ लिप् सिच् त = अलिप्त।

असिचत, असिक्त - अट् सिच् च्लि त। सूत्र द्वारा प्राप्त अङ् आदेश हो - अट् सिच् अङ्

त। अ सिच् अङ् त > अ सिच् अ त = असिचत। अङ् आदेश के अभाव में - अट् सिच् च्लि त = च्लि को सिच् एवं उसका लोप (सू. 'झलो झलि' से) हो - अ सिच् त = असिक्त।

13. "पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु" (3.1.55.)

पुषादि, द्युतादि एवं लृदित् धातुओं से परे च्लि को अङ् आदेश होता है कर्तावाची लुङ् त परे रहते।

उदाहरण - अपुषत् - अट् पुष् च्लि तिप्। अ युष् च्लि त्। च्लि को सूत्रविहित अङ् आदेश हो - अ पुष् अङ् त् = अपुषत्।

अद्युतत् - अट् द्युत् च्लि तिप्। च्लि को अङ् आदेश हो - अ द्युत् अङ् तिप् > अ द्युत अ त् = अद्युतत्।

अशकत् - अट् शक्लृ च्लि तिप्। अङ् हो अ शक् अङ् तिप् > अशकत्।

14. "सर्तिशास्त्यर्तिभ्यश्च" (3.1.56.)

सृ (गतौ) शासु (अनुशिष्टौ), ऋ (गतौ) इन धातुओं से परे जो च्लि उसे अङ् आदेश होता है।

उदाहरण - असरत्, अशिषत्, आरत्।

असरत् - अट् सृ च्लि, तिप्। च्लि को अङ् आदेश हो - अ सृ अङ् तिप् > असरत्।

अशिषत् - अट् शास् च्लि तिप्। शास् से परे च्लि को अङ् हो - अ शास् अङ् तिप् > अ शिष् अ त् = अशिषत्।

आरत् - आट् ऋ च्लि तिप्। ऋ से परे च्लि को अङ् हो - आ ऋ अङ् तिप्। आ ऋ तिप् > आ अर् अ त् = आरत्।

15. "इरितो वा" (3.1.57.)

इरित् जो धातुएं है उनसे उत्तर च्लि के स्थान में विकल्प करके अङ् आदेश होता है, कर्तावाची परस्मैपद लुङ् परे रहते।

उदाहरण - अभिदत्, अभैत्सीत्। अच्छिदत्, अच्छत्सीत्।

अभिदत् - अट् भिद् च्लि, तिप्। च्लि को लुङ् परस्मैपद तिप् परे रहते अङ् आदेश होकर - अट् भिद् अङ् तिप्। अट् भिद् अङ् तिप् > अ भिद् अ त् = अभिदत्।

अभैत्सीत - अङ् आदेश के अभाव में अट् भिद् च्लि तिप्। च्लि को सिच् हो - अट् भिद् सिच् तिप् > अ भैत् स् ई (ईट्) त् = अभैत्सीत्।

अच्छिदत् - अट् छिद् च्लि तिप्। च्लि को सूत्र द्वारा विहित अङ् आदेश हो - अ छिद् अङ् तिप् = अच्छिदत्।

अच्छैत्सीत् - अट् छिद् च्लि तिप्। सू. द्वारा विहित अङ् आदेश वैकल्पिक है अतः अङ् के अभाव पक्ष में च्लि को सिच् हो - अट् छिद् सिच् ईट् तिप् > अच्छैत्सीत्।

16. ''जॄस्तम्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च'' (3.1.58.)

जॄष्, स्तम्भु, म्रुचु, म्लुचु, ग्रुचु, गलुचु, टुओश्वि - इन धातुओं से परे च्लि को अङ् आदेश विकल्प से होता है कर्तावाची लुङ् का परस्मैपद प्रत्यय परे रहते।

उदाहरण - अजरत्, अजारीत् - अट् जॄष् च्लि तिप्। जॄष् धातु से परे होने के कारण सूत्र-विहित वैकल्पिक अङ् आदेश प्राप्त होता है। च्लि को अङ् आदेश हो - अट् जॄष् अङ् तिप् > अजरत्। तथा अङ् के अभाव में च्लि को सिच्, ईट, सिच्लोप आदि हो अजारीत् शब्द बनता है।

अस्तभत्, अस्तम्भीत् - अट् स्तम्भु च्लि तिप्। च्लि को अङ् हो - अट् स्तम्भु अङ् तिप् > 'अस्तभत्' तथा अङ् के अभाव में च्लि को सिच् आदेश हो - 'अस्तम्भीत्' शब्द प्रयोग सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार सूत्रोपदिष्ट धातुओं से परे लुङ् के परस्मैपद के प्रत्यय परे रहते धातु से हुये च्लि विकरण को वैकल्पिक अङ् आदेश प्राप्त होने पर अङ् आदेश पक्ष के तथा अङ् के अभाव में च्लि को सिच् हो सिच् प्रत्यय युक्त - दो दो रूप बनते हैं।

17. ''कृमृदृरुहिभ्यश्छन्दसि'' (3.1.59.)

डुकृञ् (करणे), मङ् (प्राणत्यागे) दृ (विदारणे), रूह् (बीज जन्मनिप्रादुर्भावे च) - इन धातुओं से उत्तर च्लि के स्थान में अङ् आदेश होता है, कर्तावाची लुङ् परे रहते वेद विषय में।

उदाहरण - अकरत्, अमरत्, अदरत्, आरुहत्।

अकरत् - अट् कृ च्लि तिप्। कर्तावाची लुङ् तिप् परे रहते तथा क से परे रहते च्लि को अङ् आदेश होकर - अट् कृ, अङ्, तिप् > अ कर् अ त् = अकरत्।

अमरत् - अट् मृङ् च्लि तिप्। मृङ् से परे रहते च्लि को सूत्रविहित अङ् आदेश हो - अ मृङ् अङ् तिप् > अ मर् अ त = अमरत।

अदरत् - अट् द्र च्लि तिप्। च्लि को अङ् आदेश हो - अट् द् अङ् तिप् = अदरत्।

आरुहत् - आङ् - अट् रुह् च्लि तिप्। च्लि को सूत्र द्वारा विहित अङ् आदेश हो - आङ् अट् रुह्, अङ्, तिप् > आ रुह् अ त् = आरुहत्। लौकिक संस्कृत में कृञ्, मृङ्, दृ के परे च्लि को सिच् हो अकार्षीत्। अमृत, अदारीत् और रुह से परे च्लि को क्स हो - अरुक्षत् आदि शब्द सिद्ध होते हैं।

18. ''चिण्ते पदः'' (3.1.60.)

पद धातु से उत्तर च्लि के स्थान में चिण् आदेश होता कर्त्तावाची लुङ् त शब्द परे रहते। उदाहरण - उदपादि सस्यम्। समपादि भैक्षम्।

अपादि - अट् पद् च्लि त। लुङ् में आत्मने पद का त प्रत्यय परे रहते च्लि को सूत्र द्वारा विहित चिण् आदेश हो - अट् पद् चिण् त। अट् पद् चिण् त > अ पाद् इ त > अपादि (''चिणो लुक'' 6.4.104 से त का लोप हो)

19. ''दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्यो ऽन्यतरस्याम्'' (3.1.61.)

दीप, जन, बुध, पूरि, वायु, ओप्यायी - इन धातुओं से उत्तर च्लि के स्थान में, चिण् आदेश विकल्प से हो जाता है, कर्तृवाची लुङ् त शब्द परे रहते।

उदाहरण - अदीपि, अदीपिष्ट - अट् दीप् च्लि त। च्लि को सूत्र द्वारा वैकल्पिक चिण् आदेश प्राप्त है। चिण् आदेश पक्ष में - अ दीप् चिण् त। अ दीप् चिण् त > अ दीप् इ त > अदीपि। आदेश के अभाव में च्लि को सिच् हो - अ दीप सिच् त > अ दीप् इट् स् त = अदीपिष्ट।

अजनि, अजनिष्ट - अट् जन् च्लि त। च्लि को चिण् आदेश हो - अ जन् चिण् त > अजनि, तथा आदेश के अभाव में च्लि को सिच् हो अ जन् इट् सिच् त = अजनिष्ट।

अबोधि, अबुद्ध - अट् बुध् च्लि त। च्लि को सूत्र द्वारा प्राप्त चिण् आदेश हो - अ बुध् चिण् त > अबोधि। चिण् के अभाव में च्लि को सिच् हो - अट् बुध् सिच् त > अ बुध् त > अ बुद् त > अबुद्ध = अबुद्ध।

20. ''अचः कर्मकर्तरि'' (3.1.62.)

अजन्त धातुओं में कमकर्ता अर्थ में लुङ् में त प्रत्यय परे रहते च्लि को विकल्प से चिण् आदेश होगा।

उदाहरण -अकारि कटः स्वयमेव, अकृत कटः स्वयमेव। अलादि केदारः स्वमेव, अलविष्ट केदारः स्वयमेव।

अकारि, अकृत - अट् कृ च्लि त। च्लि को सूत्रविहित चिण् आदेश होने पर - अट् कृ चिण् त। अट् कृ चिण् त > अ कृ चिण् > अ कार् इ = अकारि।

अकृत - अट् कृ च्लि त। सूत्र-विहित आदेश के अभाव पक्ष में च्लि को सिच् हो अ कृ सिच् त > अ कृ स् त > अकृत = अकृत। कर्मकर्ता का अर्थ है - जो कर्म होकर कर्ता हो। जब कोई कर्म शब्द कर्ता के रूप में विवक्षित हो। कर्म कर्ता शब्द त का विशेषण है कटः वस्तुतः कर्म है जो कर्ता रूप में विवक्षित हुआ है। अतएव कर्मकर्तुवाच्य विषय में सूत्र-विहित कार्य सम्पन्न होता है। शुद्ध कर्मवाच्य विषय में वैकल्पिक विण न होकर नित्य चिण् हो जाता है जैसे - अकारि कर देवदत्तेन।

21. ''दुहश्च'' (3.16.63.)

दुह् धातु से उत्तर भी कर्मकर्ता में च्लि के स्थान में चिण् आदेश विकल्स से होता है। त शब्द परे रहते।

उदाहरण - अदोहि गौः स्वयमेव। अदुग्ध गौः स्वयमेव।

अदोहि, अदुग्ध - अट् दुह् च्लि त। च्लि को सूत्र द्वारा वैकल्पिक चिण् आदेश प्राप्त होने पर च्लि को चिण् आदेश के भाव पक्ष में अट् दुह् चिण् त। अट् दुह चिण् त > आ दुह् इ त > अ दुह् इ > अ दोह् इ = अदोहि। चिण् आदेश के अभाव पक्ष में च्लि को क्स हो अ दुह् क्स त > अ दुह् त > अ दुध् त > अ दुध् ध > अ दुग् ध = अदुग्ध।

शुद्ध कर्म अर्थ में च्लि को चिण् आदेश नित्य होगा विकल्प से नहीं।

22. ''चिण् भावकर्मणोः'' (3.1.66.)

भाव और कर्म में धातु मात्र से उत्तर च्लि के स्थान में चिण् आदेश होता है, लुङ् का त शब्द परे रहते।

उदाहरण - भाव में - अशायि भवता। कर्म में - अकारि कटो देवदत्तेन।

अशायि भवता - यहाँ भाववाच्य में आत्मने पद शीङ् धातु से लकार हुआ और लुङ् के प्रथम पुरूष एकवचन में त प्रत्यय हुआ। अट् शीङ् च्लि त। अब सूत्र द्वारा च्लि को चिण् आदेश प्राप्त हुआ। चिण् आदेश होकर - अ शी चिण् त। अ शी इ त > अ शै इ त > अ श् आय् इ त > अशायि त = आशयि।

अकारि कटो देवदत्तेन - यहाँ कर्म में कृ धातु से लकार हुआ और लुङ् प्रथम एकवचन में

त प्रत्यय हुआ - अट् कृ च्लि त। च्लि को सूत्र इस चिण् आदेश हो - अ कृ चिण् त। अ कृ चिण् त > अ कार् इ त > अकारि त > अकारि।

23. ''हलः श्नः शानज्झौ'' (3.1.83.)

हलन्त धातु से उत्तर श्ना प्रत्यय के स्थान में शानच् आदेश हो जाता है। हि परे हो तो।

उदाहरण - मुषाण रत्नानि। पुषाण।

मुषाण - मुष् लोट् > मुष् सिप् > मुष् श्ना हि। मुष् हलन्त धातु है अतः इससे उत्तर श्ना को सूत्र द्वारा शानच् आदेश हो - मुष् शानच् हि। मुप् शानच् हि > मुप् आन हि > मुष् आन > मुषाण।

पुषाण - पुष् लोट > पुष् सिप् > पुष् श्ना हि। श्ना को शानच् हो - पुष् शानच् हि। पुष् शानच् हि > पुषाण।

24. ''छन्दसि शायजपि'' (3.1.84.)

वेद में श्ना के स्थान में शायच् तथा शानच् भी होता है।

उदाहरण - गृभाय जिह्वया मधु। बधान् पशुम्।

गृभाय - ग्रह श्ना हि। सूत्र द्वारा श्ना को शायच् तथा पक्ष में शानच् भी प्राप्त होता है। श्ना को शायच् आदेश हो - ग्रह शायच् हि। ग्रह शायच् हि > ग्रह् आय > गृह् आय > गृभ् आय = गृभाय।

बधान् - बध् श्ना हि। सूत्र द्वारा पक्ष में श्ना को शानच् प्राप्त है। श्ना को शानच् आदेश हो - वध् शानच् हि > बधान्।

25. ''लिटः कानज्वा'' (3.2.106.)

वेद विषय में लिट् के स्थान पर कानच् आदेश विकल्प से होता है।

उदाहरण - अग्नि चिक्यानः।

चिक्यान - चिञ् लिट् चि से परे लिट् को कानच् आदेश हो - चि कानच्। चि चि आन > चि कि आन > चि क्य आन > चिक्यान।

26. ''क्वसुश्च'' (3.2.107.)

वेद विषय में लिट् को क्वसु आदेश भी होता है।

उदाहरण - जक्षिवान् - अद् लिट्। लिट् को क्वसु आदेश होकर - अद्र क्वसु। अद क्वसु > घस्लृ क्वसु। घस् इट वस् > ज घस् इवस् ज क् ष् इ वस् जक्षिवस्। जक्षिवस् सु > जक्षिवान्।

पपिवान् - पा लिट्। लिट् को सूत्र द्वारा प्राप्त क्वसु आदेश हो - पा क्वसु। पा क्वसु > प पृ इट् वस् = पपिवस्। पपिवस् सु > पपिवान्।

27. ''भाषायां सदवसश्रुवः'' (3.2.108.)

लौकिक प्रयोग में सद, वस, श्रु - इन धातुओं से परे विकल्प से लिट् प्रत्यय होता है और लिट् के स्थान में नित्य क्वसु आदेश होता है भूतकाल में।

उदाहरण - उपसेदिवान्, उपससाद - उपद सद् लिट्। लिट् को सूत्र-विहित क्वसु आदेश होने पर - उप सद क्वसु > उपसे दिवस्, उपसे दिवस् सु = उपसेदिवान्। क्वसु आदेश वैकल्पिक है अतएव पक्ष में लिट् होकर - उप सद् लिट् > उप सद णल् = उपससाद इत्यादि रूप भी बनेंगे।

अनूषिवान्, अनूवास - अन वस लिट्। वस् - पूर्वक लिट् प्रत्यय को क्वसु आदेश प्राप्त है। आदेश वैकल्पिक है अतः आदेश पक्ष में - अन वस् क्वसु > = अनुषिवस्, अनुषिवस् सु = अनूषिवान् तथा आदेश के अभाव में लिट् > अन वस् णल् = अनूवास, इत्यादि शब्द प्रयोग सिद्ध हुये हैं।

उपशुश्रुवान्, उपशुश्राव - उप श्रु लिट्। लिट् को क्वसु आदेश होकर उप श्रु क्वसु = उपशुश्रुवस्, उपशुश्रुवस् सु = उपशुश्रुवान्। तथा आदेश के अभाव में लिट् में णलादि प्रत्यय होकर उप श्रु णल्। उपशुश्राव शब्द बनता है।

28. ''लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे'' (3.2.124.)

धातु से लट् के स्थान में शतृ तथा शानच् आदेश होते हैं (वर्तमान काल में) यदि उसका प्रथमा के साथ समानाधिकरण न हो तो।

उदाहरण - पचन्तं चैत्रं पश्य। पचमानं देवदवं पश्य।

पचन्तं - पच् लट्। यहाँ द्वितीयासमानाधिकरण पच् धातु से वर्तमान काल में लट् लकार आया जिसे उपर्युक्त सूत्र द्वारा शतृ एवं शानच् आदेश प्राप्त हुये। लट् के स्थान पर शतृ प्रत्यय होने पर - पच् शतृ ऐसी स्थिति हुई पच् शतृ > पचत्, पचत् अम् = पचन्तम्।

पचमानं - पच् लट्। उपर्युक्त सूत्र द्वारा लट् के स्थान पर विहित हुये शतृ एवं शानच् आदेशों में शानच् होने पर - पच् शानच् = पचमान शब्द बनता है। पचमान् अम् > पचमानं।

कहीं-कहीं प्रथमा समानाधिकरण्य होने पर भी लट् को शतृ, शानच आदेश हो जाते है यथा - सन् ब्राह्मणः, अस्ति ब्राह्मणः। इसका समाधान करते हुये काशिकाकार ने कहा - 'लट्' इति वर्तमाने

पुनर्लड्ग्रहणमधिकविद्यानार्थम् - क्वचित् प्रथमासमानाधिकरणेऽपि भवति अर्थात् पूर्ववर्ती सूत्र 'वर्तमाने लट्' से लट् की अनुवृत्ति होते हुये भी पुनः सूत्र में जो लट् पद का ग्रहण किया गया उससे प्रथमा समाधिकरण में भी (यदि आवश्यकता हो तो) उपर्युक्त आदेश हो जाते हैं।

29. "संबोधने च" (3.2.125.)

सम्बोधन के विषय में धातु से लट् के स्थान में शतृ एवं शानच् आदेश हो जाते है।

उदाहरण - हे पचन्। हे पचमान्।

हे पचन् - यहाँ सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति हुई है। 'अप्रथमासमानाधिकरणे, प्रतिषेध के कारण पूर्व सूत्र द्वारा लट् के स्थान पर शतृ शानच् आदि प्रत्यय यहाँ प्राप्त नहीं थे अतः उपर्युक्त सूत्र से इस प्रसंग में आदेशों की प्राप्ति करायी गई, तब लट् को शतृ हो - पच् लट् > पच् शतृ = पचन्, हे पचन्। प्रयोग बना।

हे पचमान - लट् के स्थान पर (सम्बोधन विषयक प्रथमा समानाधिकरण में) उपर्युक्त सूत्र द्वारा शानच् आदेश होने पर - पच् लट् > पच् शानच् = पचमान, हे पचमान् प्रयोग बनता है।

30. "लक्षणहेत्वोः क्रियायाः" (3.2.126.)

लक्षण एवं हेतु के अर्थ में वर्तमान जो धातु उससे परे लट् के स्थान पर शतृ एवं शानच् आदेश होते है यदि लक्षण एवं हेतु क्रिया के विषय में हो तो।

उदाहरण - लक्षण - शयाना भुंजते यवनाः। तिष्ठन्तो अनुशासति गणकाः। हेतु - अजयन्वसति। अधीयानौ वसति।

शयानाः - यहाँ लक्षण अर्थ में विद्यमान शीङ् धातु से वर्तमान काल में लट् हुआ है जिसे प्रकृत से शानच् आदेश प्राप्त हुआ। सूत्र-विहित कार्य होकर - शीङ् लट् > शीङ् शानच् = शयान जस् = शयानाः।

तिष्ठन्तः - स्था लट् > तिष्ठन्तो अनुशासति इस वाक्य में स्था धातु अनुशासन क्रिया के लक्षण अर्थ में विद्यमान है अतः सूत्र द्वारा लट् प्रत्यय के स्थान पर शतृ आदेश होने पर - स्था शतृ > तिष्ठ शतृ = तिष्ठन्त्। तिष्ठत् सु = तिष्ठन्तः।

अर्जयन् - अर्ज लट्। 'अर्जयन् वसति' - इस वाक्य में 'वसु' क्रिया का हेतु 'अर्ज' है अतः अर्ज से परे जो लट् उसे शतृ आदेश होने पर - अर्ज शतृ > अर्जयन् शब्द बना।

अधीयानो वसति - अधि इङ् लट्। हेतु अर्थ में विद्यमान इङ् से परे लट् के शानच् आदेश हो - अधि इङ् शानच् > अधीयजः 'लक्ष्यते चिह्न्यते येन तल्लक्षणम्' तथा 'लक्ष्यते ज्ञाप्यतेऽनेनेति लक्षणम् ज्ञापकम्।' इन लक्षणों के आधार पर लक्षण शब्द का अर्थ है - ज्ञापक या परिचायक। सिद्धान्त कौमुदी में लक्षण शब्द के लिये 'पारिचायक' शब्द प्रयुक्त हुआ है - क्रियायाः परिचायके हेतौ चार्थे वर्तमानाद्धातोर्लटः - शतृशानचौ स्तः। शयानाः भुञ्जते यवनाः एव तिष्ठन्तौ अनुशासति गणकाः - इन वाक्यों में शयन एवं अवस्थान लक्षण है इनसे क्रमशः भोजन क्रिया एवं अनुशासन क्रिया लक्षित हो रही है। (अत्रशयनं, भुजिक्रियाः विषयः। तेने हि भुजिक्रिया लक्ष्यते)। तत्र शीङ् वर्तते तथा - अत्रावस्थानं लक्षण तेनानु शासन क्रिया लक्ष्यते। सि. कौ. की बालमनोरमा टीकाकार के अनुसार - अत्र भोजनकालीनं शयनं भोक्तुर्यवनत्वसूचकम् अर्थात् भोजनकालीन शयन भोक्ता के यवनत्व का सूचक है अर्थात शीङ् धातु लक्षण है यवन सम्बन्धी भोजन क्रिया का तथा स्था धातु लक्षण है गणक सम्बन्धी अनुशासन क्रिया का। हेतु का अर्थ है कारण। 'हेतुः फलं कारणं जनकः = हेतुः। अर्जयन्वसति अधीयानो वसति। - इन वाक्यों में क्रमशः अर्जन एवं अध्ययन निवास का हेतु है।

31. "लृटः सद्वा" (3.3.14.)

लृट् के स्थान पर सत्संज्ञक शतृ एवं शानच् प्रत्यय विकल्प से होते है।

उदाहरण - करिष्यन्तं देवदत्तं पश्य। करिष्यमाणं देवदत्तं पश्य। करिष्यन, करिष्यति।

करिष्यन्तं, करिष्यमाणं - कृ लृट्। लृट् को सूत्र द्वारा प्राप्त शतृ एवं शानच् होने पर - कृ शतृ, कृ शानच् > करिष्यन्त, करिष्यमाण अम् = करिष्यतन्तं, करिष्यमाणं।

करिष्यन्, करिष्यति - कृ लृट् सु। लृट् को सतसंज्ञक शतृ होने पर - कृ शतृ सु > करिष्यन्। शतृ के अभाव में कृ लृट् > कृ तिप् > कृ स्य ति > कर् इट् स्य ति = करिष्यति। लृट् लकार सामान्य भविष्यत् काल में तथा क्रियार्थ क्रिया उपपद रहते धातु से विहित किया गया है ('सू. लृट् शेषे च' 3.3.13)। इन स्थितियों में विहित जो लृट् उसे प्रकृत सूत्र द्वारा वैकल्पिक सत्संज्ञक आदेश होता है सूत्र द्वारा विहित विकल्प व्यवस्थित विकल्प है अतः अप्रथमासमानाधिकरण विषय में ये आदेश नित्य रूप से तथा प्रथमा समानाधिकरण में विकल्प से होंगे।

32. "क्रियासमभिहारे लोट् लोटो हिस्वौ वा च तध्वमोः" (3.4.2.)

क्रिया समभिहार का विषय हो तो धातु से धात्वर्थसम्बन्ध होने पर सब कालों में सब लकारों

का अपवाद् लोट् प्रत्यय हो जाता है और उसके (लोट् के) स्थान में हि तथा 'स्व' नित्य हो जाते है तथा लोडादेश त, ध्वम् होने वाले स्थान पर ये आदेश विकल्प से होते हैं। (पक्ष में त, ध्वम् भी होते है)। उदाहरण - लुनीहि लुनीहि इत्येवायं लुनाति। - वर्तमान लुनीहि-लुनीहि इत्येवायमलावीत्। - भूत लुनीहि लुनीहि इत्येवायं लविष्यति। - भविषत्। अधीष्व अधीष्व इत्येवायमधीते। - वर्तमान। अधीष्व अधीष्व इत्येवायमधू। - भूतकाल। अधीष्व अधीष्व इत्येवायमधीष्यति। - भविष्यत्।

लुनीहि, लुनीहि - यहाँ क्रिया - समाभिहार का विषय होने से लूञ् धातु से लूञ् धातु से वर्तमान, भूत, भविष्यत् इत्यादि कालों में लट्, लङ्, लृट् इत्यादि सभी लकारों का अपवाद लोट् लकार हुआ और लोट् के स्थान पर 'हि' आदेश प्राप्त हुआ। आदेश होने पर लू हि > लू श्ना हि > लुनीहि। लुनीहि लुनीहि।

अधीष्व, अधीष्व - अधि पूर्वक इङ् धातु से क्रिया से क्रिया समाभिहार में सभी काल में सब लकारों का अपवाद लोट् एवं लोट् के स्थान पर 'स्व' आदेश होकर - अधि इङ् स्व > अधीष्व > अधीष्व अधीष्व शब्द बने।

इस सूत्र द्वारा दो कार्य उपदिष्ट हुये है। प्रथम क्रिया समभिहार जैसे विशेष सन्दर्भ में धातु से सभी कालों में सब लकारों का अपवाद लोट् लकार का विधान तथा लोट के स्थान पर क्रमशः 'हि' एवं 'स्व' आदेश-विधान। 'हि' आदेश परस्मैपद में एवं 'स्व' आदेश आत्मने पद में होते हैं। ये आदेश सभी अठारह लादेशों में सोलह को नित्य रूप से होंगे पर त एवं ध्वम् को विकल्प से होंगे अतएव त एवं ध्वम् प्रत्यय के प्रसंग में दो-दो रूप बनेंगे। एक हि प्रत्ययान्त दूसरा त प्रत्ययान्त तथा एक स्व प्रत्ययान्त दूसरा ध्वम् प्रत्ययान्त। सभी कालों में सभी लकारों को मात्र दो आदेश विहित किये जाने से सभी वचनों, लिगों में एक से ही रूप बनेंगे। केवल आत्मने-पद एवं परस्मैपद के भेद से 'हि' प्रत्ययान्त अथवा स्व-प्रत्ययान्त रूप बनेंगे।

क्रिया समभिहार का अर्थ है एक ही क्रिया का पुनः पुनः या बार-बार होना। ''पौनः पुन्यं भृशार्थो का क्रियासमभिहारः।'' लुनीहि लुनीहि इत्येवायं लुनाति - यहाँ लूञ् क्रिया का बार-बार या पुनः पुनः होना प्राप्त होता है। अतः यहाँ क्रियासमभिहार का विषय है।

33. ''समुच्चयेऽन्यतरस्याम्'' (3.4.3.)

यदि अनेक क्रियाओं का समुच्चय हो तब उक्त कार्य - लोट् का विधान आदि - विकल्प

से होते हैं।

उदाहरण - भ्राष्टमट मठमट खदूरमट स्थाल्यपिधानमटेत्येवायमटति। अथवा भ्राष्टमटति, मठमटति, खदूरमटति, स्थाल्यपिधानमटत्येवायमटति। छन्दोऽधीष्व व्याकरणमधीष्व निरुक्तमधीष्वेत्येवायमधीते। अथवा छन्दोऽधीते व्याकरणमधीते निरुक्तम् अधीते इत्येवाम्धीते।

छन्दोऽधीष्व, व्याकरणमधीष्वः छन्दोऽधीते, काकरणमधीते - यहाँ क्रिया समुच्चय के प्रसंग के उपस्थिति होने से अधिपूर्वक इङ् धातु से वैकल्पिक लोट् प्राप्त होता है। लोट् पक्ष में - अधि इङ् लोट् > अधि इङ् स्व् = अधीष्व। छन्दोऽधीष्व, व्याकरणमधीष्व आदि शब्द सिद्ध हुये। लोट् के अभाव में लट् लकार में तिबादि हो छन्दोऽधीते, व्याकरणमधीते आदि प्रयोग बनते है।

भ्रष्टमट, भ्रष्टमटति - यहाँ भाड् के पास जाना, मठको जाना, चावल पकाने के पात्र को धोकर रखे जाने वाले स्थान पर जाना। इन सभी क्रियाय का समुच्चय हुआ है। अतः समुच्चीयमान क्रिया की बोधक धातु से विकल्प से लोट् लकार प्राप्त होना है। लोट् पक्ष में अट लोट् > अर तिप् > अट हि > अट। भ्राष्टमट, खदूरमट आदि तथा लोट के अभाव में लट् हो अट तिप् > अटति। भ्राष्ट्रमटति, खदूरमटति आदि > शब्द प्रयोग सिद्ध हुये।

भ्राष्टमटत, खदूरमटत, मठमटत स्थाल्यपिधानमटत इत्येवायंमटत - त प्रत्यय के विषय में हि आदेश का विधान विकल्प से हुआ है अतः 'हि' आदेश के अभाव में 'त' प्रत्यय ही होकर 'अटत रूप बनेंगे। इसी प्रकार 'स्व' आदेश के अभाव पक्ष में ध्वम् प्रत्यय के योग में निरुक्तमधीध्वम् इत्येव यूयमधीध्वे रूप बनेंगे।

क्रिया समुच्चय का अर्थ है अनेक क्रियाओं का अध्याहार। क्रिया समभिहार में एक ही क्रिया का बार-बार या पुनः पुनः होना पाया जाता है तो क्रिया समुच्चय में अनेक क्रियाओं का एकीकरण। जैसे - तुनीहि लुनीहि इत्येवायं लुनाति। यहाँ एक ही क्रिया लूञ् (काटना) का बार-बार होना दिखाया गया है। अधीष्व-अधीष्व इत्येवायमधीते यहाँ अध्ययन क्रिया का पुनः पुनः होना देखा गया है। ये सभी क्रिया-समभिहार के उदाहरण हैं। दूसरी ओर - छन्दोऽधीष्व, व्याकरणमधीष्व, निरुक्तमधीष्व इत्येवायमधीते, यहाँ कई क्रियायें - छन्द, अध्ययन क्रिया, व्याकरण, अध्ययन क्रिया, निरुक्त अध्ययन क्रिया - इस सब का एकत्र कथन किया गया है (इत्येवायमधीते) भ्राष्टमट खदूरमट, स्थाल्यपिधानमटत मठमटति इत्येवायमटति - इस उदाहरण में भी भाड़ पर जाना मठ को जाना, कमरे में जाना इस तरह कई क्रियाओं का एक ही

सम्बन्ध में कथन कर दिया गया है - "इत्येवायमटति अतः यह क्रियासमुच्चय उदाहरण है।

34. "तिप्तस्झिसिप्थस्थमिब्वस्मस्तातांझथासाथाध्वमिड्वहिमहिङ् (3.4.78.)

धातु से तिप्, तस्, झि, सिप्, थस्, थ, मिप्, वस्, मस्, त, आताम्, झ, थास्, आथाम्, ध्वम्, इट्, वहि, महिङ् - ये अट्ठारह लादेश होते हैं।

उदाहरण - भवति, भवतः, भवन्ति, भवसि, भवथः, भवथ, भवामि, भवावः, भवामः। एधते, एधाते, एधन्ते, एधसे, ऐधेथे, एधध्वे, एधे, एधावहे, एधामहे।

भवति - भू धातु से वर्तमान काल में लट् लकार आया और भू लट् ऐसी स्थिति हुई। अनुबन्ध लोप हो भू ल् शेष रहा। अब भू धातु से उपर्युक्त सूत्र द्वारा विहित आदेश 'ल्' के स्थान पर प्राप्त हुये और प्रथमा एकवचन में 'तिप' होकर भू तिप् = भवति बना। इसी प्रकार लट् प्रथम पुरूष द्विवचन में तस् लट् प्रथम पु. बहुवचन में झि, लट् म. पु. एकवचन में सिप्, लट् मध्यम पुरूष द्विवचन में थस्, लट् मध्यम पु. द्वि. व. में थ, लट् उत्तम पुरूष एकवचन में मिप्, लट् उत्तम पु. द्विवचन में वस, लट् उत्तम पुरूष बहुवचन में मस् आदेश होंगे। इसी प्रकार उपर्युक्त विषय में त से लेकर महिङ् पर्यन्त नौ आदेश आत्मने पदी धातुओं से हो जाते हैं।

सूत्र में कुल अट्ठारह आदेश उपदिष्ट हुये है तिप् से लेकर मस् - पर्यन्त नौ आदेश परस्मैपदसंज्ञक एवं त से लेकर महिङ् तक नौ आदेश आत्मने पद संज्ञक होते हैं। लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट्, लङ्, लिङ्, लुङ्, लृङ् ये दश लकार है। टकार, इकार, उकार, ऋकार, ओकार, अकार तथा ङकार इत्यादि का लोप होने पर सब में केवल 'ल्' अक्षर अवशिष्ट रह जाता है। 'ल्' के स्थान पर पुरूष एवं वचन के अनुसार ये आदेश हो जाते हैं। 'ल्' के स्थान पर होने से इन्हें 'लादेश' भी कहते हैं। तिप्, सिप्, मिप् इन आदेशों को अनुबंध पकार का विशेष प्रयोजन है। इससे सू. 'अनुदात्तौ सुप्पितौ" से अनुदात्त स्वर तथा सार्वधातुकमपित् से ङिद्वद्भावातिदेश इत्यादि कार्य हो जाते हैं।

35. "थासः से" (3.4.80.)

टित् लकार सम्बन्धी जो 'थास्' आदेश उसे 'से' आदेश हो जाता है।

उदाहरण - पचसे, पेचिषे, पक्तासे, पक्ष्यसे।

पचसे - पच् लट् > पच् थास्। लट् टित् लकार है अतएव टित् लादेश थास् को 'से' आदेश हो जायेगा। - पच से। पच् शप् से = पचसे।

पेचिषे - पच् लिट्। पच् थास् > पच् तास् थास्। थास् को सूत्रविहित 'से' आदेश हो - पच् से। पेच इट् से = पेचिषे।

पक्तासे - पच् लुट्। पच् थास् > पच् तास् थास्। लुट् टित् लकार है इसलिये टित् लादेश 'थास' के स्थान पर 'से' हो जायेगा। पच् तास् से > पक् ता से = पक्तासे।

36. "लिटस्तझयोरेशिरेच्" (3.4.81.)

लिडादेश त एवं झ को क्रमशः एश् तथा इश्रेच् आदेश हो जाते हैं।

उदाहरण - पेचे, पेचिरे आदि।

पेचे - पच् लिट्। पच् त। त को एश् आदेश हो पच् एश्। पच् एश् > पेच् ए = पेचे।

37. "परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथु सणल्वमाः" (3.4.82.)

लिट् लकार के परस्मैपदपरक संज्ञक जो नौ तिबादि आदेश उनके स्थान पर क्रमशः णल्, अतुस्, उस्, थल्, अथुस्, अ, णल्, व, म ये नौ आदेश हो जाते है।

उदाहरण - पपाच, पेचतुः, पेचुः, पेचिथ, पेचथुः, पेच, पपाच, पचाव, पचाम।

पपाच - पच् लिट्। पच् तिप्। तिप् को सूत्र विहित णल् आदेश होने पर - पच् णल् > प पच् णल् > प पाच् अ = पपाच।

पेचतुः - पच् लिट् > पच् तस् 'तस्' को 'अतुस' आदेश हो - पच्, अतुस् > पेचतुः।

पेचुः - पच् लिट् > पच् झि। झि को सूत्रविहित 'उस' आदेश हो। पच् उस् > पेचुः।

पेचिथ - पच् लिट् > पच् सिप् > पच् थल् > पेचिथ।

पेचथुः - पच् थस् > पच् अथुस् = पेचथुः।

पेच - पच् थ > पच् अ > पेच् अ = पेच।

पपाच - पच् मिप् > पच् णल् > प पच् अ > प पाच् अ = पपाच।

पेचिम - पच् लिट् > पच् मस् = पेचिम।

38. "विदो लटो वा" (3.4.83.)

विद् धातु से परे लडादेश जो परस्मै पद संज्ञक उनके स्थान में क्रम से णल् आदि नौ आदेश विकल्प से हो जाते है।

उदाहरण - वेद, वेत्ति, विदतुः, वित्तः।

वेद्, वेत्ति - विद् लट्। विद् से परे लट् को वैकल्पिक णल् आदि आदेश प्राप्त हुये। णल् आदेश पक्ष में प्रथम पुरूष एकवचन में विद् णल् > वेद्। णल् आदेश के अभाव में तिप् प्रत्यय होने पर विद् तिप् > वेद् ति > वेत् ति = वेत्ति।

विदतुः, वित्तः - विद् से सूत्रविहित णलादि आदेशों के भाव पक्ष में प्र. पु. द्वि. व. में अतुस् हो - विद् अतुस् = विदतुः। अतुस् के अभाव में तस् हो - विद् तस् = वित्तः शब्द प्रयोग सिद्ध होगा।

णलादि आदेश के अभाव में पक्ष में प्रथम पु. बहु. व. में विदुः, म. पु. वे वेत्थ; विदथुः, विद, उत्तम पु. में वेद, विद्ध, विद्म तथा आदेश में अभाव में उपर्युक्त पुरूषों एवं वचनों में क्रमशः विदन्ति तथा वेत्सि, वित्थ और वेद्मि, विद्वः तथा विदमः शब्द बनते हैं।

39. "ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ध्रुव" (3.4.84.)

ब्रू धातु के परे जो लट् लकार के पाँच आदि के तिवादि प्रत्यय (तिप्, तस्, झि, सिप्, थस्) उनके स्थान में क्रम के पांच णलादि आदेश (णलू, अतुस्, उस्, थल्, अथुस्) विकल्स से हो जाते है। इसके साथ ही 'बूञ्' धातु को 'आह्' आदेश भी हो जाता है।

उदाहरण - आह, आहतुः, आहुः, आत्थ, आहथुः। आदेश के अभाव में - ब्रवीत, ब्रूतः, ब्रूवन्ति, ब्रवीमि, ब्रूथः।

आह - ब्रू लट् > ब्रू तिप्। तिप् को सूत्र द्वारा विहित णल् आदेश तथा ब्रू को आह आदेश होने पर - आह णल् > आह शब्द बना।

आहतुः - ब्रू तस्। तस् को अतुस् एवं ब्रू को आह् आदेश होने पर - आह् अतुस् > आहतुः।

आहुः - ब्रू लट् > ब्रू झि। ब्रू को आह्, झि को उस आदेश हो - आह् उस > आहः।

आत्थ - ब्रू सिप्। सिप् को थल् एवं ब्रू को आह आदेश होने पर - आह् थल् > आथ् थ > आत् थ = आत्थ।

आहथुः - ब्रू थस्। थस् को अथुस् तथा अथुस् के सन्नियोग में थस् आह् आदेश होने पर -आह अथुस् = आहथुः। शब्द बना। इस सूत्र में पूर्वसूत्र 'विदो लटो वा' से 'वा' की अनुवृत्ति होती है। इसलिये तिप् इत्यादि को होने वाले णलादि आदेश विकल्प से होते हैं। 'सन्नियोगशिष्टानां सह वा प्रवृत्तिः सह वा निवृत्तिः' नियम से जब णलादि आदेश नहीं होंगे तो ब्रूञ् को आह आदेश भी नहीं होगा तब ब्रू तिप् > ब्रवीति, ब्रू तस् > ब्रूतः, ब्रू झि > ब्रूवन्ति। ब्रू सिप् > ब्रवीषि, ब्रू थस् > ब्रूथः इत्यादि

धातु रूप सिद्ध होंगे।

40. ''सेह्यर्पिच्च'' (3.4.87.)

लोडादेश सिप् के स्थान में 'हि' आदेश हो और हि अपित् हो। (यहाँ 'हि' को स्थानिवद्भाव से पित् होना चाहिये था जिसका निषेध कर दिया गया। इससे 'हि' को अपित् माना गया)।

उदाहरण - लुनीहि, पुनीहि, राध्नुहि।

लुनीहि - लूञ् लोट् > लूञ् सिप्। लोडादेश 'सिप्' को उपर्युक्त सूत्र द्वारा विहित 'हि' आदेश होने पर - लू हि > लु श्नु हि > लु नी हि = लुनी हि शब्द बना।

राध्नुहि - राध् सिप् > राध् श्नु सिप्। 'सिप्' को 'हि' आदेश होने पर राध् नु हि = राध्नुहि शब्द सिद्ध हुआ।

'हि' के अपितु होने से 'सार्वधातुकमपित्' - सूत्र से ङिद्वद्भाव हो जाने से 'ई हल्यघोः'' सू. द्वारा ईत्व हो लु नी हि, लुनीहि इत्यादि शब्द बनते हैं। अपित् करने का दूसरा प्रयोजन है गुणनिषेध। अपित् 'हि' को ङिद् वद् कर दिया गया। ङित् हो जाने से 'क्ङिति च' सूत्र से गुण का निषेध हो गया।

41. ''मेर्निः'' (3.4.89.)

लोडादेश 'मि' के स्थान पर 'नि' आदेश हो जाता है।

उदाहरण - पठानि, पचानि।

पठानि - पठ् मिप् > पठ् शप् मिप्। 'मि' को 'नि' आदेश होने पर - पठ नि > पठ आट् नि > पठानि।

पचानि - पच् मिप् > 'मि' को 'नि' आदेश होकर - पच नि > पच आट् नि > पचानि।

42. ''तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः'' (3.4.101.)

ङित् लकार सम्बन्धी तस, थस, थ, मिप् को क्रमशः ताम्, तम्, त, अम् - ये आदेश हो जाते है।

उदाहरण - अपचताम् - अट् पच् लङ् > अ पच् तस्। लङ् ङित लकार है अतएव इसके तस् को सूत्रविहित ताम् आदेश प्राप्त है। ताम्र हो - अ पच् ताम् = अपच्ताम्। इसी प्रकार लङ् में थस को तम् थ को त और निप् को अम् आदेश हो - अपचतम्, अपचत, अपचम् शब्द सिद्ध हुये हैं।

अभूतम - अट् भू लुङ् > अ भू थस्। ङित लकार होने से लुङ् सम्बन्धी थस् को तम् आदेश होकर - अ भू तम् = अभूतम् शब्द बना।

अभविष्यत् - अट् भू इट् स्य थ। लृङ् ङित् लकार है अतएव तत्संबंधी 'थ' को 'त' आदेश होने पर अ भू इ स्य त > अभविष्यत।

अभवम् - भू लङ् > अट् भू मिप्। लङ् सम्बन्धी मिप् को अम् आदेश होकर = अ भू अम् > अभवम्।

43. ''झस्य रन्'' (3.4.105.)

लिडादेश जो 'झ' उसे 'रन्' आदेश हो जाता है।

उदाहरण - पचेरन्, यजेरन्।

पचेरन् - पच् लिङ् > पच् झ > पच् शप् सीयुट् झ > पच् अ ईय् झ। 'झ' को सूत्रविहित 'रन्' आदेश होकर पच् अ ईय् रन् > पच ईय् रन् = पचेरन्।

यजेरन् - यज् शप् ईय झ > यजेय् झ यजे झ। 'झ' को सूत्रविहित रन् आदेश होने पर 'य जेस्' शब्द बना।

44. ''इटोऽत्'' (3.4.106.)

लिडादेश जो 'इट्' उसके स्थान में 'अत् आदेश होता है।

उदाहरण - पचेय, यजेय आदि।

पचेय - पच लिङ् > पच् इट् पच् शप् सीयुट् इट् > पच ईय इट् > पचेय् इट। इट् को 'अत्' आदेश होने पर पचेय् अत् = पचेय।

यजेय - यज् शप् सीयुट् इट् > यजेय इट्। 'इट' का 'अत' आदेश होने पर - यजेय् अत् = यजेय।

45. ''झेर्जस्'' (3.4.108.)

लिडादेश जो 'झि' उसे 'जुस्' आदेश हो।

उदाहरण - पचेयुः, यजेयुः।

पचेयुः - पच् शप् यासुट् झि > पच यास् झि > पच् इय् झि > पचय् 'झि' को जुस् आदेश होने पर - पचेय् जुस् > पचेय् उस् = पचेयुः।

46. ''सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च'' (3.4.109.)

सिच् से उत्तर अभ्यस्तसंज्ञक तथा विद् से उत्तर झि को जुस् आदेश होता है।

उदाहरण - अकार्षुः, अहार्षुः। अविभयुः, अजागरुः। अविदुः।

अकार्षुः - कृ लुङ् > अट् कृ झि > अ कृ च्लि झि > अ क् सिच् झि। अ कार् स् झि। सिच् से परे झि को उपर्युक्त सूत्र द्वारा जुस् आदेश प्राप्त हुआ। झि को जुस् होने पर - अ कार् स् जुस् > अ कार्ष उस् = अकार्षुः।

अविभयुः - अट् भी भी झि। अभ्यस्त संज्ञक भी से परे झि को जुस् आदेश होने पर - अ भी भी जुस् = अविभयुः।

अविदुः - अट् विद् झि। झि को जुस् आदेश प्राप्त है क्योंकि यह विद् से परे है। आदेश होने पर - अ विद् जुस् > अ विद् उस् = अविदुः।

47. ''लङः शाकटायनस्यैव'' (3.4.111.)

आकारान्त धातुओं से उत्तर लङ् के स्थान में जो 'झि' आदेश उसको 'जुस्' आदेश होता है। शाक टायन आचार्य के मत में ही।

उदाहरण - अयुः, अवुः। अन्य आचार्यों के अनुसार अयान्।

अयुः - या लुङ् > अट् या झि। 'या' आकारान्त धातु है अतएव लङ् के स्थान पर हुये झि को उपर्युक्त सूत्र द्वारा विहित जुस् आदेश प्राप्त होता है। आदेश होकर अ या जुस् > अ या उस् > अ युस् = अयुः।

अयान् - झि को आकारान्त धातु से परे रहते जो जुस् आदेश विहित हुआ वह मात्र शाकटायनचार्य को ही अभीष्ट है। अन्य आचार्य इस आदेश विधान के पक्षधर नहीं है। अतः आदेश के अभाव में अट् या झि > अ या अन्ति > अ या अन्त् अ या अन > अयान् रूप ही उन्हें अभीष्ट है।

48. ''द्विषश्च'' (3.4.112.)

द्विष् धातु से उत्तर लडादेश झि को जुस् आदेश होता है। शाकटायनाचार्य के मत में ही।

उदाहरण - अद्विषुः, अद्विषन्।

अद्विषुः - अट् द्विष् झि। झि को जुस् आदेश होने पर - अ द्विष् जुष् = अद्विषुः।

अद्विषन् - शाकटायनाचार्य को छोड़ शेष वैयाकरण आदेश के पक्ष में नहीं है। अतः 'झि' ही रहने पर - अ द्विष् झि > अ द्विस् अन्ति > अ द्विष् अन्त > अ द्विष् अन् = अद्विषन्।

49. ''अणिञोरनार्षयोर्गुरुपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे'' (4.1.78.)

गोत्र में विहित जो ऋष्यपत्य से भिन्न् अण् औ इञ् प्रत्ययान्त उपोत्तम् गुरु वाले प्रातिपदिक उन्हें स्त्रीलिंग में ष्यङ् आदेश होता है।

उदाहरण - कौमुदगन्ध्या, वाराह्या।

कौमुद्गन्ध्या - ''कुमुदगन्धरेपत्यं स्त्री'' इस अर्थ में कुमुदगन्धि शब्द से अण् प्रत्यय हुआ है और कौमुदगन्ध शब्द बना। प्रातिपदिक के अण् को ष्यङ् को आदेश होकर - कौमुद्गन्ध ष्यङ् > कौमुद्गन्ध्य चाप् = कौमुदगन्ध्या।

वाराह्या - ''वराहस्यापत्यं स्त्री'' इस अर्थ में वराह इञ् > वाराहि शब्द बना। वाराहि के इञ् को ष्यङ् आदेश होकर वाराह् ष्यङ् वाराह्यः वाराह्य चाप् = वाराह्या।

विशेष - उपोत्तम् = उप + उत्तम। उत्तम के समीप। 'गुरूपोत्तम्' शब्द का अर्थ है उत्तम के समीप गुरूवाला।'' उत्तम शब्द व्युत्पन्न एवं अत्युत्पन्न दोनों प्रकार का है। व्युत्पन्न मानने पर उत् से तमप् प्रत्यय होकर 'अतिशयेन उद्गतम्' इत्यादि अर्थ में उत्तम शब्द बनता है। इस प्रकार के व्युत्पन्न शब्द के अर्थावबोध के लिये कम से कम चार का होना आवश्यक है जिनमें प्रथम की अपेक्षा अन्य तीन उद्गत होंगे प्रथम अनुद्गत होगा, तीनों में एक उद्गत अर्थात् तमप् प्रत्ययान्त (उत्तम) होगा। अर्थात् प्रथम अनुद्गत, द्वितीय उद्गत, तृतीय उद्गत, तरप् (उत्तर) तथा चतुर्थ उद्गत तमप् (उत्तम) न्यासकार के अनुसार इस स्वरूप का ग्रहण करने का 'वाराह्या' नहीं सिद्ध होगा। अव्युत्पन्न उत्तम शब्द के लिये तीन अक्षरों का होना ही पर्याप्त है तब तीनों में अन्त्य अक्षर को उत्तम कहेंगे। (उत्तम शब्दः स्वभावात् त्रिपृभतीनामन्त्यमक्षरमाह)

पदमंजरी में स्वभावात् का तात्पर्य 'अत्युत्पन्न होना लिया गया है। इस प्रकार तीन प्रभृति में जो अन्त्य अक्षर है वह उत्तम कहलाता है। अब 'गुरूपोत्तम्' शब्द का अर्थ निकलता है - जिस प्रातिपदिक के उत्तम अक्षर में समीप गुरू हो। वाराहि एवं कौमुदगन्ध शब्दों के उत्तमक्षर के समीप गुरू है अतः इनके इञ् एवं अण् को ष्यङ् आदेश हुआ है।

50. ''गोत्रावयवात्'' (4.1.79.)

गोत्रावयव (गोत्र रूप से लोक में स्वीकृत कुल संज्ञा रूप से प्रख्यात) जो प्रातिपदिक उनसे विहित जो अनार्ष, अण्, और इञ् प्रत्यय उनको ष्यङ् आदेश होता है, स्त्रीलिंग में।

उदाहरण - पौणिक्या, भौणिक्या, मौखर्या आदि।

पौणिक्या - पुणिक इञ् > पौणिकि। इञ् को ष्यङ् आदेश होने पर पौणिक ष्यङ् > पौणिक्य, पौणिक्य टाप् > पौणिक्या। इसी प्रकार गुणिक, मुखर से गोत्र में इञ् एवं इञ् को ष्यङ् हो मौणिक्या, मौखर्या आदि प्रयोग सिद्ध होंगे।

गोत्रावयव शब्द का अर्थ काशिकाकार ने गोत्राभिमत किया है। इसे स्पष्ट करते हुये 'पदमंजरी' टीका में कहा गया है - गोत्रभित्येवमभिमताः गोत्राभिधामिन इत्येव लोके प्रसिद्धाः न पुनः प्रवराध्याये पठिता इत्यर्थः।

इस प्रकार यह निश्चित हुआ कि गोत्र रूप में जो पठित नहीं है लेकिन कुल अभिधायक रूप में जो लोक में प्रसिद्ध है उन्हें ही सूत्र में गोत्रावयन कहा गया है।

51. "द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा" (5.2.43.)

'द्वि' एवं 'त्रि' से षष्ठी के अर्थ में विहित जो तयप् प्रत्यय उसे विकल्प से अयच् आदेश हो।

उदाहरण - द्वौ अत्यवौ अस्य द्वयम्, द्वितयम्। त्रयम् त्रितयम् आदि।

द्वयम्, द्वितयम् - 'द्वौ अवयवौ अस्य' इस अर्थ में सू. "संख्यायाम् अवयवे तयप्" से प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक द्वि से षष्ठी के अर्थ में तयप् प्रत्यय हुआ - द्वि तयप्। अब उपर्युक्त सूत्र द्वारा तयप् को विकल्प से अयच् आदेश प्राप्त हुआ। आदेश होने पर द्वि अयच् > द्वि अय = द्वय सु = द्वयम् तथा आदेश के अभाव में द्वि तयप् > द्वितय सु > द्वितयम् शब्द बनें।

इसी प्रकार त्रि से तयप् प्रत्यय होने पर तयप् को अयच् होकर त्रयम् तथा अयच् के अभाव में तयप् रहने पर त्रितयम् शब्द बनते है।

52. "उभादुदान्तो नित्यम्" (5.2.44.)

प्रथमा समर्थ उभ प्रातिपदिक से उत्तर तयप् को अयच् आदेश नित्य ही होता है और वह उदात्त होता है।

उदाहरण - उभयो गणिः। उभये देवमनुष्याः।

उभयः - 'उभौ अवयवों अस्य' इस अर्थ में उभ्र प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में तयप् एवं उस तयप् को प्रकृत सूत्र से अयच् आदेश होने पर - उभ तयप् > उभ अयच्। 'उभय' शब्द बना। स्वादिकार्य होकर उभयः शब्द बनता है।

''उभौ अवयवौ येषाम्'' इस अर्थ में उभय शब्द से बहुत्व की विवक्षा में उभये शब्द बना।

अधिकांश व्याख्याकार इस सूत्र को आदेश विधायक सूत्र मानते हैं। भाष्य में सूत्र द्वारा आदेश विधान अथवा प्रत्यय विधान के संबंध में कोई चर्चा नही हुई है। भाष्यकार ने सूत्र के उदात्त कथन के बारे में ही विचार किया है। सम्पूर्ण विवरण इस प्रकार है - किमर्थ मुदात्त इत्युच्यते ?

उदात्तौ यथा स्यात्।

नैदस्ति प्रयोजनम्, प्रत्ययस्वरेणाप्येष स्वरः सिद्धः

न सिध्यति। चितोऽन्त उदात्तौ भवतीति अन्तोदात्तत्वं प्रसज्येत।

अय उदात्त इत्युच्यमाने कुत एतत् आदेरुदात्तम् भविष्यति न पुनस्तस्येति।

उदात्त वचन सामर्थ्यात् यस्याप्राप्तः स्वरस्तस्य भविष्यति।

कस्य चा प्राप्तः ?

आदेः।

अन्तस्य पुनिश्चित्स्वरेणैव सिद्धम।

स्थानिवद्भावात्प्रत्ययत्वात् किया है। अर्थात् तयप् प्रत्यय है अतः उसके स्थान पर विहित अयच् भी प्रत्यय है। इस प्रकार अयच् का आदेश होना स्पष्ट होता है।

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् भाष्यकार ने प्रत्यय के आद्युदान्तत्व या अन्तोदात्तत्व विषय पर विचार किया है। भाष्यकार के प्रकृत सूत्र पर किये गये भाष्य में ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता कि -अयच्' आदेश है प्रत्यय नहीं, किन्तु 'स्थानिद्' सूत्र के भाष्य में इन्होंने अयच् को प्रत्यय मानकर अभीष्ट शब्द की सिद्धि की है। वहाँ तयप् का स्थानी एवं अयच् को आदेश मानने पर 'प्रथमचरगतयाल्प' सूत्र से नित्य सर्वनाम् संज्ञा होने लगती है जबकि 'सर्वादीनि सर्वनामानि' से नित्य सर्वनाम संज्ञा इष्ट है। इस प्रसंग में दोष से मुक्त होने का एक उपाय उभय शब्द की सिद्धि में अयच् को स्थानिवद् का प्रतिषेध करना भी है किन्तु भाष्यकार ने इस प्रतिषेध की आवश्यकता नहीं समझी और कहा - ''अयच् प्रत्ययान्तरम्'' अर्थात् उभय में तयप् को अयच् आदेश न मानकर एक (तयप् जैसा ही एक अन्य) स्वतंत्र प्रत्यय मानेंगे। इस प्रकार अयच् को स्वतंत्र प्रत्यय मान लेने से 'उभयी' शब्द की सिद्धि नहीं होती क्योंकि स्थानिवद् भाव से तयप् प्रत्ययान्त मान 'टिड्ढाणञ' सूत्र से ङीप् की प्राप्ति हो जाती जो स्वतंत्र प्रत्यय मानने पर नहीं होती। इस समस्या का समाधान प्रस्तुत करते हुये भाष्यकार ने कहा कि मात्रच प्रत्याहारान्त मानकर ङीप् प्राप्त हो जायेगा।

मात्रच् को प्रत्यय न मान प्रत्याहार मानेंगे। यह प्रत्याहार मात्रच् प्रत्यय के 'मात्र' से लेकर अयच् के चकार तक होगा और प्रत्याहार मात्रच् में अयच् प्रत्यय का भी ग्रहण होकर मात्रच् प्रत्ययाहारान्त होने से अयच् प्रत्ययान्त को भी 'टिड्ढाणञ्' सू. से ङीप् हो जायेगा।

इस प्रकार कुल मिलाकर निष्कर्ष यह निकलता है कि भाष्यकार इसे प्रत्यय मानने के पक्ष में है। इसीलिये 'उभादुदात्तौ' सूत्रभाष्य में इन्होंने 'उदात्तकथन' एवं 'उदात्त' किसे हो - प्रत्यय के आदि को या अन्त को' इत्यादि पर विचार किया है अयच् के आदेशत्व या प्रत्ययत्व पक्ष का नहीं।

53. ''तसे श्च'' (5.3.8.)

कि, सर्वनाम तथा बहु से उत्तर जो तसि उस तसि के स्थान में भी तसिल् आदेश हो जाता है।

उदाहरण - कुतः, यतः, ततः, बहतः आदि।

कुतः - किम् तसि। किम् से परे तसि को तसिल् आदेश होने पर किम् तसिल् > कु तस् > कुतः।

यतः, ततः, बहुतः - इत्यादि में यत् तत् इत्यादि सर्वनाम संज्ञक तथा बहु शब्द से परे तसि को तसिल् आदेश हो यतः, ततः, बहुतः इत्यादि प्रयोग सिद्ध हुए।

प्रत्यय चाहे तसि करें या तसिल् रूप एक जैसे ही बनेंगे। तसि को तसिल् आदेश का फल है 'लिति' सूत्र द्वारा विहित प्रत्यय में पूर्व का उदान्त स्वर की प्राप्ति तथा 'प्राग्दिशो विभक्ति' सूत्र से विभक्ति संज्ञा की प्राप्ति। तसि प्राग्दिशीय प्रत्यय नहीं है कि जबकि तसिल् प्राग्दिशीय प्रत्यय है। विभक्ति संज्ञा के फलस्वरूप 'त्यदादीनामः' से अत्व होकर यद् तद् से यतः, ततः इत्यादि रूप सिद्ध हो जाते है अन्यथा ये रूप सिद्ध ही नहीं होते।

'तसि' प्रत्यय के विधायक सूत्र है - ''प्रतियोगे पंचम्यास्तसि'' 5.4.44 तथा 'अपादाने चाहीयरुहोः' 5.4.45। ये दोनो ही सूत्र ''दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपंचमीप्रथमाभ्यो दिबदेशकालेष्वः'' 5.3.27 से परवर्ती है अतः इनमें विहित प्रत्ययों की विभक्ति संज्ञा नही हो पाती। इस उद्देश्य की पूर्ति एवं लित्स्वर की प्राप्ति हेतु प्रकृत सूत्र का उपस्थापन किया गया।

54. ''एकाद्धो ध्यमुञन्यतरस्याम्'' (5.3.44)

एक शब्द से उत्तर जो धा प्रत्यय उसके स्थान में ध्यमुञ् आदेश होता है।

उदाहरण - ऐकध्यं। पक्ष में - एकधा।

ऐकध्यं - एक धा। धा को प्रकृत सूत्र द्वारा विहित ध्यमुञ् आदेश के भाव पक्ष में - एक ध्यमुञ् > ऐक ध्यम् = ऐध्यं।

एकधा - ध्यमुञ् आदेश के अभाव पक्ष में 'धा' ही रहेगा औ एक धा = एकधा शब्द ही सिद्ध होगा।

55. ''द्वित्र्योश्च धमुञ्'' (5.3.45)

विधा एवं अधिकरण विचाल अर्थ में द्वि एवं त्रि से हुए धा प्रत्यय के स्थान में धमुञ् आदेश विकल्प से हो जाता है।

उदाहरण - द्वैधम्, त्रैधम्। अभाव पक्ष मै द्विधा, त्रिधा।

द्विधा, द्वैधम् - द्वि धा। धा को धमुञ् आदेश होने पर - द्वि धमुञ् > है धम् = द्वैधम्। धमुञ् आदेश वैकल्पिक है अतः पक्ष में 'धा' भी होगा। 'धा' प्रत्यय होने पर - द्वि धा = द्विधा शब्द बना।

'धा' प्रत्यय 'विधा' तथा 'अधिकरण विचाल' - इन दो अर्थों में होता है, 'विधा' का अर्थ है 'प्रकार'। पदमंजरीकार के अनुसार 'विधा' शब्द का अर्थ 'ओदनपिण्ड' भी होता है। यहाँ 'विधा' शब्द के सुप्रसिद्ध अर्थ 'प्रकार' का ही ग्रहण हुआ है। अतः एकधा' द्विधा इत्यादि का अर्थ एक प्रकार दो प्रकार (एक तरह, दो तरह) इत्यादि हुआ। अधिकरण विचाल का अर्थ है द्रव्य का विचालन। काशिकाकार के अनुसार -अधिकरणम् = द्रव्यम्, तस्य विचालः = संख्यान्तरापादनम् - एकस्यानेकीकरणम् अनेकस्य वा एकीकरणम्। अतः एक राशि पंचधा कुरू, अष्टधा कुक, तथा अचेकमेक मधा कुरू इत्यादि का अर्थ है एक ही राशि को पांच राशि करो, आठ राशि करो तथा अनेक राशि को एक करो।

56. ''एधाच्च'' (5.3.46)

विधार्थ एवं अधिकरण विचाल अर्थ में विहित द्वि, चि से परे जो धा प्रत्यय उसे विकल्प से एधाच् आदेश भी होता है।

उदाहरण - द्वेधा, त्रेधा। पक्ष में द्वैधम, द्विधा, त्रैधम् त्रिधा।

द्वेधा, त्रेधा - द्वि या त्रि से धा प्रत्यय होने पर द्विएधाच्, त्रि एधाच् > द्वेधा, त्रेधा इत्यादि सिद्ध होगे। एधाच् आदेश के अभाव में धा को वैकल्पिक धमुञ् होकर धमुञ् एवं धमुञ् के अभाव में धा होकर द्वैधम्, द्विधा, त्रैधम्, त्रिधा दो-दो रूप बनेंगे। इस प्रकार दिधा एवं अधिकरण विचाल अर्थ में द्वि

एवं त्रि शब्दों के तीन-तीन रूप बनेंगे। द्वैधम्, द्वेधा, द्विधा तथा त्रैधम्, त्रेधा, त्रिधा।

57. ''अयामन्ताल्वाय्येत्निवष्णुषु'' (6.4.55)

आम्, अन्त, आलु, आय्य, इत्नु, इष्णु इनके परे रहते णि को अय् आदेश होता है।

उदाहरण - कारयाँचकार - कृ णिच् आम् लिट् आम् परे रहते णि को सूत्र द्वारा अय् आदेश होकर - कृ अय् लिट् > कारयाँचकार।

गण्डयन्तः - गडि णिच् झच् > गाड् णि अन्त। अन्त परे रहते णि को अय् आदेश होने पर - गाङ् अय् अन्त > ग न् ड् अय् अन्त = गण्डयन्त, गण्डयन्त सु = गण्डयन्तः।

स्पृहयालुः - स्पृहि णिच् आलुच् > स्पृह् णिच् आलु। आलु परे रहते णि को अय् आदेशहो - स्पृह अय् आलु - स्पृहयालु। स्पृहयालु सु = स्पृहयालुः।

पारयिष्णवः - पार णिच् इष्णुच्। इष्णु परे रहते णि को अय् आदेश हो - पार अय् इष्णु = पारयिष्णु। पारयिष्णु सु = पारयिष्णुः।

58. ''ल्यपि लघुपूर्वात्'' (6.4.56)

लघु है पूर्व में जिससे ऐसे वर्ण से उत्तर णि के स्थान में ल्यप् परे रहते अयादेश हो जाता है।

उदाहरण - प्रणमय्य, प्रदमय्य, सन्दमय्य।

प्रणमय्य - प्र नम् णिच् ल्यप्। णि को अय् आदेश होने पर - प्र नम् अय् य = प्रणमय्य।

प्रदमय्य - प्र दम् णिच् ल्यप् > प्र दम् णि य। णि से पूर्व म् वर्ण है जो लघुपूर्व है अतः णि को सूत्रविहित अय् आदेश प्राप्त होता है - प्र दम् अय् य = प्रदमय्य।

59. ''विभाषापः''

(आप् से उत्तर ल्यप् परे रहते विकल्प से णि के स्थान में अयादेश होता है।

उदाहरण - प्रापय्य - प्राप्य - प्र आप् ल्यप् > प्र आप् णिच् ल्यप्। णि को सूत्र विहित अय् आदेश होने पर - प्र आप अय् य = प्रापय्य। अय् आदेश के अभाव में - प्र आप् णिच् ल्यप् > प्र आप् ल्यप् > प्र आप् य = प्राप्य।

60. ''इरयो रे'' (6.4.76)

इरे के स्थान में वेद में बहुल करके रे आदेश होता है।

उदाहरण - या अस्य परिदध्रे। चक्रिरे।

दध्रे - धा लिट् > धा झ > धा इरेच् > दधा इरे। इरे को सूत्र द्वारा प्राप्त रे आदेश होने पर - दधा रे > द ध् रे = दध्रे।

चक्रिरे - इरे को रे आदेश बाहुलकात् उपदिष्ट है अतः 'चक्रिरे' इस प्रयोग में उपर्युक्त आदेश नहीं हुआ है। रे के अभाव में कृञ् से लिट् बहु व. प्रथम पु. में इरे ही होकर चक्रिरे शब्द बनेगा।

61. "अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ" (6.4.77)

श्नु प्रत्ययान्त अंग तथा इवर्णान्त उवर्णान्त धातु एवं भ्रू शब्द को इयङ् उवङ् आदेश होते है। अच् परे रहते।

62. "हुझल्भ्यो हेर्धिः (6.4.101)

'हु' तथा झलन्त से उत्तर हलादि 'हि' के स्थान में 'धि' आदेश होता है।

उदाहरण - जुहुधि - हु लोट् > हु सिप् > हु हि। हिलादि है अतः उपर्युक्त सूत्र द्वारा इसे धि आदेश होगा हु धि > जु हु धि। जुहुधि।

भिन्धि - भिद् सिप् > भिद् हि। झलन्त भिद् से उत्तर हि को धि आदेश होकर - भिद् धि > भिन्धि।

63. "श्रुश्रृणुपॄकृवृभ्यश्छन्दसि" (6.4.102)

श्रु, श्रृणु, पृ, कृ, वृ - इनसे उत्तर वेद विक्य मे हि को धि आदेश होता है।

उदाहरण - श्रुधी हवमिन्द्र। श्रृणुधी गिरः। पूर्द्धि। उरूणस्कृधि। अपावृधि।

श्रुधी - श्रु लोट् > श्रु सिप् > श्रु हि। हि को धि आदेश होकर - श्रु धि > श्रुधी।

पूर्द्धि - पृ सिप् > पृ हि। हि को धि आदेश हो - पृ धि। पृ धि > पुर् धि > पूर् धि > पूरध् धि > पूर् द् धि = पूर्द्धि।

उरूणस्कृधि - कृधि - कृ सिप् > कृ हि। 'हि' को 'धि' आदेश होने पर - कृ धि = कृधि। (उरू अस्माकं कृधि - उरू नस् कृधि > उरू नः कृधि > उरू नस् कृधि > उरूणस्कृधि)

वृधि - वृ सिप् > वृ हि। हि को सूत्रविहित धि आदेश हो - वृधि रूप सिद्ध होगा।

64. "अङितश्च" (6.4.103)

अङित् हि को भी धि आदेश होता है, वेद विषय मे।

उदाहरण - सोम रारन्धि। अस्मभ्यं तद्धयश्व प्रयन्धि।

शरन्धि - रम् शप् सिप् > रम् सिप् > रम् हि > इ रम् हि > रा रम् हि। हि को धि आदेश हो - रा रम् धि > रारन्धि। 'वा' छन्दसि से 'हि' पित् हो जाता है और इससे हि अङित हो गया फलतः उपर्युक्त सूत्र द्वारा हि को धि आदेश हुआ।

65. ''युवोरनाकौ'' (7.1.1)

यु तथा वु के स्थान में अन तथा अक आदेश यथा संख्य करके हो जाते हैं।

उदाहरण - नन्दनः, लवणः, कारकः, सायन्तनः, चिरन्तनः, वासुदेवकः।

नन्दनः - नद् णि = नन्दि। नंदि ल्युट् > नन्द् यु। यु को अन् आदेश हो - नन्द् अन् > नन्दन। नन्दन सु = नन्दनः।

कारकः - कृ ण्पुल् > कार् वु। वु को सूत्र विहित अक आदेश हो - कार् अक > कारक। कारक सु = कारकः।

66. ''आयनेयीनीयियःफढखछघांप्रत्ययादीनाम्'' (7.1.2)

प्रत्यय के जो आदि के फ, ढ, ख, छ, घ उन्हें यथाक्रम आयन्, एय्, ईन्, ईय् तथा इय् आदेश होते है।

उदाहरण - नाडायनः - नड् फक्। नड् फ। फ् को आयन् आदेश हो - नड्आयन् > नाड् आयन = नाडायन। नाडायन सु = नाडायनः।

वैनतेयः - विनता ढक्। ढ को एय् आदेश हो - विनता एय अ > वैनत् एय् = वैनतेय। वैनतेयः।

कुलीनः - कुल ख। ख् को ईन् आदेश होने पर - कुल ईन > कुल् ईन = कुलीन। कुलीन सु = कुलीनः।

क्षत्रियः - क्षत्र घ। घ् को इय् आदेश हो - क्षत्र् इय > क्षत्र् इय = क्षत्रिय। क्षत्रिय सु = क्षत्रियः।

67. ''झोऽन्त'' (7.1.3)

प्रत्यय के अवयव झ् के स्थान में अन्त् आदेश होता है।

उदाहरण - भवन्ति - भू झि > भू शप् झि > भव झि। इन को अन्त् आदेश हो - भव अन्त् इ >

= भवन्ति।

जरन्तः - जृ झच्। झ् को अन्त् आदेश हो - ज् अन्त > जर् अन्त > जरन्त सु = जरन्तः।

68. ''अदभ्यस्तात्'' (7.1.4)

अभ्यस्त अंग से उत्तर प्रत्यय के झकार को अत् आदेश होता है।

उदाहरण - ददतु - दा शप् झि > दा झि। दा दा झि। द को झि। इन को अभ्यस्त अंग के कारण अत् आदेश होकर - द दा अत इ > द द् अति > ददतु।

दधतु - धा लोट्। धा झि > द धा झि। इनको अत् आदेश हो - द धा अत् इ । द धा अति > द ध् अतु = दधतु।

69. ''आत्मनेपदेष्वनतः'' (7.1.5)

अनकारान्त अंग के उत्तरपद आत्मनेपद में वर्तमान जो प्रत्यय का आदि झकार उसके स्थान में अत् आदेश होता है।

उदाहरण - अचिन्वत् - अ चि नु झ > अ चि नु झ। झ को अत् आदेश हो > अ चि नु अत् > अ चि ॒ वत = अचिन्वत।

अलुनत - अल् अङ् > अ ल् ना झ[1]। झ को अत् आदेश हो - अ ल् ना अत अ। अ ल् ना अत > अ लु न् अत = अलुनत।

70. ''अतो भिस् ऐस्'' (7.1.9)

अदन्त अंग से उत्तर विद्यमान भिस् के स्थान में ऐस् आदेश हो जाता है।

उदाहरण - वृक्षैः, प्लक्षैः।

वृक्षैः - वृक्ष भिस्। वृक्ष अकारान्त अंग है अतः इससे उत्तर भिस् को सूत्रविहित ऐस् आदेश प्राप्त हुआ। आदेश होने पर - वृक्ष ऐस् > वृक्षैः शब्द बना।

71. ''बहुलं छन्दसि'' (7.1.10)

वेद के विषय में भिस् को ऐस् आदेश बाहुलकात् होता है।

उदाहरण - नद्यैरिति। देवेभिः, सर्वेभिः।

नद्यैः - नदी भिस्। भिस् को ऐस् होने पर - नदी ऐस् > नद्यैः।

देवेभिः, सर्वेभिः - देव भिस्, सर्व भिस यहाँ भिस् को ऐसा देश नही हुआ और देव भिस् =

देवेभिः तथा सर्व भिस् = सर्वेभिः रूप बने।

72. ''टाङसिङसामिनास्त्याः'' (7.1.12)

अकारान्त अंग से उत्तर टा, ङ, सि, ङ, स् इन विभक्ति प्रत्ययों को क्रमशः इन, आत, स्य ये आदेश हो जाते है।

उदाहरण - रामेण, रामात्, रामस्य।

रामेण - राम टा। राम अकारान्त अंग है। इसके परे टा विभक्ति है जिसे उपर्युक्त सूत्र द्वारा इन आदेश प्राप्त होता है। आदेश होकर - राम इन। राम इन > रामेन > रामेण।

रामात् - राम ङ सि। 'ङ सि' को सूत्र द्वारा विहित 'आत्' आदेश होने पर - राम आत्। राम् आत् > रामात्।

रामस्य - राम ङ स्। राम अकारान्त अंग है इससे परे ङ स् प्रत्यय है 'ङ स्' को सूत्र द्वारा 'स्य' आदेश प्राप्त होता है। स्य आदेश होकर - राम स्य = रामस्य।

73. ''ङेर्यः'' (7.1.13)

अकारान्त अंग से उत्तर 'ङे' के स्थान में 'य' आदेश होता है।

उदाहरण - वृक्षाय, प्लक्षाय।

वृक्षाय - वृक्ष ङे। वृक्ष अकारान्त अंग है इसके परे ङे को य आदेश होकर वृक्ष य > वृक्षाय शब्द बना।

प्लक्षाय - प्लक्ष ङे। ङे को य आदेश हो - प्लक्ष य। प्लक्ष य > प्लक्षा य = प्लक्षाय।

74. ''सर्वनाम्नः स्मै'' (7.1.14)

अकारान्त सर्वनाम अंग से उत्तर 'ङे' के स्थान में 'स्मै' आदेश होता है।

उदाहरण - सर्वस्मै, तस्मै, कस्मै।

सर्वस्मै - सर्व ङे्। सर्व अकारान्त सर्वनाम है अतः इसके परे ङे को स्मै आदेश होगा। आदेश होने पर - सर्व स्मै = सर्वस्मै।

तस्मै - तद् ङे > त ङे। ङे को स्मै आदेश होते है - त स्मै। तस्मै।

75. ''ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ'' (7.1.15)

अकारान्त सर्वनाम अंग से उत्तर ङ सि. तथा ङि के स्थान में क्रमशः स्मात् तथ स्मिन्

आदेश होते है।

उदाहरण - सर्वस्मात् - सर्व ङसि। ङ सि को स्मात् आदेश होकर - सर्व स्म = सर्वस्मात् शब्द सिद्ध हुआ।

सर्वस्मिन् - सर्व ङि। ङि को स्मिन् आदेश होने पर - सर्व स्मिन = सर्वस्मिन्।

76. ''पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा'' (7.1.16)

पूर्व है आदि में जिनके ऐसे नौ सर्वनामों से उत्तर ङ सि तथा ङि के स्थान में क्रमशः स्मात् तथा स्मिन् आदेश विकल्प से होते है।

उदाहरण - पूर्वस्मात्, पूर्वात्, पूर्वस्मिन् पूर्वे। परस्मिन परे।

पूर्वस्मात् - पूर्वात् - पूर्व ङ सि। ङ सि को स्मात् आदेश हो - पूर्व स्मात् = पूर्वस्मात्। आदेश के अभाव में पूर्व ङ सि > पूर्वात्।

पूर्वस्मिन, परे - परस्मिन् - पर ङि। पूर्वादि में पठित 'पर' सर्वनाम् पूर्वादि नौ सर्वनामौ में एक है। इससे परे ङि को सूत्रविहित 'स्मिन' आदेश होता है। आदेश हो परस्मिन = परस्मिन।

आदेश के अभाव में - पुर ङि परे।

77. ''जसः शी'' (7.1.17)

अकारान्त सर्वनाम अंग से उत्तर जस् के स्थान में शी आदेश होता है।

उदाहरण - सर्वे, विश्वे, ये, के, ते।

सर्वे - सर्वजस्। 'सर्व' अकारान्त सर्वनाम है अतः इसके परे जस् को 'शी' आदेश होगा - सर्व शी - सर्वे।

ते - तद् जस् > त जस्। 'त' के अकारान्त सर्वनाम होने से इसके परे जस् को शी आदेश होगा। आदेश हो - त शी = ते।

78. ''औङ आपः'' (7.1.18)

आवन्त अंग से उत्तर औ तथा औट् के स्थान में शी आदेश होता है।

उदाहरण - खट्वे तिष्ठतः। खट्वे पश्य। बहुराजे, कारीषगन्ध्ये।

खट्वे - खट्वा आ। प्रथमा द्विवचन की 'औ' विभक्ति आकारान्त अंग से परे है अतः औ को सूत्र द्वारा भी आदेश प्राप्त होता है। शी आदेश हो - खट्वा शी > खट्वे।

खट्वे - खट्वा औट्। आकारान्त अंग से परे द्वितीया विभक्ति का औट् प्रत्यय है जिसे आलोच्य सूत्र द्वारा शी आदेश प्राप्त है औट् को शी आदेश होकर - खट्वा शी > खट्वे।

79. ''नपुंसकाच्च'' (7.1.19)

नपुंसक अंग से उत्तर भी 'औङ्' के स्थान में 'शी' आदेश होता है।

उदाहरण - कुण्डे तिष्ठति। कुण्डे पश्य।

कुण्डे-कुण्ड औ। 'औ' को 'शी' आदेश हो - कुण्ड शी कुण्ड।

कुण्डे - कुण्ड औट्। औट् को 'शी' आदेश हो कुण्ड शी > कुण्डे।

80. ''जश्शसोः शिः'' (7.1.20)

नपुंसकलिंग वाले अंग से उत्तर जस् और शस् के स्थान में शि आदेश होता है।

उदाहरण - कुण्डानि तिष्ठन्ति। कुण्डानि पश्य। दधीनि। मधूनि।

कुण्डानि - कुण्ड जस्। 'जस्' को 'शि' आदेश होने पर - कुण्ड शि। कुष्ट शि > कुण्ड नुम् शि। कुण्डन् इ > कुण्डानि।

दधीनि - दधि शस्। नपुंसकलिंग से उत्तर शस् के स्थान में शि आदेश होकर - दधि शि > दधि न् ई > दधि नि > दधीनि।

81. ''अष्टाभ्य औश्'' (7.1.21)

आत्व किए हुए अष्टन् शब्द से उत्तर जस् और शस् के स्थान में औश् आदेश होता है।

उदाहरण - अष्टौन - अष् जस्, अष्टन् शस् > अष्टा जस्, अष्टा शस्। कृत आत्व अष्टन् शब्द से परे जस् एवं शस् को औश् आदेश होकर अष्टा औ > अष्टा औ = अष्टौ।

82. ''अतोऽम्'' (7.1.24)

अकारान्त नपुंसकलिंग वाले अम् से उत्तर सु और अंग के स्थान में अम् आदेश होता है।

उदाहरण - फलम् आनय। कुण्डं तिष्ठति।

फलम् - फल अम्। अकारान्त अंग से उत्तर अम् को अमादेश हो - फल अम् = फलम् शब्द सिद्ध होता है।

कुण्डम् - कुण्ड सु। अकारान्त नपुंसकलिंग कुण्ड से परे सु को अम् आदेश हो - कुण्ड अम् = कुण्डम्।

83. "अद्ड्डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः" (7.1.25)

ड्तर आदि में जिनके ऐसे सर्वादिगण पठित पाँच शब्दों से परे सु अम् को अद्ड् ओदश होता है।

उदाहरण - दधि कतरत्तिष्ठति। कतरत्पश्य। कतमत्तिष्ठति। कतमत्पश्य। इतरत्। अन्यतरत्। अन्यत्।

कतरत् - कतर सु। कतर = किम् ड्तर। कतर से परे सु को आदेश होने पर कतर अद्ड् > कतर अट् > कतरत्।

कतमत् - किम् डतम् > कतम। कतम सु अथवा अम्। सु अम् को अद् आदेश हो - कतम् अद्ड्। कतम् अद्ड् > कतम अद् > कतमद् = कतमत्।

इतरत् - इतर से अथवा अम्। सु, अम् को अद्ड् > इतरत्।

अन्यतरत् - अन्यतर सु। सु अम् को अद्ड् आदेश होने पर - अन्यतर अद्ड् > अन्यतर अद् = अनयतरत्।

अन्यत् - अन्य सु या अम्। अन्य से परे सु अथवा अम् को अदड् आदेश होने पर - अन्य अद्ड् = अन्यत्।

84. "युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश्" (7.1.27)

युष्मद् तथा अस्मद् अंग से उत्तर द. स् के स्थान में अश् आदेश होता है।

उदाहरण - तव, मम।

तव - युष्मद् ङ स् > तव अद् ङ स् > तव अ ङ स् > तव ङ स्। ङस को अश् आदेश होने पर - तव अश् > तव अ = तव।

मम - अस्मद् ङ स् > मम ङ स् > ङ स् को अश् आदेश होने पर मम अश् = मम्।

85. "ङेप्रथमयोरम्" (7.1.28)

युष्मद तथा अस्मद् अंग से उत्तर ङे विभक्ति के स्थान में तथा एवं द्वितीया विभक्ति के स्थान में अम् आदेश होता है।

उदाहरण - तुभ्यं - युष्मद् ङे। ङे के स्थान में सूत्र द्वारा अम् आदेश होने पर युष्मद अम्। युष्मद् अम् > तुभ्य अद् अम् > तुभ्यद् अम् > तुभ्य अम् = तुभ्यम्।

मह्यम् - अस्मद् ङ स् > मह्य ङ स्। ङ स् को अम् आदेश होने पर मह्य अम् > मह्यम्।

त्वम् - युष्मद् सु। सु प्रथमा एकवचन की विभक्ति है अतः युष्मद् से परे सु को सूत्रद्वारा अम् आदेश प्राप्त होता है। आदेश होकर युष्मद् अम् > त्वद् अम् > त्व अम् > त्वम्।

यूयम् - युष्मद् जस् > यूयं जस्। जस् को अम् आदेश होने पर यूय अम् = यूयम्।

त्वाम् - माम् - युष्मद् अम्, अस्मद् अम्। अम् को सूत्रविहित अमादेश है - युष्मद् अम्, अस्मद् अम् = त्वाम्, माम्।

86. ''भ्यसो भ्यम्'' (7.1.30)

युष्मद, अस्मद् अंग से उत्तर भ्यस् के स्थान में भ्यम् आदेश होता है।

उदाहरण - युष्मभ्यम् - युष्मद् भ्यस्। भ्यस् को भ्यम् आदेश ही - युष्मद भ्यम्। युष्मद् भ्यम् > युष्मभ्यम् = अस्मभ्यम्।

अस्मभ्यम् - अस्मद् भ्यस्। भ्यस् को भ्यम् आदेश हो - अस्मद् भ्यम् > अस्मभ्यम् = अस्मभ्यम्।

भाष्यकार ने इस सूत्र के आदेश विधान पर विचार करते हुए लिखा है - कि आदेश भ्यम् हो अथवा अभ्यम्। 'भ्यम्' आदेश पक्ष में 'शेषेलोपः' सूत्र से अन्त्यलोप होने पर सू. 'बहुवचने झल्यतो' से एत्व प्राप्त होता है और 'अभ्यम्' आदेश होने पर टिलोप हो अपेक्षित रूप तो बन जाता है किन्तु द स्वरदोष का प्रसंग उठता है। 'अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः' इस सूत्र में 'कर्षात्वतो घञोन्त उदान्तः' सूत्र से अन्तोदान्त पद की अनुवृत्ति होती है। इससे अभ्यम् को अन्तोदात्त स्वर प्राप्त होता है। इन दोनो ही दोषों का परिहार भी उन्होने प्रस्तुत किया है। एवं निवृत्ति के लिए इन्होने कहा ''अंगवृन्ते पुनर्वृत्तावविधिनिष्ठितस्येति न भविष्यति।''

न्यासकार के अनुसार - वर्तनं वृन्तम्, अंगे वृतम् यस्य तदग वृतम् कार्यम्। तस्मिनंगवृते कार्ये पुनरूतरकालमङ्गवृत्तावपरस्य कार्यस्य प्राप्तौ तस्य कार्यस्य अविधिः = अविधानम्। निष्ठितस्येत्यनेन यत्सम्बन्धिनः कार्यस्याविधिर्भवति तदंग विशिष्यते। निष्ठितम् = परि समाप्तम्, प्रयोगार्हमगम् तत्सम्बन्धिनः कार्यस्याविधिर्भवति, नान्य सम्बन्धिन इत्यर्थः।

इस प्रकार इस नियम से अंग सम्बन्धी एत्व की निवृत्ति हो जाती है और 'शेषे लोपः' से अन्त्य लोप हो भ्यम् आदेश पक्ष में अभीष्ट शब्द रूप बन जायेगा।

अभ्यम् आदेश पक्ष में अन्तोदात्त स्वर की निवृत्ति भी संभव है। 'कर्षात्वतो' से 'अन्त' पद

की अनुवृत्ति नही करेंगे और अभ्यम् आद्युदात्त होगा जिससे मध्योदान्त पद प्राप्त होगा।

87. "पञ्चम्या अत्" (7.1.31)

युष्मद् अस्मद् से उत्तर पंचमी विभक्ति के भ्यस् के स्थान में अत आदेश होता है।

उदाहरण - युष्मद् गच्छन्ति। अस्मद् गच्छन्ति।

युष्मद् - युष्मद् भ्यस् > युष्म भ्यस्। पंचमी के भ्यस के स्थान पर अत् आदेश होने पर - युष्म अत् > युष्मत् > युष्मद्।

अस्मद् - अस्मद् भ्यस्। भ्यस् को अत् आदेश होने पर - अस्मद् अत् = अस्मत्।

88. "एकवचनस्य च" (7.1.32)

युष्मद् अस्मद् अंग से उत्तर पंचमी एक. के स्थान में भी अत् आदेश होता है।

उदाहरण - त्वद्, मद्।

त्वद् - युष्मद् ङ सि। पंचमी एकवचन की विभक्ति ङ सि को अत् आदेश होने पर युष्मद अत्। युष्मद् अत् > त्व अद् अत् > त्वं अ अत् > त्व अत् > त्वत् > त्वद।

मद् - अस्मद् ङ सि > म अद् ङ सि > मङ सि > ङ सि को अत् आदेश होने पर - म अत् > मत् > मद्।

89. "साम आकम्" (7.1.33)

युष्मद् तथा अस्मद् अंग से उत्तर साम् के स्थान में आकम् आदेश होता है। सुट् आम् > स् आम् = साम्।

उदाहरण - युष्माकम्, अस्माकम्।

युष्माकम् - युष्मद् आम्। वहाँ आम् को 'द' के (युष्मद् के द के) शेषे लोपः' से लोप हो जाने के बाद सुट् आगम् प्राप्त है। उस भावी आगम् सहित आम् के स्थान पर आकम् आदेश होने पर - युष्मद् आकम् > युष्म आकम् > युष्माकम्।

अस्माकम् - अस्मद् आम्। भावी सुट् सहित आम् को आकम् आदेश होने से पर - अस्मद् > अस्म आकम् - अस्माकम्। यहाँ सुट् आगम हुए बिना ही स्थानी के साथ गृहीत हुआ है। भावी आगम को स्थानी के रूप में ग्रहण किये जाने का विवेचन करते हुये काशिकाकार ने कहा है - भावी सुट् की निवृत्ति हो इस हेतु 'साम्' - ऐसा स्थानी गृहीत् हुआ है। यदि आम् को आदेश विहित किया जाता है

तो 'शेषेलोप' ने अस्मद् युष्मद् के अन्त्य दकार का लोप करने के बाद अकारान्त अंग से परे सुट् आगम् होता है और अनिष्ट रूप बनते।

90. ''आतऔ णलः'' (7.1.34)

आकारान्त अंग उत्तर णल् के स्थान में औकारादेश हो जाता है।

उदाहरण - पपौ, तस्थौ, जग्लौ, मम्लौ।

पपौ - पा लिट् > पा णल् > प पा अ। णल् को सूत्र द्वारा औकारादेश प्राप्त है क्योंकि यह आकारान्त अंग से परे है। आदेश हो - प पा औ > पपौ।

तस्थौ - स्था णल् > था स्था णल् > त स्था अ। णल् (अ) को और आदेश हो तस्था औ > तस्थौ।

91. ''तुह्योस्तातङाशिष्यन्यतरस्याम्'' (7.1.35)

आर्शीवाद विषय में 'तु' एवं 'हि' के स्थान में विकल्प से तातङ् आदेश होता है।

विशेष - यह आदेश ङि त् होते हुए भी अन्त्य अल् को न होकर सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर होता है।

उदाहरण - भवतु, भवतात् - भू लोट > भू तिप् > भवति > भवतु। आर्शीवाद अर्थ में तु को वैकल्पिक तातङ् आदेश हो - भव तातङ् > भवतात्। आदेश के अभाव में - भवतु।

भव, भवतात् - भू लोट् > भू सिप् > भू हि > भव हि। वैकल्पिक तातङ आदेश प्राप्त होने आदेश पक्ष में - भव तातङ = भवतात्। आदेश के अभाव में भव 'हि' > 'भव' शब्द बने।

'लोट' विधि, निमन्त्रण आदि कई विषयो में होता है। आर्शीवाद अर्थ में लोट् होगा तभी ये आदेश होगे। विधि आदि में विहित लोट् को आदेश नही होगा।

'तातङ' ङित्त आदेश है अतः 'ङिच्च' सूत्र से इसे स्थानी के अन्त्य वर्ण के स्थान पर होना चाहिए इस विषय में काशिकाकार ने कहा है - ङित्तकरणं गुणवृद्धिप्रतिषेघार्थमिति अर्थात् आदेश के ङित्करण का प्रयोजन है। गुण - वृद्धि का प्रतिषेध। 'हि' को अपितु कर दिया गया है किन्तु तिप् के स्थान पर जो तु है वह स्थानिष्द्भाव से पित् है इस स्थानिवद्भाव से प्राप्त पित् के निवृत्यर्थ तात् इस अनेकाल् आदेश का ङित्करण आवश्यक है। ङित्करण के फलस्वरूप 'ब्रूयात्' मे गुण का प्रतिषेध, मृष्टात् में वृद्धि का प्रतिषेध हो सका अन्यथा पित्वात् गुण एवं वृद्धि का प्रसंग होता। इसके अतिरिक्त 'ब्रूयात्' में ईट्

तृष्ठात् में इम् इत्यादि आगम होने लगते है। तातङ् के दित्करण से इन सब अनपेक्षित कार्यों की अप्राप्ति होती है। ङित्करण के लाभों को देखते हुए तातङ् (अनेकाल् आदेश) के ङित्करण को उचित कहा जा सकता है। अन्यङित् अनेकाल् आदेशों के विषय में भी इसी प्रकार की धारणा रखना समुचित नहीं क्योंकि जहाँ ङित्करण का विशेष प्रयोजन सिद्ध हो सके वही ङित् आदेश को अनेकाल् एवं अनेकाल् के फलस्वरूप सर्वादेश माना जाएगा। जहाँ कहीं ऐसा कोई विशेष प्रयोजन नही वहां ङित्करण का हेतु अन्त्य वर्ग के स्थान पर आदेश होना ही है।

92. ''विदेः शतुर्वसुः'' (7.1.36)

विद् (ज्ञाने) धातु से उत्तर शतृ के स्थान में वसु आदेश होता है।

उदाहरण - विद्वान्, विद्वांसौ, विद्वांसः।

विद्वान् - विद् शतृ। शतृ के स्थान में वस् आदेश हो - विद् वसु > विद्वस्। विदवस् सु = विद्वान्।

विदवस् औ = विद्वासौं।

विद्वस् जस् = विद्वांसः।

93. ''समासेऽनञ्पूर्वे क्तवो ल्यप्'' (7.1.37)

नञ् - भिन्न पूर्वपद समास में क्त्वा के स्थान में ल्यप् आदेश होता है।

उदाहरण - प्रकृत्य - प्र पूर्वक कृ से सू. 'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले' में क्त्वा प्रत्यय हुआ और 'कुगतिप्रादयः' से समास प्राप्त हुआ। प्र कृक्त्वा। अब आलोच्य सू. द्वारा क्त्वा को ल्यप् आदेश होकर - प्रकृल्यप्। प्र कृ ल्यप् > प्र कृ तुक् ल्यप् = प्र कृ त् य = प्रकत्य

94. ''क्त्वाऽपिच्छन्दसि'' (7.1.38)

अनञ् - पूर्वपद - समास में क्त्वा तथा पक्ष में ल्यप् आदेश होता है।

उदाहरण - कृष्णं वासे यजमानं परिधापयित्वा। प्रत्यंचमर्क प्रत्यर्पयित्वा। उद्धृत जुहोति।

परधापयित्वा, प्रत्यर्पयित्वा - प्रति उपसर्ग पूर्वक धा एवं अर्प से क्त्वा प्रत्यय हुआ और प्रादि समास प्राप्त हुआ। अब नञभिन्नपूर्वपद से परे क्त्वा को ल्यप् प्राप्त होता है जिसे बाधकर आलोच्य सूत्र द्वारा क्त्वा आदेश प्राप्त होता है आदेश होने पर - प्रति धा क्त्वा, प्रति अप क्त्वा > प्रति धापयित्वा, प्रत्यर्पयित्वा शब्द सिद्ध होते है।

उद्धृत्य - उत् हृ क्त्वा। सूत्र में 'अपि' ग्रहण से क्त्वा को ल्यप् होने पर उत्तृ ल्यप् > उत धृ तु (तुक्) य = उद् धृ त्य = उद्धृत्य।

95. "सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः" (7.1.39)

सुपों के स्थान में सु, लुक, पूर्वसवर्ण, आ, आत्, शे, या, डा, ड्या, याच्, आल् ये आदेश होते है वेद विषय में।

उदाहरण - पन्थाः - पथिन् जस्। जस् के स्थान पर सु हो पथिन् सु > पन्थाः। जस् परे रहते पन्थानः रूप बनता जस् को सु होने पर पन्थाः रूप बना।

धीती - धीति टा। टा को पूर्ण सवर्ण (इकारादेश) हो धीति इ। धीति इ = धीती।

उभा - उभ औ। औ को आकारादेश होने पर - उभ आ > उभा।

अनुष्ट्या - अनुष्टुप् टा। टा को ड्या आदेश होने पर - अनुष्ट्न ड्या > अनुष्ट् या = अनुष्ट्या।

वसन्ता - वसन्त ङि। ङि को आल् आदेश होने पर वसन्त आल् > वसन्त आ = वसन्ता।

96. "अमो मश्" (7.1.40)

अम् के स्थान में मश् आदेश होता है वेद विषय में।

उदाहरण - वधीं वृत्रम्। क्रमीं वृक्षस्य शाखाम्।

वधीम् - वध मिप् > वध अम्। अम् को मश् आदेश होने पर - वध मश् > वधीम्

कमीम् - क्रमु अम। अम् को मश् आदेश होने पर - कम् मश > कमीम्।

97. "ध्वमो ध्वात्" (7.1.42)

वेद विषय में ध्वम् के स्थान में ध्वात् आदेश होता है।

उदाहरण - अन्तरेवोष्माणं वारयध्वात्।

वारयध्वात् - वृञ् अथवा वृञ् णिच् लोट् > वृणिच् ध्वम्। ध्वम् को सूत्रविहित ध्वात् आदेश होने पर - तृ णिच् ध्वात् > वारयध्वात्।

98. "तस्य तात्" (7.1.44)

लोट् म. पु. बहु. के 'त' के स्थान में तात् आदेश हो जाता है वेद में।

उदाहरण - गात्रंगात्रमस्य नूनं कृणुतात्। ऊवध्ये गोहं पाथिवं खननात्।

कृणुतात् - कृवि त > कृ णु त। त को सूत्र विहित तात् आदेशहो - कृ णु तात् = कृणुतात्।

खनतात् - खन् थ > खन् शप् थ् > खन त। त को सूत्र द्वारा प्राप्त तात् आदेश हो - खन तात् = खनतात्।

99. ''तप्तनप्तनथनाश्च'' (7.1.45)

त के स्थान में तप्, तनप्, तन, थन - ये आदेश भी वेद में होते है।

उदाहरण - श्रृणोत ग्रावाणः। संवरत्रा दधातन। जुजुष्टन यदिष्ठन।

श्रृणोत् - श्रृ श्नु त > श्रृ णु त। त को तप् आदेश हो श्रृ नु तप्। श्रृ नु तप् > श्रृ नो त > श्रृणोत। तप् पित् है पित्वाद नु को गुण हो श्रृणोत रूप। तप् के अभाव में श्रृणुत बना।

दधातन - धा शप् त् > द धा त। त को तनप् आदेश होने पर - दधा तनप् = दधातन।

जुजुष्टन - जुष् श त > जु जुष् त। त को तन ओदश हो - जुजु ष तन > जुजुष्टन।

यदिष्ठन् - इष् श त > इ इप् त > इ इष् त > य त् इ ष् त > यदिष् त। त को धन आदेश हो - यदिष् थन > यदिष्ठन्।

100. ''ठस्येकः'' (7.3.50)

अंग के निमित्त ठ को इक् आदेश होता है।

उदाहरण - आक्षिकः - अक्ष ठक् > आक्ष ठक्। ठ को सूत्रविहित इक आदेश होने पर आक्ष इक = आक्षिक। आक्षिक सु = आक्षिकः।

101. ''इसुसुक्तान्तात् कः'' (7.3.51)

इसन्त उसन्त, उगन्त (उक् अन्त में हो जिसके) तथा तकारान्त अंग से उत्तर ठ के स्थान में क आदेश होता है।

उदाहरण - सर्पिष्कः - सर्पिष् ठक्। सर्पिष् इसन्त है अतः इसके परे ठक् के 'ठ' में स्थान पर 'क' आदेश होगा। ठ को क आदेश होने पर, सर्पिषक = सर्पिष्क। सर्पिष्क सु = सर्पिष्कः।

धनुष्कः - धनुष् ठक्। असन्त धनुष् से परे ठक के ठक को 'क' आदेश होकर धनुष् क = धनुष्क। धानुष्क सु = धानुष्कः।

औदश्वित्कः - उदश्वित ठक्। ठ को कादेश हो - उदश्वित क > औदश्वित्क। औदश्वित् क सु = औदश्वित्कः।

102. ''ङेराम्नद्याम्नीभ्यः'' (7.3.116.)

नदीसंज्ञकः आबन्त तथा नी से उत्तर ङि विभक्ति के स्थान में आम् आदेश होता है।

उदाहरण - गौर्याम् - गौरी ङि। गौरी दीर्घ - इकारान्त शब्द होने से नदी संज्ञक है। नदी संज्ञक गौरी से परे ङि को सूत्र द्वारा 'आम्' आदेश प्राप्त हुआ। आदेश हो गौरी आम् > गौर्याम्।

रामायाम् - रमा ङि। रमा आबन्त अंग है अतः इसके परे ङि को आम् आदेश होगा। रमा ङि > रमा या आम् > रमायाम्।

103. ''इदुद्भ्याम्'' (7.3.117.)

इकारान्त उकारान्त नदी संज्ञक से परे ङि को आम् आदेश होता है।

उदाहरण - कृत्याम - कृति ङि। कृति इकारान्त स्त्रीलिंग शब्द है अतः इसके परे ङि को उपर्युक्त सूत्र द्वारा आम् आदेश प्राप्त हुआ है। आदेश होकर। कृति आम् > कृत्याम्।

धेन्वाम् - धेनु ङि। उकारान्त नदीसंज्ञक धेनु शब्द से परे ङि को सूत्रविहित आम् आदेश होने पर - धेनु आम् = धेन्वाम्।

104. ''अच्च घेः'' (7.3.118.)

इकारान्त उकारान्त अंग से उत्तर ङि को 'औत्' (= औ) आदेश होता है। तथा घिसंज्ञक को अकारादेश भी होता है।

उदाहरण - सख्यौ = सखि ङि। 'सखि' न नदीसंज्ञक है और न ही घिसंज्ञक। ह्रस्व इकारान्त सखि शब्द से परे ङि को आलोच्य सूत्र द्वारा औ आदेश प्राप्त होता है। आदेश हो - सखि औ > सख्यौ। पति से परे 'ङि' को 'औ' आदेश हो पत्यौ शब्द बना।

अग्नौ - अग्नि ङि। अग्नि घिसंज्ञक अंग है अतः इससे परे ङि को औ आदेश तथा अंग को अत् (= अ) आदेश प्राप्त हुआ। ङि को औ तथा अंग के अन्त्य अल् को अ आदेश हो - अग्न औ > अग्नौ शब्द बना।

105. ''आङो नाऽस्त्रियाम्'' (7.3.120.)

घि संज्ञक से उत्तर आङ् (टा) के स्थान में ना आदेश होता है स्त्रीलिंग वाले शब्द को छोड़कर।

उदाहरण - अग्निना - अग्नि टा। अग्नि इकारान्त घिसंज्ञक पुल्लिंग शब्द है अतः इससे परे आङ् (टा)

को ना आदेश होगा - अग्नि ना = अग्निना।

सन्दर्भ सूची

1. "तिङि परे धातोर्विहितानां प्रत्ययानां शबादीनां विकरण संज्ञा प्राचीनाचार्य सिद्ध।" - बाल मनोरमा, सिद्धान्त कौमुदी। द्र. 'कर्तरि शप्' सू. की बाल मनोरमा टीका।
2. "यस्मात् प्रत्ययाविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्ग गम्" सू. की बाल मनोरमा टीका।
3. "यत्कर्म भूत्वा कर्त्ता भवति तत्रैत्यर्थः" सूत्र की पदमञ्जरी टीका काशिका।
4. "कर्म चासौ कर्त्ता चेति कर्मकर्त्ता। यदा तदैव कर्म सौकर्यात् कर्त्तृत्वेन विवक्ष्यते तदा तस्य कर्त्तव्यं भवति।" द्र. सूत्र की न्यास टीका, काशिका।
5. सूत्र की काशिका व्याख्या।
6. द्र. सूत्र की काशिका व्याख्या।
7. द्र. सूत्र की बालमनोरमाटीका, वै. सि. कौ.।
8. द्र. सूत्र की सिद्धन्त कौमुदीकार कृत सूत्रार्थ।
9. द्र. काशिकावृत्ति की न्यास टीका।
10. द्र. सूत्रार्थ - वै. सि. कौ.।
11. द्र. सूत्र की काशिका वृत्ति।
12. सूत्र की काशिका व्याख्या।
13. द्र. काशिका की न्यास टीका।
14. द्र. सूत्र की काशिका व्याख्या।
15. "स्वभावादिति न व्युत्पत्तिवशादित्यर्थः" काशिका की पदमन्जरी टीका।
16. प्र. सू. 'संख्याया विद्यार्थे धा' की काशिका वृत्ति।
17. प्र. सू. 'अधिकरणविचाले च' (5.3.43.) की काशिका व्याख्या।
18. द्र. सूत्र का भाष्य - वैयाकरण महाभाष्य।
19. द्र. सूत्र की न्यास टीका - काशिका वृत्ति।
20. द्र. - 'आदौ सिद्धमिति' भाष्यवचन की प्रदीप टीका के अनुसार - अन्तग्रहणं नानुवर्तते। उच्चारण क्रम प्रत्यासत्तया चादेरेवोदान्तवत्वम्।

21. द्र. सूत्र की काशिका टीका।

22. सूत्र की काशिका वृत्ति, न्यास टीका आदि के अनुसार।

षष्ठम अध्याय

षष्टम अध्याय

प्रकीर्ण-प्रकरण

1. टित् आत्मनेपदानां टेरे (3.4.79) -

टित् लकारों के आत्मनेपदादेशो के टि भाग को एकार आदेश होता है।

उदाहरण - एधे, एधते, एधन्ते आदि।

एधते- एध त (लट्) एधत। टि को एत्व होकर एधत् ए > एधते।

एधन्ते- एध झ > एधन्त। टि को एत्व हो एधन्त ए = एधन्ते।

एधे- एध इट् (लट्) > एधे। टि को एत्व हो - एध् ए = एधे।

2. आमेतः (3.4.90) -

लोट् सम्बन्धी जो एकार उसे आम् आदेश होता है।

उदाहरण - पचताम् - पच् लोट् > पच् त > पचते। एकार को आम् आदेश होने पर पचत् आम् त्र पचताम्।

पचेताम् - पच् आतम् > पचे ताम् > पचेते। लोट् के एकार को आम् आदेश होने पर - पचेत् आम् = पचेताम्।

पचन्ताम् - पच् झ > पचन्ते। लोट सम्बन्धी अन्त्य एकार को आम् आदेश हो- पचन्त् आम् = पचन्ताम्।

3. सवाभ्यां वामौ (3.4.91) -

सकार वकार से उत्तर लोट सम्बन्धी एकार के स्थान में यथा क्रम व, अम् ये आदेश हो जाते हैं।

उदाहरण - पचस्व - पच् लोट > पच् थास् > पच् से > पचसे। सकारोतरवर्ती एकार को व आदेश होने पर- पचस् व = पचस्व।

पचध्वम् - पच् लोट् > पच् ध्वम् > पचध्वे। वकारोत्तरवर्ती एकार को अम् आदेश होने पर- पचध्व अम् = पचध्वम्।

4. सुधातुरकङ् च (4.1.97)

सुधातृ शब्द को अपत्य अर्थ में इञ् प्रत्यय तथा प्रत्यय के सन्नियोग में सुधातृ अंग को अकङ् आदेश भी होता है।

उदा0- सुधातुरपत्य पुमान् = सौधातकिः।

सौधातकिः - सुधातृ से 'तस्यापत्यम्' अर्थ में इञ् प्रत्यय तथा अंग के अन्त्य को अकङ हो। सुधातृ अकङ् इञ् > सुधातक इञ् = सौधातकि। सौधातकि सु = सौधातकिः।

5. कल्याण्यादीनामिनङ् (4.1.126)

कल्याणी इत्यादि शब्दों से अपत्य अर्थ में इञ् प्रत्यय तथा कल्याण्यादि को इनङ् आदेश होता है।

उदाहरण - काल्याणिनेयः :- कल्याण् इनङ् ढक् - सूत्रविहित ढक प्रत्यय एवं कल्याणी को इनङ् अन्तादेश हो। कल्याण् इनङ् ढक = काल्याणिनेयः कल्याणिनेय सु = कल्याणिनेमः।

सौभागिनेयः :- सुभगा से सूत्रविहित ढक् प्रत्यय तथा अंग को इनङ् अन्तादेश होने पर - सुभग् इनङ् ढक् > सौभागिनेय। सौभागिनेय सु = सौभागिनेयः।

6. कुलटाया वा (4.1.127)

कुलटा शब्द से अपत्य अर्थ में ढक् प्रत्यय होता है, तथा कुलटा को विकल्प से इनङ् आदेश भी होता है।

उदाहरण - कौलटिनेयः, कौलटेयः।

कौलटिनेयः :- कुलटा शब्द से तस्यापत्यं अर्थ में ढक् प्रत्यय एवं कुलटा शब्द को इनङ् आदेश के पक्ष में - कुलटा इनङ् ढक् > कौलटिनेय। कौलटिनेय सु = कौलटिनेयः।

कौलटेयः :- कुलटा शब्द से ढक् प्रत्यय होने पर इनङ् आदेश के अभाव में कुलटा ढक् > कौलटेय शब्द बनता है। कौलटेय सु = कौलटेयः।

7. ऊधसोऽनङ् (5.4.131)

ऊधस् शब्दान्त बहुव्रीहि को समासान्त अनङ् आदेश होता है।

उदाहरण - कुण्डोध्नी, घटोध्नी।

कुण्डोध्नी :- 'कुण्डमिव ऊधोडस्याः' इस अर्थ में कुण्ड एवं ऊधस् का समास हुआ और

सूत्र द्वारा बहुव्रीहि समास के अन्तावयव को अनङ् आदेश प्राप्त हुआ। कुण्डोधस् - इस दशा में समासान्त अनङ् आदेश होने पर - कुण्डोध अनङ् > कुण्डोधन शब्द बना। कुण्डोधन ङीष् - कुण्डोध्नी।

घटोध्नी :- 'घटमिव ऊधोऽस्याः' - इस अर्थ में घट एवं ऊधस् का समास हुआ- घटोधस। अब सूत्र द्वारा समासान्त अनङ् आदेश प्राप्त हुआ। आदेश होने पर - घटोध अनङ् > घटोध्न शब्द बना। घटोधन ङीष् > घटोध्नी।

8. धनुषश्च (5.4.132)

धनुष शब्दान्त बहुव्रीहि को भी सामासान्त अनङ् आदेश होता है।

उदाहरण - गाण्डीवधन्वा :- 'गाण्डीवं धनुरस्य' इस अर्थ में गाण्डीव एवं धनुष शब्द का समास हो सूत्र द्वारा समासान्त अनङ् आदेश प्राप्त हुआ। आदेश होकर - गाण्डीवधनु अनङ् > गाण्डीवधन्वन्। स्वादिकाय हो - गाण्डीवधन्वा।

9. वासंज्ञायाम् (5.4.133)

धनुष शब्दान्त बहुव्रीहि को संज्ञाविषय में (अर्थात् समास किया हुआ संज्ञा के रूप में प्रयुक्त हो तो) विकल्प से अनङ् आदेश होता है।

उदाहरण - शतधनुः शतधन्वा :- शत् एवं धनुष शब्दो का समास हो, समास हुए शब्द को प्रकृत सूत्र से अनङ् आदेश प्राप्त हुआ। आदेश पक्ष में - शतधनु अनङ् > शतधन्वन् तथा स्वादिकार्य हो शतधन्वा शब्द बना। आदेश के अभाव में शतधनुष सु = शतधनुः शब्द बनता है।

10. जायायानिङ् (5.4.134)

जाया शब्दान्त बहुव्रीहि को समासान्त निङ् आदेश होता है।

उदाहरण - युवति जाया यस्य युवजानिः।

वृद्धा जाया यस्य वृद्धजानिः।

युवजानिः :- युवती एवं जाया का समास हो पुवद्भावादि होकर युवजाया शब्द बना। इस दशा में प्रकृत सूत्रसे समासान्त निङ् आदेश हो - युवजाय् निङ > युवजा नि शब्द बना। युवजानि सु = युवजानिः।

11. एचोऽयवायावः (5.1.77)

एच् (ए, ओ, ऐ, औ) के स्थान में क्रमशः अय्, अव्, आय्, आव आदेश होते है यदि एच्

से परे अच् हो तो।

उदाहरण - चयनम् :- चिञ् ल्युट् > चि यु > चे अन। एच् एकार से परे अच् अकार को सूत्र विहित अय् आदेश हो - च् अय् अन = चयन। चयन सु = चयनम्।

लवनम् :- लूञ् ल्युट् > लो अन। एच् ओकार को अच् अकार पर रहते सूत्र द्वारा प्राप्त अव् आदेश होने पर - ल् अव् अन > लवन। लवन सु = लवनम्।

चायकः :- चि ण्वुल् > चै अक। ऐ को सूत्र द्वारा प्राप्त आय् आदेश हो - च् आय अक = चायक। चायक सु = चायकः।

लावकः :- लूञ् ण्वुल > लौ अक। औ को आव् आदेश होने पर - ल् आव् अक = लावक। लावक सु > लावकः।

12. वान्तो यि प्रत्यये (6.1.78)

यकारादि प्रत्ययों के परे रहते एच् के स्थान में संहिता विषय में (औ को) आव् आदेश होते हैं।

यहाँ पूर्व सूत्र से एच् की अनुवृत्ति हुई है। किन्तु एच् में केवल ओ, औ को ही स्थानी के रूप में ग्रहण किया जाएगा क्योकि वकारान्त आदेशों का ही विधान हो रहा है।

उदाहरण - बाभ्रव्यः :- वभ्रु यञ् > ब्राभ्रो य। यकारदि यञ् प्रत्यय परे रहते ओकार को अव् आदेश हो - ब्राभ्र अव् य > बाभ्रव्य। बाभ्रव्य सु = बाभ्रव्यः।

नाव्यम् :- नौ यत्। यकारदि यत् प्रत्यय परे रहते औ को आव् आदेश होने पर - न आव् य > नाव्य। नाव्य सु = नाव्यम्।

13. अवङ् स्फोटायानस्य (6.1.121)

अच् परे रहते गो को अवङ् आदेश स्फोटायन आचार्य के मत में (विकल्प से) होता है।

उदाहरण - गवाग्रम् :- गो अग्रम्। गो से परे 'अग्रम' का अच् अकार है अतः स्फोटायन आचार्य के मत में गो को अवङ् आदेश हो - ग अवङ् अग्रम् > गव अग्रम् = गवाग्रम्।

14.इन्द्रे च (6.1.122)

इन्द्र शब्द में स्थित अच् के परे रहते भी गो को अवङ् आदेश होता है।

उदाहरण - गवेन्द्रः :- गो इन्द्रः। यहाँ गो से परे इन्द्र शब्द में स्थित अच् इकार है अतः गो को अवङ्

आदेश होने पर - ग् अवङ् इन्द्रः > गव इन्द्रः > गवेन्द्र।

15. आनङ्ऋतो द्वन्द्वे (6.3.25)

विद्या तथा योनि सम्बन्धीवाची ऋकारात्त शब्दों के द्वन्द समास में उत्तरपद परे रहते आनङ् आदेश होता है।

उदाहरण - होतापोतारौ :- होतृ तथा पोतृ इन ऋकारात्त शब्दो का द्वन्द समास हुआ। ये दोनो ही विद्या सम्बन्धवाची शब्द है अतः इन्हे आलोच्य सूत्र द्वारा आनङ् आदेश प्राप्त होता है। आदेश होने पर - होत् आनङ् पोतृ। होतान् पोतृ औ > होतापितारों।

16. देवताद्वन्दे च (6.3.26)

देवतावाची द्वन्द समास में भी उत्तरपद पर रहते पूर्वपद को आनङ् आदेश होता है।

उदाहरण - इन्द्रावरूणों :- इन्द्र एवं वरूण दोनों देवतावाची शब्द है इनके द्वन्द समास में पूर्वपद इन्द्र के अन्त्य वर्ण को (उत्तरपद वरूण के रहने पर) सूत्र द्वारा आनङ् आदेश प्राप्त हुआ। इन्द्र आनङ् वरूण > इन्द्रावरूण शब्द बना। इन्द्रावरूण औ = इन्द्रा वरूणौ।

17. अचि श्नुधातुभ्रुवां यवोरियङुवङौ (6.4.77)

श्नु प्रत्ययान्त अंग तथा इवर्णान्त, उवर्णान्त धातु एवं भ्रू शब्द को इयङ् उवङ् आदेश होते है, अच् परे हो तो।

उदाहरण - आप्नुवन्ति :- आप् श्नु झि > आप्नु अन्ति सूत्र द्वारा 'आप्नु' अंग को उवङ् अन्तदेश हो - आप्न् उवङ् अन्ति > आप्नुवंन्ति।

चिक्षियतुः :- क्षि लिट् > चि क्षि अतुस् > अजादि प्रत्यय परे रहते इकारान्त अंग को सूत्रविहित इयङ् अन्तादेश हो - चि क्ष इयङ् अतुस् = चिक्षियतुः।

18. अभ्यासस्यासवर्णे (6.4.78)

इवर्णान्त उवर्णान्त अभ्यास को असवर्ण अच् परे रहते इयङ्, उवङ् आदेश होते है।

उदाहरण - इयेष् :- इष् णल् > एष् अ > इष् एष् अ > इ एष् अ। इकारान्त अभ्यास को असवर्ण अच् एकार परे रहते इयङ् आदेश हो - इयङ् एष् > इयेष्।

उवोष :- उष् णल् > ओष् अ > उ ओष। उकारान्त अंग को उवङ् आदेश हो। उवङ् ओष = उवोष।

19. स्त्रियाः (6.4.79)

स्त्री शब्द को अजादि प्रत्यय परे रहते इयङ् आदेश होता है।

उदाहरण - स्त्रियौ :- स्त्री औ। अजादि प्रत्यय परे रहते स्त्री शब्द को इयङ् अन्तादेश हो - स्त्र् इयङ् औ = स्त्रियौ।

20. वाम्शसोः (6.4.80)

अम् तथा शस् विभक्ति परे रहते स्त्री शब्द को विकल्प से इयङ् आदेश होता है।

उदाहरण - स्त्रियम्, स्त्रीम् :- स्त्री अम्। अम् परे रहते स्त्री को इयङ् अन्तादेश हो- स्त्र् इयङ् अम् > स्त्रियम्। इयङ् वैकल्पिक है अतः इयङ् के अभाव में- स्त्री अम् > स्त्रीम्।

स्त्रीः, स्त्रियः :- स्त्री शस् > स्त्री अस्। इयङ् आदेश के अभाव में स्त्री अस् = स्त्रीः शब्द तथा इयङ् आदेश के भाव पक्ष में स्त्र् इयङ् अस् = स्त्रियः शब्द सिद्ध हुआ।

21. विभाषर्जोश्छन्दसि (6.4.162) :-

ऋजु अंग के ऋकार के स्थान में विकल्प से 'र' आदेश होता है वेद विषय में यदि इष्ठन्, इमनिच् अथवा ईयसुन् परे रहते है।

उदाहरण - रजिष्ठम् पन्थानम्। त्वमृजिष्ठः।

रजिष्ठम् :- ऋजु इष्ठन्। ऋ के स्थान पर र आदेश हो- रज इष्ठन्। रजिष्ठ सु = रजिष्ठम्।

ऋजिष्ठः :- ऋजिष्ठ सु = ऋजिष्ठः। रेफादेश के अभाव में ऋजिष्ठः शब्द बना।

22. अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः (7.1.75)

अस्थि, दधि, सक्थि, अक्षि - इन नपुंसकलिंग प्रातिपदिक अंगो को तृतीयादि अजादि विभक्तियों के परे रहते अनङ् आदेश होता है, और वह उदात्त होता है।

उदाहरण - अस्थ्ना, अस्थ्ने :- अस्थि टा > अस्थि आ। अस्थि को अनङ् आन्तादेश हो - अस्थ् अनङ् आ > अस्थना। अस्थना > अस् थ् ना = अस्थ्ना।

दध्ना :- दधि आ (टा)। दधि को अनङ् आदेश हो- दध् अनङ् आ। दधन् आ > दध् न आ = दध्ना।

अक्ष् णा :- अक्षि टा > अक्षि आ। अक्षि को अनङ् अन्तादेश हो- अक्ष् अन् आ = अक्षन्

आ > अक्ष् न आ = अक्ष्ना > अक्ष्णा।

23. छन्दस्यपि दृश्यते (7.1.76)

अस्थि, दधि, सक्थि, अक्षि- इन अंगो को वेद विषय में भी अनङ् अन्तादेश देखा जाता है। (होता है।)

उदाहरण - इन्द्रो दधीचो अस्थभिः। भद्रं पश्येमाक्षभिः।

अस्थभिः :- अस्थि भिस्। अस्थि को अनङ् आदेश हो- अस्थ् अनङ् भिस्। अस्थन् भिस् > अस्थभिः।

अक्षिभिः :- अक्षि भिस्। अक्षि का अनङ् आदेश हो - अक्ष् अनङ् भिस्। अक्षन् भिस् > अक्षिभिः। वेद में अजादि प्रत्यय परे होने की अनिवार्यता नहीं है यह उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त तृतीयादि विभक्तियों के परे होने के नियम भी लागू नहीं होते। क्योंकि प्रथमादि विभक्ति परे होने पर भी अनङ् आदेश होते हुए देखा जाता है। जैसे- अस्थान्युत्कत्य जुहोति।

24. थो न्थः (7.1.82)

पथिन तथा मथिन् अंग के थकार के स्थान में न्थ आदेश होता है।

उदाहरण - पन्थाः - पथिन् सु > पथिन् आ सु। पथ आ स्। पथिन के 'थ' को 'न्थ' आदेश हो- पन्थ आ स > पन्था स्। पन्था स - पन्थाः।

मन्थानौ :- मथिन् औ > मथन् औ। थ को न्थ आदेश हो- म न्थ न औ > मन्थन् औ। मन्थन् औ > मन्थान् औ- मन्थानौ।

25. पुंसोऽसुङ् (7.1.89)

पुंस् अंग के स्थान में सर्वनामस्थान विभक्ति परे रहते असुङ् आदेश होता है।

उदाहरण - पुमान् :- पुंस सु। पुंस् पुल्लिंग शब्द है अतः इससे परे सुट् की सर्वनाम- स्थान संज्ञा होगी। सर्वनाम स्थानसंज्ञक सु के परे रहते पुस को असुङ् आदेश हो- पुं असुङ् सु। पुं असुङ् > पुम् अस् स् > पुम् अ नु म् स् स् > पुमन्स् स् > पुमन्स् > पुमन् > पुमान्।

26. अनङ् सौ (7.1.93)

सखि अङ् को सम्बुद्धिभिन्न सु परे रहते अनङ् आदेश होता है।

उदाहरण - सखा :- सखि सु। 'सखि' को अनङ् आदेश हो- सख् अनङ् सु > सखन् सु। सखन् सु

> सखान् स् > सखा।

सम्बुद्धि में (सम्बोधन में) सखि सु > सखि > सखे त्र हे सखेः अनङ् आदेश नहीं होता।

27. ऋदुशनस्पुरूदंशोऽनेहसांच (7.1.94)

ऋकारान्त अंग को तथा उशनस्, पुरूदंसस् अनेहस्- इन अंगो को भी अनङ् आदेश होता है।

उदाहरण - कर्ता :- कर्तृ सु ऋकारान्त अंग को सम्बुद्धि भिन्न सु परे रहते अनङ् आदेश होकर-कर्तृ अनङ् सु। कर्तन सु > कर्तन् स् > कर्तान स > कर्ता स > कर्ता।

उशना :- उशनस् सु। उशनस् को सूत्र विहित अनङ् अन्तादेश हो- उशन् अनङ् सु। उशनन् सु > उशना।

उशनस् को सम्बुद्धि में भी पाक्षिक अनङ् अभीष्ट है ताकि 'हे उशनस्' आदि प्रयोग हो।[1] (द्रष्टव्य सूत्र की काशिका)

28. अतो येयः (7.2.80)

अकारान्त अंग से उत्तर सार्वधातुक या के स्थान में इय आदेश होता है।

उदाहरण - पचेत् :- पच् लिङ् > पच् शप् तिप > पच त > पच यासुट त > पच या स् त् > पच् या त्। पच आकारान्त अंग है तथा सर्वधातुक तिप् को हुआ यासुट् आगम भी आगमी का अवयव होने से सार्वधातुक हुआ। इस दशा में उपर्युक्त सूत्र द्वारा या को इय् आदेश हो- पच इय् त्। पचेय् त > पचे त् = पचेत्।

पचेताम् :- पच् शप् यासुट तस् > पच या ताम्। या को इय् आदेश हो- पच् इय् ताम्। पच इय् ताम् > पचेय् ताम् > पचे ताम् = पचेताम्।

पचेयुः :- पच् झि। पच् शप् यासुट् जुस् > पच या उस् > या को इय् आदेश हो- पच इय् उस्। पच इय् उस् > पचेयुस् > पचेयुः।

29. आतो ङितः (7.2.81)

अकारान्त अंग से उत्तर ङित् सार्वधातुक के अवयव आकार के स्थान में इय् आदेश होता है।

उदाहरण - पचेते :- पच् शप् लट् > पच आताम्। अकारान्त अंग से परे आताम् के आकार को इय्

आदेश हो- पच् इय् ताम् > पचेय् ताम्। पचेय् ताम् > पचे ताम् > पचेते।

पचेथाम् :- पच् शप् आथाम् (लोट्) आथाम् > पच आथाम् > आ को इय् आदेश होने पर - पच इय् थाम्। पच् इय् थाम् > पचेय् थाम् > पचे थाम् > पचेथाम् > पचे थे > पचे थ् आम् > पचेथाम्।

यजेताम् :- यज् शप् आताम् > यज् आताम। आ को इय् आदेश हो - यज इय् ताम्। यज इय् ताम् > यजेय् ताम् > यजे ताम् > यजे ते > यजे त् आम् = यजेताम्।

30. अयङ् यि क्ङिति (7.4.22)

थकारादि कित् ङित् प्रत्यय परे रहते शीङ अंग को अयङ आदेश होता है।

उदाहरण - शय्यते :- शीङ् लट् > शीङ् त > शीङ् यक् त > शी य त्। यक् यकारादि कित् प्रत्यय है अतः इसके परे रहने पर शीङ् अंग को अयङ् आदेश प्राप्त हुआ। आदेश हो - श अयङ् य त > शययत शययत > शय्यते।

शाशय्यते :- शीङ् यङ् त > शी य त। ङित् यङ् प्रत्यय परे रहते शीङ् अंग को अयङ् आदेश हो - श् अयङ् य त। श य् य त > शय्य त > शाशय्यते।

31. रीङ् ऋतः (7.4.27)

कृत् तथा सार्वधातुक से भिन्न यकारादि प्रत्ययों और च्वि प्रत्यय के परे रहते भी ऋदन्त अङ् को रीङ् आदेश हो जाता है।

उदाहरण - मात्रीयति :- मातृ क्यच् तिप्। क्यच् कृत प्रत्यय नहीं है और यह असार्वधातुक प्रत्यय है और यकारादि है अतः इसके परे रहते ऋकारान्त अंग को रीङ् अन्तादेश होने पर- मात् री य तिप् > मात्रीयति।

मात्रीयते :- मातृ क्यङ्। क्यङ् यकारादि अकृत असार्वधातुक प्रत्यय है अतः इसके परे रहते मातृ के ऋकार को रीङ् हो- मात् री य = मात्रीय। मात्रीय त > मात्रीयते।

मात्रीभूतः :- मातृ च्वि भू क्त सु। च्वि परे रहते मातृ में ऋकार को रीङ् भू त सु। मात्री भूत सु = मात्रीभूतः।

32. रिङ्शयग्लिङ्क्षु (7.4.28)

ऋकारान्त अंग को श, यक् तथा यकारादि सार्वधातुक भिन्न लिङ् परे रहते रिङ् आदेश होता है।

उदाहरण - आद्रियते :- आङ् दृङ् त > आ दृ श त। श परे रहते ऋकारान्त अंग का रिङ् अन्तादेश हो- आ द् रि अ त। आ द्रि अ त > अ द्र् इयङ् अत > आ द्रि य त > आद्रियते।

क्रियते :- कृ यक् त। यक् परे रहते ऋकारान्त अंग को रिङ् आदेश हो- कृ रिङ् य त > क्रिय त। क्रियत > क्रियते।

33. सनि मीमाधुरभलभशकपतपदामच इस् (7.4.54)

मी, मा तथा पुसंज्ञक एवं रभ्, लभ् शक्, पत पद- इन अंगो के अच् के स्थान में इस् आदेश होता है, सकारादि अन प्रत्यय परे रहते।

उदाहरण - मित्सति :- मीञ् सन् तिप् अथवा हुमिञ् सन् > मी स तिप्। सकारादि सन् परे रहते मीञ् अंग के अच् को इस् आदेश हो। म इस् स ति > मिस् स ति। मिस् स ति > मिस् मिस् स ति > मिस् स ति > मिस् स ति = मित्सति।

मित्सते :- गाङ् अथवा गङ् > मा स सन् हो, सन् परे रहते मा के अच् को इस हो- म् इस् स। मिस् स त > मित्सते > मित्सते।

आलिप्सते :- आङ् अभ् सन् त। सन् परे होने पर लभ् के अच् को आदेश हो- आ लिस् भ् स त > आलिस् भ् स त > आ लि भ् स त > आ लिप् लिप् स त > आ लिप् स त > आलिप्सते।

शिक्षति :- शक् सन् तिप्। शक् के अच् को इस् आदेश होने पर- शि स् क् स ति। शि स् क् स ति > शि शि क् ष ति > शि क् ष ति = शिक्षति।

पित्सति :- पत् सन् तिप्। पत् के अच् को इस आदेश हो पिस् त तिप् > पित्सति।

34. प्रणवष्टेः (8.2.89)

यज्ञ में प्रयोग करते समय वाक्य के 'टि' के स्थान में प्रणव (त्र ओम) आदेश हो जाता है।

उदाहरण - अपां रेतासि जिन्वतोशउम्। देवान् जिगति सुम्नयोउम्।

जिन्वतोउम् :- जिवि लट् > जिव् तिप् > पि नुम् व ति = जिन्वति। जिन्वति दन्द के पाद का अन्तिम पद है अतः यज्ञकर्म में इस पद की टि को प्लुत्, उदाप्त आम आदेश होगा। आदेश हो- जिन्वत् ओउम् = जिन्वतोउम् ऐसा शब्द उच्चरित होगा।

35. एचोऽप्रगृह्यस्यादूराद्धूते पूर्वस्यार्धस्यादुत्तरस्येदुतौ (8.2.107)

दूराह्वान से भिन्न प्रसङ्ग में प्रगृह्यसंज्ञकेतर एच् का प्लुतत्व के यदि प्राप्त हो वहाँ ऐच् के

पूर्वार्द्ध के स्थान में आकार और उत्तरार्ध के स्थान में (यथासम्भाव) इत् और उत् आदेश हो जाते हैं। (एक वार्तिक में इस सूत्र द्वारा विहित प्लुत आकारादेश के विषय का परिगणन किया गया है, जो इस प्रकार है -

"प्रश्नान्तभिपूजितविचार्यमाणप्रत्यभिवादयाज्यान्ते ष्विति वक्तव्यम्।"

प्रश्नान्त में अगम उः पूर्वउन् ग्रामाउन् अग्निभूताउ इ। पटा इ उ। यहाँ अग्निभूते (अग्निभूति सु) सम्बुद्धि विषयक को प्लुत करने के प्रसंग में पूर्वाद्ध को प्लुत आकार एवं उत्तरार्ध को इ आदेश हो- अग्निभूता उ इ हुआ। तथा 'पटो' एच् के स्थान पर प्लुत आकार एवं उत्तरार्ध में उ आदेश हो- पटा इ उ हुआ। अभिपूजित अर्थ में- गद्रं करोमि।

माणवक उ अग्निभूता उ इ। पटा उ उ।

विचार्यमाण अर्थ में - होतव्यं दीक्षितस्य गृहा उ इ।

प्रत्यभिवादन में - आयुष्मानेधि अग्निभूता उ इ पत् उ उ।

याज्यान्त :- उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधस स्तोमैंविधेमाग्नया उ इ।

36.आतेऽटि नित्यम् (8.3.3)

अट् परे रहते रू से पूर्व आकार को नित्य अनुनासिक आदेश होता है।

उदाहरण - महाँ असि। महाँ इन्द्रो य ओजसा। देवाँ आच्छादीव्यत्।

महाँ :- असि एवं इन्द्र के अट् - आकार, इकार परे रहते महान् के आकार को सूत्रविहित अनुनासिक आदेश हो- महां रू, (न्) रू > असि, महाँ रू इन्द्र; ऐसी दशा हुई। महाँ रू असि, महाँ रु इन्द्र > महाँ असि, महाँ इन्द्र।

37. खरवसानयोर्विसर्जनीयः (8.3.15)

रेफान्त पद को खर् परे रहते तथा अवसान में विसर्जनीय आदेश होता है।

उदाहरण - वृक्षश्छादयति :- वृक्षः + छादयति > वृक्ष रू छादयति > वृक्ष र् छादयति। खर् छकार परे रहते रेफान्त पद को विसर्जनीय हो- वृक्षः छादयति। वृक्षः छादयति > वृक्ष स् छादयति > वृक्ष श् छादयति = वृक्षश्छादायति।

प्लक्षस्तरति :- प्लक्षः + तरति। रेफान्त पद को खर् से परे रहते विसर्जनीय आदेश हो- पलक्षः तरति। प्लक्ष स् तरति > प्लक्षस्तरति।

38. रोः सुपि (8.3.16)

रू के रेफ को सुप् परे रहते विसर्जनीय आदेश होता है।

उदाहरण - पयः सु :- पयस् सुप्। पय रू सुप् > पय र् स्। सुप् परे रहते रू के रेफ को विसर्जनीय आदेश हो- पयः सु।

सर्पिः षु :- सर्पिष् सुप् > सर्पि र् सु। रेफ को विसर्जनीय आदेश हो-सर्पिः सु > सर्पिः षुः।

39. नश्चापदान्तस्य झलि (8.3.24)

झल् के परे रहते तो पदात्तभिन्न मकार और नकार को भी अनुस्वार आदेश हो जाता है।

उदाहरण - पयांसि :- पयस् जस् अथवा शस् > पयस् शि > पय न् (नुम्) स इ > पयान् स् इ। अपदान्त नकार को झल् सकार परे रहते अनुस्वार आदेश हो- पयां स् इ = पयांसि।

आक्रंस्यते :- आङ् क्रम् स्य त (लृट्) > आ क्रम स्य त। अपदान्त मकार को झल् से परे रहते अनुस्वार आदेश हो। आ क्र स्य ते = आक्रस्यते।

40. शर्परे विसर्जनीयः (8.3.35)

शर् परे है जिससे ऐसे शर् के परे रहते विसर्जनीय को विसर्जनीय आदेश होता है।

उदाहरण - शशः क्षुरम् :- यहाँ शशः के विसर्जनीय को शर् (ष्) जिससे परे है, ऐसे खर् (क्) के परे रहते विसर्जनीय हो- शशः क्षुरम् बना।

विसर्जनीय को विसर्जनीय आदेश अन्य प्राप्त आदेशों (यथा जिह्वामूलीयउपध्मानीय) की निवृत्ति करने हेतु विहित किया गया है।

41. वा शरि (8.3.36)

विसर्जनीय को विकल्प से विसर्जनीय आदेश होता है, शर् परे रहते।

उदाहरण - वृक्षः शेते :- विसर्जनीय को सूत्रविहित विसर्जनीय आदेश हो- वृक्षः शेते।

वृक्षश्शेते :- विसर्जनीय को विसर्जनीय आदेश वैकल्पिक है अतः विसर्जनीय आदेश के अभाव में 'विसर्जनीयस्य सः' से विसर्ग को सकार तथा सकार को श्चुत्व शकार हो वृक्ष श् शेते > वृक्षश्शेते।

42. कुप्वोः क पौ च (8.3.37)

पदादि कवर्ग और पवर्ग के परे रहते विसर्ग के स्थान में यथाक्रम् क और प आदेश भी होते हैं और विकल्प से विसर्गादेश भी।

उदाहरण - वृक्ष खनति :- वृक्षः खनति। क वर्ग खकार परे रहते विसर्जनीय को जिह्वामूलीय आदेश हो- वृक्ष - खनति।

वृक्षः खनति :- सूत्र को चकारग्रहण से पक्ष में (विसर्जनीय को) विसर्जनीय भी प्राप्त है। विसर्जनीय पक्ष में - वृक्षः खनति।

वृक्ष फलति, वृक्षः फलति :- वृक्षः फलति प वर्ग फकार परे रहते विसर्जनीय को उपध्मानीय आदेश हो- वृक्ष फलति। विसर्जनीय को चकार बल से प्राप्त विसर्जनीय पक्ष में वृक्षः फलति।

एकादेश – प्रकरण

1. आदगुणः (6.1.86)

यदि अवर्ण से परे अच् वर्ण हो तो पूर्व एव पर दोनो के स्थान पर गुण एकादेश हो।

उदाहरण - उपेन्द्रः : उप + इन्द्रः - यहाँ अ वर्ण से परे इकार रहते दोनों का सूत्रविहित गुण एकारादेश हो उप् ए न्द्रः - उपेन्द्रः शब्द बना।

तवल्कारः :- तव + लृकारः। अकार एवं लृकार को गुण अकार एवं रपर होकर तव् अल् कार - तवल्कारः शब्द बना।

अपोद्धारः :- अप + उद्धारः। यहाँ अकार एवं उकार को गुण ओकार होगा- अप् ओ द्धारः - अपोद्धारः।

2. वृद्धिरेचि (6.1.87)

अ वर्ण से परे यदि एच् (ए, ओ, ऐ, औ) हो तो पूर्वपर के स्थान पर वृद्धि एकादेश होगें।

उदाहरण - कृष्णैकत्वम् :- कृष्ण + एकत्वम्। अकार से परे एकार रहते दोनो को वृद्धि एकादेश हो - कृष्ण ऐ कत्वम् = कृष्णैकत्वम्।

गङ्गौघः :- गङ् गा + ओघः। अकार, ओकार को वृद्धि एकादेश हो। गङ् ग् औ घः = गङ्गौघः शब्द सिद्ध हुआ।

3. एत्येधत्यूठ्सु (6.1.88)

अ वर्ण से परे यदि एजादि इण् धातु हो तो उस अ वर्ण एवं इण् धातु के एच् दोनो के स्थान पर तथा अ वर्ण से परे एध तथा उठ् का अच् हो तो उस एध तथा ऊठ् और पूर्ववर्ती अ वर्ण दोनों के स्थान पर वृद्धि एकादेश होता है।

उदाहरण - उपैति :- उप + एति। अ वर्ण से परे एजादि इण् धातु है अतः अ वर्ण एवं ए वर्ण दोनों के स्थान पर वृद्धि एकादेश होकर उप् ऐ ति = उपैति बनता है।

उपेधते :- उप + एधते। अ वर्ण एवं एध के एकार दोनो के स्थान पर वृद्धि एकादेश होकर उप् ऐ धते = उपैधते बनता है।

4. आटश्च (6.1.89)

पूर्ववर्ती आट् एवं परवर्ती अच् के स्थान पर वृद्धि एकादेश होता है, संहिता के विषय में।

उदाहरण - बहुश्रेयस्यै :- बहुश्रेयसा ङे > बहुश्रेयसा आट् ङ > बहुश्रेयसा आ ए। आट एवं अच् ए को वृद्धि एकादेश हो- बहुश्रेयस्य ए > बहुश्रेयस्यै शब्द बनता है।

5. उपसर्गादृति धातौ (6.1.90)

अवर्णान्त उपसर्ग से परे ऋकारादि धातु हो तो अवर्ण एवं ऋकार दोंनो के स्थान पर वृद्धि एकादेश होगा। संहिता विषय में।

उदाहरण - प्रार्च्छति :- प्र ऋच्छति। यहाँ अवर्णान्त उपसर्ग प्र से ऋच्छति का ऋकार है अतः इन दोनो के स्थान पर वृद्धि एकादेश होगा- प्र आर च्छति = प्रार्च्छति।

6. वा सुप्यापिशलेः (6.1.91)

अकार से परे ऋकारादि सुबन्तावयव धातु हो तो अकार एवं धातु के ऋकार के स्थान पर वृद्धि एकादेश विकल्प से होगा।

उदाहरण - प्रार्षभीयति, प्रर्षभीयति :- प्र ऋषभीयति। यहाँ अवर्ण से परे ऋकारादि नाम धातु है। अवएव अवर्ण एवं धातु के ऋकार दोनो के स्थान पर विकल्प से वृद्धि एकादेश प्राप्त है। वृद्धि होने पर प्र आर् षभीयति- प्रार्षभीयति तथा वृद्धि के अभाव में गुण होकर प्रर्षभीयति शब्द बनते है।

7. औतोम्शसोः (6.1.92)

पूर्ववर्ती ओत् से उत्तर यदि आम् या शश् हो तो पूर्व पर के स्थान में आकारादेश हो जाता है।

उदाहरण – गाम् :- गो अम्। ओकार एवं आकार को आकार एकादेश होकर- ग् आ म् = गाम् शब्द बना।

गाः :- गो शस् > गो अस्। सूत्रविहित आकार एकादेश होने पर ग् आ स् > गास् = गाः शब्द बना।

9. एंङि पररूपम् (6.1.93)

अवर्णान्त उपसर्ग से परे एङादि धातु के रहते उपसर्ग के अकार एवं धातु के एङ् के स्थान पर पररूप होता है।

उदाहरण – प्रेजते :- प्र + एजते। प्र अवर्णान्त उपसर्ग है और एज् एङादि धातु है अतः अवर्ण एवर्ण दोनो के स्थान पर पररूप एकार एकादेश होने पर-प्र ए जते = प्रेजते शब्द बनता है।

उपोषति :- उप + ओषति। सूत्रविहित पररूप एकादेश होने पर उप् ओ षति = उपोषति।

09. ओमाड़ोचृश्र (6.1.94)

अवर्ण से परे ओम और आङ् हो तो अकार एवं ओकार या आकार के स्थान पर पररूप एकादेश होता है।

उदाहरण – शिवयोनमः :- शिवाय ओम् नमः। शिवाय के अन्त्य अवर्ण से परे ओम् का ओकार है दोनो को सूत्रविहित पररूप एकादेश होने पर-शिवाय् ओ म् नमः – शिवायोम् नमः > शिवायोनमः।

शिवेहि :- शिव अ इहि। यहां शिव के अकार से परे आङ् का आकार है- इन दोनों को सूत्रविहित पररूप एकादेश होने पर-शिव् आ इहि > शिवा इहि > शिवेहि शब्द बनता है।

10. उस्यपदान्तात् (6.1.95)

अपदान्त अवर्ण और उसके परे उस् के उकार के स्थान में पररूप एकादेश होता है।

उदाहरण – भिन्द्युः :- भिद् जुस् > भिन्द् या उस् > भिन्द्या उस्। आकार उकार के स्थान पर पररूप एकादेश होने पर भिन्द्य् उस > भिन्द्युस् = भिन्द्युः शब्द सिद्ध होगा।

छिन्द्युः :- छिद् जुस > छिन्द् यासुट् जुस् > छिन्द्या उस्। सूत्रविहित पररूप एकादेश होने पर छिन्द्युस् = छिन्द्युः शब्द बनता है।

11. अव्यक्तानुकरणस्यात इतौ (6.1.97)

अव्यक्त ध्वनि के अनुकरण का जो शब्द उससे उत्तर जो इति उस शब्द में अत् एवं इति

के इकार समुदाय को पूर्वरूप एकादेश होता है।

उदाहरण - पाटिति :- पटत् इति। पटत् के अत् एवं इति के इकार को पररूप एकादेश होकर पट् इ ति = पटिति शब्द बना।

12. अकः सवर्णे दीर्घः (6.1.99)

अक् से परे सवर्ण अच् हो तो पूर्व पर दोनो के स्थान पर दीर्घ एकादेश होता है।

उदाहरण - मुनीन्द्रः :- मुनि + इन्द्रः। सवर्णदीर्घ होकर मुन् ई न्द्रः = मुनीन्द्रः।

भानूदयः :- भानु + उदयः। दीर्घ एकादेश हो भान् उ दयः = भानूदयः बना।

13. प्रथमयोः पूर्वसवर्णः (6.1.100)

अक् के पश्चात् प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के अच् परे हो तो पूर्व तथा पर के स्थान पर पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश हो।

उदाहरण - रामाः :- राम जस् > राम अस्। राम के अक अकार से परे प्रथमा विभक्ति का अच् अकार है दोनो के स्थान पर पूर्व सवर्णदीर्घ एकादेश होने पर- राम आ स् > रामास् = रामाः शब्द बना।

14. वा छन्दसि (6.1.104)

वेद में दीर्घ से जस् अथवा इच् प्रत्याहारस्थ वर्ण परे रहते विकल्प पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश हो जाता है।

उदाहरण - मारूतीः - मारूत्यः :- मारूती जस्। पूर्व सवर्णदीर्य एकादेश होने पर - मारूतीस् = मारूतीः। पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश के अभाव में - मारूती जस् > मारूत्यः।

15. अभि पूर्वः (6.1.105)

अक् से उत्तर अम् विभक्ति हो तो पूर्वपर के स्थान पर पूर्वरूप एकादेश होगा।

उदाहरण - रामम् :- राम अम्। सूत्र विहित पूर्वरूप एकादेश होने पर- राम् अ् म् = रामम्।

16. सम्प्रसारणाच्च (6.1.106)

सम्प्रसारण से परवर्ती अच् होने पर भी पूर्व-पर के स्थान में एकादेश पूर्वरूप हो जाता है।

उदाहरण - गृह्णाति :- ग्रह् श्ना तिप् > ग् ऋ अ ह् ना ति। सम्प्रसारणसंज्ञक ऋकार एवं उससे परे जो अकार उसे पूर्वरूप एकादेश होने पर- गृ ह् ना ति = गृह्णाति।

17. एङः पदान्तादति (6.1.107)

पदान्त एङ् से उत्तरवर्त्ती अत् (त्र ह्रस्व अकार) यदि हो तो भी पूर्व - पर के स्थान में एकादेश पूर्वरूप हो जाता है।

उदाहरण - हरेऽव :- हरे अव। हरे का एकार (एङ्) पदान्त है तथा इससे परे अकार है दोनों के स्थान पर पूर्वरूप एकादेश होने पर - ह र् ए व > हरेऽव।

विष्णोऽव :- विष्णो अव। पूर्वरूप एकादेश हो- विष्णू औ व > विष्णोऽव।

पूर्वरूप एकादेश को दिखाने के लिए अवग्रह (S) का लगाने को प्रथा है।

18. ङसिङसोचूश्र (6.1.108)

पदान्त एङ् से परे यदि ङ सि और ङ स् हो अर्थात् इन प्रत्ययों का अकार हो तो उस एङ् एवं प्रत्यय के अवर्ण के स्थान पर पूर्वरूप एकादेश होगा।

उदा0- हरेः :- हरि ङ् सि् या ङ स् > हरे अस्। सूत्र द्वारा विहित पूर्वरूप एकादेश होकर - हर् ए स् > हरेस् = हरेः।

19. ऋत उत् (6.7.109)

ऋकार से उत्तर ङ सि या ङ स् का अकार हो तो पूर्व पर दोनों के स्थान में उकार एकादेश होगा।

उदाहरण - मातुः :- मातृ ङ सि या ङ स् > मातृ अस्। ऋकारन्त मातृ के ऋकार के परे ङ सि एव ङ स के अकार के रहने से पूर्व पर दोनो के स्थान में उकार एकादेश होकर- मात् उ स् > मातुः।

पितुः :- पितृ ङ सि या ङ स् > पितृ अस्। उकार एकादेश हो - पित् उ स् > पितुस् > पितुः।

द्वित्व प्रकरण

एकाचो द्वे प्रथमस्य (6.1.1) तथा अजादेद्वितीयस्य (6.1.2)

ये दोनों ही अधिकार सूत्र हैं। प्रथम सूत्र का अर्थ है "प्रथम एकाच् समुदाय को द्वित्व हो जाता है।" (प्रथमस्य एकाचो द्वे भवतः)[2] (6.1.1) सूत्र की काशिका दूसरे सूत्र का आशय है- अजादि शब्द के द्वितीय एकाच् समुदाय को द्वित्व होता है। (अजादेद्वितीयस्यैकाचों द्विर्वचनमधिक्रियते)[3] (6.1.1)

सूत्र की काशिका।

छठे अध्याय के इस प्रथम सूत्र से लेकर सम्प्रसारण विधायक सूत्र (ष्यङः सम्प्रसारणम्पुत्रपत्यो स्तत्पूरूषे, 6.1.13) के पूर्व सूत्र तक इन सूत्रो का अधिकार है। इससे जिन सूत्रो द्वारा द्वित्वविहत हुआ है उनके प्रथमएकाच् अथवा द्वितीयएकाच् समुदाय को द्वित्व होता है यदि हलादि धातु हे तो प्रथम एकाच् और यदि अजादि धातु है तो द्वितीय एकाच् को द्वित्व होता है छठे अध्याय के इस द्वित्व प्रकरण में कुल चार सूत्र है। जिनके द्वारा द्वित्व विधान किया गया है। ये सभी सूत्र धातु सम्बन्धी द्वित्व विधान करते है। नीचे इन सूत्रों का संक्षिप्त विवेचन किया जा रहा है।

1. लिटि धातोरनभ्यासस्य (6.1.8)

लिट् लकार परे हो तो अनभ्यक्त धातु के प्रथम समुदाय (यदि धातु हलादि हो) अथवा द्वितीय एकाच् समुदाय (यदि धातु अजादि हो) को द्वित्व होता है।

उदाहरण - पपाच :- पच् णल्। धातु के प्रथम एकाच् पच् को द्वित्व हो पच पच णल् झ पपाच।

प्रोर्णुनाव :- प्र ऊर्णु णल् > प्र ऊ र्नृ णल्। धातु के द्वितीय एकाच् नु को द्वित्व हो- प्र ऊ र्नु नु णल् > प्रो र्णु नौ अ = प्रोर्णुनाव।

सन्यङो (6.1.9)

सन् प्रत्ययात्त तथा यङ प्रत्ययात्त धातु के अनभ्यस्त अवयव (प्रथम एकाच् अथवा द्वितीय एकाच्) को द्वित्व होता है।

उदाहरण - पापच्यते :- पच् यङ्। यङ् परे रहते हलादि धातु के प्रथम एकाच् को द्वित्व हो- पच् पच् यङ् > पापच्य। पापच्य त > पापच्यते।

प्रोर्णोनूयते :- प्र ऊर्णु यङ् > प्र ऊर्नु यङ्। अजादि धातु के द्वितीय एकाच् को यङ् परे रहने पर द्वित्व हो- प्र ऊ र्नु नू य > प्रोर्णुनुय > प्रोर्णोनूय। प्रोर्णोनूय त > प्रोर्णोनूयते।

उन्दिदिषति :- उन्दी (क्लेदने) सन्। सन् परे रहते अजादि धातु के द्वितीय एकाच् को द्वित्व होने पर- उन दी दी डट् सन > उन्दिदिष्। उन्दिदिष तिप् > उन्दिदिषति।

श्लौ (6.1.10)

श्लु के परे भी द्वित्व हो जाता है।

उदाहरण - जुहोति :- हु शप् तिप्। शप् को श्लु हो- हु तिप्। हु स परे श्लु हुआ है अतः हु के प्रथम

एकाच् को द्वित्व हो- हु हु तिप > जु हाति = जुहोति।

चङि (6.1.11)

चङ् परे रहते धातु के अनभ्यस्त अवयव (प्रथम या द्वितीय) एकाच् को द्वित्व होता है।

उदाहरण - अपीपचत् :- पच् लुङ् > अ पच् च्लि तिप् > अ पच् चङ् त। चङ् परे रहने पर धातु के प्रथम एकाच् को द्वित्व हो- अ पच् पच् अ त > अपिपचत् > अपीपचत्।

'एकाचो द्वे प्रथमस्य' सूत्र के द्वित्व विधान को 'स्थानेद्विवचन' माने था 'द्विः प्रयोगा'- इस विषय पर भाष्यकार ने विस्तारपूर्वक विचार किया एवं इस निष्कर्ष पर पहुचे कि छठे अध्याय के इस अभ्यास द्वित्व को 'द्विः' प्रयोगोर्द्विवचनम्' माना जाए। इस प्रकार इस प्रकरण का द्वित्व आदेश न होकर द्वि-उच्चारण है अतः आदेशो पर विचार करते समय इन सूत्रों का ग्रहण नहीं होना चाहिए था। तथापि प्रबन्ध में इन सूत्रों के समावेश का कारण है इनमे अत्यल्प संख्या में होना। आठवें अध्याय के द्वित्व को आदेश मानने से उनका प्रबन्ध में समावेश हुआ है। उनके एवं इन सूत्रों के द्वारा समान कार्य (द्वित्व) होने से इन सूत्रो का भी विवेचन कर दिया गया। अव द्वित्वादेशों का विवेचन किया जाता है।

1. नित्य्वीप्सयोः (8.1.4)

नित्यता तथा वीप्सा अर्थ में वर्तमान शब्दों का द्वित्व हो जाता है।

उदाहरण - पचति पचति, स्मारस्मारं, स्मृत्वा स्मृत्वा, लुनीहि लुनीहि इत्येवायं लुनाति।

ग्रामों ग्रामो रमणीयः, पुरूषः पुरूषो निधनमुपैति।

पचति-पचति :- पच् लट् > पच् शप् तिप् पचति। नित्यता अर्थ (निरन्तरता अर्थ में)- पचति को द्वित्व हो- पचति पचति।

स्मारं, स्मारं :- स्मृ णगुल् > स्म् आर् अम् = स्मारं। बारबारता द्योत्य होने से सूत्र द्वारा द्वित्व हो- स्मारं स्मारं।

पुरूषः पुरूषो :- पुरूषु सु = पुरूषः। वीप्सा अर्थ में द्वित्व हो- पुरुषः पुरुषः > पुरूषः परूषो निधन-मुपैति।

प्रकृति सूत्र द्वारा 'नित्यता' एवं 'वीप्सा' इन दो अर्थों में सम्पूर्ण शब्द का द्वित्व विहित किया गया भाष्यकार, काशिकाकार तथा टीकाकारों के अनुसार आठवे अध्याय के प्रथम पाद के 'सर्वस्य द्वे' सूत्र द्वारा विहित द्वित्व 'स्थाने द्विर्वचन' है। इस प्रकार यह द्वित्व - विधि द्वित्वादेश है। आलोच्य सूत्र इस द्वित्व

सम्बन्धी आदेश विधान का प्रथम सूत्र है। सूत्र के 'नित्य' पद का अर्थ है- निरन्तरता, पौनः पुन्य-न्यासकार के अनुसार-आभीक्ष्ण्यं हि पुनः पुनः प्रवृत्ति।

नित्य शब्द का मुख्य अर्थ है- शाश्वत्, कूटस्थ और गौण अर्थ है 'आभीक्षण्यं'। गौणमुख्ययोमुख्य सम्प्रत्ययः' नियम से मुख्य अर्थ को लेकर ही कार्य सम्पादन होना चाहिए। किन्तु पदमंजरीकार के अनुसार- गौणोऽपि चार्थो लक्ष्यदर्शनवशादिहाश्रीयतो व्याकरण का लक्ष्यानुयायित्व प्रसिद्ध है ही। अतः अभीष्ट सिद्धि के लिए यहाँ गौण अर्थ का ही आश्रयण किया गया है। यह आभीक्ष्ण्य या निरंतरता अथवा पौनः पुन्य तिङन्त एवं अव्यय-कृदन्तों में होता है। पचति पचति यह तिङसम्बन्धी नित्यता का उदाहरण है। भुक्त्वा भुक्त्वा, भोजभोजम् ये कृदन्त के उदाहरण है। क्त्वा की 'कृन्मेजन्तः' सूत्र से अव्यय संज्ञा हुई अतः ये अव्यय-कृदन्त हुए। क्त्वा, णमुल्, लोट् इनसे बने शब्द का आभीक्ष्ण रूप अर्थ के प्रकाशन के लिए द्वित्व होता है।

वीप्सा :- विशिष्टा ईप्सा काशिकाकार के अनुसार ''नानावाचिनामधिकरणानां क्रियागुणाभ्यां युगपत्प्रयोक्तुव्याप्तुमिच्छा वीप्सा। पुनः कुछ और स्पष्ट करते हुए कहते है- नानाभूतार्थवाचिनां शब्दानांयान्यधिकरणानि वाच्यानि तेषां क्रियागुणाभ्यां युगपत्प्रयाक्तुमिच्छा वीप्सा।

अर्थात् पृथक्भूत अर्थों के वाचक शब्दों के जो अधिकरणवाच्य इनके क्रिया एवं गुण की एक साथ (युगपत्) कथन की प्रयोक्ता की इच्छा वीप्सा है। जैसे ग्रामो ग्रामो रमणीयः। यहाँ दिशा, देश (स्थान) के भेद से भिन्न-2 ग्रामों का जो रमणीयत्व गुण उसका युगपत् कथन (सभी ग्रामो में समान रूप से रमणीयत्व की व्याप्ति के कथन की इच्छा) करने की इच्छा ही वीप्स है इसी प्राकर पुरूषः पुरूषः निधनमुपैति इस प्रयोग में भिन्न-2 पुरूषों में जो निधन क्रिया (निधन = विनाश) इस भिन्न-2 अधिकरणों में प्राप्त में प्राप्य क्रिया की युगपत व्यप्ति दिखायी गई है। कथन करने की प्रयोक्ता की इच्छा वीप्सा है। इस उदा0 में भिन्न-2 अधिकरणों भाष्यकार ने वीप्सा शब्द की व्युत्पत्ति बताते हुए कहा है- आप्नोतेरय विपूर्वादिच्छायामर्थे सन् विधीयते। वि आप् सन) वीप्स टा = वीप्सा। वीप्सा सुपों में होती है क्योंकि सुपों मे ही इसकी अभिव्यक्ति की सामर्थ्य है। इससे वीप्सा अर्थ में द्वित्व सुप् प्रत्ययान्त शब्द का होता है।

2. परेर्वर्जने (8.1.5)

छोड़ने के अर्थ में विद्यमान परि शब्द को द्वित्व होता है।

उदाहरण - परिपरि त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः। परिपरि सौर्व- श्मियः वृष्टौ देवः।

परिपरि :- यहाँ वर्जन अर्थ में परि को सूत्र द्वारा द्वित्व हुआ है परिपरि। 'अपपरी वर्जने' सू. से 'परि' की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुई है। और परि के योग में त्रिर्गत से 'पंचभ्यपाङ् परिभिः' सू0 से पंचमी विभक्ति हुई। परिपरि त्रिगर्तेभ्यः।

वर्जनम् :- परिहारः। परिहार = छोड़ना।

3. प्रसमुपोदः पादपूरणे (8.1.6)

प्र. सम्, उप, उत, उपसर्गों को पाद की पूर्ति करनी हो तो द्वित्व हो जाता है।

उदाहरण - प्रप्रायमग्निर्भरतस्य श्रृण्वे। संसमिद्युवसे वृषन्। उपोपस्में परामृश।

किं नोदुदुहर्षसे दातवाउ।

प्रथम उदाहरण - प्रपाय, में प्र का द्वित्व, संसमिद्य, में सम् का, उपोपरमै में उप का तथा अन्तिम उदाहरण किं नो, में उत् का द्वित्व हुआ है।

4. उपर्यध्यधसः सामीप्ये (8.1.7)

उपरि, अधि, अधस- इनको समीपता अर्थ कहना हो तो द्वित्व होता है।

उदाहरण - उपर्युपरि दुःखम :- उपर्युपरि ग्रामम् समीपता का अर्थ प्रत्यामत्ति (प्रत्यासन्न त्र सन्निकट्) है यह सामीप्य देशकृत एवं कालकृत दो प्रकार का होता है। उपर्युपरि दुःखम् यह काल सम्बन्धी सामीप्य का उदाहरण है। वाक्य का अर्थ है- जो दुख के समीप हो- थोड़े समय पूर्व हुआ हो या थोड़े समय के लिए होने वाला हो।

उपर्युपरि ग्रामम् :- यह देशकृत सामीप्य का उदाहरण है वाक्य का अर्थ है ग्राम के निकट ऊपरीक्षेत्र।

5. वाक्यादेरामन्त्रि तस्यासूया-सम्मति कोपकुत्सनभर्त्सनेषु (8.1.8)

वाक्य के आदि के आमन्त्रित को द्वित्व होता है, यदि वाक्य से असूया, कोप, कुत्सन, भर्त्सन, गम्यमान हो रहा हो तो।

उदाहरण - असूया गम्यमान हो तो- माणवक 3 माणवक अभिरूपक 3 अभिरूपक रिक्त ते अभिरूप्यम्। यहाँ असूया अर्थ में वाक्य के आरम्भ में स्थित आमन्त्रित (जिसे संबोधित किया जाए) को द्वित्व हुआ है। असूया- दूसरों के गुणों का सहन न होना।

सम्मति- पूजा (प्रशंसा)

माणवक 3 माणवक अभिरूपक 3 अभिरूपक शोभनः प्रन्वसि।

यहाँ प्रशंसा अर्थ में वाक्य के आरम्भ में स्थित आमन्त्रित को द्वित्व हुआ है।

कोप - क्रोध।

माणवक 3 माणवक अविनीतक अवनीतक इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म।

कुत्सन - निन्दा।

शक्ति के 3 शक्ति के यष्टि के 3 यष्टि के रिक्ता ते शक्तिः यहाँ शक्ति को असार- व्यर्थ बताकर निन्दा प्रकट की गई है। निन्दा अर्थ में वाक्य के आदि में स्थित आमन्त्रित को द्वित्व हुआ है।

भत्सर्न :- चौर 3 चौर वृषल 3 वृषल धातयिष्यामि त्वा, बन्धयिष्यामि त्वा।

6. आबाधे च (8.1.10)

पीड़ा अर्थ में वर्तमान शब्द को भी द्वित्व होता है तथा उस शब्द को बहुब्रीहिवत् कार्य भी होता है।

उदाहरण - गतगत :- यहाँ प्रिय के चिर् गमन से उत्पन्न पीड़ा के अर्थ में विद्यमान गतः शब्द का द्वित्व हुआ। पीड़ा इत्यादि प्रयोक्ता के धर्म है अभिधेय के नहीं। पीड़ा इत्यादि अर्थ 'गत' या 'नष्ट' शब्द का अभिधेय अर्थ नहीं अपितु प्रयोक्ता इन शब्दों के माध्यम से स्वानुभूत पीड़ा को अभिव्यक्त करता है।

7. प्रकारे गुणवचनस्य (8.1.12)

प्रकार अर्थ में वर्तमान गुणवचन शब्दों को द्वित्व होता है और उसे कर्मधारयवत् काय्र होता है।

उदाहरण - पटु पट्, मृदुमृदु, पण्डितपण्डितः।

गुणवाची शब्द पटु मृदु, पण्डित इत्यादि को प्रकार अर्थ में द्वित्व हो- पटुपटु, मृदुमृदु, पण्डित पण्डितः आदि शब्द सिद्ध होते है।

प्रकार शब्द का प्रयोग 'भेद' एवं 'सादृश्य' दोनो ही अर्थों में प्राप्त होता है। बहुभिः प्रकारै-र्भुङ्क्ते इस वाक्य में 'प्रकार' भिन्नता अर्थ का बोध होता है। इस वाक्य का अर्थ है- बहुभिभेदैः, विशेषैर्भुङक्ते।

(बहुत प्रकार से = कई तरह से, खाता है) सादृश्य अर्थ का उदाहरण है- ब्राह्मण प्रकारोऽयं माणवकः (यह बालक ब्राह्मण सदृश है।) इस सूत्र में 'सादृश्य' अर्थ का ही आश्रयण हुआ है।

गुण वचन शब्द का तात्पर्य है (गुणवाचक) शब्द के द्वारा गुणवाचन। जैसे- शुक्ल, नील, मृदु आदि गुणवाचक शब्दो से शुक्लत्व-नीलत्व मार्दवादि गुणो का वाचन होता है। ऐसे ही गुणवाचक शब्दों को द्वित्व होता है। यदि इनसे गुण वाच्य हो तो। पटुपटु- इस शब्द का अर्थ है 'पटुसदृश'। गृदुगृदु का अर्थ है 'गृदृ प्रकार का, ब्राह्मण- ब्राह्मण शब्द का अर्थ है ब्राह्मण के प्रकार का अर्थात् बाह्मण सदृश (ब्राह्मण जैसा)।

8. अकृच्छ्रे प्रियसुखयोरन्यतरस्याम् (8.1.13)

प्रिय तथा सुख शब्दों को अकृच्छ अर्थ द्योत्य हो तो विकल्प से द्वित्व होता है। इन शब्दो को कर्मधारयवत् कार्य भी प्राप्त होता है।

उदाहरण - प्रियप्रियेण, सुखसुखेन इत्यादि उदाहरणो में अकृच्छा अर्थ होने से प्रिय एवं सुख शब्दो को द्वित्व हुआ है। सूत्र द्वारा विहित द्वित्व वैकल्पिक है अतः पक्ष में द्वित्वाभाव के रूप प्रियेण ददाति सुखेन ददाति इत्यादि भी सिद्ध होंगे।

प्रियप्रियेण ददाति या प्रियेण ददाति का अर्थ है- बिना प्रयास के दे देता है (बिना प्रयासेन ददातित्यर्थः) जिस वस्तु को देने में सामान्यतः खेद होना चाहिए उसे देने में भी किसी को थोड़ा भी खेद न प्रतीत हो तो यह दान के विषय में उस व्यक्ति की आकृच्छा (अखिन्नता) है। इस अकृच्छा अर्थ में जो प्रिय एवं सुख शब्द उन्हे ही इस सूत्र द्वारा वैकल्पिक द्वित्व प्राप्त होता है।

अचो रहाभ्यां द्वे (8.4.46)

अच् से उत्तर जो रेफ और हकार उससे उत्तर यर् को द्वित्व होता है।

उदाहरण - अर्क्कः :- अर्च हञ् = अक्र घञ्। अर्च का रेफ अच् अकार से परे है अतः इससे परे जो यर् ककार है उसे सूत्र द्वारा द्वित्व प्राप्त है। द्वित्व हो- अर्क क् अ = अर्क्क। अर्क्क - सृ = अर्क्कः।

अनचि च (8.4.47)

अच् से उत्तर यर् को विकल्प से अच् परे न हो तो भी द्वित्व हो जाता है।

उदाहरण - द्द्ध्यत्र् :- दधि अत्र > दध् य् अत्र। अच्-दकारोत्तरवर्ती अकार से परे जो यर् धकार उसे अच् परे न रहते भी सूत्र द्वारा द्वित्व प्राप्त है।

द्वित्व हो --------

द ध् ध् यत्र > दद्ध्यत्र।

मद्ध्वत्र :- मधु अत्र > मध् व अत्र। अच् अकार से परे अनच्परक यर् धकार को सूत्र विहित द्वित्व हो - मध् ध् वत्र। मध् ध् वत्र > म द् ध् वत्र = मद्ध्वत्रा।

सन्दर्भ सूची

1. द्र0 सूत्रकी काशिका।
2. द्र0 (6.1.1) सूत्र की काशिका।
3. द्र0 (6.1.1) सूत्र की काशिका।

सप्तम अध्याय

"सप्तम अध्याय"

उपसंहार

शब्द महार्णव में पारंगत होने के लिये आदेश का ज्ञान होना अत्यावश्यक है। किसी भी शब्द के वास्तविक स्वरूप या अर्थ का निर्धारण करने में तभी समर्थ होंगे जब हमें आदेशों का भी ज्ञान हो; धातुओं प्रातिपदिकों एवं प्रत्ययों का ज्ञान रखने से ही शब्द की ठीक व्युत्पत्ति नहीं की जा सकती है।

उदाहरणार्थ – यदि हमें यह ज्ञात नहीं कि आर्धधातुक प्रत्यय के परे रहते अज् धातु को 'वी' आदेश होता है तो प्रवयण, प्राजन आदि शब्दों में हम 'वी' धातु प्रकृति की कल्पना करने लगेंगे। अज् धातु तुदादिगण की है (अज् गतिक्षेपणयोः, तुदादिगण धात्वकं 230) वी धातु अदादिगण की (वी गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु, अदादिगण धात्वकं 1040) है। इसी प्रकार अगात्, अगातम् इत्यादि धातु रूपों में 'इण्' धातु प्रयुक्त हुई है। यह अदादिगण की धातु है। (इष् गतौ अदादिगण धात्वकं 1045) यदि हमें यह ज्ञान नही है कि लुङ् में 'इण' को 'गा' आदेश हो जाता है तो हम इन शब्दों की व्युत्पत्ति ✓ गा स्तुतौ, जुहोत्यादिगण (धात्वकं 1106) अथवा ✓ गाङ् गतौः, भ्वादिगण (धात्वकं 950) धातुओं से करने लगेगें। आधि जगे अधिजगाते इत्यादि शब्दों की प्रकृति ✓ इङ् अध्ययने अदादिगण (धात्वकं 1046) है, गाङ्, गतौ अदादिगण (धात्वकं 950) अथवा ✓ गा जुहोत्यादिगण (धात्वकं 1106) नहीं ऐसा निर्णय हम तभी कर सकेंगे जब हमें यह ज्ञात हो कि शब्द में दृश्यमान 'गा' धातु प्रकृति नहीं अपितु गाङ् आदेश है जो ✓ इङ् धातु को लुङ् में होता है।

अगात्, अगाताम् आदि को गा ✓ स्तुतौ तथा अधिजगे, अधिजगाते को ✓ गाङ् गतौ या ✓ गा स्तुतौ से व्युत्पन्न मानने पर इनके वास्तविक अर्थ को जो अनर्थ होगा वह स्पष्ट है। उपर्युक्त उदाहरणों में शब्द की प्रकृति के सदृश धातुओं का प्राप्त होना इनकी उचित व्युत्पत्ति करने में भ्रम उत्पन्न करता है। जिसका आदश का ज्ञान होने से निवारण हो जाता है, किन्तु 'क्रोष्टु' शब्द में इससे भिन्न प्रकार का भ्रम उठता है। मूल प्रातिपदिक है 'क्रोष्टु', किन्तु शब्द रूप बनते हैं क्रोष्टु शब्द से। यदि आदेश का ज्ञान नहीं तो इन्हें भिन्न शब्द समझने की भूल हो सकती है। यदि हमें यह ज्ञात है कि क्रोष्टु को तृच् अन्तादेश होता है तो हम इस सन्देह में नहीं पड़ते और यह विवेक करने में सफल होते हैं कि क्रोष्टु शब्द वस्तुतः क्रोष्टु शब्द ही है कोई भिन्न शब्द नहीं। अतएव भाषा में प्रयुक्त होने वाले शब्दों के यथार्थ स्वरूप एवं अर्थ के ज्ञान के लिये आदेशों का ज्ञान होना आवश्यक है। पाणिनी की शब्दों की व्युत्पत्ति प्रदर्शन प्रणाली

में आदेशों का बड़ा महत्व है।

पाणिनीय शास्त्र में यह इतना आवश्यक है कि बिना इसके शब्द-सिद्धि की प्रक्रिया पूरी नहीं हो सकती। कुछ शब्छ ऐसे भी हैं जिनकी सिद्धि में आदेश अनिवार्यतः अपेक्षित है। उदाहरणार्थ - अज् से निष्पन्न प्रवयण एवं चक्षिङ् से निष्पन्न ख्यातृ इत्यादि। पणिनीय धातु पाठ में 'वी' एवं 'ख्या' धातुयें भी परिगणित हुई हैं। किन्तु इन धातुओं में प्रवयण, ख्यातृ इत्यादि शब्द नहीं बन सकते। इसका कारण है इन धातुओं का अर्धधातुकों में प्रयोग नहीं होता - (वीगतीति। 'अर्धत्र्यधञपोः' इति सूत्रभाष्यरीत्या अस्य अर्धधातुकको नास्ति प्रयोगः इति शब्देन्दुशेखरे स्थितम्। मनोरमा सिद्धान्त कौमुदी, अदादि प्रकरण। ख्या प्रकथने 'अयं सार्वधातुकगात विषयः। सिद्धान्त कौमुदी अदादि प्रकरण।

ल्युट्, तृच् इत्यादि आर्धधातुक प्रत्यय है अतएव इनके योग में बने हुये शब्दों की प्रकृति 'वी' 'ख्या' धातुयें नहीं हो सकती। अब जबकि मूल धातुओं से ये प्रयोग सिद्ध नहीं हो पाते तो मूलधातु की समानार्थक अन्य धातु यथा अस् एवं चक्षिङ् को क्रमशः 'वी' एवं 'ख्या' आदेश विधान आवश्यक हो जाता है जिससे ल्युट् के योग में अज् धातु होने पर वी आदेश करने के पश्चात् प्रवयण तथा तृच् परे रहते चक्षिङ् को ख्या आदेश करने पर ख्यातृ शब्द बन सके। वी तथा ख्या आदि धातुओं के आर्धधातुक में प्रयोग न होने का ज्ञपक है। चक्षिङ् - ख्याञ् (2.4.54.) सूत्र का वार्तिक - 'संस्थानत्वं नमः ख्याञे' एवं इसका व्याख्यान रूप भाष्य। इस सूत्र में चक्षिङ् को ख्याञ् आदेश विधान हुआ है। वार्तिकाकार एवं भाष्यकार 'ख्या' के स्थान पर 'ख्या' आदेश विधान के पक्षधर हैं। इस आदेश के शकार के लिये 'पूर्वत्राद्धिमू' अधिकार में वैकल्पिक यकारादेश का कथन हैं। 'ख्या' एवं वैकल्पिक यत्व के विधान के कई प्रयोजन बताये गये जिनमें एक है - 'नमः ख्याञे' यहाँ जिह्वामूलीय आदेश का निवारण। ख्या पक्ष में श को यत्व होने पर, यत्व के असिद्ध होने से शर्परक खर् परे रहते विसजनीय को ''शपर'' विसजर्नीयः'' सूत्र से विसर्ग हो जायेगा। यही अभीष्ट है। ख्यातृ यहाँ 'स्था' से रूप सिद्ध करने पर शर्परक खर् परे न होने से 'कुप्वो' क पौ च' से विसर्ग के परे क वर्ग खकार होने से विसर्ग को जिह्वामूलीय प्राप्त होगा तथा पक्ष में विसर्जनीय भी प्राप्त होगा।

वार्तिकाकार एवं भाष्यकार ने ख्यातृ शब्द की व्युत्पत्ति चक्षिङ् धातु से दिखलाया तथा चक्षिङ् को 'ख्या' आदेश तथा शकार को यत्व विधान का अनुशासन किया इससे स्पष्ट होता है कि चक्षिङ् तत्सम्बन्धी ख्या आदेश से ही आर्धधातुक प्रत्ययों के रूप बनते है मूल ख्या धातु से नहीं। ऐसा ही नागेश

का भी मत है 'वस्तुतः' स्वतन्त्रख्याधातोरार्धधातुके प्रयोगाभाव एवेष्टव्यः - उद्योत्।

महाभाष्य। सूत्र-चक्षिङः ख्याम् 2.4.54.। यहाँ 'वी' 'ख्या' आदि धातुओं के आर्धधातुक में प्रयोग न होने से आर्धधातुक प्रत्ययों के योग में अज् एवं चक्षिङ् को 'वी' 'ख्या' आदेश करना अनिवार्य हो गया था किन्तु जहाँ ऐसी विशेष स्थिति न हो वहाँ भी अर्थात् सामान्य प्रयोगों में भी आदेशों का विधान आवश्यक है। वस्तुतः कम शब्द ही ऐसे है जिनकी सिद्धि में कुछ आदेश न हुआ हो और जिन प्रयोगों में आदेश किया जाता है उनकी बिना आदेश किये ही व्युत्पत्ति प्रदर्शित करने का प्रयास करें तो यह संभव नहीं होगा। बिना आदेश किये शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से संभव है प्रथम बड़ी संख्या में धातुओं, प्रातिपादिकों, प्रत्ययों की प्रकल्पना की जाये तथा उनके विधान-निषेध से सम्बन्धित सूत्र बनाये जाये। उदाहरणार्थ - 'गमयति' एवं 'गच्छति' के लिये गम् तथा गच्छ् दो धातु प्रकृतियाँ प्रकल्पिक हों तथा किन विषयों में गम् हो किन में गच्छ् हो गम् नहीं इस विषय के सूत्र लाये जायें। इस प्रकार की शब्द व्युत्पत्ति प्रणाली में पहला दोष यह है कि संहिता जैसे विषय इस प्रणाली द्वारा सिद्ध नहीं हो सकेंगे। क्योंकि संहिता वर्णाश्रित कार्य है प्रकृति प्रत्ययाश्रित कार्य नहीं। इस प्रणाली का दूसरा दोष यह है कि इतनी अधिक संख्या में प्रातिपादिकों, धातुओं, प्रत्ययों तथा इनके विधान निषेधपरक शास्त्र प्रकल्पिक करने होंगे जिसका अनुमान करना कठिन है। जहाँ एक ही भू धातु से भवति, भवनः लट्लकार के रूप, बभूत आदि लिट् लकार के रूप, भूयात् आदि लिङ् लकार के रूप बन जाते हैं वहाँ अब इनके प्रकृत्यंश के लिये भू, भव, बभू आदि स्वरूप के धात्वङ्ग प्रकल्पिक करने पड़ेगे। इस प्रकार बड़ा ही प्रयास गौरव उत्पन्न होगा जबकि व्याकरण का मुख्य उद्देश्य है लघु उपाय से अधिकाधिक शब्दों का ज्ञान कराना।

इस प्रणाली का आश्रयण करने में व्याकरण के मुख्य उद्देश्य या प्रयोजन की हानि होगी अतएव यह त्याज्य है। दूसरी व्युत्पत्ति निष्पादन प्रणाली यह हो सकती है कि 'स्थानी' को हटाने के लिये लोप विधान किया जाये एवं आदेश को लाने के लिये वर्ण या शब्द का आगम विहित किया जाये। इस प्रणाली का गुण यह है कि संधि सम्बन्धी विचार को भी इस प्रकार से सिद्ध किया जा सकता है और सबसे बड़ा दोष है कि आगम आगमी का अभाव होता है। अवयव के लिये अवयवी का होना आवश्यक है। यहाँ आगमी का अभाव रूप स्थानी (क्योंकि लोप में स्थानी का अदर्शन हो जायेगा) और अभावरूप स्थानी को अवयव का विधान तथा उस अवयव को अवयवी के साथ ग्रहण होना कैसे सम्भव होगा।

एकाल या शब्द के अंश विशेष से सम्बन्धित आदेशों के विषय में यह संभव है कि शब्द

के अनपेक्षित अंश को हटाकर आवश्यक अंश का आगम कर लें पर जहाँ सम्पूर्ण प्रकृति या प्रत्यय के स्थान पर आदेश होते हैं उन स्थानों पर प्रकृति या प्रत्यय का लोप होने पर ऐसा बचेगा क्या जिसका अवयव रूप आगम किया जा सके। इस कथन का तात्पर्य यह है कि लोप के समान अदर्शन होना तथा आगम के समान नवीन वर्ण या शब्द का श्रवण होना आदेश विधि में भी देखा जाता है किन्तु आदेश को लोप एवं आगम का एकत्र संयोजन मात्र नहीं जा सकता। आगम-लोप एवं आदेश इनमें मौलिक अन्तर है। इसके कारण ऐसा संभव नही है कि आदेश द्वारा सिद्ध होने वाला कार्य लोप एवं आगम के द्वारा सिद्ध किया जा सके। कुछ ऐसी मौलिक भिन्नताओं की चर्चा की जाती है जिनसे आदेश का लोपागम रूप संयुक्त कार्य द्वारा सिद्ध न होना स्पष्ट होता है -

1. आगम आगमी का अवयव होता है - यदागमास्तद्गुणीभूत तदग्रहणेन ग्रहृणन्ति। सभी आदेशों के विषय में यह संभव नहीं कि वह किसी का अवयव हो। विशेषकर सर्वादेश विषय में यह अवयव अवयवीभव सम्बन्ध संभव नही होगा। अन्तादेश विषय में हो सकता है।
2. आदेश करने के बाद आदेश को स्थानिवद्भाव का अतिदेश प्राप्त हो जाता है जिससे आदेश होने के बाद भी अन्य अपेक्षित कार्य हो सकें। लोप करने के बाद आगम द्वारा अभीष्ट शब्द प्राप्त कर भी लें तो यह स्थानिवद् भावातिदेश कैसे हो सकेगा। इस दशा में जस् का लोप कर शी को किसी प्रकार लाकर 'फलानि' शब्द सिद्ध हो सकेगा। लेकिन शी का सुप्त्व कैसे सिद्ध होगा, बिना सुप्त्व सिद्ध किये इसकी पदसंज्ञा कैसे हो सकेगी। इस प्रकार बड़ी अव्यवस्था उत्पन्न हो जायेगी। इन दो प्रमुख अन्तरों के अतिरिक्त कुछ अन्य अन्तर भी हैं जो ऐसी प्रणाली के द्वारा अभीष्ट सिद्ध न हो सकने के सूचक है। जैसे - आगम आगमी का अवयव हो जाता है जबकि आदेश स्थानी से भिन्न शब्द-शब्दान्तर है। आगम का विधान किसी शब्द के अवयव रूप में ही किया जाता है। आदेश का स्थानी शब्द का अंश यां सम्पूर्ण शब्द भी होता है। आगम आगमी के आदि के अन्त में या अन्त्य अच् से पर आकर जुड़ जाता है आदेश का स्थान शब्द का अन्तिम वर्ण या सम्पूर्ण शब्द है। आदेश में सम्पूर्ण प्रकृति का हटना कड़े प्रयोगों में देखा गया है। किन्तु एकाधिक अपवादों (जैसे - इयान् शब्द) को छोड़कर सम्पूर्ण प्रकृति अंश का लोप विधान नहीं हुआ है।

वस्तुतः आदेश विधि लोप विधि एवं आगम विधि की अपेक्षा अधिक व्यापक है। आदेश को लोप एवं आगम की संयुक्त कार्ययोजना में अंतर्भूत नहीं किया जा सकता है किन्तु आगम एवं लोप को

आदेश में अंतर्भूत कराने का प्रयास भाष्यकार द्वारा किया गया है। लोप-आगम आदेशादि के द्वारा जब शब्द के अनित्यत्व का प्रश्न उठा तो भाष्यकार ने स्थानीय आदेश को बुद्धि का विपरिणाम मात्र कहकर आदेश द्वारा शब्द में अनित्यत्व की आपत्ति का परिहार कर दिया किन्तु लोप आगम आदि के द्वारा शब्द के एक देश में होने वाले परिवर्तन के कारण अनित्यत्व दोष का परिहार अभी भी नहीं हो सका तो इन विधियों को आदेश कहकर इस दोष का परिहार किया। सर्वे सर्वपदादेशाः दाक्षीपुत्रस्य पणिनेः। एकादेशविकारे हि नित्यत्वं नोपपद्यते। महाभाष्य, प्रथम अध्याय, पंचमाहिनकम् सूत्र – 'दाधाध्वदाप्'। सर्वे सर्वपदादेशाः, अनागमकानां सागगकाः आदेशाः तथा 'लुक्श्लुलुपः सवदिशाः भवन्ति' इत्यादि भाष्यवचन भाष्यकार के लोप, आगम आदि को आदेश में अन्तर्भूत करने के प्रयास को स्पष्ट करते हैं। इस प्रकार लोप द्वारा स्थानी का आदर्शन एवं आगम द्वारा आदेश का आविर्भाव कर आदेश किये बिना भी शब्द की व्युत्पत्ति करना सम्भव है ऐसा कहना उचित नहीं होगा। इस प्रकार की प्रकल्पना में स्थानिपद्भावातिदेशादि न होने से कई अनियम एवं जटिलायें भी उत्पन्न होंगी। वस्तुतः ऊपर जो भेद दिखाये गये हैं उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि ऐसी परिकल्पना ही अनुचित है। लोप आगम आदेश परस्पर भिन्न विधि हैं। एवं अतएव आदेश विधि को स्वीकार करना ही श्रेयस्कर है। आदेशविधि को स्वीकार करना आवश्यक है क्योंकि इसके बिना शब्दों की व्युत्पत्ति सम्यक् रूप से प्रदर्शित नहीं की जा सकती। आदेश सूत्रों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कुछ ऐसे प्रयोजन भी हैं जिन्हें आदेश विधान की व्यवस्था से ही सिद्ध किया जा सका है। इनकी संक्षिप्त चर्चा इस स्थल में अपेक्षित है -

आदेश विधान के द्वारा धातुओं, प्रांतिपादिकों, प्रत्ययों की सूची को संक्षिप्त बनाया जा सका है। इससे 'द्रष्टा' एवं पश्यति के लिये दो धातुओं, अहम्, मम, मह्यम् इत्यादि के लिये तीन सर्वनाम शब्दों तथा रामाः, मुनयः प्रयोगों के लिये प्रथमा बहुवचन सम्बन्धी दो विभक्ति प्रत्ययों की कल्पना नहीं करनी पड़ती। एक ही मूल धातु दृश्, तथा उसको 'पश्य' आदेश प्रकल्पिक कर उसको दृष्टा एवं पश्यति शब्द, एक ही प्रातिपदिक अस्मद् एवं उसके स्थान में अहम्, मम, मह्य इत्यादि आदेश प्रकल्पिक कर अहं, मम, मध्यम् आदि रूप तथा एक ही प्रत्यय जस् तथा उसे भी 'आदेश' प्रकल्पिक कर रामाः मुनयः आदि शब्द सिद्ध किये गये। आदेश व्यवस्था के बड़ा शास्त्र लाघव सम्भव हो सका है अन्यथा जिन धातुओं के जिन प्रत्ययों में रूप नहीं बनते उनके निषेध सम्बन्धी तथा जिन धातुओं के जिन प्रत्ययों में ही रूप बनते हैं उनके विधान से सम्बन्धित एकाधिक सूत्र बनाने पड़ते। उदाहरण के लिये आर्धधातुक विषय में ब्रू को वच्

आदेश हो जाता है। यदि आदेश विहित करने की व्यवस्था न होती तो सार्वधातुक विषय में वच् का निषेध तथा आर्धधातुक विषय में ब्रू का निषेध करना पड़ता जबकि आदेश विधान द्वारा इन दोनों निषेधों की आवश्यकता नहीं रह गई और सार्वधातुक विषय में ब्रू का ही प्रयोग हो वच् का नहीं तथा आर्धधातुक विषय में वच् का ही प्रयोग हो ब्रू का नहीं ऐसा प्रतिपादन एक ही सूत्र द्वारा हो गया।

विभिन्न प्रयोगों में कभी-कभी प्रकृत्यादि समान दिखती है किन्तु इनके अर्थ में भेद होता है और कभी-कभी प्रकृत्यादि भिन्न दिखती है किन्तु इनके अर्थ में साम्य होता है। उदाहरण के लिये-जिगाति, अधिजगाते इत्यादि प्रयोगों के प्रकृत्यंश में 'गा' धातु दिखती है किन्तु इन सभी का अर्थ भिन्न है। जिगाति में गा का अर्थ स्तुति है, अधिजगाते में गा का 'अध्ययन' अर्थ है (इङ् अध्ययने) और अगात्, अगाताम् आदि शब्दों की गा प्रकृति का अर्थ 'गति' है (इण् गतौ)। इसी प्रकार पश्यति एवं अद्राक्षीत् शब्दों की प्रकृति भिन्न प्रतीत होती है। किन्तु इनका अर्थ समान है, अत्ति, आदत, अधसत् में प्रकृति अंश के भिन्न-भिन्न दिखने के बाद भी इनके प्रकृत्यंश के अर्थ में साम्य है। इन एक जैसी दिखने वाली भिन्नार्थक तथा भिन्न दिखने वाली समानार्थक प्रकृतियों में आदेश द्वारा ऐसी व्यवस्था हो सकी है कि इनके स्वरूप एवं अर्थ को इसी प्रकार जाना जा सके। प्रकृतिगत साम्य दिखने पर भी 'जिगाति' की गा (स्तुतौ) धातु से भिन्न प्रकृति के लिये इसी अर्थ की इङ् धातु का चयन कर उसे गाङ् आदेश तथा अगात् इत्यादि की गत्यर्थक गा प्रकृत्ति के लिये इसी अर्थ में इण् गतौ धातु को गा आदेश विहित कर आदेशों के द्वारा ही इनके बीच स्वरूपगत साम्य एवं अर्थगत् वैषम्य्य को निरूपित किया जा सका है। इसी प्रकार 'अद्राक्षीत् 'पश्यति' इत्यादि में मूल दृश् धातु की कल्पना कर उसे पश्य आदेश विहित कर इनके प्रकृत्यंश के स्वरूपगत भेद एवं अर्थगत साम्य को निरूपित किया जा सका है। ऐसे शब्दों में अर्थ का निर्धारण भी आदेश ज्ञान की अपेक्षा रखता है।

कुछ धातुओं के सभी प्रत्ययों में रूप नहीं बनते। आर्धधातुक विषय में या आर्धधातुक परे रहते जो आदेश विहित किये गये हैं वे इस बात की ओर संकेत करते हैं कि धातु का आर्धधातुक विषय में प्रयोग नहीं होता कभी-कभी ऐसा धातुओं के स्थान पर हुये आदेश धातु रूप में भी प्राप्त होते है किन्तु आदेश का वही अर्थ होता है जो स्थानी का हो अतएव इन आदेशों में स्थानी सम्बन्धी अर्थ ही घटित होता है उनके सादृश धातु का अर्थ नहीं। इसीलिये इण् के स्थान पर हुआ गा आदेश भी गत्मर्थक हो जाता है स्तुत्यमर्थक नहीं। ऐसी धातुओं जिनके सदृश आदेश विहित हुये है की एक अन्य विशेषता है

इनमें से कुछ का सार्वत्रिक न होना। 'वी' धातु के विषय में बालमनोरमाकार वासुदेव दीक्षित का कथन है – 'अजेर्व्यधञपोः' इति सूत्रभाष्यरीत्या अस्य आर्धधातुके नास्ति प्रयोगः इति शब्देन्दुशेखरे स्थितम्। इसी प्रकार ख्या धातु के विषय में तत्वबोधिनीकार ज्ञानेन्द्र सरस्वती का कहना है – 'अयं सार्वधातुकमात्र विषयः।' तथा घस्लृ धातु के विषय में इसका कथन है – अय न सार्वत्रिकः।

'लिट्यन्यतरस्याम्' इत्यादेर्घस्लादेशविधानात्। 'वी' एवं ख्या धातुओं के विषय में स्पष्ट किया जा चुका है कि इनका आर्धधातुक विषय में प्रयोग नहीं होता, अतः प्रवयण प्रवेता तथा ख्यातृ इत्यादि शब्द की सिद्धि के लिये वी एवं ख्या आदेशों का होना आवश्यक है। इसी स्वरूप वाली 'वी' (अयादि 1048) तथा ख्या (प्रकथने अदादि 1060) धातु से ये धातुरूप नहीं बन सकते।

कभी-कभी किसी विशेष अर्थ में अथवा विषय में ही आदेश विहित किये जाते है। ऐसे स्थान में आदेश से उस विशेष अर्थ या विषय का अनुगमन भी हो जाता है। सू. 'निनदीभ्यां स्नातेः कौशले' द्वारा नि एवं नदी शब्दों से परे स्ना के सकार को मूर्धन्य षकारादेश विहिप किया जाता है यदि कुशलता अर्थ गम्यमान हो तो। इस प्रकार 'निष्णातः' का अर्थ 'कुशल' होगा तथा जहाँ षकारादेश नही हुआ है वहाँ इस विशेष अर्थ की प्रतीति नहीं होगी अतः 'निस्नातः' का उपर्युक्त अर्थ नहीं होगा। इसी प्रकार 'वेश्च स्वनो भोजने' सूत्र द्वारा विपूर्वक स्वन के सकार को मूर्धन्यादेश होगा। यदि भोजन अर्थ हो तो। अतएव 'विष्वणति' शब्द का अर्थ होगा 'सशब्द भुङ्क्ते'। जहाँ यह आदेश नही हुआ है वहाँ यह अर्थ भी नहीं होगा अतः विस्वनति का अर्थ होगा 'बजाता है' (विस्वनति मृदगम्) इन प्रयोगों में षत्वादेश के आधार पर यह अनुगमन हो रहा है कि कुशलता एवं भोजन क्रिया जैसे विशेष अर्थ यहाँ अभिधेय हैं। इसी प्रकार संज्ञा विषय में नर शब्द परे रहते विश्व के वकारोत्तरवर्ती अकार को दीर्घादेश विहित है (सू. 'नरे संज्ञायाम्) तथा ऋषि वाच्य हो तो मित्र से पूर्व विश्व के वकारोत्तरवर्ती अकार को दीर्घ विहिप है। (सू. 'मित्रे चर्षौ')। अतः कहीं विश्वानर या विश्वामित्र शब्द प्रयोग हुआ है तो तत्क्षण, यह अनुमान हो जाता है कि उस प्रसंग विशेष में विश्वानरसंज्ञक किसी व्यक्ति या विश्वामित्र नामक ऋषि के विषय में ही कुछ कहा जा रहा है।

पाणिनीय संप्रदाय नित्य शब्दावादी है। इस संप्रदाय में शब्द अर्थ एवं इनके संबंध को नित्य माना गया है। पाणिनीय मत में व्याकरण शब्दों का निर्माण नहीं करता अपितु(1) लोक-प्रचलित सिद्ध शब्दों का अन्वाख्यान करता है नित्य शब्द में प्रकृति प्रत्यायादि विभाग तथा शब्द में प्रकृत्यर्थ प्रत्ययार्थ इत्यादि

की अवधारणा काल्पनिक है क्योंकि लोक में प्रकृति, प्रत्यय इत्यादि की व्यवस्था के अनुसार शब्दबोध नहीं होता। शास्त्र-प्रक्रिया का निर्वाह हो सके इसलिये शब्द में प्रकृति प्रत्यय आदि विभाग तथा प्रकृत्यर्थ प्रत्ययार्थ आदि को प्रकल्पना की गई। इसी प्रकार आदेशादि की प्रकल्पना भी काल्पनिक है, शास्त्र मात्र का विषय है यथार्थ में तो गच्छति, भवति आदि शब्द ही तत्तत् अर्थ के वाचक हैं। विशेष प्रयोजन से इनमें गम् प्रकृति, शप् विकरण टिप् प्रत्यय म् को छ आदेश तथा भू प्रकृति, शप् विकरण तिप् प्रत्यय भू के उकार को औकार, ओकार को अवादेश आदि की प्रकल्पना की गई। वस्तुतः यह व्याकरण शास्त्र की विशेष प्रणाली है जिसमें शब्द का विभाग कर उसका अन्वाख्यान किया जाता है।

इस अन्वाख्यान पद्धति में संप्रदाय भेद से उपायभेद भी हो जाता है - उपेयप्रतिपत्यर्था उपाया अव्यवस्थितः। - परमलघमंजूषा, शक्तिनिरूपणम्। इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार है -

पाणिनी के व्याकरण में जहाँ 'अस्' धातु का पाठ है, आपिशल व्याकरण में वहाँ केवल 'स' का पाठ था। (द्र. 1. 3. 22. सूत्र की न्यास टीका)।

प्राक - पाणिनीय वैयाकरणों की तिङन्त प्रक्रिया पाणिनीयानुरूप नहीं थी ते पाणिनी की भाँति ल् तिङ् की कल्पना न कर लकारादेश के बिना ही तिङन्त प्रयोग सिद्ध कर लेते थे। (द्र. निरुक्त 1.13 की दुर्गाचार्ययुकृत व्याख्या) पाणिनी 'व्यावुत्' पद की सिद्धि के लिये वतुप् प्रत्यय के साथ प्रातिपदिक में आकार का आदेश करते हैं। कैयद के अनुसार प्राक् - पाणिनीय आचार्य यहाँ आकारादेश युक्त डावतु प्रत्यय का विधान करते थे - पूर्वाचार्यास्तु डावतु विदधिरे (प्रदीप 5.2.39.)

पाणिनी अन्तिक शब्द को नेद आदेश करके नेदिष्ठ पद की सिद्धि करते हैं जबकि कुछ आचार्य नेद् धातु से नेदिष्ठ शब्द सिद्ध करते हैं। (काल्पनिके हि प्रकृति - प्रत्ययविभागे द्राधिमादयः कस्मिंश्चिद् व्याकरणे धातोरेव साधिताः। एवं नेदिष्ठादयोऽपि नेदित्यादेः। - क्षीरतरङ्गिणी 1.80.)

उपायों की अनिययता प्रदर्शित करने वाले उपर्युक्त उदाहरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आदेश के बिना भी शब्दों का अन्वाख्यान संभव है। जहाँ तक प्रकृत्यादि से संबंधित आदेशों का विषय है ऐसा संभव हो भी जाये फिर भी सन्धिगत विकार को दिखाने के लिये आदेश विधान करना ही पड़ेगा। उदाहरण के लिये मधु एवं अरि इन दोनों शब्दों की व्युत्पत्ति चाहे जिस प्रकार से प्रकृत्यादि की कल्पना कर की जाये इनकी संधि की व्याख्या करने के लिये उकार के स्थान पर वकारादेश विहित करना ही होगा। इसी प्रकार देव शब्द एवं आलय शब्द दोनों ही शिष्टजन प्रयुक्त साधु शब्द हैं साथ ही

देवालय शब्द भी शिष्टजनप्रयुक्त साधु शब्द हैं देव एवं आलय शब्दों की संधि होकर ही देवालय शब्द बना है इस शब्द की व्याख्या के लिये देव के अन्त्य अकार तथा आलय के आदि आकार के स्थान पर सवर्णदीर्घ एकादेश करना होगा। कुछ संधिगत विकार व्याकरण की अन्वाख्यान प्रणाली से प्रभावित नहीं है विशेषकर ऐसे विकार जो दो सिद्ध पदों की संधि से होते हैं। प्रकृति, प्रत्यय, प्रकृति अथवा प्रत्यय के अंश को विहित आदेशों की अन्यथा सिद्धि हो भी जाये तो भी ऐसे संधिगत विकार की सिद्धि आदेश व्यवस्था के बिना नहीं हो सकती। इसीलिये पाणिनीय परम्परा में ही नही पाणिनीय पूर्ववर्ती एवं परवर्ती व्याकरण सम्प्रदायों में भी इस व्यवस्था को स्वीकार करना पड़ा।

इस प्रकार अनिवार्य निष्कर्ष यही निकलता है कि अनन्त अनन्त शब्दों के स्वरूप निर्माण में आदेशों का महत्व सर्वोपरि है और इसी लिये इन आदेशों के स्वरूप, विधान इत्यादि का सूक्ष्म अध्ययन भी सर्वथा अपेक्षित एवं अनिवार्य हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अष्टाध्यायी भाष्य - प्रथमावृत्तिः भाग 1-4। हिन्दी व्याख्याकार पं0 ब्रह्मदत्त जिज्ञासु एवं प्रज्ञाकुमारी। रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रकाशन, 1964
2. काशिकावृत्तिः (न्यासापरपर्यायकाशिकाविवरणपञ्चिकया पदमन्जरीव्याख्या च सहिता) - श्री वामन ज्यादित्यविरचित, सं. - श्री द्वारिकादास शास्त्री एवं आचार्य कालिका प्रसाद शुक्ल। सुधी प्रकाशनम् वाराणसी, 1983। भाग I से IV।
3. काशिकावृत्तिः (न्यास पदमन्जरीसहिता)। सं. - डा. श्रीनारायण मिश्र रत्ना पब्लिकेशन, वाराणसी, 1985। भाग I से IV।
4. 'व्याकरणमहाभाष्यम्' (कैयटकृत भाष्यप्रदीप एवं नागेशकृत भाष्यप्रदीपोद्योत टीका युक्त) सं. - पं. दधिराम शर्मा, संशोधक - श्री भार्गव शास्त्री जोशी प्रकाशन - चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान (प्राच्य भारती के प्रकाशक एवं वितरक वाराणसी)। पुनर्मुदित संस्करण 1991। भाग I से IV।
5. 'महाभाष्यम्' (पतन्जलि मुनि - विरचितम्) हिन्दी व्याख्या सहितम् व्याख्याकार - युधिष्ठिरो मीमांसकः। प्रकाशक - श्री प्यारेलाल द्राक्षादेवी न्यास (ट्रस्ट) दिल्ली। मुद्रक - शांति स्वरूप कपूर, रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रेस, बहालगढ़ (सोनीपत - हरयाणा)
6. भगवत्पतन्जलिविरचित - 'व्याकरणमहाभाष्य (प्रथम नवाह्निक) अनुवादक - चारूदेव शास्त्री। मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली - 6
7. पातन्जलं महाभाष्यम्। सं0 - श्री गुरू प्रसाद शास्त्री, संशोधक - डा. बाल शास्त्री 1987। वाणी विलास प्रकाशन, वाराणसी। मुद्रक अजन्ता प्रिन्टर्स, वाराणसी।
8. 'व्याकरणमहाभाष्य' सं. - एफ0 कीलहार्न, संशोधक - के. पी. अभ्यंकर, भाण्डारकर प्राच्यविद्या संशोधन मंदिर, पूना।
9. वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी (तत्वबोधिनी व्याख्योपेता)। पं. शिवदत्त दाधिमथ की टीका सहित। निर्णयसागर प्रेस।
10. वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी (श्री वासुदेव दीक्षित कृत बाल मनोरमा सहित) सं0 - आचार्य श्री गोपाल शास्त्री नेने। चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणी भाग I से IV।
11. श्रीमद् भट्टोजिदीक्षित विरचिता 'वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी' (बालमनोरमा सहिता)। सं0 - श्री

गोपाल दत्त पाण्डेय। चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

12. मध्य सिद्धान्त कौमुदी (प्रभाकारी टीका एवं हिन्दी भावानुवाद सहिता) सं० - श्री विश्वनाथ शास्त्री प्रभाकर अरविन्द, प्रकाशन वाराणसी।

13. लघु सिद्धान्त कौमुदी (सदानन्द विरचित) प्राज्ञतोषिणी हिन्दी टीका युक्त। सं० - श्रीधरानन्द शर्मा। हिन्दी टीकाकार श्री धरानन्द वर्मा। चौखम्भा वाराणसी।

14. संस्कृत व्याकरणोदयः - ले० डॉ. जयमन्त मिश्र। प्र. - चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी। मु० विद्याविलास प्रेस।

15. पाणिनीय व्याकरण का अनुशीलन। ले० - डॉ. रामशंकर भट्टाचार्य। भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी।

16. नागेश भट्ट कृत - 'परमलघुमञ्जूषा' व्याख्याकार - पं. अलखदेव शर्मा, व्याकरण साहित्याचार्य। सं० - पं. अलखदेव शर्मा। चौखम्भा अमर भारती प्रकाशन, वाराणसी।

17. भर्तृहरिविरचितं 'वाक्यपदीयम्' (श्री सूर्यनारायण शुक्ल कृत भाव प्रदीप टीका युक्त)। संपादक एवं हिन्दी व्याख्याकार - पं. श्री रामगोविन्द शुक्ल। परिशिष्टकार - पं. श्री रूद्र प्रसाद अवस्थी। चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी।

18. श्री मन्नागेशभट्टविरचित परिभाषेन्दुशेखरः (परिभाषाप्रकाशाख्य हिन्दी व्याख्याविभूषितः)। हिन्दी व्याख्याकार - श्री नारायण श्रमि। प्रकाशक - चौखम्भा ओरियन्टालिया, मुद्रक - श्री गोकुल मुद्रणालय वाराणसी।

19. 'संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास'। ले० युधिष्ठिर जी मीमांसक। भाग I से III। रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रेस बहालगढ़, सोनीपत, हरियाणा।

20. 'संस्कृत शास्त्रों का इतिहास'। ले० - श्री बलदेव उपाध्याय। चौखम्भा, वाराणसी।

21. 'संस्कृत का भाषाशास्त्रीय अध्ययन'। ले० - भोलाशंकर व्यास, बी. एच. यू. वाराणसी।

22. 'भाषा विज्ञान एवं भाषाशास्त्र'। ले० - डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

23. 'संस्कृत साहित्य कोश'। ले. - डॉ. राजवंश सहाय ' हीरा'। प्रकाशक चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी। मुद्रक - विद्याविलास प्रेस, वाराणसी।

24. 'संस्कृत हिन्दी कोश'। ले० - वामन शिवराम आप्टे, नाग प्रकाशन जवाहर नगर, दिल्ली-6। मुद्रक

- न्यू ज्ञान आफसेट प्रिंटर।

25. आचार्य दण्डीकृत काव्यादर्श।

26. 'परमलधुमञ्जूषा'। सं0 - कालिका प्रसाद शुक्ल। चौखम्भा वाराणसी।

शोध प्रबन्ध

1. काशिका का समालोचनात्मक अध्ययन। शोधकर्ता - डॉ. रघुवीर वेदालंकार। प्रकाशक - नाग पब्लिशर्स, जवाहर नगर दिल्ली। मुद्रक - अमर प्रिन्टिग प्रेस।

2. कशिका सिद्धान्तकौमुद्योः तुलनात्मक मध्ययनम्। शोधकर्ता - डॉ. महेश चन्द्र शर्मा, पहाड़गंज, दिल्ली।

3. महाभाष्य में उपनिबद्ध व्याकरणेतर साहित्य - एक समीक्षात्मक अध्ययन। शोधकर्ता - श्री रवीन्द्र कुमार शर्मा (रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय)।

✦✦✦